॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥

आचार्य सुधांशुजी महाराज

श्रीमद्भगवत्गीता

(भाग-२)
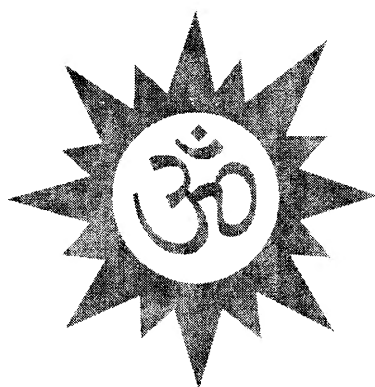
आचार्य सुधांशुजी महाराज

प्रथम संस्करण : जनवरी 1999

मूल्य : 101/- रुपये

प्रकाशक :
विश्व जागृति प्रकाशन
ओंकारेश्वर महादेव मन्दिर
जी-ब्लाक, मानसरोवर गार्डन,
नई दिल्ली-110015
दूरभाष : 5467496, 5464402
फैक्स : 5193700
e-mail : sudanshu@nde.vsnl.net.in

डिज़ाईन :
यूनिवर्सल ग्रार्फस
दूरभाष : 7010809

मुद्रक :
इन्टर-इण्डिया पब्लिकेशंस
डी-17, राजा गार्डन,
नई दिल्ली-110015
दूरभाष : 25441120, 25467082

अनुक्रम

1. *सातवां अध्याय*

   ज्ञान विज्ञान योग 1

2. *आठवां अध्याय*

   अक्षरब्रह्मयोग 49

3. *नवां अध्याय*

   परमगुह्य ज्ञान 119

4. *दसवां अध्याय*

   विभूतियोग 169

5. *ग्यारहवां अध्याय*

   विश्वरुप दर्शन योग 233

6. *बारहवां अध्याय*

   भक्तियोग 319

सातवां अध्याय
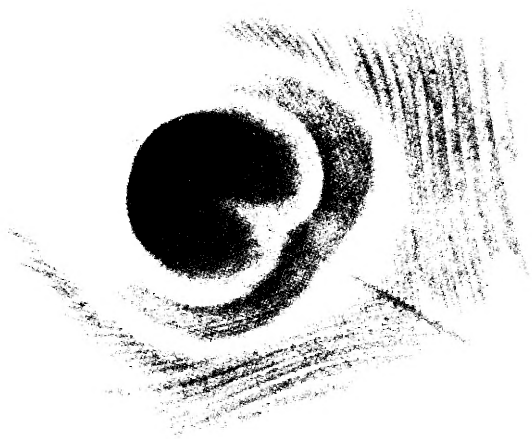
ज्ञान विज्ञान योग

ता के सातवें अध्याय में - भगवान कृष्ण अपने उपदेश में समझाते हैं कि मुझ तक यत्नपूर्वक पहुँचने वाले लोग बहुत कम हैं -

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

हज़ारों मनुष्यों में, भक्ति करने वाले लोगों में, योग के मार्ग पर चलने वाले लोगों में, साधना में रत हुए मनुष्यों के अन्दर, हज़ारों में से कोई-कोई व्यक्ति सिद्धि तक पहुँचते हैं अर्थात्, किसी-किसी व्यक्ति की सिद्धि वाली स्थिति बन पाती है। हज़ारों लोग यदि प्रयत्न करते हों तो सिद्ध होने की स्थिति बहुत कम की होगी। भगवान कहते हैं *कश्चित्* कोई-कोई, हज़ारों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्न करेगा *यततामपि सिद्धानां*- और यत्न करने वाले लोगों में भी कोई *वेत्ति तत्त्वतः*- तत्त्व से, सम्पूर्णता से, तात्त्विक रूप से कोई-कोई ही मुझे जानने वाला होता है।

विचार करके देखिए - प्रयत्न करने वाले लोग, इस तरफ़ चलने वाले लोग सब नहीं होते, इस तरफ़ आने वाले लोग बहुत कम हैं। चमक के पीछे भागने वाला संसार बहुत अधिक है और भले ही हर चमक के पीछे कोई नरक हो लेकिन व्यक्ति उस नरक को देखने के लिए तत्पर नहीं है, लेकिन चमक के पीछे भागने को तैयार है।

माया की इस चमक को तोड़ कर कोई व्यक्ति यदि साधना के क्षेत्र में चले और ऐसे हज़ारों लोग हों तो उन हज़ारों में से कोई एक व्यक्ति सिद्ध हो पाता है जिसकी भक्ति परवान चढ़ती है, जो व्यक्ति सिद्ध हो पाता है, सिद्धि जिसको मिल पाती है और ऐसे लोग जो सिद्धि तक पहुँच भी गए हों, ऐसे यत्न करने वाले लोगों में भी, ऐसे सिद्ध लोगों में भी भगवान कहते हैं कि तत्त्व को जानने वाला कोई-कोई होता है। ऐसा लगता है जैसे भगवान इतने-इतने मनुष्यों के बीच भी, उसे प्यार करने वालों के बीच भी अकेले ही न हो। यद्यपि परमात्मा तो एकाकी है, एक रस है, आनन्द घन है, सच्चिदानन्द स्वरूप है,

लेकिन समझने के लिए हम यह कह सकते हैं कि उसके चाहने वाले इस संसार में, जिसको आप कहें कि उसे जानें-मानें और उसे प्राप्त कर जाएं, ऐसे विरले लोग हैं क्योंकि वह सब से ऊँची सीढ़ी है, जहाँ जा कर सारे द्वार, सारे रास्ते मिल जाते हैं और फिर उसके बाद कहीं जाना बाकी नहीं रह जाता।

उन्नति का सबसे बड़ा शिखर अगर कोई है तो परमात्मा है। शान्ति का परम धाम परमात्मा है। आनन्द, उल्लास और सम्पूर्ण उत्सव का समग्र रूप परमात्मा है। समृद्धि का सम्पूर्ण समृद्धि स्वरूप प्रभु है, इसीलिए फिर कुछ और पाना बाकी नहीं रहता। वही एकमात्र मंज़िल है, वही एकमात्र लक्ष्य है।

अग्नि की लपट सदैव सूरज को लक्ष्य मानकर ऊपर उठती है। नीचे कीजिए तब भी अग्नि की लपट ऊपर ही उठेगी क्योंकि उसका लक्ष्य देवलोक है, सूरज लक्ष्य है उसका और पानी का लक्ष्य हमेशा ही समुद्र होता है इसीलिए हर पानी की बूँद नीचे की तरफ़ लुढ़कती है क्योंकि समुद्र तल हमेशा ही नीचे होता है।

लेकिन मनुष्य अपने लक्ष्य को भूल जाता है। हम अपनी मंज़िल ही पहचान नहीं पाते। एक अजीब चीज़ है कि हम सब लोग सुख पाना चाहते हैं, शान्ति पाना चाहते हैं, आनन्दित होना चाहते हैं, दु:ख से बचना चाहते हैं लेकिन यह सोचने को तैयार नहीं कि यह सारा संसार तो उस सुख और आनन्द का प्रतिबिम्ब है लेकिन जहाँ से वह सुख और आनन्द बह रहा है, जिसका यह अक्स संसार रूपी आईने में आया हुआ है वह तो परब्रह्म परमेश्वर है और हम लोग उधर प्रयास नहीं करते। सब जगह ढूढेंगे, सब जगह भागेंगे।

स्वामी रामतीर्थ ने कहा कि कोई एक मैना शीशे के पिंजरे में क़ैद है और एक फूल को देखकर बार-बार चोंच मारती है कि मैं उसको पकड़ लूँ। जब चोंच मारती है तो घायल होकर दूसरी तरफ़ दौड़ती है तो दूसरी तरफ़ शीशे में चोंच लगाई तो फिर और चोट लगती है। चारों दिशाओं में प्रयास करके देखा और जब थक कर के यह सोचकर कि अब मेरा प्रयास कुछ भी नहीं कर पाएगा, थककर जैसे ही अपने पांव की तरफ़ उसकी चोंच गिरी तो देखती है कि पांव में फूल रखा हुआ है और प्रतिबिम्ब चारों तरफ़ दिखाई दे रहा है। तो ऐसे ही परमात्मा का प्रतिबिम्ब या उसके सुख का प्रतिबिम्ब, उसकी माया का

रूप तो संसार में दिखाई देता है लेकिन जैसे ही मनुष्य अपनी गर्दन झुकाकर अपने परमात्मा के सामने समर्पण कर दे तो जिसे पाने के लिए वह चारों तरफ़ भाग रहा था, वह उसके पाँव में ही रखा मिलता है, वह आनन्द उसके पास में ही है, कहीं और नहीं है।

सबसे पहले लक्ष्य समझना चाहिए। लक्ष्य है परमात्मा और यह भी एक आश्चर्यजनक बात है हम कितनी भी दुनियादारी में उलझ जाएं, इस जन्म के बाद दूसरा जन्म, दूसरे के बाद तीसरा, संसार में उलझते जाओ, चोट खाते जाओ, कभी न कभी वैराग्य जागेगा, किसी न किसी जन्म में। कभी न कभी होश आएगी और जब होश आयेगी तो फिर उधर परमात्मा की तरफ़ चलने के लिए तत्पर होगा और आख़िर में पहुँचेगा तो फिर वहीं। यह हो सकता है कि करोड़ों जन्म लग जाएं।

महान् पुरुष कहते हैं कि तुम करोड़ों जन्म लगाकर के वहाँ पहुँचो क्योंकि आख़िर में परिणाम तो यही निकलेगा। इससे अच्छा यही है कि तुम इसी जन्म में जागो और एक-दो जन्म में ही पाने की कोशिश करो और हो सकता है कि पिछली कुछ साधना बाकी रह गयी हो, तो इस जन्म में एक झटके के साथ तुम्हारा वैराग्य जाग जाए, विवेक जाग जाए और तुम्हारी सिद्धि सिद्ध हो जाए और अपने परमात्मा को पा जाओ। इसीलिए इस बार कोशिश करो, अभी कोशिश करो। पहुँचना तो तुमने वहाँ है।

कोई नदी अगर रास्ते में कहीं भटक जाए, खो जाए, यह बात तो निश्चित है कि फिर कहीं और का पानी आ कर मिलेगा, दूसरे नाले आकर मिलेंगे। अब नहीं पहुँचेगी तो यह निश्चित बात है बरसात में पहुँचेंगी लेकिन समुद्र से जाकर मिलेगी तो ज़रूर।

आपने देखा होगा कि व्यक्ति को संसार की ठोकरें लगने के बाद कई बार बड़ा वैराग्य जागता है। कभी कहेगा – संसार में रिश्ते-नाते कुछ भी नहीं, परिवार कुछ भी नहीं, सब झूठा। कभी कहेगा – मनुष्य कि धन के पीछे भागकर देख लिए लेकिन इसको पाने के बाद भी इसमें है कुछ नहीं, क्योंकि व्यक्ति को मिलता क्या है, एक तरह का गुरूर पैदा कर लेता है, आवश्यकता तो आदमी की इतनी है ही नहीं। कभी इन्सान कहेगा कि बड़े पद पर पहुँचने

के बाद भी मिलता क्या है? ईर्ष्या लोगों की ज़्यादा हो जाती है, अपने आप को बचाना ज़्यादा मुश्किल हो जाता है, इसमें भी कुछ रस नहीं है। कभी व्यक्ति सोचता है कि शक्ति में कुछ है लेकिन बाद में समझ में आता है कि शक्ति इकट्ठी कर लेना, संगठन बना लेना, ताक़त वाले लोग साथ खड़े कर लेना, यह तो हो सकता है लेकिन वे वफ़ादार बने रहेंगे, नहीं बने रहेंगे इसकी भी तो शंका मन में रहती है; हो सकता है वही तलवार हमारे लिए उल्टी काम करने लग जाए।

सच बात तो यह है कि मनुष्य इन सब तरह की सुख-सुविधा, धन-सम्पत्ति, बल, सब कुछ पाने के बाद भी अशांत होता है लेकिन संसार में कुछ लोग वे भी रहे हैं जिनके पास न धन-बल है, न जन-बल है और न किसी सत्ता का बल है, न किसी कुल का बल है और न शरीर की कोई विशेषताएं हैं - रूप, सौन्दर्य या कोई ख़ास तरह की आयु, यह सब नहीं लेकिन उसके बाद भी वह ज़्यादा शांत, वह ज़्यादा आनन्दित और शहंशाहों के शहंशाह बन कर बैठे हुए हैं। तो ऐसा क्यों होता है? सीधा-सा कारण है - वह लोग संसार से पीठ करके, संसार के मालिक से अपने सम्बन्ध जोड़ने में लग गए इसीलिए उनके अन्दर प्रसन्नता प्रकट हो गई। उन लोगों ने संसार के पदार्थों की तरफ़ भटकना नहीं शुरू किया, पदार्थ और माया को अपने पीछे आने दिया लेकिन वह उसके पीछे नहीं गये। इसीलिए कबीर ने कहा :-

कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गंग का नीर ।
पाछे-पाछे हरि फिरे, कहत - कबीर कबीर ।।

मन निर्मल हुआ तो अब माया भी पीछे-पीछे है। माया का स्वामी मायापति-परमात्मा भी पीछे आवाज़ देता है कि सुन तो सही। अपने आप को तैयार करने की कोशिश कीजिए कि हम तत्पर हो जाएं उस मार्ग पर चलने के लिए, फिर बुलाने के लिए सारा संसार पास में खड़ा होगा और आपने यह नहीं सोचना कि संसार को झुकाने के लिए, हम इधर जाएं बल्कि आप यह सोचिए कि संसार झुके न झुके, हमें कुछ लेना-देना नहीं। यह सिर परमात्मा के सामने झुकता रहे और परमात्मा का कृपा भरा हाथ हमारे सिर पर पहुँच जाये। बस हमारा लक्ष्य तो यह है। यही माँगना, यही चाहना।

तो भगवान ने कहा कि इस क्षेत्र में चलने वाला व्यक्ति हज़ारों में से कोई एक होगा। तो यह मानिये कि भक्ति की तरफ़ चलने वाले लोग इस संसार में सदैव कम रहे हैं। जिसके अन्दर सात्विकता जागी, जिसके अन्दर भजन करने के लिए भावनाएं उपजीं, सोचना परमात्मा की कुछ कृपा विशेष हुई है। महान् व्यक्तियों के वचन सुनने के लिए व्यक्ति तत्पर हुआ, सोचना हमारे पुण्यों का सूरज उदय हो गया और कहीं अगर जाकर भजन करते हैं, सेवा करते हैं तो सोचना कि हमारे पितरों का, हमारे पूर्वजों के जो संस्कार थे, उनकी जो कमाई थी, उसका फल हमें मिलने लगा है। अगर इस क्षेत्र में आने के बाद भजन करें और भजन का दिखावा न करें, सेवा करें लेकिन सेवा का फल नहीं चाहें तो सोच लेना चाहिए मेरे परमात्मा ने मेरे ऊपर बहुत बड़ी कृपा की है जो अपने क़रीब बैठने का मौक़ा दिया है। नहीं तो यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते भी बहुत-बहुत लोगों के बीच दुर्भाग्य आकर खड़ा हो जाता है, अहंकार बीच में आकर रोक देता है, उनको पहुँचने नहीं देता; छोटा-सा आवरण होता है यह।

गाड़ी के ईंजन में थोड़ा-सा कचरा आ जाए, थोड़ी-सी मैल, थोड़ा-सा मोतिया बिंद का पर्दा आ जाए, कुछ भी दिखाई नहीं देता, संसार आंखों से ओझल हो गया। यह थोड़ा-सा अहंकार ही अगर मैल बनकर के अंत:करण पर आ जाए तो परमात्मा से इतनी दूरी बना देता है कि फिर कई जन्म लग जाते हैं, तब कहीं जाकर प्राप्ति होती है। एक बार यह एहसास होने लग जाए कि मैं तो कुछ हूँ, बस गया फिर। इसीलिए सैंकड़ों नहीं हज़ारों में से कोई इस तरफ़ आएगा।

एक और बात याद रखना- जब कोई इस क्षेत्र में आये बधाईयां देना उसे, उसके परिवार को धन्यवाद देना। ऐसे लोगों को प्रोत्साहन देकर के बढ़ाना उनको आगे। परमात्मा के दरबार की तरफ बढ़ने वाला व्यक्ति कोई तो दिखाई दिया, उसे शाबाशी दो। कोई सेवादार, कोई भजन करने वाला, पूजन करने वाला, भक्ति में चलने वाला व्यक्ति, कोई दयालु व्यक्ति किसी के परिवार में हो या किसी मौहल्ले में हो या आपकी आंखों के सामने कहीं दिखाई दे उसको शाबाशी देना और कहना यह दीया बुझने न देना भाई। बड़ी मुश्किल से किसी

हृदय में यह अकुंर पैदा हुआ करता है. हर किसी के अन्दर यह जागता नहीं। ऐसे लोगों को प्रोत्साहित करो।

जननि जने तो भक्त जन, या दाता या शूर ।
नहीं तो बाँझ रहे, मत गंवा नूर ।।

ओ माँ, अगर पैदा करती है तो किसी भक्त को पैदा कर *या दाता या शूर* या किसी दानी को उत्पन्न करना या किसी शूरवीर को, नहीं तो बाँझ रह लेना अच्छा। संसार में इन्हीं लोगों द्वारा कुछ भला हो सकता है। या तो वह व्यक्ति जिसने देना सीखा हो, कभी किसी का छीना नहीं और कभी किसी से कुछ मांगा नहीं। या वह जिसने अन्याय से दूसरों की रक्षा की हो, धरती का बोझ हल्का किया हो या सबसे ऊपर वह व्यक्ति, भक्तजन, वह जननी धन्य हो गई जिसकी कोख से किसी भक्त ने जन्म लिया। वह घर धन्य जिसके कुल के अन्दर कोई ऐसा भक्ति का चिराग़ जगाने वाला कुलदीपक बन करके कोई पैदा हो गया। ऐसे लोगों की सदैव प्रशंसा करो, उनको तारीफ़ दो कि तुम संसार को कुछ देने के लिए, इस पूरे संसार के बग़ीचे की सुन्दर शोभा बनने के लिए खिले हो, खिले रहना। फूलों की रक्षा करना बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है, वह खिलेंगे, दूसरों को खिलने का मौका देंगे। वह खिलेंगे तो सुगन्ध उड़ेगी संसार में।

भले लोग संसार में उठेंगे तो भलाई फैलेगी और ऐसे फूल जहाँ खिला करते हैं वह प्रेरणा देते हैं कि ज़िन्दगी में काँटे बहुत हैं लेकिन फिर भी खिले रहो। फूलों में फूल का सबसे प्यारा नाम जो है वह है प्रसून। कहते हैं विशेष रूप से शयन करता है वह, कहाँ? कांटों के अन्दर। कांटों की सेज पर सोने वाले को प्रसून कहा गया है और सोना ही नहीं, कांटों की सेज पर हमेशा ही जो मुस्कुराया करता है, हंसा करता है, दुनिया के ग़मों को पीकर जो उदास न हो, हंसे और हंसाए, मस्ती में रहे और मस्ती को बांटे, उन्हें जीना आता है। ऐसे लोगों की प्रशंसा करनी चाहिए। वेदों में कहा गया है कि तीन तरह के लोगों की संगति करना - देने वाले लोग, ज्ञानी लोग और जो अन्याय से रक्षा करते हैं लेकिन बल पाने के बाद भी हिंसक नहीं होते तो ऐसे लोगों की संगति करना। उनकी संगति से तुम्हारे जीवन में एक नया रंग आयेगा। तो जो लोग

फूलों की तरह कांटों में सदैव हंसा करते हैं, भगवान के भजन गाया करते हैं। कहा जाता है ज़िन्दगी क्या है? *आँसुओं का जाम है, कुछ पी गए और कुछ छलका गए।* कुछ तो वह लोग हैं जो आँसुओं को पी जाते हैं और कुछ वह लोग जो छलका जाते हैं, उनके आँसुओं का जाम जो है आँखों से छलकता रहता है। लेकिन महान् पुरुष तो वह लोग होते हैं जो दूसरों के आँसुओं को स्वयं पीकर अपनी मुस्कुराहट उनके नाम देकर जाया करते हैं - जो कभी मुस्कुरा नहीं पाते, पीड़ा से जो भरे रहते हैं, उनको जो मुस्कुराहट दे। इसीलिए तो व्यास ऋषि ने कहा था -

'न त्वहं कामये: राज्यं न स्वर्गमं न पुनर्भवं' ।

भगवान मुझे राज्य नहीं चाहिए, स्वर्ग नहीं चाहिए, मोक्ष नहीं चाहिए।

'कामये दुःखतप्तानाम् प्राणीनाम् आर्त्तनाशनम् ।।

संसार के दुःखी लोगों का दुःख दूर कर सकूँ, ऐसा वरदान चाहता हूँ; सबको हँसा सकूँ, प्रसन्नता दे सकूँ।

कहते हैं न कि किसी के मिलने पर आँसू आते हैं और किसी के बिछुड़ने पर आँसू आते हैं। कोई मिल जाए तो आँसू आएं और किसी के बिछुड़ने के बाद, विदाई में आँसू आते हैं। यहाँ दो बातें ध्यान रखने की हैं कि एक वह लोग हैं जो बरसों के बाद मिले और मिलने के बाद प्यार में आँसू आ गए। एक वह लोग हैं जो मिलकर आँसू ही देकर जाते हैं और खुशी कभी नहीं देकर जाते, वह दुष्ट लोग हैं। एक वह लोग जो सारी ज़िन्दगी खुशियाँ देते रहे लेकिन जाते-जाते अपने प्यार में रूलाकर चले गए। कहते हैं जो अपने प्यार में रूला कर जाए और मीठी यादें छोड़ जाए वही परमात्मा का प्यारा है, वह विशेष व्यक्ति है। हज़ारों में से कोई एक इस तरह का होगा और उन हज़ारों में से जो एक है उन एक वाले भी हज़ारों हों।

भगवान कहते हैं मुझे तत्त्व रूप से, सम्पूर्ण रूप से, जानने वाला भी कोई एक होगा। भजन तो कर लेंगे, भजन और सिद्धि पा भी लेंगे, विशेषताएं आ जाएंगी लेकिन परमात्मा के सम्पूर्ण रूप को पहचानने वाले लोग नहीं होंगे जो उसका सही स्वरूप जान सकें और लोगों को दे सकें।

गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस की संरचना करने के लिए बैठे।

समस्त देवी देवताओं की उपासना की, पूजा की। कहा जाता है कि देवी देवता सम्मुख आ गए। भगवान शंकर भी सम्मुख हैं, नारायण एक अलग रूप लेकर सामने हैं, दुर्गा माँ की कृपा भी हो गई। सबने कहा - वरदान माँगो। तुलसीदास ने हाथ जोड़ कर कहा कि आपकी कृपा हुई, आप आए, आशीर्वाद एक ही दो, राम के चरणों में प्रीती है, यह निष्ठा गहरी हो जाए, बस, यह आशीर्वाद देकर जाओ। वहाँ से ध्यान न हटे।

अब अगर तुलसीदास जी यह सोचते पता नहीं राम मिलेंगे नहीं मिलेंगे, पहले जो मिल रहे हैं उनसे तो कुछ ले लें, बाकी बाद में जो मिलेंगे वह बाद की बात है। यह तो एकदम सामने आ गए और शायद वह देवी देवता, वह परमात्मा का स्वरूप इसीलिए सम्मुख था कि परीक्षा कर सके कि सिद्धि तो आ गई, आगे फैल सकेगा या नहीं ? और अगर उस समय त्याग नहीं दिखाते तो शायद आगे बढ़ नहीं पाते। इसीलिए यह सम्पूर्ण सिद्धि के लिए परमात्मा को तत्त्व से जानना और उसके प्रति सम्पूर्ण प्रेम रखना, यह कोई-कोई कर पाता है। भगवान ने फिर कहा -

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

इस संसार में, समस्त ब्रह्माण्ड में मुझसे अलग कुछ भी नहीं है, *मयि सर्वमिदं*, मुझ में ही यह सब है, यह समस्त ब्रह्माण्ड। लेकिन फिर भी मैं ऐसे हूँ *सूत्रे मणिगणा इव प्रोतं*, सूत्र अर्थात् धागा, जिस प्रकार से मणियों के बीच आकर माला को बनाया करता है, लेकिन स्वयं दिखाई नहीं देता; माला के बीच पड़ा हुआ धागा नहीं दिखाई देता, मणियाँ दिखाई देती हैं या फूलों की माला हो तो फूल दिखाई देते हैं लेकिन धागा नहीं दिखाई देता। कहा कि ऐसे इस संसार में सब कुछ तो मेरे अन्दर ही है या मैंने ही सबको बांधा हुआ है या सबका आधार मैं हूँ, मेरे कारण सब जुड़ा हुआ है। माला दिखाई दे रही है, लेकिन माला का धागा मैं हूँ, मैं किसी को नहीं दिखाई देता और जो मुझे देख ले बस उसी का मैं हो जाया करता हूँ। यही है तत्त्व से जानना। समस्त विराट् ब्रह्म, विराट संसार में, अविराट ब्रह्माण्ड में उस परब्रह्म की जो अनुभूति कर ले। इसको हम उपनिष्दों में पढ़ें या फिर वेदों में पढ़ें तो वहाँ एक अलग ही

शब्द कहा - *सः ओतःप्रोतश्च विभुःप्रजासु* - मेरा परमात्मा समस्त प्रजा में, प्राणीमात्र में, जीव मात्र में, मनुष्य मात्र में, समस्त ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत है और व्यापक बन कर फैला हुआ है। ओत-प्रोत शब्द का प्रयोग किया गया।

जैसे वस्त्र में धागे होते हैं तो वस्त्रों में जो धागे हैं वह ओत-प्रोत हैं। आप अपनी भाषा में कहें ताना-बाना जुड़ कर वस्त्र बनता है। जो सीधा ताना जाए धागा वह ताना है और जो बुना जाए वह बाना। दोनों का जब मेल बनता है तो वस्त्र बनता है और वस्त्र में रंग देकर फूल-पत्तियाँ बनाकर जब आप उसे पहनते हैं तो कोई देखकर कहे क्या पहना हुआ है? धागों का जाल। तो आदमी कहेगा यह क्या भाषा बोलता है। आप वस्त्र को देखकर, उसकी फूल पत्तियाँ देखकर, उसका रंग देखकर हैरान होते हैं, लेकिन आश्चर्य तो यही है कि वह धागों का जाल है और धागे दिखाई नहीं दे रहे। दिखाई दे रही हैं फूल-पत्तियाँ। ऐसे ही सारा संसार है तो परमात्मा का रूप लेकिन दिखाई दे रही है माया और इस माया के पीछे बैठा हुआ है माया-स्वामी अर्थात् परमात्मा।

भगवान ने कहा - *मणिगणा इव सूत्रे प्रोतं* - मणियों के बीच जैसे धागा पिरोया हुआ हो, इस सारे संसार में मैं अपने स्वरूप को इसी तरह पिरोये हुए हूँ, सब जगह हूँ। फिर कहते हैं - *रसोऽहमप्सु* - मैं समस्त जलों के बीच रस हूँ।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरूषं नृषु ॥

जलों के बीच मैं रस हूँ, सूरज और चन्द्रमा में प्रकाश हूँ, समस्त वेदों का जो सार तत्त्व है, ओ३म् वह मैं ही हूँ और आकाश में गूँजने वाला शब्द अर्थात् शब्द और आकाश का सम्बन्ध है। आकाश होगा तो शब्द पैदा हो सकता है। तो समस्त आकाश में गूँजने वाला नाद ब्रह्म भी मैं ही हूँ और पुरुषों में उनका जो पौरूष है वह मैं ही हूँ। कहा है कि मुझे इस तरह से पहचानो, यह जो जल है, जो भी द्रव्य है, उन सब में रस बनकर मैं ही बैठा हुआ हूँ।

कोई भी चीज़ आप पीते हैं तो उस पीने वाली चीज़ के प्रति जो आकर्षण है वह आकर्षण रस के कारण होता है। भगवान ने कहा - समस्त जलों का रस बनकर, स्वाद बनकर, मैं ही बैठा हुआ हूँ और मैं ही सूरज और

चन्द्रमा के अन्दर प्रभा हूँ। आप अपनी कविता में कहना चाहो या अपनी भाषा में कहना चाहो या अपने हिलोर में आकर कहना चाहो, तो आप यही कहेंगे कि सूरज और चाँद में प्रकाश उसी का है, नदियों में बहाव उसी का है, फूलों में रंगत उसी की है, हवा का स्पर्श सुखद है तो उसी के कारण है, कोयल के कण्ठों में माधुर्य है तो परमात्मा के कारण, पंछियों के पंखों में रंग-बिरंगा सौन्दर्य दिखाई देता है तो वह सर्व सुन्दर परमात्मा है, उसी के कारण दिखाई देता है। मनुष्य के हृदय में जो धड़कन है उसको गति देने का कार्य, वह ध ड़कन कोई और नहीं वह परमात्मा ही है। आँखों में जो तेज़ है, वह तेज़ कोई और नहीं, आँख को देखने की ताक़त देने वाला तत्त्व परमात्मा है। वही किसी बच्चे की किलकारियों में किलकारी बनता है और वही किसी के मुस्कुराहट में मुस्कान बनकर उभरता है और वही है जो इस सारे संसार के खाद्य-पदार्थों में रस बन कर के बैठा हुआ है। वही तो है जो सबको आवास दे रहा है और वही है जो सबको ढके हुए है। वही सबके अन्दर भूख जगाता है और वही सबका पेट भी भरता है। सर्वत्र देखा जाए तो वही तो है, उसके सिवाय और क्या है? हिलोर में आयेंगे तो आपको लगेगा कि सर्वत्र उसी का रंग, रूप, रस, वैभव फैला हुआ है। उसी का यह चमत्कार है, उसके भण्डारे सारे संसार भर में सब जगह हैं। कड़ाहे चढ़े हुए दिखाई नहीं देते लेकिन भोजन मिलता हुआ दिखाई देता है। उसी के ख़ज़ाने से सब लोग अपनी-अपनी तिजोरियां भर रहे हैं, लेकिन उसका ख़ज़ाना कहाँ से मिला करता है यह जगह कहीं नहीं दिखाई देती। वही तो है जो इन्सान को सौन्दर्य देता है और व्यक्ति सोचता है मैं सुन्दर हूँ लेकिन उसकी कृपा के कारण और जिस दिन वह इस रंग को छीनता है तो कितना कुरूप बनाता है। शरीर से प्राण निकल जाए तो कितना डरावना लगता है चेहरा। तो कहा है कि परमात्मा ही जलों में रस है और वही सूरज और चाँद की प्रभा है, उसका तेज, उसका प्रकाश परमात्मा ही है।

यहाँ भगवान कृष्ण कह रहे हैं कि मुझे ही तुम सूरज और चन्द्र में प्रकाश के रूप में देखो, जलों में रस के रूप में अनुभव करो और समस्त वेदों में सार तत्त्व जो एक ओ३म् कहा गया है वह एक ॐकार कोई और नहीं मुझे ही समझो।

अर्थात् परमात्मा ही ओ३म् है, वही रस है, वही प्रकाश पुँज है, वही शब्द ब्रह्म है और वही मनुष्यों के अन्दर पौरूष बनकर, शक्ति बनकर ठहरा हुआ है, कि अपने परमात्मा को इस तरह से अनुभव करो। प्रश्न यह आयेगा कि भगवान को ऐसा अनुभव करने से क्या लाभ होता है, क्योंकि मनुष्य तो लाभ-हानि को पहले सोचता है कि ऐसा सोचे, इस तरह से करें तो इस सब का लाभ जीवन में क्या है? इस लाभ को भी समझिये। मैं यह नहीं बताऊँगा कि इतनी सिद्धियाँ मिल जायेंगी, यह फल मिल जाएगा। लोग माँग करते हैं- भगवान मकान देना मैं सुखी हो जाऊँ, ज़मीन देना मैं सुखी हो जाऊँ, धन देना मैं सुखी हो जाऊँ, तन बलिष्ठ बनाना मैं सुखी हो जाऊँ और मकान पाने के बाद भी क्योंकि मांगा था मकान, चाहता था सुखी होने के लिए। भगवान ने मकान दिया लेकिन मकान पाने के बाद सुखी नहीं हो पाया। भगवान ने तो यही कहा- मकान मांगा न, मैंने दिया। गाड़ी दी, अब गाड़ी अगर कचहरी और अस्पताल के सिवाय कहीं जा ही नहीं रही, तो मांग तो पूरी हो गयी।

और जो परमात्मा का प्यारा भक्त है वह यह कहेगा - पदार्थ दो या न दो लेकिन वह सुख दे देना कि जहाँ भी रहूँ सुख से रह सकूँ, चाहे छोटी झोंपड़ी हो या महल हो। तो इसीलिए परमात्मा के नज़दीक जाने का मतलब है कि जो उसके अन्दर आनन्द बहता है उसके मालिक हम बन जाएं, मतलब वह हमें भी प्राप्त होना शुरू हो जाए। उसकी तरफ़ जाने का मतलब है कि फिर कुछ और पाना बाक़ी नहीं रहेगा, सब कुछ मिलेगा। इसीलिए सारी सिद्धियाँ यहीं आकर जुड़ जाती हैं। इसीलिए लाभ अगर देखा जाए तो दुनिया का सबसे बड़ा लाभ ही परमात्मा है उससे बड़ा कोई लाभ ही नहीं है। उपनिषदों में कहा -

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती नष्टिः ।

इस दुनिया में आकर अगर उसको जाना तो बहुत बड़ी उपलब्धि हो गई और अगर इस तरफ़ कोशिश नहीं की, तो बहुत बड़ी हानि कर ली तुमने।

इसीलिए सबसे बड़ा लाभ परमात्मा की तरफ़ चलना है। जैसे-जैसे भक्ति अपने अन्दर आती चली जाती है कुछ ढंग जीवन के बदलते जाते हैं। ऐसे कहिये कि परमात्मा किसी व्यक्ति के अन्दर कोई विशेषता देता है तो

उदारता आनी शुरू हो जायेगी, दिल विशाल हो जाएगा, स्वार्थ से ऊपर उठ जाएगा, अपने लिए नहीं दूसरों के लिए सोचना शुरू कर देगा। यहीं पहुँचते-पहुँचते बड़ा हो जाता है।

जब हम बच्चे हैं तो केवल अपना सोचते हैं, माँ बाप से भी लेकर अपने मुँह में डालेंगे। थोड़े बड़े हुए तो अपने भाई को भी खिलाना चाहते हैं; अपने लिए रखेंगे, भाई को भी देना चाहेंगे। थोड़े और बड़े हुए भाई का भी ध्यान, मित्रों का भी ध्यान, पत्नी का भी ध्यान, मां-बाप का भी ध्यान, तो विकास हो गया, उदारता बढ़ती जाती है और थोड़े-से और बड़े हुए तो इन सब का ध्यान करने के साथ में रिश्तेदारों का, परिवार वालों का, मोहल्ले वालों का, बिरादरी वालों का भी ध्यान करने लगेगा, विशालता आ गई।

लेकिन बहुत से लोगों की विशालता यहीं तक आकर रूक जाती है, आगे नहीं बढ़ पाती। जो और आगे बढ़ते हैं, वह क्या करते हैं? अपने पूरे नगर का ख़्याल करेंगे, परिवार के साथ में नगर तक पहुँच गए। और बड़े हुए तो व्यक्ति क्या करेगा? अपना, अपने परिवार का, अपने रिश्तेदारों का, अपने नगर का और अपने पूरे राष्ट्र के भले के लिए कार्य करना शुरू कर देगा, उदारता बढ़ती चली जाएगी। भारत के ऋषियों ने तो यहाँ तक कहा कि तुम बड़े हो रहे हो तो इतने पर रूक मत जाना। समस्त विश्व को अपना कुटुम्ब मान लेना, अपना परिवार मान लेना, तब माना जाएगा कि तुम सच में उदार हो गए और जब तुम इस विराट् तक पहुँचोगे तो विराट् तत्त्व परमात्मा तुमसे दूर नहीं है, वह तुम्हारे सम्मुख हैं।

दूसरा महायुद्ध जिस समय चल रहा था, ब्रिटेन में रहने वाला एक यहूदी वैज्ञानिक उसने ब्रिटेन की सेना के लिए बड़े सारे अस्त्र-शस्त्र तैयार किए। वैज्ञानिक था और ब्रिटेन की जीत में और सफलता पाने में वह वैज्ञानिक बड़ा भारी सहयोगी बन गया।

एक दिन बड़े ऑफिसर और बड़े अधिकारी इकट्ठे हुए, उन्होंने उस वैज्ञानिक को बुलाया। बुलाकर के कहा कि भाई ब्रिटेन तुम्हें सम्मानित करना चाहता है। तुमने जो हमारे प्रति इतना बड़ा कार्य किया उसके बदले में तुम्हें हम कुछ देना चाहते हैं। जहाँ चाहो वहाँ तुम्हें ज़मीन दे दी जाए। बड़ा भारी मकान

अपना बना लो, करोड़ों रूपयों की सम्पत्ति ले लो, जिस तरह की भी सुख सुविधाएं लेना चाहते हो, ले लो हम तुम्हें देना चाहते हैं। तुम्हारे एहसानमंद हैं, कृतज्ञ हैं इसीलिए हम यह एहसान का बदला चुकाना चाहते हैं।

वह यहूदी वैज्ञानिक सिर झुका कर के बोला कि आप लोग मुझ पर कृपा करने लगे हैं। मैं खुशनसीब हूँ, भाग्यशाली हूँ। लेकिन अगर आप कुछ देना ही चाहते हैं, एक कृपा करो, मेरे बहुत सारे यहूदी भाई हैं जिनके पाँव के नीचे अपनी ज़मीन नहीं है और अपने धार्मिक कृत्य करने में उन्हें बहुत दिक्क़त आती है। अपना अस्तित्व बचाने के लिए बड़ी मुश्किल बनी हुई है। आप मुझे नहीं दीजिए, मेरे भाईयों को दीजिए। अगर दे ही सकते हैं तो हमें हमारी ज़मीन वापिस लौटा दीजिए। हम लोग अपनी ज़मीन में रहना चाहते हैं। आप लोग जानते हैं उसी के बाद इस्राईल की स्थापना हुई 1948 में, एक व्यक्ति के कारण। फिलिस्तिन में ब्रिटिश लोगों ने भूमि दी और वह भूमि भी क्या थी, रेगिस्तान। लेकिन आप सोचिए रेगिस्तान वाली भूमि इन लोगों को मिली। पर जिन्होंने दुनिया में सुरक्षित रहना होता है, वह अपने संघर्ष से कभी घबराते नहीं। संघर्ष करना शुरू किया, परिश्रम किया और अपने परिश्रम के बल में वह कहीं स्थापित हुए।

तो अगर वह व्यक्ति केवल यह कह देता कि साहबजी आप बहुत खुश हुए हैं, बड़ी कृपा है आपकी एक कोई आयलैण्ड हमें दे दीजिए, एक द्वीप दे दीजिए, हम समुद्र के बीच में कहीं सुन्दर-सी जगह बनाकर के मैं और मेरा परिवार और बहुत सारे गॉर्डस रहें और हमारी पीढ़ियाँ सुख भोगती रहें तो केवल अपने लिए माँगता, उसका हाथ अपने मुँह की तरफ़ आता लेकिन यही तो देवत्व है - उसने अपनी पूरी क़ौम के लिए माँगा। कहना चाहिए यहूदी इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया उस व्यक्ति ने।

जब आपका हृदय ऊँचा होगा, उदारता आपके अन्दर आयेगी, संसार में आप एक नई तरह से ज़िन्दगी जियेंगे। पेट भर लेना, तन ढाँप लेना, यह तो कोई बड़ी चीज़ नहीं। बड़ी चीज़ है, आदमी ऊँचाई तक पहुँचे कि जिसे देखकर लोग कहें कि हाँ, सच में इस व्यक्ति को प्रणाम करने को और इसके सामने सिर झुकाने को मन करता है। यह व्यक्ति की ऊँचाई है।

हम सभी लोग दूसरे से प्रणाम लेना चाहते हैं पर उसके काबिल तो बनें और यह काबलियत तभी आयेगी जब कहीं अन्दर से थोड़ी बहुत भी विशेषता हमारी ऐसी जुड़ जाए, अपने भगवान से कहीं जुड़ जाएं। इसीलिए निवेदन है आपसे- हज़ारों में से कोई एक परमात्मा की तरफ़ चलने के लिए उन्मुख होगा और उनमें से भी कोई उसे जानने वाला एक व्यक्ति होगा। भगवान कहते हैं लेकिन जो कोई इस क्षेत्र में आना चाहता है वह मुझे जाने और मैं इस समस्त संसार में सभी स्थानों पर हूँ लेकिन ज्ञानी कोई तत्व रूप से, अपनी साधना के द्वारा, अपने अन्तस् में जो प्रतीती अनुभूति करने लगता है उसे मैं महसूस होता हूँ, मैं इस तरह से हूँ जैसे मणियों की माला के बीच धागा होता है।

जब तुम किसी जल को पियो उसमें अपने परमात्मा की कृपा को अनुभव करना क्योंकि रस बनकर परमात्मा बैठा हुआ है, वही हमारे अन्दर और वही बाहर। सूरज के प्रकाश में जिस समय हज़ारों रास्ते तुम्हें दिखाई दें तो उस परमात्मा को धन्यवाद करना क्योंकि सूरज में प्रकाश बन कर के ही परमात्मा बैठा हुआ है और आपके तन को धूप बनकर वही तो छू रहा है, वही तो आपको स्पर्श कर रहा है, उसके सिवाय और कुछ है भी तो नहीं। जब चन्द्रमा की चाँदनी को आप देखकर आनन्दित हों, और यह सोचें कि चन्द्रमा की चाँदनी समस्त फलों में रस बनती है तो तब सोचना कि रस बरसाकर, चन्द्रमा का रूप धारण कर के कोई और नहीं बैठा हुआ है। चन्द्रमा में जो चाँदनी बनकर बैठा हुआ है वह मेरा परमात्मा ही तो है, उससे अलग कुछ भी तो नहीं है।

जिस समय तुम वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन करने के बाद एकमात्र तत्त्व को पकड़ने लग जाओ कि एक ओ३म् को ही, प्रणव को ही ग्रहण करना है तो सोचना वह सर्वस्व, वह सार कुछ और नहीं, मैं ही हूँ अर्थात् भगवान कहते हैं तुम प्रणव का, ओ३म् का जाप करते हो तो मेरा ही जाप करते हो। इसीलिए ज़्यादातर लोग क्या कहते हैं कि ओ३म् बोलकर परमात्मा की समस्त शक्ति का ध्यान करते हैं।

भगवान की तीनों शक्तियाँ एक साथ ॐकार में दिखाई देती हैं, क्योंकि जब आप ओ३म् बोलते हैं तो तीन अक्षर आ जाते हैं सामने। तीनों अक्षरों का सामञ्जस्य ओ३म् है। अ, उ और म् । अ मुँह से निकला, आपका मुख खुला,

होंठ खुले। पता लगा उस ताक़त को, शक्ति को आप याद कर रहे हैं जो संसार को खोलती है, संसार का निर्माण करने वाली ताक़त-ब्रह्मा । उ कहा, होंठ गोल हो गये। यह समस्त ब्रह्माण्ड जो गोलाकार है, जिसके गर्भ में है, जो इसका पोषण करता है, पालने वाली ताक़त अब हम उसे याद कर रहे हैं, विष्णु भगवान को याद कर रहे हैं। अर्थात् भगवान ही संसार को खोलने वाला, संसार का कर्त्ता है और वही धर्त्ता- धारण करने वाला, गोलाकार रूप में अपने गर्भ में जो सब धारण किए हुए है और जैसे ही कहा **म्, म्** बोलते ही होंठ बन्द हो गए। कहा कि तू ही वह है जो इस सारे संसार को बन्द करता है क्योंकि म् बोलते ही होंठ बन्द हो जाते हैं। कहा कि तू ही खोलता है, संसार को ऑन करने वाला स्विच् भी तेरे पास ही है और ऑफ करने वाला स्विच् भी तेरे पास ही है। **म्** कहते ही होंठ बन्द हो गए। अ कहा पहले तो होंठ खुले, उ बोला तो होंठ गोल हो गए और जैसे ही म् कहा होंठ बन्द हो गए। तो इतने में ही पता लग जाता है कि कौन-सी ताक़त को हम याद कर रहे हैं। वह सर्वशक्तिमान जो संसार को उत्पन्न करता है, पोषण करता है और अपने अन्दर रखकर इस संसार को बन्द भी कर देता है। ब्रह्म, विष्णु, महेश कह लीजिए या भगवान का समस्त स्वरूप कहना हो तो ओ३म् कह लीजिए। कहा वही सर्व वेदों में ॐकार तत्त्व है।

भगवान कृष्ण कह रहे हैं कि मुझे याद करना चाहते हो? ओ३म् कहो तो मैं याद होता हूँ। तुम मुझे ही पुकार रहे हो। परब्रह्म को पुकारना हो तो ओ३म् कहो और यह ध्वनि इस रूप में रखी गई, इससे हमारा सारा शरीर और नाड़िकाएं झंकृत होती हैं। अ कहा जाएगा तो ऊपर की तरफ ध्यान जाएगा, उ कहते ही आपके हृदय पर प्रभाव पड़ता है और जैसे ही म् कहा गया झंकार जो पैदा हुई तो वह झंकार आपकी नाभि से मस्तिष्क तक पहुँचती है। इसीलिए नियम यह माना गया है कि जब अ बोला जाए तो इस तरह उच्चारण करो कि नाभि से स्वर शुरू हो, जैसे कोई व्यक्ति गाने के लिए बैठे और शुरू में आलाप ले, नीचे से शुरू करें ध्वनि को और म् बोलते-बोलते यहाँ तक गुँजार पैदा कर दें। इसीलिए ओंकार का उच्चारण करते समय भी नियम बताया जाता है कि ओंकार ऐसे प्रारम्भ करो कि नाभि से शुरू हो और ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाए।

यह ध्वनि ही ऐसी है कि समस्त चक्रों में एक साथ प्रभाव डालती है। इस ध्वनि का यह चमत्कार है और ध्वनि को जैसे-जैसे उच्चारण करते चले जाओगे अपने आप अनेक तंत्रिकाएं आपकी तरंगित होने लग जाती हैं। बिल्कुल ऐसा ही है। जैसे किसी कक्ष में वीणा रखी हो। तीन-चार वीणाएं हो, सितार रखे हुए हों। एक को आप बीच में से छेड़ देना जाकर और दूसरे सितार के पास कान लगाना। आपको दिखाई देगा कि छेड़ा एक तार को है, एक वीणा, एक सितार को छेड़ा लेकिन दूसरे सितार में भी झंकार पैदा हो गयी है और कमाल यही है कि जिस-जिस तार को आपने छेड़ा उसी-उसी तार में जाकर के तरंग पैदा होती है। एक बार आप इस स्वर को उच्चारण कीजिए आप यह देखेंगे कि आपका जो यह शरीर का सितार है इसके सारे ही तार एक बार में झंकृत हो जायेंगे। इसीलिए ॐकार साधारण चीज़ नहीं है, यह तो सम्पूर्ण को झंकृत करने वाला एक महान् शब्द है। इसे ही नाद ब्रह्म कहोगे जो गूँज रहा है। घण्टा बजेगा मन्दिर का तो ट्न....की आवाज़ आती है। तो मानो ओ३म्....उच्चारण हो रहा है। सागर की लहरें गरजें, आकाश में घन का गरजना हो, या किसी शंख को कान में लगाकर के सुनें, या कोई योगी साधना में बैठकर अन्दर के नाद को सुने। आपको अगर यह सब सुनने का मौक़ा मिले, आप देखेंगे वह एक ही नाद सब स्थानों में एक ही तरह से गूँज रहा है। भगवान कहते हैं कि वह प्रणव मैं ही हूँ, पुरूषों में पौरूष मैं ही हूँ।

पुण्यो गन्धाः पृथिव्यां - पृथ्वी में वह पुण्य गन्ध मैं ही हूँ। *तेजश्चास्मि विभावसौ* - अग्नि में तेज मैं ही हूँ *जीवनं सर्वभूतेषु* - समस्त प्राणी मात्र का जीवन मैं हूँ *तपयचास्मि तपस्विषु* - जो तपस्वी लोग हैं उनका तप भी मुझे ही जानो। अर्जुन सर्वत्र मैं ही हूँ और मेरा स्वरूप ही बिखरा हुआ है। इसको जो तत्त्व से जान जाए वह कोई एक ही होता है।

मैं चाहूँगा कि इस चिन्तनधारा को अपने मन में कहीं आप बसाएं क्योंकि यहाँ भगवान अपने स्वरूप को बता रहे हैं। उसे जानना है, उसकी तरफ़ चलना है और उसका समस्त स्वरूप महसूस करते-करते तरंगित होते जाना है। जब भजन गाओ तो भजन में डूब जाओ। संसार के दृश्य देखो तो संसार के दृश्य देख-देख कर उसमें अपने भगवान की महिमा का ध्यान करना क्योंकि

सारी सृष्टि में परमात्मा से अलग कुछ भी नहीं है। जब आप कभी नदियों को बहता हुआ देखो तो ज़रा ख़्याल रखना इस बात का। आपको अगर कोई नहर, कोई नाली बहाने का मौक़ा मिले तो कितने लोग लगेंगे, कैसी व्यवस्था करनी पड़ेगी। लेकिन भगवान ने तो मज़दूर नहीं लगाए होंगे। जब नहरें, नदियाँ, झरने बहाए संसार में, कितने लोग लगाए होंगे साथ? कोई संसार का व्यक्ति, किसी का सहयोग नहीं लिया, उसके तो संकल्प मात्र से, इक्ष्ण मात्र से सब होने लगता है। तो चाहे व्यास नदी को देखो या गंगा या यमुना को या सिन्धु को, जिस भी नदी को देखो तो यही सोचना सारे जलं परमात्मा के चरणों को पखारने के लिए बह रहे हैं। उसी की कृपा से यह बहे हैं। अन्न पैदा हो रहा है इस धरती के अन्दर, सब कुछ छिपा रखा है परमात्मा ने।

पुण्यो गन्धः थिव्यां - भगवान कहते हैं मैं ही पुण्य गन्ध बन कर पृथ्वी में हूँ, सब अन्न-धन यहीं छिपा कर रखा हुआ है उसने। नदियों को देखो तो सोचना कैसे बहाया, पृथ्वी को देखो तो सोचो क्या-क्या ख़ज़ाना - हीरे, जवाहरात, अन्न-जल, खाना, पीना सारे पदार्थ अगर आप कहें आपकी बर्फ़ी भी मिट्टी में, आपके रसगुल्ले भी मिट्टी में, आपका अन्न भी मिट्टी में, आपका नमक भी मिट्टी में, आपकी दाल, चावल सब मिट्टी में, सब इसी के अन्दर हैं, इसी में खोजते रहो, इसी से खाते रहो। यही तो कमाल है उसका और इसी को देख-देखकर उसका एहसास करना। वही तो है अग्नि बना हुआ, हमारे अन्दर भी और बाहर भी।

****

सप्तम अध्याय का चिन्तन हम सभी कर रहे हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने यह जो उपदेश दिया है, बड़ा ही मार्मिक और नवजीवन का संचार करने वाला है। गीता केवल मरणशील व्यक्ति को, मरने वाले व्यक्ति को सुनाने वाली चीज़ नहीं है। हाँ, जिसका मन मर गया है, जो अपने आत्म-स्वरूप को भूल गया, जो विषादग्रस्त है, ऐसे व्यक्ति को सुनाने के लिए और जिनमें ज़िन्दगी दौड़ रही है, उनको सही दिशा देने के लिए गीता का ज्ञान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

कर्मयोगी के योग को साधने का साधन गीता है, धन और सम्पत्ति से सम्पन्न व्यक्ति को पवित्र बनाकर देवत्व की तरफ़ ले जाने का कार्य गीता करती है। जो व्यक्ति यह मानता है कि जीवन में कुछ भी सार्थक नहीं, तो उसको महत्त्वपूर्ण बनाने की शक्ति अगर कहीं से मिल सकती है तो गीता से मिल सकती है। आत्म-उत्थान का मार्ग जहाँ से मिलता है, वह गीता है। संसार में बसना, संसार में रहना, संसार से ऊपर उठना, यदि यह हम सीखना चाहें तो गीता को पकड़िये, गीता को पढ़िये।

लेकिन गीता का सम्पूर्ण वैभव प्राप्त करने के लिए अर्जुन जैसा मन बनाकर बैठें तो चमत्कार शीघ्र घट सकता है। हमारी श्रद्धा-भावना में, निष्ठा में जब कमी आती है तो परमात्मा की अमृतमयी वाणी सामने है तो भी उससे कोई विशेष लाभ होता जान नहीं पड़ता। निष्ठा जैसे ही गहरी हुई एकाएक चमत्कार घटना शुरू होता है। अनेक बार ऐसा हुआ कि ज्ञानी पण्डित, गीता की व्याख्या करने वाले लोग, गीता से लाभ नहीं उठा पाए और साधारण आदमी ने उसके द्वारा अपना भला कर लिया।

वृंदावन में यमुना के तट पर बैठा हुआ एक साधारण व्यक्ति जिसको अक्षर-ज्ञान भी नहीं है, गीता को खोलकर बैठा हुआ है और आँख से आँसू बहते हैं उसके। एक बहुत पढ़ा-लिखा विद्वान, गीता के ऊपर बहुत ज़्यादा चिन्तन करने वाला व्यक्ति, सामने आया। उसने देखकर के कहा - अक्षर ज्ञान है तुम्हें?

उसने कहा- मुझे नहीं पता। अक्षरों की बनावट का भी ज्ञान मुझे नहीं है।

फिर यही मूर्खता क्यों करते हो? गीता की पुस्तक खोलकर बैठ गए। क्या लाभ होगा तुम्हें?

उसने हाथ का ईशारा किया और कहा कि आप कृप्या बैठिये। ईशारा करके बोला कि यही वह यमुना आज भी साक्षी है कि इसके तट पर भी कभी कृष्ण भगवान आए थे और यही है वह भूमि जहाँ, गऊओं के बीच मेरे कृष्ण बंसी बजाते थे और यही वह पवित्र गीता जिसके अक्षर भगवान के मुख से उच्चारित हुए थे। मेरी आँखों में बार-बार आँसू आते हैं और मैं सोचता हूँ मेरे प्रभु! आप तो आज भी सम्मुख हो। मैं ही तेरा अर्जुन नहीं बन पाया, तू तो कृपा

करने के लिए, आज भी सामने खड़ा हुआ है। महाराज, मैं अक्षर नहीं देख रहा, अपनी पात्रता देख रहा हूँ, अपने आपको अर्जुन बनाने में लगा हुआ हूँ। परमात्मा तो मूर्ख को भी समझा लेगा लेकिन इस मूर्ख की मूर्खता को दूर करने की कोशिश कर रहा हूँ। अपने आँसुओं के द्वारा और अपने प्यार से उसका आह्वान करता हूँ कि आ मेरे कृष्ण, मेरे हृदय में उपस्थित हो और मुझे अपनी वही मुरली सुना जिससे मेरे अन्तःस्थल में जागृति आ जाए और मैं तुझे हृदय में धारण कर लूँ।

उसके भावों को देखकर उस बहुत पढ़े लिखे पण्डित ने कहा- गीता तो हमने भी पढ़ी है, लेकिन ऐसी भावना आज तक हमारे हृदय में नहीं आई और लगता है कि आज गीता तेरे सम्मुख तो प्रत्यक्ष बनकर के खड़ी हो गई लेकिन मेरे सामने तो मेरे अहंकार ने सदैव पर्दा कर लिया। इसीलिए अक्षर मेरे सामने रहे लेकिन अक्षर ब्रह्म, परमात्मा मेरे से दूर होता चला गया, मैं पीछे हूँ, तू आगे है।

इसीलिए यहाँ भावनाओं की बड़ी आवश्यकता है। अपनी पात्रता को सिद्ध करो, अपने पात्र को सीधा कर लो, अमृत तो परमात्मा का बरस रहा है। जहाँ-जहाँ भी भटकाव और अटकाव आता है, जहाँ-जहाँ भी हम अटकते हैं समझना माया को हम तोड़ नहीं पा रहे हैं।

माया भी तीन गुणों वाली है सात्विक, राजसिक और तामसिक। माया के तीन रूप हर किसी के सामने आते हैं। सात्विकता अपना भी लोगे लेकिन कहीं से गुरूर जाग गया फिर पतन होगा। राजसिक स्थिति है, कर्म करते जा रहे हैं लेकिन यहाँ आकर क्रोध और लोभ ने बसेरा कर लिया, फिर वहीं रूक जाओगे। अगर संसार की वासनाओं का प्रभाव मन पर है, फिर तो तामसिकता है ही। अंधेरे के बीच चिराग़ जलाना और फिर संशय की तरह-तरह की आँधियां उठ रही होंगी, उसमें ज्ञान और विवेक का दीपक जलाना और भी कठिन होता है।

भगवान ने कहा -

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
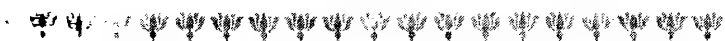
यह तीन गुणों वाली माया है *मम माया* और मेरी माया है यह *दुरत्यया* - इसे आसानी से पार नहीं किया जा सकता। हे अर्जुन! माया के बन्धन को तोड़ पाना आसान नहीं है। वह कोई भी ऐसा रूप धारण करके सामने आयेगी कि व्यक्ति उसके बन्धन में बंध जाता है। वह मोह बनकर भी खड़ी हो सकती है, लोभ बनकर सामने आ जाएगी।

जब मोह बनकर के आएगी तो छोटे बच्चे के रूप में व्यक्ति का मन परिवार में अटक जाएगा और यह भी भूल जाएगा की दिन क़रीब आ गए हैं, शरीर छूटने वाला है। अब वहाँ का ध्यान कर जहाँ पर तूने बसना है और जिन्हें तुम पकड़ कर बैठे हुए हो वह भले ही तुम्हें आज लगता हो तुम्हारे साथ हैं लेकिन याद रखना संसार को हम छोड़ें न छोड़ें, संसार तो हमें छोड़ने के लिए तैयार बैठा हुआ है। हम जिन्हें बहुत आमन्त्रण देते हैं कि तुम मेरे हो, उनमें तो परायापन आने में देर नहीं लगती। लेकिन हमारा मोह हमें संसार में बांधता है। यह माया है। आख़िरी श्वास तक व्यक्ति का ध्यान संसार में अटका रहता है या लोभ आकर माया का रूप धारण करता है। भाई लोग एक दूसरे के लिए अपनी जान छिड़कते हैं लेकिन बीच में आ गई माया, लोभ। एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो गए, घर के बीच दीवार बन गई है; अब सवेरे एक दूसरे की शक्ल देखना नहीं चाहते और दोनों की आवाज़ें निकलती हैं तो एक दूसरे को जलाने के लिए; अब आंगन भी बंट गया, बच्चों को मिलने नहीं दिया जाता क्योंकि उनके कारण भी फिर झगड़े होते हैं। बीच में माया आ गई, आपस में लड़ने में ही लग गए। जो परब्रह्म के साम्राज्य तक पहुँच सकते थे वे अपने नरक में जीने लग गए। ऊँचाई तक पहुँचते-पहुँचते व्यक्ति फिर लुढ़क जाता है क्योंकि माया अपना काम कर जाती है।

भगवान कहते हैं कि जो माया के बन्धन को तोड़ सके और इस वैतरणी को पार कर जाए, किनारे पर उसे मैं ही खड़ा दिखाई देता हूँ। माया को पार करना जीव का कर्त्तव्य है और माया से पार आ जाए, भले ही उस समय थक रहा हो तो हाथ बढ़ाकर मैं पकड़ लेता हूँ उसे। पूरी लगन के साथ एक बार उधर चल कर तो देखिए फिर तो परमात्मा की आकर्षण-शक्ति आपको खींचने लग जाएगी।

आपने सुना होगा कि जो लोग चन्द्रमा के यात्री जब आकाश में, अंतरिक्ष में जा रहे थे तो बीच में एक स्थान आता है, जहाँ धरती का आकर्षण शक्ति का छोर होता है। उसके बाद ऊपर वाले नक्षत्रों का आकर्षण शुरू होता है, चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति का स्थान शुरू होता है। अब जो वह बीच वाली जगह है वहाँ जाकर प्रत्येक उपग्रह रूकने की स्थिति में आ जाता है तो वहाँ एक विशेष प्रकार का विस्फोट अतंरिक्षयान में करना ज़रूरी होता है, एक झटका देना आवश्यक होता है।

नचिकेता को भी उपनिषद् में, कठोपषिद् में, यम ने यही समझाया था - कि तीन प्रकार की संधियां हैं जहाँ जाकर व्यक्ति के बीच में रूकावट आती है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ के बीच, गृहस्थ और वानप्रस्थ के बीच. वानप्रस्थ और संन्यास के बीच। घर गृहस्थी में फंसा हुआ व्यक्ति जब वानप्रस्थ की तरफ़ जाएगा तो बीच में शंका आती रहती है - 'जाऊँ न जाऊँ? अभी जल्दी तो नहीं है? कहीं यहाँ की व्यवस्था न ख़राब हो जाए। पता नहीं आगे कुछ लाभ होगा या नहीं' - यह जो संधि वेला है यहाँ माया और माया पति; माया पति की दुनिया और माया की दुनिया उसके बीच वाली एक बार्डर लाईन है, एक सीमा रेखा है। अब वहाँ पहुँचने तक व्यक्ति इस स्थिति में नहीं आता इधर जाऊँ या उधर जाऊँ और ज्यादातर लोग वहीं तक अटके रह जाते हैं, उनकी गति कहीं नहीं हो पाती।

उस समय व्यक्ति को विशेष प्रार्थना की, वैराग्य की और गुरू के वरदहस्त की आवश्यकता पड़ती है, तब ज़्यादा सत्संग की आवश्यकता पड़ती है। ज़्यादा बड़े झटके की आवश्यकता है क्योंकि एक झटके के साथ आगे की यात्रा हो सकती है नहीं तो वहीं पर रूके रह जाओगे। तैरना सीख भी लो, लेकिन जब भंवर आ जाता है और भंवर में आदमी पहुँच जाए कितना भी पांव चलाए तो वह वहीं का वहीं गोल घूमता रहता है, आगे से पानी हटाते रहिये, पांव चलाते रहिये लेकिन भंवर गोल घूमता रहेगा। अब उस समय न सामर्थ्य काम आता है और न हमारा ज्ञान, हमारा तैरना काम आ पाता है। जैसे-जैसे देर होती जाती है हिम्मत टूटती जाती है। उस समय किसी के सहारे की पीछे से ज़रूरत पड़ती है। कोई आए, झटका देकर भंवर से बाहर निकाल दे फिर तो आदमी गति पकड़ लेता है।

जब अतंरिक्ष में धरती की आकर्षण शक्ति समाप्त होने का केन्द्र आ गया तो वहाँ से आगे चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति का प्रारम्भ होने वाला है। इस झटके के साथ अगर पार हो जाएं तो आगे की स्पीड एकदम बढ़ जायेगी, गति बढ़ जाएगी क्योंकि आप थोड़ी ताक़त लगाएंगे और चन्द्रमा पूरी ताक़त लगाकर आपको अपनी तरफ खींचेगा। माया को तोड़कर जैसे ही आप आगे बढ़ेंगे फिर आप देखना कि आपकी गति तेज़ हो जाएगी। अब तक तो आप को लगता था ज़्यादा प्रयास करने की ज़रूरत है, उस समय आपको लगेगा कि अब प्रयास करने की ज़रूरत नहीं है। अब तो परमात्मा अपनी तरफ ज्यादा खींच रहा है और हमें थोड़ा प्रयास करना पड़ रहा है।

आसान नहीं है इस माया को पार करना। अधिकांश लोग यहाँ आकर अटक गए, गति नहीं हो पाई। कई लोगों को देखा गया सारी ज़िन्दगी भक्ति करते, नाम जपते रहे, लेकिन न जाने कौन से संस्कार ऐसे सामने आए। बुढ़ापे के अंतिम छोर में पहुँचते-पहुँचते उनके मुँह से भगवान का नाम ही नहीं निकलता, गालियां बकने लगते हैं, बुरा-भला बोल रहे होते हैं। न अब सत्संग अच्छा लगता है, न किसी की बात अब अच्छी लगती है। सारी कमाई के ऊपर पर्दा डालकर माया न जाने कब-कब के दुष्कर्म सामने लाकर खड़ी हो जाती है। अन्तःकरण को धोना बहुत ज़रूरी है नहीं तो न जाने कब की तल में पड़ी हुई मैल उभर कर के सामने आ जाए और आपके व्यक्तित्व को छिपा ले। भगवान ने कहा - चार तरह के लोग हैं जो मुझ तक पहुँचने का प्रयास करते हैं और वह चार प्रकार के लोग ही भक्त कहलाते हैं -

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

'*चतुर्विधा भजन्ते मा*' भगवान कहते हैं कि चार प्रकार के लोग मेरा भजन करते हैं और वे चार प्रकार के भी लोग कौन- *सुकृतिनोऽर्जुन* - हे अर्जुन ! वह पुण्यशील लोग हैं जिनका भाग्य जागा; जिनके पिछले कुछ संस्कार हैं जो कर्मशील हैं, कर्म वाले लोग हैं, वे चार प्रकार के लोग मेरी तरफ़ आते हैं। उनमें पहले स्थान पर या जिन्हें कहना चाहिए जो सबसे प्रथम लेकिन चौथी श्रेणी के व्यक्ति महान नहीं हैं। चौथी श्रेणी के जो लोग हैं उनमें आते हैं वे

लोग 'अर्थार्थी' किसी पदार्थ की कामना को ध्यान में रखकर भक्ति करने के लिए आते हैं। हमारा मनोरथ पूरा हो जाए - इस बात को ध्यान में लेकर भगवान की भक्ति करने के लिए जाते हैं। इनको आप चतुर्थ श्रेणी का भक्त कहोगे।

दुनिया में ज़्यादातर भीड़ इन्हीं की लगी हुई है। हमारी कामनाएं पूरी हो जाएं, पता लग जाए कि यहाँ चौदह या सोलह सोमवार व्रत करने चाहिएं तो व्यक्ति जाएगा वहाँ। हर मन्दिर में परमात्मा की अनुपम कृपा है, उसी का विग्रह है वहाँ। लेकिन व्यक्ति को पता लग जाए कि सुनवाई वहाँ ज़रा ज़्यादा अच्छी होती है तो आदमी लाईन में लग जाता है जाकर, दो-दो घण्टे तक जाकर लाईन में लगता है। अपने सामने का मन्दिर वहाँ ख़्याल नहीं करेगा लेकिन पता लगना चाहिए कि फ़लानी सड़क के किनारे, बियाबान स्थान में एक छोटा-सा टूटा-सा मन्दिर है वहाँ सुनवाई ज़रा जल्दी होती है, लाईन लगाकर खड़े हुए हैं लोग क्योंकि लोगों की अपनी अक्ल नहीं, व्यक्ति भीड़ में जीता है। भीड़ जिधर की तरफ़ जा रही है चलो हम भी चलते हैं। लाईन में जाकर खड़ा हो गया। अब सोच रहा है कि इतने लोग जा रहे हैं तो पागल तो हैं नहीं, बात ज़रूर बनती होगी कुछ न कुछ। फिर जाते ही वहाँ कहेगा - 'भगवान दो चार सोमवार में काम चल जायेगा या पूरे के पूरे सोलह ही करने पड़ेंगे? नहीं-नहीं ऐसे तो मैं आऊँगा भगवान, पर आप जानते हैं घर-गृहस्थी वाला आदमी हूँ, कोई बीच में ज़रूरी काम भी पड़ सकता है, कोई मुश्किल पड़ सकती है, कोई अड़चन आ सकती है। कोशिश तो पूरी करूँगा। पर फिर भी दया यह करना कि थोड़ा जल्दी में बात बन जाए तो अच्छा है।'

ज़्यादातर लोग कामना वाले हैं। कोई मुक़दमा जीतना चाहता है, कोई चुनाव में जीतना चाहता है, किसी की बेटी की शादी नहीं हो रही है वह भी लाईन में खड़ा हुआ है, किसी को कॉर्नर का प्लॉट चाहिए। नीचे दुकान बनाएगा, ऊपर मकान बनाएगा, वह भी लाईन में खड़ा हुआ है। भगवान दुकान और मकान एक झटके में पूरा हो जाए बस कृपा कर देना अब। प्रसाद भी चढ़ाऊँगा। लालच भी दे रहा है। किसी व्यक्ति के सामने समस्या है उसे पड़ोसी से निपटना है, झगड़ा चल रहा है, कहता है - भगवान एक बार में ऐसा ईलाज कर देना उसका, उजड़ करके चला जाए मेरे सामने से। कोई व्यक्ति जो कहता

है कि भगवान केस चल रहा है ग़लती तो हमसे हो ही गई है, लेकिन आप निर्णय ज़रा हमारे पक्ष में देना।

यहाँ मुझे इमरसन की पंक्तियाँ याद आती हैं कि अनेक लोगों की प्रार्थनाएं सुनना और फिर निचोड़ निकालना। ज़्यादातर लोग भगवान से भगवान का क़ानून बदलने के लिए प्रार्थना करते हैं कि भगवान अपना क़ानून बदल लो। तेरा क़ानून ठीक नहीं है, हमारे हिसाब से क़ानून बनाओ। गुनाह करेगा तो सज़ा मिलेगी। हम कहते हैं नहीं भगवान क़ानून बदलो। भगवान का क़ानून है कि अगर तुम बबूल के बीज बोओ तो वृक्ष बबूल का ही बनेगा, कांटों वाला। लेकिन हम कहते हैं कि नहीं-नहीं भगवान, बीज भले ही बबूल का रहे, फल आम वाले लगने चाहिएं। क़ानून है कि दो और दो चार होते हैं। हम कहते हैं नहीं-नहीं भगवान दो और दो पांच बना दो; गणित बिगाड़ दो अपना एकदम।

ज़्यादातर लोग ऐसी प्रार्थनाएं लेकर बैठे हुए हैं। लेकिन भगवान कहते हैं कि फिर भी माँगने के लिए जो मेरे दर पर आया उसका मन तो इधर आया है न। आज भले ही खिलौने माँग रहा है कभी न कभी असली चीज़ माँगने ही लग जाएगा, तो कभी न कभी तो कल्याण हो ही जाएगा इसीलिए आ रहा है। कभी न कभी आज्ञा का पालन करेगा, अभी तो माता-पिता से खिलौना माँगता है। कल वह कह देगा खिलौने नहीं भगवान मुझे बस आप ही चाहिए। आप कभी दूर न हट जाना, आप कभी दूर न हो जाना। अपना हाथ सदा मेरे सिर पर बनाए रखना, बस कृपा रखना, आप हैं तो फिर सब मिल जाएगा। कभी न कभी समझ आ जाएगी तो कुछ न कुछ कल्याण हो ही जायेगा। यह भी कोई पुण्य का संस्कार है जो व्यक्ति मन्दिर में जाकर भगवान के दरबार में उसके सामने सिर झुकाकर माँगता है और कहता है कि दुनिया से किसी से नहीं माँगता हूँ भगवान, किसी और के आगे हाथ नहीं फैलाया, हाथ फैलाया तो तेरे आगे। तो भक्त तो यह है न।

दूसरी तरह के भक्त वह हैं - *आर्त्तो* -आर्त्त व्यक्ति, दु:खी व्यक्ति, पीड़ित व्यक्ति, दु:ख में रोता हुआ इंसान। कहते हैं यह तीसरी श्रेणी में आएगा। वह व्यक्ति जो दु:ख दूर करने की प्रार्थना करता है। चिन्तन करना दु:ख में हर किसी को याद परमात्मा की आती है। इन्सान देख लेता है कि न दवाई काम कर रही है, न धन काम आ रहा है, न बुद्धि-चातुर्य अब काम आता है, मेरी

शक्ति चूक गई है, मेरा सामर्थ्य साथ छोड़ गया है, अब बुद्धि काम नहीं करती। हे भगवान अब बेबस हूँ, जाऊँ तो कहाँ जाऊँ। हे प्रभु, सब प्रयास करके देख लिए, अब तेरा ही आसरा है। पूरी तरह सारी दुनिया को छोड़कर अब तेरे सम्मुख आया हूँ - और ऐसी स्थिति में जब आँख में आँसू बहे और व्यक्ति कहे कि नहीं जाऊँगा कहीं और, तू दुत्कार, मार, फटकार, तेरे पास आ गया हूँ। वह जो स्थिति है वेदना से भरपूर व्यक्ति का व्यक्तित्व, उसका अन्तःकरण, उस दशा का नाम है आर्त्त भाव, पीड़ा से जो पुकार रहा है। कहते हैं कि इस स्थिति में पहुँचा हुआ इन्सान भी भक्त है। कबीर ने जो शब्द कहे-

दुख में सिमरन सब करें, सुख में करे न कोय।

सारी दुनिया दुःख में ही भगवान का नाम पुकारती नज़र आती है। अहंकार का गुब्बारा हवा में फूला हुआ है। दुःख की छोटी-सी सुई चुभी, न जाने इसकी हवा कहाँ निकल जाती है, ऐसा नीचे गिरता है आकर। अब पता ही नहीं चलता कि यह कुछ था भी। अहंकार में इतना भरपूर है कि सारी दुनिया में दिखाता है कि मेरे से बढ़कर दुनिया में कोई नहीं। हल्की-सी चोट लगी, हल्की-सी सुई चुभी अब तू इतना नीचा गिर गया, रोता है और कहता है- 'मैं कुछ भी नहीं हूँ, जो कुछ है वह तू ही है।' दुःख पड़ने पर जब इंसान भगवान का नाम लेता है तो दुःख दूर करने के लिए प्रार्थना करता है। कहते हैं कि यह तीसरी श्रेणी का भक्त है।

दुनिया में ज़्यादातर मन्दिरों में जो भीड़ दिखाई देती है या तो संसार के पदार्थों की कामना वाले लोग खड़े हुए हैं या अपने दुःख को दूर करने के लिए, हाथ बांधे खड़े हुए हैं। भगवान मेरा दुःख दूर कर दो पर एक बात ध्यान रखना जब अपने दुःख की फ़रियाद करने के लिए, अपना दुःख दूर करने के लिए प्रार्थना करने के लिए मन्दिर की तरफ़ जाओ, रास्ते में आपको कुछ और भगवान के बन्दे ऐसे दिखाई देंगे जिनका दुःख आप दूर कर सकते हो, यदि आप उन पर दया नहीं करते तो भगवान के खज़ाने से अपने लिए दया का वरदान मांगने जाते समय ज़रा सोचना तो सही कि वहाँ पर दया होगी कि नहीं होगी। जब तुमने दूसरों को देखते हुए भी नहीं देखा हो सकता है कि परमात्मा भी देखते हुए न देखें और कह दें कि तू पात्र नहीं है, तू तो पहले दया करना सीख। भगवान ने यह स्वरूप सबके सम्मुख रखा है कि दया पहले करना सीखो।

दूसरे के दुःख को, दर्द को पहले समझो। आप सोचिए कि जिस समय भगवान कृष्ण ने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में शंख बजाने के लिए कहा था, सब अपने-अपने शंख बजा रहे थे। उस समय कहा जाता है कि एक टिटहरी, टिटिब पक्षी, संस्कृत में टिटिब बोलते हैं, टिटहरी शब्द भी बोला जाता है, टिटहरी होती है, आपने कई बार देखा होगा कि खेत में बरसात के दिन थोड़े बीत जाएं और थोड़ी सर्दी शुरू हो जाए तो टिटहरी बोलती हुई, आवाज़ करती हुई आकाश में उड़ती है। तो कहीं आसपास उस युद्धभूमि के नज़दीक जो पेड़ खड़े हुए थे, उनके नीचे उसका कहीं घोसला था। जैसे ही तुमुल घोष हो रहा था, इतनी सेना आकर खड़ी हो गई; उस सेना को खडा हुआ देख कर यह पक्षी आकाश में उड़कर आवाज़ देने लगा कि महाविनाश होने वाला है, कोई मेरे बच्चे को बचाये। आवाज़ देते हुए शायद ऐसा ही कह रही हो कि भाई ज़मीन के लिए लड़ने वाले लोगों हमारे पास एक छोटा-सा घर है, तुम हमारा घर तबाह न करते जाना और हम तो अपने बच्चों को थोड़े दिनों के बाद ही बड़ा करके उड़ा ले जायेंगे, ज़मीन तुम्हारी तुम्हारे पास रह जाएगी, अपनी ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लेना, लेकिन ज़रा इधर से दूर हट करके।

महाभारत में उल्लेख है कि भगवान कृष्ण उस टिटहरी की आवाज़ को सुनने के बाद रथ से उतर गये। भीम को इशारा किया कि रूको, अर्जुन वहीं ठहरे हुए हैं। एक बड़ा-सा पत्थर उन्होंने उठाया और जहाँ घोंसला था ज़मीन के अन्दर तो ऐसे ढंग से उन्होंने बाहर की तरफ़ थोड़ा दूर करके पत्थर लगाया कि जिसकी आड़ में वह घोंसला सुरक्षित हो गया और उनको लगा कि अब तीर आयेंगे तो इसका कोई नुकसान नहीं होगा। भगवान कृष्ण तुरन्त रथ पर आकर बैठ गये। तब उन्होंने दूर से ईशारा किया भीम की तरफ़ कि अब तुम अपना शंख बजाओ, युद्ध की घोषणा कर दो।

अब शंख औरों के भी बजे, भीम जब बजाने लगा था तब यह घटना घटी। शायद भगवान यह समझाना चाहते थे कि तुम्हारे सामने कोई दया के लिए भीख माँगता हो, दूसरे को ईशारा मत करना कि भाई तू ज़रा करके आना, सेवा करके आना। नहीं, मौक़ा तुम्हें दिया है परमात्मा ने, तुम जाकर के काम करके आओ। एक आदर्श उपस्थित किया कि अगर मेरे सामने भी कोई दुःखी है, अगर मैं शरीर धारण करके धरती पर खडा हूँ, तो सबसे पहले मेरा कर्त्तव्य

बनता है कि और काम छोड़ूँ, पहले जो दुःखी है उसको बचा कर के आऊँ, उसके लिए सेवा करके आऊँ, क्योंकि उसकी तरफ़ जाने की इच्छा, परमात्मा की तरफ़ जाने की इच्छा जिसकी भी है, जो भी चाहता है, मेरा दुःख दूर हो तो उसे आसपास दुःखी इन्सान की पीड़ा को समझना चाहिए।

भगवान तो एक पक्षी की पीड़ा को भी समझ रहे हैं और यह समझाना चाहते हैं कि यदि तुम मेरे तक आना चाहते हो तो आसपास एक चींटी, जीवजन्तु से लेकर बड़े से बड़े प्राणी तक अगर कोई भी आसपास दुःखी है तो उसकी पीड़ा को दूर करने का प्रयास करो तो फिर तुम्हारी पीड़ा हरने की बात मेरे ज़िम्मे है, तेरा दुःख मैं दूर करूँगा।

दुनिया का दुःख दूर करने वाले इन्सान का दुःख परमात्मा दूर किया करते हैं। कोई उसकी राह में काम तो करे, कोई कमी नहीं रह जाएगी। परमात्मा का हाथ हमेशा ही सिर पर रहेगा। यह नियम है, व्यवस्था है भगवान की। इसीलिए तीसरी श्रेणी के भक्त वह हैं जो दुःख पड़ने पर नाम जपते हैं। लेकिन यहाँ एक समस्या है - दुःख में याद करने वाले व्यक्ति कि एक विचित्र आदत होती है। जब तक उसके सामने दुःख की तलवार है तब तक तो वह माला पकड़ कर ऐसा जपता है कि उससे बढ़िया भक्त आपको दिखाई नहीं देगा। लेकिन जैसे ही दुःख दूर हुआ, एक-आध दिन तक तो माला हाथ में रहती है और फिर तीसरे दिन के बाद तो कहता है - 'हे भगवान और भी काम करने है दुनिया के', फिर माला छूट जाती है।

इसका विचित्र उदाहरण देखने को मिला। हिमाचल की यात्रा में बरसात हो रही है, ऊपर तेज़ी से पानी बह रहा है और कहीं पहाड़ टूट कर पत्थर नीचे गिर रहा है। उस समय में लोगों की जो मनोदशा देखी- बस के अन्दर बैठे हुए हैं। सामने से ऊपर से गिरता हुआ पत्थर बस के आगे से होकर लुढ़कता हुआ खड्ड में गिरा। जितने लोग बैठे हुए हैं कोई कहता है राम-राम, राम-राम, कोई कहता है कृष्ण-कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, कोई ओ३म्, कोई वाहेगुरु, एक साथ सब बोल रहे हैं- 'हे भगवान, जितने पत्थर गिराने हैं गिरा लेना, अपनी बस ज़रा-सी आगे जाने दे, भगवान दया रखना।' थोड़ा-सा आगे बढ़ने लगता है कि पहाड़ से पानी बहते हुए सड़क को तोड़ गया है और जितनी तेज़ी से बस आई बस वाला ब्रेक लगाते-लगाते भी उस पानी वाली जगह को निकाल ले गया।

आधी बस पार हो गई और आधी बस घूम गयी और ऐसा लगा कि अब ज़मीन बस के नीचे नहीं खड्ड की तरफ़, खाई की तरफ़ बस गिरने वाली है।

कुछ लोग पीछे की तरफ़ से नीचे उतर कर के संभालते हैं, कोई आगे पत्थर लगा रहा है, कोशिश में लगे हुए हैं। जो लोग अन्दर बैठे हुए हैं एक साथ अखण्ड जाप सबका शुरू - 'हे भगवान, दया रखना, दया रखना, बच जाएं, बस बच जाएं किसी तरह से, तेरा ही सहारा है भगवान।' जो नीचे खड़े हुए हैं पुरुषार्थ तो कर रहे हैं लेकिन साथ में कहते हैं - हे भगवान तेरा ही भरोसा है। यहाँ आए थे तेरा दृश्य देखने के लिए, आनन्द मनाने के लिए लेकिन न जाने हमारा कौन-सा कर्म सामने आ गया। आँख में आँसू, पीड़ा और मुँह पर जाप। एक तरफ़ पत्थर लगाया; जैसे ही ड्राईवर ने कहा कि आप चिन्ता न करें; थोड़ा-सा उसने गाड़ी को मोड़ देते हुए जो आगे बढ़ाया, गाड़ी निकल गयी। अब सब के सब लोग आकर के बस में बैठ गए, बस चल पड़ी।

बूँदें हल्की-हल्की पड़ रही हैं। लोग सोच रहे हैं कि अब तो आगे सब सही है। लेकिन फिर भी घबराहट है। अभी कोई किसी से बात नहीं कर रहा है। मन-मन में सबका जाप चल रहा है, अन्दर-अन्दर जाप करते जा रहे हैं - 'हे भगवान, दिन अच्छा बीत जाए, यात्रा ठीक बीत जाए, तेरा ही सहारा है भगवान।' किसी ने तो यहाँ तक कह दिया कि बस, यहाँ से यात्रा ठीक-ठाक हो जाए प्रसाद तो बिल्कुल जाते ही चढ़ाऊँगा भगवान। कोई कहता है कि तेरा कीर्त्तन घर में कराऊँगा, कोई कहता है कि सत्संग कराऊँगा, कोई कहता है कि फलानी जगह जाकर के प्रसाद चढ़ा कर के आऊँगा।

अब थोड़ा-सा चलते-चलते यात्रा आधा-एक घण्टे तक निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होती गई। सांस में सांस आ गया। लगा कि अब आगे ठीक-ठीक है। सब लोग आपस में बातचीत कर रहे हैं। एक दूसरे को देखकर के बोलते हैं - बड़ा भक्त दिखाई दे रहा था, बड़ी भारी भक्ति कर रहा था। एक आदमी दूसरे से मज़ाक़ करते हुआ कहता है - इतना सिरियस हो गया था तू तो, लग रहा था कि तुझ से बढ़कर भक्त तो दुनिया में कोई है ही नहीं। पर मैं जानता हूँ असलियत तेरी क्या है। दूसरा आदमी ईशारा कर के कहता है कि भाई हमने तो यह सोचा था कि घूम-फिर कर के भी आऐंगे, साथ में कुछ शॉल-वॉल भी ख़रीद कर ले आयेंगे।

दुनियादारी की बातें शुरू हो गई और अचानक फिर दिखाई दिया कि रास्ते में पत्थर गिरे पड़े हैं और पानी बह रहा है। बस तेज़ी से जाकर के उन पत्थरों वाली जगह पर रूक गई। अब की बार तो सब के सब हाथ जोड़ रहे हैं, बोले- भगवान ग़लती हो गई थी, अब तो लगातार जपेंगे, आप माफ़ कर देना। अब की बार कोई ग़लती नहीं होगी और बिल्कुल आपको ही सब कुछ म.नेंगे। भगवान दुनियादारी वाली बातें जो हम कर रहे थे उसके लिए हमें माफ़ करना। हम सच में ही तेरे भक्त हैं, तेरा ही जाप करेंगे अब दुनिया का कोई ध्यान नहीं। जब दु:ख दिखाई दिया जाप शुरू और जैसे ही सुख दिखाई दिया अपनी 'मैं' शुरू।

दु:खी इन्सान भगवान का भजन करता है लेकिन दु:ख को देखकर। इसीलिए तो कुन्ती ने कहा था कृष्ण भगवान से; भगवान कृष्ण द्वारिका जाने के लिए तैयार हुए, 'अर्जुन तुम लोग जीत गए हो, राज भवन में बैठ गए हो, अब मेरा कार्य समाप्त, तुम्हें सुख तक पहुँचा दिया।' अर्जुन ने कहा कि मैं बड़े भैया को बुलाऊँ, निर्णय वही करेंगे; इधर कुन्ती मां भी आकर खड़ी हो गई। अब कुन्ती सामने हैं और कृष्ण भगवान को हाथ जोड़ कर कहती हैं – कृष्ण, आप द्वारिका जा रहे हैं? भगवान ने कहा कि मेरा कार्य पूरा हो गया। अब तुम्हारे सामने सुख है, अपना सुख भोगो। कुन्ती ने कहा – 'अगर कृष्ण दु:ख में ही आप सामने आते हो तो फिर हमारी प्रार्थना सुन लो। इस झोली में दु:ख ही डाल कर के जाना कि जिससे कम से कम आप हमारे साथ तो रहो। हमसे कभी दूर न होना। हे कृष्ण, एक ही प्रार्थना है कि जब से सुख आया है, निश्चिन्तता जब से आई है, बेफ़िक्री का रूप हमारे अन्दर आ गया है। बेफ़िक्री की स्थिति मन की बन गई है, फ़िक्र नहीं है, तब से आलस्य भी जन्म लेकर अन्दर बैठ गया है। अब भजन करते हैं इतना मन नहीं लगता, संसार की वस्तुओं का ख़्याल आता है। हे कृष्ण, भले ही जो दिया है वापिस ले लेना। अगर दु:ख में ही तेरी याद आती है तो फिर हमें दु:खी रखना। हमें ज्यादा सुख नहीं चाहिए, पर अपने से कभी दूर न करना।'

दुनिया में ऐसा भक्त कोई विरला ही होगा जो भगवान से यह मांगे कि भगवान अगर दु:ख से तू मिलता हो तो फिर सुख नहीं चाहिए।

कहा जाता है कि कबीर के घर सुख एक शक्ल धारण कर के आ गया कि मैं आपका सेवादार हूँ, आपके घर में सेवा करने आया हूँ, चरण दबाऊँगा, आपके कार्य पूरे करूँगा, आपको भजन में विघ्न-बाधा नहीं आने दूँगा।

कबीर ने देखा और पत्थर उठाया। जान गए कि यह सुख आया है मुझे हिलाने के लिए; तो कबीर ने कहा - *सुख के माथे सिल पड़े* (पत्थर उठा कर फेंकूँ उसके माथे पर) *नाम प्रभु का भुलाये*। यह जब भी आता है इन्सान से उसका भक्ति वाला रूप छीन ले जाता है, भगवान का नाम भुला देता है।

सुख के माथे सिल पड़े, नाम प्रभु का भुलाये ।
बलिहारी उस दु:ख पर, जो पल-पल नाम जपाये ।।

मुझे तो मेरा दु:ख अच्छा। मेरा दु:ख मुझे कम से कम अपने भगवान के चरणों तक तो ले जाता है। सुख को पत्थर उठा कर के कहा - भाग, नहीं तो मारूँगा।

कहते हैं कि अगर भगवान ने आपको सुख दिया तो कृपा है प्रभु की। अपने परमात्मा का प्यार लगातार बनाए रखने के लिए आसपास में जो दु:खी इन्सान दिखाई दें उसके दु:ख को अपना दु:ख मान लेना और उसकी सेवा में लग जाना। आपको परमात्मा की याद भी बनी रहेगी और भक्ति, सिमरन और सेवा के माध्यम से आप अपने परमात्मा के दरबार में स्थान बनाने में सफल हो जाओगे। इसीलिए सेवा के कार्य को अपना अंग बनाओ, अपने जीवन का हिस्सा बना लो। यही माध्यम अपनाकर के सेवा करने लग जाओ।

याद रखना आप - आँखें बन्द करके बैठो पता नहीं आपका मन भक्ति में पूरी तरह लगे न लगे लेकिन किसी का दु:ख दूर करने के लिए आप जाओ और यह सोचो इस दु:ख का पता नहीं कब मेरे घर भी आकर खड़ा हो जाए। अपने आपको उसकी जगह रखकर के सोचना और जब आप सेवा करोगे सच बात तो यह है कि वह सेवा पूरी-पूरी आपके परमात्मा को स्वीकार होगी, आपकी पूरी सेवा को आपके परमात्मा स्वीकार करेंगे। इसीलिए हमारी परीक्षा होती है जगह-जगह। हम कितना भी कहलाते हों कि हम भगवान के भक्त हैं, लेकिन परीक्षा होती है हर जगह कि हम भक्त हैं या नहीं या केवल कहलाने वाले व्यक्ति हैं।

कहा जाता है कि जंगल में राजा खड़ा हुआ है। उसने तीन लोग सामने देखे। तीनों के तीनों वफ़ादारी का दावा कर रहे हैं और तीनों चाहते हैं बादशाह के नज़दीक रहें, राजा के नज़दीक रहें और राजा चुन नहीं पा रहा; एक को रखना है उसने, तीन में से एक रखना है। अब चुनाव करें तो कैसे करें?

सामने जाते हुए फ़क़ीर की तरफ इशारा किया – महाराज, तीनों में से कोई एक ख़ास जो है उसका चुनाव करना है।

फ़क़ीर ने कहा – 'कोई मुश्किल नहीं है'। उसने तीनों के पास जाकर के कहा – 'भाई तीनों की दाढ़ी है। तुम तीनों नौकर हो और तीनों की दाढ़ी है और मेरी भी दाढ़ी है। तो एक बात बताओ अगर मेरी दाढ़ी में भी आग लग जाए। और तुम्हारी में भी तो तुम क्या करोगे?

एक-एक को बुलाया और सामने कहा तुम्हारी दाढ़ी में आग लगे, मेरी दाढ़ी में आग लगे, तो बताओ उस समय क्या करोगे? एक ने कहा – साहब दाढ़ी में आग लगे, तो आदमी का हाथ सबसे पहले तो अपने तरफ़ ही जाता है, अपने को बचाता है। अब आपके सामने झूठ तो बोलना नहीं, दिखावा करने से तो कुछ लाभ नहीं है। आदमी के ऊपर विपत्ति पड़ेगी तो सबसे पहले अपने को बचाएगा। आप भले ही राजा हों, महाराजा हों, फक़ीर साहब हों, कुछ भी हों।'

फक़ीर ने उसकी पीठ थपथपा कर कहा – 'अच्छा, अलग हटो।'

दूसरे की तरफ़ इशारा किया – तुम बताओ।

बोला – 'जी आग लगेगी तो सबसे पहले तो हम आपको ही बचाएगें, आपके नौकर हैं।'

फ़क़ीर ने कहा – 'अच्छा तुम भी अलग हटो।'

तीसरे को बुलाया कि तुम बोलो, मेरी दाढ़ी में आग लगे और तुम्हारी दाढ़ी में एक साथ आग लग जाए, उस समय क्या करोगे?

कहने लगा – जी ऐसा है, इन्सान को ख़्याल तो हमेशा अपना ही आता है लेकिन जिसकी छाया में पल रहा है, मौक़ा होता है कि उसके ऊपर आँच आई तो तुम्हारी आँच से भी ज़्यादा भारी है। ऐसी स्थिति में तो इन्सान को, मेरे [illegible] के हिसाब से तो एक काम करना चाहिए कि भगवान ने दो हाथ दिए हैं। एक हाथ उसकी तरफ़ लगा दें और एक हाथ अपनी तरफ़ लगा लें। उसे भी बचायें और अपने को भी।'
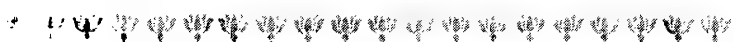
फक़ीर हंस करके बोले – 'यह सज्जन आदमी है जो अपने साथ दूसरे का भला सोच रहा है। और यह जो कह रहा था कि हम अपने को छोड़कर तुम्हें बचायेंगे, यह अव्यवहारिक बात कर रहा था; कितना भी आप वचन दें, संकल्प करें। कल भूल जायेगा क्योंकि व्यवहार में वह बात उतरेगी नहीं, वह बात सफल नहीं होगी।

कहा कि अगर चुनाव करना है तो इस बात को ध्यान में रखना आदमी सज्जन है या नहीं, उसका अंतःकरण सेवा के लिए तत्पर है या नहीं। भगवान भी चुनाव करते समय देखते हैं। हम भले ही कितने बड़े दावेदार बन रहे हों लेकिन हमारा अन्तःकरण भगवान देखना चाहते हैं कि परीक्षा की घड़ी सामने हो तो हम क्या करेंगे।

कामना वाला भक्त चौथे प्रकार का भक्त है, चौथी श्रेणी का भक्त है, दुःख दूर करने के लिए प्रार्थना करने वाला भक्त तीसरी श्रेणी का भक्त है। लेकिन जिज्ञासा में जो भगवान को भजता है वह दूसरी श्रेणी का भक्त है। जिज्ञासु भी एक भक्त है। जो संसार के उतार-चढ़ाव को देखकर मन में जिज्ञासा लाकर जानने की कोशिश करता है। इतने लोग संसार में आ रहे हैं और इतने लोग रोज़ दुनिया से जाते हैं। किस की व्यवस्था से सब होता है? सब अपना-अपना भाग्य लेकर दुनिया में आते हैं और सब कोई इस दुनिया में सब कुछ छोड़ कर वापिस़ जाते हैं। जो इस दुनिया में आ गया वह रहना चाहता है, जाना नहीं चाहता और हर आदमी ने अपनी सुरक्षा के लिए बड़ा भारी बन्दोबस्त किया हुआ है। लेकिन बुलाने वाली ताक़त जब इस दुनिया से वापिस भेजती है तो वह उतनी ही ज़्यादा बलशाली होकर के वापिस भेजती है। इस दुनिया में किसी के पांव भगवान टिकने नहीं देते, सब छोड़ के जाना पड़ता है। तो वह शक्ति है क्या?

वह शक्ति क्या है जो इतनी तरह के पेड़-पौधों की, इतनी तरह की पत्तियां बनाता है, कैंची लेकर एक-एक पत्ते को कतरता है। उसका सांचा कैसा है? उसका फरमा कैसा है? कैसी डाई लगाकर के वह निर्माण करता है और फिर सारे ही वृक्ष को एक बीज में छिपा कर के रख देता है। वह कैसा अनोखा चित्रकार है, जो तितलियों के पंखों को रंगता है, फूलों की पंखुड़ियों को सजाता है, वह कैसा अनोखा जादूगर है जो बीज के अन्दर से विशाल वृक्ष को

निकाल कर तरह-तरह के रंगों से फूलों को सजाकर उनके अन्दर से सुगन्ध पैदा करता है और बाद में फल लगा देता है। कैसा अनोखा चित्रकार है, इतने रंगों भरे संसार को जिसने रचा, एक रंग को, एक हरा रंग भी अगर उसने बनाया है तो एक तरह का नहीं, हज़ारों प्रकार का हरा रंग है।

बग़ीचे में जाकर कभी देखना, केले के पत्ते भी हरे हैं, नीम के पत्ते भी हरे हैं, धूप घास भी हरी है, सब जितने भी वृक्ष दिखाई देंगे सब के पत्ते हरे हैं लेकिन फिर भी हरियाली अलग-अलग है। इतनी अलग-अलग हरियाली जो दिखाई दे रही है तो ज़रा सोचिए कि जिस परमात्मा के ख़ज़ाने में हरे रंग के भी हज़ारों क़िस्में हैं और सारे संसार की, ब्रह्माण्ड की रचना करता है और उसके पास कितना समय है, कितनी जल्दी में सब कुछ निर्माण करता है और फिर उसके निर्माण में कहीं कोई कमी नहीं निकाल सकता।

अगर भगवान ने सात करोड़ जीवाणुओं का समुदाय एक जगह जोड़ कर एक बस्ती बसाई तो इस संघात को उसने कैसे जोड़ा? यह क्या चमत्कार है उसका कि सारे शरीर में चमढ़ी फैलाई वस्त्र बनाकर लेकिन इस वस्त्र में सिलाई कहीं दिखाई नहीं देती। महिलाएं स्वेटर बनाती हैं, जोड़ लगाती हैं, मशीनों से तैयार किया जाए स्वेटर तो कहीं न कहीं उसमें जोड़ आएगा ज़रूर। परमात्मा ने फर वाला कोट बनाया; कितना बढ़िया रीछ को पहनाया और बनाया तो ऐसा कि बचपन में ही पहना दिया और कह दिया जितना तू बड़ा होता जायेगा तेरा कपड़ा भी बड़ा होता जाएगा, तुझे कोई कमी आने वाली नहीं है। कमाल यह है कि वस्त्र पहना कर कह दिया, न यह फटने वाला, न यह ख़राब होने वाला है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाएगी तेरे उम्र के हिसाब से सही काम करता चला जाएगा। एक देकर के ही कमाल कर दिया।

तो जिज्ञासु व्यक्ति यह देखता है कि यह सब संरचना किसकी है? कैसे उसने रचना की, कैसे निर्माण किया? जिज्ञासा करते-करते श्रद्धा से जैसे-जैसे माथा झुकता जाता है, खोजी निगाहें ढूँढती जाती हैं। जिज्ञासा में जब भक्ति करता चला जाता है तो वह भक्त दूसरी श्रेणी का भक्त कहलाता है।

जितने भी दार्शनिक लोग हुए संसार में वे सब जिज्ञासु भक्त हैं, जिज्ञासा में लगे हुए हैं, उत्तम कोटि के भक्त हैं यह लेकिन भगवान का सबसे प्यारा भक्त, सर्वोत्कृष्ट भक्त ज्ञानी है और ज्ञानी भक्त की विशेषता, अन्तःकरण में

जिसने देख लिया उसको ज्ञान हो गया, ज्ञान हो गया संसार का कि संसार के पदार्थ नश्वर हैं, टिकने वाले नहीं तो इनके पीछे अपनी ज़िन्दगी की सबसे ज़्यादा क़ीमती जमापूंजी आयु का भाग इसी में नहीं लगाना। अपने चेतन तत्त्व को जानने में और अपनी चेतना को अपने परब्रह्म में जोड़ने के लिए प्रयोग करना है। रात-दिन उसकी भक्ति में और उसके आनन्द में डूबेगा, उसकी मस्ती में कहीं कोई कमी नहीं आएगी। ऐसा भक्त जानने लगता है माया का आवरण क्या है? उसे कैसे तोड़ना है और फिर ज्ञानी व्यक्ति की विशेषता यह होती है कि अपना ही कल्याण नहीं करता, वह सारे संसार का कल्याण करता है। अपना लाभ लेते-लेते सारे संसार को बांटता चला जाता है - जो कुछ मुझे मिला यह स्वाद सबको मिल जाए।

ज्ञानी भगवान को प्यारा है क्योंकि ज्ञानी अपने स्वरूप को भगवान में अर्पित करके तद्रूप हो जाता है। ज्ञानी व्यक्ति कोई ऋषि, मुनि, कोई योगी, कोई साधक अपनी चरम सिद्धि पर जब पहुँच जाए, समाधि में लीन होने के बाद इस तन से संसार का भला करता है और अपना आनन्द भी लूटता है। ऐसे लोगों के द्वारा समाज में जो भी कुछ दिया जाता है, उससे न जाने कितने-कितने लोगों का भला होता है, युगों-युगों तक भला होता है। लेकिन ऐसे लोग विरले लोग होते हैं, कोई ज्ञानी व्यक्ति संसार में लाखों-करोड़ों में कोई एक होता है, इस ऊँचाई तक पहुँचने वाला बहुत कम होते हैं।

भगवान ने कहा अर्जुन यह चार तरह के भक्त हैं जो मुझे भजते हैं लेकिन -

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥

जो-जो व्यक्ति भावना से जैसी-जैसी श्रद्धा लेकर, जिस-जिस देवता के सम्मुख जाकर, जिस प्रकार से भक्ति करता है, मैं उसे उसी तरह की श्रद्धा देकर, उसका कल्याण करता हूँ।

मतलब किसी भी देवी-देवता के सम्मुख श्रद्धा लेकर के तुम जाओ भगवान कहते हैं वह मुझे भी पूज रहा है और यह भी बात निश्चित है उसमें मैं उसकी और श्रद्धा दृढ़ किया करता हूँ क्योंकि सब अलग नहीं और सबसे अलग मैं नहीं। तुम जिस श्रद्धा-भावना से मुझे पुकारोगे, जैसे तुम याद करोगे,

जिस भी देवी-देवता के सम्मुख जाकर पुकारोगे, मैं वहीं तुम्हें उसी रूप में श्रद्धा देकर उनके प्रति और प्राप्ति कराता हूँ क्योंकि सब मुझसे अलग नहीं हैं।

सब देवी-देवताओं का रूप एक ही है। देखने में अलग-अलग दिखाई देते हैं। सोना तो एक होता है आभूषण अलग-अलग होते हैं। कोई कान में पहना जाएगा, कोई गले में पहना जाएगा, कोई भुजा में पहना जाएगा। पर सोना सब जगह एक जैसा ही है और अगर क़ीमत लगेगी तो आभूषण के आकार की नहीं लगेगी, लगेगी तो फिर सोने की लगेगी। बात ध्यान रखना। पूजा आप किसी की भी करना पर पूजा तो एक ही होगी। लेकिन एक बात याद रखिये- जिधर मन लगाया गहरी श्रद्धा करो, श्रद्धा में कमी नहीं आने दो।

पण्डरपुर में नरहरि नाम का एक सुनार, शिवजी का भक्त, जिसने संकल्प किया हुआ था कि अगर प्रतिमा के दर्शन करने हैं या तो शिवजी का स्वरूप या फिर शिवलिंग का रूप।

आप लोग जानते हैं उपनिषदों में कथा आती है - सृष्टि बनी। ब्रह्मा, विष्णु अचानक देखते हैं कि एक खम्ब प्रकट हुआ, स्तम्भ और दोनों ही उसका ओर-छोर नापने की कोशिश करते हैं लेकिन नहीं नाप पाते। जब थक जाते हैं तो पता लगता है कि ज़मीन के नीचे भी चले गये हैं, आसमान तक भी पहुँच गए लेकिन इसका कहीं अन्त नहीं। पूछा गया कि यह क्या है? पता लगा कि यह अदिशक्ति-शिव है। उस स्तम्भ का रूप ही यह शिवलिंग है। जो यह प्रतीक है कि तुम इसका आदिअन्त कभी नहीं बता सकते, अनादि है, जिसकी महिमा को जान नहीं सकते। अब उस स्वरूप को निर्धारित करने के लिए यह शिवलिंग, जो यह भी दर्शाता है कि अगर इसको जानना है तो यह एक प्रकाश है, यह एक दीये की दीपशिखा है, एक ज्योति है, प्रकाश है जो दीये के अन्दर प्रज्वलित है। अब वह लौ एक हल्की-सी दीपशिखा की, वह जो अंगूठे भर की, आप लोग जो देखते हैं अग्नि की दीप्ति जो जल रही है दीये में, बस वही आकार है इसका शिवलिंग का, और द्वादश ज्योतिर्लिंग जो सारे संसार में हैं, भारत भर में हैं, वह द्वादश ज्योतिर्लिंग, बारह शिवलिंग जिन्हें ज्योर्तिलिंग कहा गया, ज्योति का ही प्रतीक है वह; तो उसका मतलब क्या है कि परब्रह्म का स्वरूप इस प्रकाश में ही तो है।

तो वह नरहरि नाम का सुनार, उसने कहा कि कोई और विग्रह नहीं देखना केवल भगवान शिव के ही दर्शन करने हैं। उनके सामने विट्ठलनाथ का कोई भक्त, क्योंकि भक्ति में डूबे हुए अनेक-अनेक तरह के लोग होते हैं और भक्ति कमाल करती है जीवन में, हर किसी के जीवन में। यह व्यक्ति नरहरि, शिव जी का उपासक, अगर सड़क पर भी चलता था तो गर्दन झुकाकर। कहता था कि कहीं और दूसरा रूप न देखूँ। कोई मन्दिर में कहीं राम जी की या कृष्ण जी की तस्वीर न दिखाई दे, शिव जी को ही देखना है, उसी में आस्था रखनी है।

एक साहुकार इस सुनार नरहरि के पास आया और उसने कहा विट्ठलनाथ की बड़ी कृपा हुई मेरे ऊपर। कृष्ण का एक प्राकट्य विट्ठलनाथ के रूप में हुआ और पण्डरपुर में विट्ठलनाथ की एक मूर्ति है। दक्षिण में जितनी श्रद्धा भावना के साथ विट्ठलनाथ का पूजन करते हैं लोग, वह श्रद्धा देखने योग्य है। सुनार के पास में, नरहरि के पास में, साहुकार ने कहा विट्ठलनाथ की कृपा से मेरे घर में पुत्र हुआ है। बहुत मुरादें मांगी तो यह कृपा हुई, अब मैं रत्नों से जड़ा हुआ कमरपट्टा विट्ठलनाथ के लिए बनाना चाहता हूँ। नाप लेकर आया हूँ; आप बनाईये।

वह कमरपट्टा बनाया गया। जब जाकर पहनाया तो छोटा निकल आया। दोबारा ठीक करने के लिए कहा गया। अब की बार जो बनाया बड़ा हो गया।

साहुकार ने कहा - नरहरि मेरी तो यह इच्छा थी बड़ी जल्दी से यह कार्य पूरा हो जाए। लेकिन कभी छोटा बनता है, कभी बड़ा बनता है, आप से तो कभी ऐसी ग़लती नहीं हुई, आप तो माने हुए व्यक्ति हो।

उसने कहा भाई ऐसा है कि मैं वहीं चलता हूँ विट्ठलनाथ के मन्दिर में नाप लेकर के आऊँगा। लेकिन एक शर्त है, बुरा नहीं मानना। हम शिव जी को मानने वाले व्यक्ति हैं और कृष्ण के मन्दिर में जाना है - आँखों पर पट्टी बाँध कर के जायेंगे और उनको छूकर उसके बाद नाप ले लेंगे और उस नाप के हिसाब से कमर का पट्टा बना देंगे, रत्न लगाकर के जड़ देंगे, सोने का पटका बनना है।

अब कमर पट्टा बनाने के लिए आँखों पर पट्टी बाँध कर व्यक्ति गया और जैसे ही इसको वहाँ ले जाकर खड़ा किया तो इसने कमर को नापना शुरू

किया। ऊपर हाथ लगाया कितना आकार है देखता है, अनुभव कर रहा है कि यह कृष्ण का रूप है लेकिन पाँच मुख हैं यहाँ तो। एक मुख में देखता है दो की बजाय तीन नेत्र हैं, सर्प गले में अनुभव हो रहा है, सिर के ऊपर जटा-जोट है और गंगा का प्रतीक भी अनुभव में आ रहा है। हाथ की तरफ़ ध्यान गया तो दस भुजाएं। गदगद् हो गया - शिव भगवान आप यहाँ आ गए हो दर्शन देने के लिए?

आँखों से पट्टी खोली, देखता है कृष्ण भगवान सामने हैं। अब बड़ी मुश्किल में पड़ गया। फिर पट्टी बाँधी, फिर छूने लगा तो पाँच मुख, दस हाथ, गले में सर्प अनुभव करे, पट्टी हटा दी। पट्टी हटाते समय, आँखें खोलते समय, प्रार्थना करने लगा - 'हे शिवजी, यह तेरी क्या लीला है। आँखें खोलता हूँ कृष्ण दिखाई देते हैं और जब आँखें बन्द करता हूँ, शिव जी तुम दिखाई देते हो। तू एक है या अलग-अलग? अगर श्रद्धा दी है तो फिर ज़रा सही रूप तो दिखा अपना।' आँखें खोलकर देखता है कृष्ण भगवान हैं और कृष्ण भगवान के सिर पर शिवलिंग रखा हुआ है। आज तक वहाँ वही मूर्ति है। वहाँ पर वही मूर्ति है कृष्ण भगवान, विट्ठलनाथ, के सिर के ऊपर शिवलिंग है, कमर में हाथ है, ईंट के ऊपर खड़े हुए हैं।

पांव में गिर पड़ा, रोया बहुत कि यह दुनिया तुझे अलग-अलग मानती है - कोई कहता है तू शिव है, क़ोई कहता है तू राम है, कोई तुझे कृष्ण कहता है लेकिन अब पता चला कि जिस भी रूप में तुझे पुकारा जाए तू एक ही है, तू अलग नहीं है। भगवान कृष्ण भी गीता में यहाँ यही समझा रहे हैं -

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥

जो-जो जैसी-जैसी भावना से भक्त श्रद्धा लेकर के मेरी अर्चना करता है उसको मैं वैसी ही *तस्याचलां श्रद्धां* उसे अचल श्रद्धा मैं देता हूँ। जिस-जिस देवता को जैसे-जैसे पूजेगा वह मुझे ही पूज रहा है और मैं उस देवता के प्रति उसे और श्रद्धा देता हूँ क्योंकि प्रभु का एक ही रूप है, एक ही शक्ति है; अलग-अलग रूप में कैसे भी पूज लो वह अलग नहीं है। यह ज्ञान है और इस ज्ञान को ध्यान में रखकर जो भक्ति करता है, वह मेरा ज्ञानी भक्त है और उसे मैं प्राप्त होता हूँ। यह सप्तम अध्याय का सार है।

बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

अध्याय-सात

श्रीभगवानुभाव

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

हे अर्जुन, अब यह सुन कि योग का अभ्यास करता हुआ, अपने चित्त को मुझमें लगाकर और मुझी को आश्रय मानकर असंदिग्धरूप से तू पूरी तरह मुझको किस प्रकार जानेगा?

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

मैं तुझे यह सारा ज्ञान विज्ञानसहित पूरी तरह बताऊँगा, जिसे जान लेने के बाद जानने को और कुछ शेष नहीं बचेगा।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

हजारों मनुष्यों में से कोई एक इस योग की सिद्धि के लिए यत्न करता है; और जो लोग यत्न करते हैं और सिद्धि पा लेते हैं, उनमें से भी मुश्किल से कोई एक मुझे सच्चे रूप में जान पाता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन और बुद्धि और अहंकार - मेरी प्रकृति इन आठ रूपों में बंटी हुई है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

यह मेरी निम्नतर प्रकृति है। मेरी दूसरी और उच्चतर प्रकृति को भी जान ले, जो कि जीवरूप है और हे महाबाहु (अर्जुन), जिसके द्वारा यह संसार धारण किया जाता है।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥

इस बात को समझ ले कि सब प्राणियों का जन्म इसी से हुआ है। मैं इस सारे संसार का मूल (जनक) हूँ और मैं ही इसका विनाश भी हूँ।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

हे धन को जीतने वाले (अर्जुन), ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो मुझसे उच्चतर हो। जो कुछ भी इस संसार में है, वह सब मुझमें उसी प्रकार पिरोया हुआ है जैसे कि मणियाँ धागे में पिरोई रहती हैं।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥

*हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), मैं जलों में स्वादरूप हूँ; चन्द्रमा और सूर्य में मैं प्रकाश हूँ; सब वेदों में मैं '**ओ३म्**' शब्द हूँ; आकाश में मैं शब्द हूँ और पुरुषों में पौरुष हूँ।*

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

पृथ्वी में मैं विशुद्ध सुगन्ध हूँ और अग्नि में चमक हूँ। सब विद्यमान वस्तुओं में मैं जीवन हूँ और तपस्वियों में तप हूँ।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥

हे पार्थ (अर्जुन), तू मुझे सब विद्यमान वस्तुओं का सनातन बीज समझ। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि हूँ और तेजस्वियों का तेज हूँ।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

मैं काम (इच्छा) और राग (प्रेम) से रहित बलवानों का बल हूँ। हे भरतों में श्रेष्ठ (अर्जुन), सब प्राणियों में मैं धर्म के अनुकूल रहने वाली लालसा हूँ।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

और जितने भी भाव हैं, चाहे वह लयात्मक (सात्त्विक), आवेशपूर्ण (राजस), या आलस्यपूर्ण (तामस) हों, वे सब केवल मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, इस बात को तू समझ ले। मैं उनमें नहीं हूँ, वे मुझमें हैं।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

प्रकृति के इन तीन गुणों द्वारा भ्रम में पड़कर सारा संसार मुझे नहीं पहचान पाता, जो कि मैं इन सबसे ऊपर हूँ और अनश्वर हूँ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

मेरी इस गुणमय दैवी माया को जीत पाना बहुत कठिन है। परन्तु जो लोग मेरी ही शरण में आते हैं, वे इसको पार कर जाते हैं।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

बुरे काम करने वाले, जो मूर्ख हैं, जो मनुष्यों में नीच हैं (नराधम), जिनकी बुद्धि भ्रम के कारण बहक गई है और जो आसुरी स्वभाव के हैं, वे मेरी शरण में नहीं आते।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

हे भरतों में श्रेष्ठ (अर्जुन), जो धर्मात्मा व्यक्ति मेरी पूजा करते हैं, वह चार प्रकार के लोग हैं। एक तो वह, जो विपत्ति में फंसे हैं; दूसरे जिज्ञासु, तीसरे धन प्राप्त करने के इच्छुक और चौथे ज्ञानी ।

तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

इन सबमें से ज्ञानी व्यक्ति, जो सदा ब्रह्म के साथ संयुक्त रहता है और जिसकी भक्ति अनन्य होती है, सर्वश्रेष्ठ है। उसे मैं बहुत अधिक प्रिय हूँ और वह मुझे बहुत अधिक प्रिय है।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥

यों तो सभी बहुत अच्छे हैं, परन्तु ज्ञानी को तो मैं समझता हूँ कि वह मैं ही हैं; क्योंकि पूरी तरह अपने-आपको योग में लगाकर वह केवल मुझमें ही स्थित हो जाता है, जोकि मैं सर्वोच्च लक्ष्य हूँ।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

बहुत से जन्मों के अन्त में ज्ञानी व्यक्ति - जो यह समझता है कि जो कुछ भी है, वह सब वासुदेव (ईश्वर) ही है- मुझे प्राप्त होता है। ऐसा महात्मा बहुत दुर्लभ होता है।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

परन्तु जिन लोगों के मन उनकी लालसाओं के कारण विकृत हो गए हैं, वह अपने-अपने स्वभाव के कारण विभिन्न-विधानों को करते हुए अन्य देवताओं की शरण में जाते हैं।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

जो कोई भक्त श्रद्धापूर्वक जिस भी रूप की पूजा करना चाहता है, मैं उस रूप में उसकी श्रद्धा को अचल बना देता हूँ।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥२२॥

उस श्रद्धा से युक्त होकर वह उसकी आराधना करना चाहता है, और उससे ही वह अपने वांछित फल प्राप्त करता है, जब कि वस्तुतः वह फल मैं ही देता हूँ।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

परन्तु इन अल्पबुद्धि वाले लोगों द्वारा प्राप्त किया जाने वाला फल अस्थायी होता है। देवताओं की पूजा करने वाले लोग देवताओं को प्राप्त होते हैं, किन्तु मेरा भक्त मेरे पास ही पहुँचता है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

जो बुद्धिहीन लोग, जो मेरे अपरिवर्तनशील और सर्वोच्च उच्चतर स्वभाव को नहीं जानते वह मुझे, जो कि अव्यक्त हूँ, व्यक्त हुआ मानते हैं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

अपनी सृजनशील शक्ति (योगमाया) द्वारा आवृत होने के कारण मैं सब लोगों के सम्मुख प्रकट नहीं होता। यह मूढ़ जगत् मुझे नहीं जानता, जोकि मैं अजन्मा और अपरिवर्तनशील हूँ।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

हे अर्जुन, मैं उन सब प्राणियों को जानता हूँ जो अतीत में हो चुके हैं, जो इस समय विद्यमान हैं और भविष्य में होने वाले हैं; परन्तु मुझे कोई नहीं जानता।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥२७॥

हे भारत (अर्जुन), हे शत्रुओं को जीतने वाले (अर्जुन), सब प्राणी इच्छा और द्वेष के कारण उत्पन्न हुए द्वैत के वश में होकर मोह अर्थात् भ्रम में पड़ जाते हैं।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

परन्तु वे पुण्यात्मा लोग, जिनका पाप नष्ट हो गया है (जो पाप के प्रति मर चुके हैं) द्वैत के मोह से मुक्त होकर अपने व्रतों पर स्थिर रहते हुए मेरी पूजा करते हैं।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

जो लोग मुझमें शरण लेते हैं और जरा और मरण से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्न करते हैं, वे सम्पूर्ण ब्रह्म को और सम्पूर्ण आत्मा को और कर्म के सम्बन्ध में सब बातों को जान जाते हैं।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

जो मुझे इस रूप में जानते हैं कि मैं ही एक हूँ, जो भौतिक जगत् का और दैवीय पक्षों का और सब यज्ञों का शासन करता हूँ, वे योग में चित्त को लीन करके इस लोक से प्रयाण करते समय भी मेरा ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

आठवां अध्याय
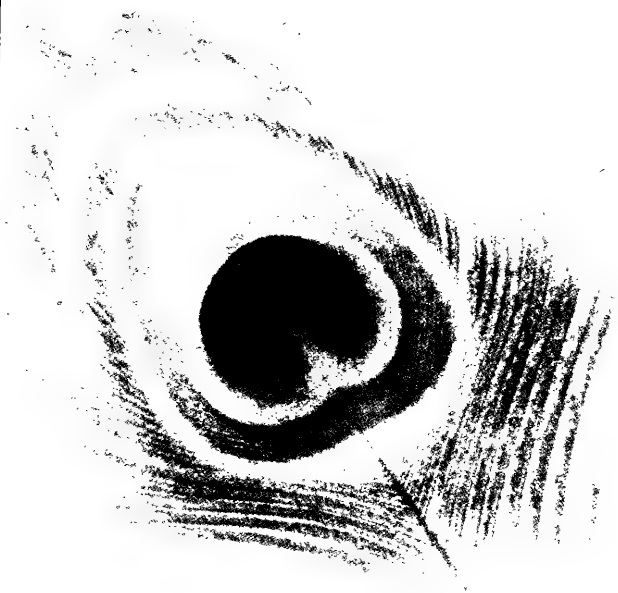
अक्षरब्रह्मयोग

मनुष्य का जीवन जिज्ञासा से भरा हुआ है। जब तक जीवित रहता है, मनुष्य के अन्दर जिज्ञासा ज़रूर रहती है, कुछ जानने की इच्छा। इसीलिए बालक जैसे ही उत्पन्न होता है, बोल नहीं सकता लेकिन देखता है; होश संभालता है तो उसकी जिज्ञासा बढ़ती जाती है। जब बोलने लग जाता है तो हर चीज़ के लिए - यह क्या है? क्यों है? किसलिए है? कैसा है? किस तरह है? किसके लिए है? कहाँ से आया? न जाने कितने सारे प्रश्न बच्चा किया करता है और वही प्रश्न ही उसके ज्ञान की अभिवृद्धि करता है। लेकिन जैसे-जैसे हमारी जिज्ञासाऐं शान्त होने लग जाएं या जिज्ञासाओं को हम उठा न पायें तो मानना चाहिए कि हमने जानने के दरवाज़े बन्द कर दिए। जानने के द्वार अपने कभी बन्द मत होने दीजिए।

गीता का यह आठवां अध्याय अर्जुन के प्रश्नों से प्रारम्भ हुआ और जिज्ञासा जितने सुन्दर ढंग से अर्जुन ने प्रस्तुत की पता लगता है कि अर्जुन जैसा जिज्ञासु होना भी परम सौभाग्य की बात है। भगवान श्री कृष्ण से अर्जुन ने पूछा -

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरूषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥

अर्थात् ब्रह्म क्या है? और अध्यात्म किसे कहते हैं ? कर्म क्या है? हे पुरूषोत्तम! कर्म के सम्बन्ध में भी बताएं। अधिभूत किसे कहा जाता है? *अधिदैवं किमुच्यते* - और अधिदेव किसे कहा जाएगा? प्रश्न आगे भी हैं :-

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥

अधियज्ञ किसे कहा गया है? और इस संसार में *प्रयाणकाले* - मृत्यु के समय आप किससे जाने जाते हैं? कौन आपको जान पाता है? अर्थात् जो नियत आत्मा है, आपके भजन में लगे हुए हैं, जिनका भजन सफल हो जाए और अन्तिम समय में जाना इस संसार से जिनका सफल हो जाए और जिनको आप अपने दर्शन दें यह कैसे संभव है?

यह सात प्रश्न हैं। लेकिन सातों प्रश्न बड़े ही महत्त्वपूर्ण और जीवन के लिए उपयोगी। पहला प्रश्न - *किं तद्ब्रह्म* - ब्रह्म क्या है? जिज्ञासा का प्रारम्भ अगर मनुष्य के लिए कुछ हो सकता है तो सर्वप्रथम परब्रह्म के प्रति ही जिज्ञासा कीजिए।

मनुष्य आँखें खोलता है तो संसार को देखता है, संसार के सम्बन्धों में जानकारी लेता है। लेकिन ऐसे बहुत कम लोग हैं। संसार के पीछे संसार का मालिक कैसा ? कहाँ ? और किस तरह है? इसका प्रश्न नहीं उठाते।

अर्जुन ने सर्वप्रथम प्रश्न जो उठाया वह यह कि ब्रह्म क्या है? भगवान कृष्ण ने इसका उत्तर दिया -

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥

अक्षर ही परम ब्रह्म है, स्वभाव को अध्यात्म कहते हैं और सृष्टि के नवीन अक्षर ही परम ब्रह्म हैं, स्वभाव को धारण करते हैं, उसे ही महत्त्वपूर्ण कर्म माना गया है, निष्काम कर्म कहा गया है। लेकिन शब्दों को सुनने के बाद जब तक उनकी गहराई में नहीं जायेंगे आपको समझ में नहीं आयेगा कि जो उत्तर दिया गया है वह कैसा है।

यहाँ जो प्रश्न और उत्तर हैं वह सूत्रों की भाषा हैं। भारत देश में जितने भी ग्रन्थ लिखे गए अध्यात्मिक-ग्रन्थों में कुछ सूत्रों के माध्यम से लिखे गए, कुछ श्लोकों के माध्यम से हैं, वेद आदि शास्त्र मन्त्रों के रूप में हैं। लेकिन जहाँ-जहाँ दर्शनशास्त्र आप देखेंगे तो दर्शनशास्त्र सारे के सारे ही सूत्र हैं। सूत्र को आप दूसरी भाषा में फ़ार्मूला कह सकते हैं, छोटे से शब्दों में बहुत बड़ी बात को कहना। विज्ञान में जो फार्मूला बनाया जाता है जिस तरह से उसको लिखा जाता है, तो लिखने में बहुत छोटा-सा लगता है लेकिन उसको जब आप व्यवहारिक करें और उसको थियोरी (सिद्धांत)के रूप में भी समझें, जब उसका विस्तार करते हैं तो बहुत बड़ा रूप दिखाई देता है। उपनिषद् जितने भी हैं वह सूत्र नहीं हैं, वहाँ व्याख्याएं हैं।

जितने भी सूत्र हैं वह बीज की तरह हैं। अब बीज में पूरा वृक्ष छिपा हुआ है। जैसे दर्शनशांस्त्र में एक प्रश्न है और प्रश्न यह कि भगवान ने दुनिंया क्यों बनाई? अब इसका उत्तर देना हो तो, एक शब्द में देना हो तो फिर कैसे कहा

जाए? दर्शनशास्त्र ने इसका उत्तर दिया - *भोगापवर्गार्थं दृश्यम्* - जीवों के कर्म-भोग भोगने के लिए, संसार से कर्म - बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति के लिए परमात्मा ने यह सृष्टि की रचना की; भोग और अपवर्ग-भोग भोगने के लिए और मुक्ति पाने के लिए संसार की रचना हुई। अब अगर उत्तर दिया जाए तो उत्तर इतना ही है। व्याख्या की जाए तो व्याख्या से ही यह समझ में आयेगा क्योंकि कई दिनों तक व्याख्या करने से सूत्र को पूरे रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

यहाँ अर्जुन ने जितने भी प्रश्न किए हैं वह सूत्रों की भाषा में ही किए हैं। यद्यपि यह श्लोक है लेकिन श्लोक भी सूत्रबद्ध है और बिल्कुल ऐसा समझिए आप - कि सूत्र इस तरह से होते हैं कि जैसे किसी ख़ान से बहुत सारा कोयला, पत्थर, न जाने क्या-क्या निकले लेकिन बीच में कुछ हीरे निकल आएं और हीरों को भी तराश करके सुन्दर चमक देकर उसकी गुणवत्ता को क़ायम करके सामने रख दिया जाए तो वह जैसे होते हैं आप उसको सूत्र कह सकते हैं।

बहुत ही मार्मिक सूत्रों में एक विशेषता होती है कि जिसकी एक मात्रा या एक अक्षर भी कम कर दिया जाए तो उसकी महत्ता ही समाप्त हो जाती है। वैसे तो निबन्ध जैसी एक विद्या थी हमारे देश में, निबन्ध लिखने की। निबन्धों में एक व्यवस्था थी कि अगर एक पंक्ति भी बीच में से हटा दी गई तो सारा निबन्ध ही लड़खड़ा जाएगा। एक दूसरे से बन्धे हुए पूरे अक्षर, कुछ भी फालतू नहीं, कुछ भी तराशने लायक़ नहीं है।

यहाँ प्रश्न ही ऐसे हैं और उत्तर भी वैसे ही हैं। अगर और स्पष्ट करें तो हम यह कह सकते हैं कि जब आप टैलिग्राम देते हैं तब आपके लिए समस्या होती है कि पूरा सन्देश भी जाना चाहिए और थोड़े से थोड़े शब्द प्रयोग किए जाएं तो आप बड़ी-सी भावना को छोटे से शब्दों में इस तरह से लिखते हैं एक पंक्ति में। यह भी सोचते हैं कि इनमें से और कौन-सा अक्षर निकाला जा सकता है। कम से कम शब्दों में ज़्यादा से ज़्यादा बात आ जाए।

आपके देश में, आपके ऋषियों ने जिस समय सूत्रों के माध्यम से ज्ञान देना शुरू किया वह बिल्कुल जैसे टैलिग्राम (तार) देने के लिए कोई तैयारी कर रहा हो, एक अक्षर भी फ़ालतू नहीं, एक शब्द भी, एक मात्रा भी, एक

अनुस्वार भी, एक बिन्दु भी अधिक नहीं लगाया गया। उनके पास शब्दों की कमी नहीं थी। वह जानते थे कि बीज जितना छोटा हो क्योंकि परमात्मा यह रोज़ चमत्कार करता है, पूरे वृक्ष को समेटकर के एक बीज में रख देता है। हमारी जिज्ञासाएं जब भी उठें, छोटे रूप में लेकिन बहुत बड़ी।

पर जैसे प्रश्न वैसे ही उत्तर भी दिए गए। पूछा गया ब्रह्म क्या है? उत्तर दिया - *अक्षरं ब्रह्म परमं* - परब्रह्म वह तत्त्व है जो अक्षर है। उत्तर इतना ही है। समझा जाए तो ऐसे *क्षर* अर्थात् जो नष्ट होता है; अक्षर वह जो कभी नष्ट नहीं होता अर्थात् जो सदा से है, सदा रहेगा और जिसमें सब हैं क्योंकि ब्रह्म का अर्थ भी विस्तृत होता है, विराट् होता है, जो सबसे बड़ा है, सबसे विस्तृत है लेकिन इतना सूक्ष्म हमारी इन्द्रियां जिसे पकड़ न पायें। जो दिखाई देता है, यह संसार, जो भी पदार्थ दिखाई दे रहे हैं सब नष्ट होने वाला है लेकिन वह अगोचर, जिस पर हमारी इन्द्रियां नहीं जा सकतीं, आँखे देख नहीं पायेंगी, कान उसे सुन नहीं पायेंगे, जीभ उस स्वाद को नहीं चख पायेगी। यद्यपि उपनिषदों ने यह कहा - *रसो वैस:* - परमात्मा एक रस है, एक अनुभूति है वह, लेकिन ऐसा रस जिसको जीभ से आप नहीं चख सकते लेकिन वह रस अगर जीवन में आ जाए तो आपके कृत्य सारे ही रसपूर्ण हो जायेंगे, आपके समस्त कार्यों में सरसता दिखाई देगी। किसी का बोलना, किसी का लिखना, किसी की संरचना, किसी के संसार के महान् कार्य जो सबको ही भा रहे हैं और अपनी तरफ़ खींच रहे हैं, समझ लेना चाहिए कि उनके जीवन में वह रसधारा आ गई है जो परब्रह्म में बहती है। परब्रह्म एक, जो अनन्त है उसका एक छोटा-सा कण कृपा के रूप में उन्हें मिल गया, जिनके कार्यों में एक रस दिखाई देता है।

महान् पुरूषों की रचनाएं, उनका सृजन सभी बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। उनका कहना, उनका बोलना, उनका उठना, उनका चलना, उनके कृत्य, उनके सृजन सारे ही रसपूर्ण हो गए क्योंकि परमात्मा से जुड़े। परमात्मा रस है लेकिन जीभ से चखा नहीं जा सकता। जिसे कहा - *बिनु पग चलई, सुनई बिनु काना* - बिन पाँव के चलता है वह, बिना कानों के सुनता है।

गोस्वामी जी ने जिस तरह से भाव कहा उसका मतलब यही है। *बिन वाणी वक्ता बढ़ जोगी।* बिना वाणी के वह बहुत बोलता है, लेकिन सुनेगा कैसे। *बिन*

वाणी बढ़जोगी - बिन वाणी का वक्ता है वह। *बिन कर कर्म करे बिधिनाना* - बिना हाथों के अनेक प्रकार के कर्म करता है। वही अक्षर परब्रह्म है, उसके हाथ नहीं हैं, पाँव नहीं हैं, शरीर नहीं है, जिसे कहा गया है, *शुद्धम् अपापविद्धम् अस्नाविरम्* - नस-नाड़ियों से रहित शुद्ध है, वह जो सर्वत्र है लेकिन उसका बनाया हुआ संसार परिवर्तित होता है लेकिन वह परिवर्त्तन में नहीं आता, वही अक्षर है।

अर्जुन ने पूछा - ब्रह्म किसे कहा गया? भगवान ने कहा जो नष्ट नहीं होता, जो परब्रह्म है, सदा से है, सदा था, सदा रहेगा।

यह समस्त उसकी सरंचना है। इस पर अगर विचार करें तो यह अलग से हमारा सबका समय चाहता है क्योंकि इतने से समझाने में उस तत्त्व को समझाया नहीं जा सकता। इसीलिए उपनिषद्‌कारों ने अधिकांश रूप से उस परब्रह्म की तरफ जब व्याख्या करने की कोशिश की तो तत् कहकर पुकारा। अब तत् कह कर क्यों पुकारा? 'तत्' शब्द संस्कृत में उनके लिए आता है वह कोई चीज़ जिसकी तरफ़ ईशारा किया जाए। मतलब यह अथवा वह जैसे आप कहेंगे, एक तो वह चीज़ जो आपके सामने है, एक वह दूर है जिसकी तरफ़ ईशारा कर सकते हैं। तत् को कहा कि परमात्मा परब्रह्म वह है जिसकी तरफ़ हर कोई जितनी भी कोशिश करे ईशारा ही कर सकता है, उसको पूरा समझा कोई नहीं सकता। इसीलिए तत् का अर्थ बना अनिर्वचनीय, जो वचनों में आ ही नहीं सकता, जो व्यक्ति की वाणी की पकड़ से बाहर है, कहकर के सब कुछ बताने के बाद भी इन्सान कहेगा क्या कहूँ, उसे कहा नहीं जा सकता।

यह स्थिति बिल्कुल ऐसी है - कूप में बैठे हुए मेंढक को किसी सारस ने आकर के बताया, समुद्र से लौटा हूँ बड़ा विशाल है, इन पंखों से नाप पाना मेरे बस की बात तो नहीं है। एक किनारे से थोड़ा-सा उड़ा था, उड़ान भर के गया और जब मैंने देखा कि आगे तो ओर छोर दिखाई नहीं दे रहा है, वापिस लौट आया हूँ।

मेंढक को बात नहीं समझ में आई। उसने कहा - तेरा समुद्र पानी का ही है न?

उस हंस ने बताना शुरू किया, हाँ वहाँ पानी है लेकिन बड़ा पानी है, बहुत-बहुत पानी है।

मेंढक ने पूछा - कितना है वह पानी?

तब हंस बताता है कि इतना पानी है कि जिसके लिए मैं उड़ा हूँ लेकिन मैं पहुँच नहीं पाया आगे तक भी, वापिस लौट आया हूँ।

मेंढक को समझ में नहीं आया। उसने छलांग लगाकर बताया। दो फुट की छलांग लगाई, इतना बड़ा तो होगा ही तेरा समुद्र।

हंस कहता है नहीं और बड़ा है।

इसने और ज़ोर से छलाँग लगाई, अब की बार तीन फुट की छलाँग थी। हंस कहने लगा सारी ज़िन्दगी छलाँग लगाते रहोगे न, हज़ारों जन्म लेकर के आओ, हज़ारों ज़न्मों तक छलाँग लगाते चले जाओ तो भी तू उसकी सीमा नहीं नाप सकता, 'समुद्र इतना बड़ा है, मैं वहाँ से आया हूँ।

बिल्कुल सच बात ऐसी ही है। जिन हंसों ने, परमहंसों ने, जिन योगियों ने अपनी पंखों की उड़ान से थोड़ा बहुत उड़ कर के जाने की कोशिश की, उन्होंने तो कहा कि अनन्त था आगे का रूप इसीलिए वापिस लौट आए हैं बताने के लिए। लेकिन संसार में जीने वाले लोग बिल्कुल मेंढक की तरह हैं क्योंकि हमारी छलाँग, कितनी दूर तक हमारी आँखें जाती हैं अगर सामने थोड़ी खुली जगह हो तो, हम खड़े होकर देखें तो एक किलोमीटर तक देख पाऐंगे। समुद्र के किनारे खड़े होकर देखें तो तेरह किलोमीटर तक देख पाऐंगे, अगर हमको किसी पहाड़ के ऊपर खड़ा कर दिया जाए तो सात किलोमीटर तक हम देख पाते हैं, इतने से ज़्यादा आँख जाती नहीं है।

अब उसके बाद मे हम माध्यम पकड़ेंगे, दूरबीन। दूरबीन से भी हम कोशिश कर के देख रहे हैं तो इन्सान यह कहता है कि एक सौ साठ किलोमीटर ऊपर वाहन के माध्यम से, यान के माध्यम से जाओ वहाँ जाकर फिर आकाश की तरफ देखो। अब आकाश में जब सितारे दिखने लग जाएं तो उसके बाद खोजते-खोजते व्यक्ति यह कहता है कि थोड़े बहुत सितारों की जानकारी तो मिल गई लेकिन अभी वह दूरबीन बनानी बाक़ी है जिससे इन रहस्यों को जो आसमान में सितारे हैं, उनको जानने की कोशिश हो सके। अब व्यक्ति कहता है कि आश्चर्यजनक बात तो यह है कि धरती से हम जितने सितारे देखते हैं, थोड़े-से दिखाई देते हैं लेकिन ऐसे भी सितारे हैं जिनका प्रकाश वहाँ से चला आज तक धरती पर नहीं पहुँच पाया है और प्रकाश की

गति कितनी तीव्र है। आपका सूर्य कितनी दूरी पर आप से है लेकिन उसका प्रकाश धरती तक पहुँचने में आठ मिनट अट्ठारह सैकेंड लगाते हैं। उसका मतलब जब आप सूरज को उगा हुआ देखते हैं आपको आठ मिनट अट्ठारह सैकेंड के बाद पता लगता है कि वह तो उससे पहले उग चुका होता है, उसका प्रकाश आप तक पहुँचने में इतनी देर लगती है लेकिन हम इस विस्तार से इस समय नहीं जाना चाह रहे हैं।

विराट् व्याख्या के समय मैं आपको बताना चाहूँगा, भगवान कृष्ण ने जब विराट् दर्शन कराया था, सच में इतना विराट् है परमात्मा का स्वरूप, हमारी गिनती बहुत छोटी-सी है। हम क्या गिनती कर लेंगे, एक, इकाई, दस दहाई, फिर सैंकड़ा, फिर हज़ार, फिर लाख, लाख के आगे आप करोड़ पर जाएंगे, करोड़ के बाद आप सौ करोड़ मिलाकर जिस संख्या को मानते हैं उसे आप अरब कहेंगे। सौ अरब मिला कर के जिस संख्या को आप कहेंगे उसे खरब कहेंगे, फिर खरब भी सौ मिलाएं शंख हैं, नील हैं, फिर पद्म हैं। यह हमारी संख्याएं हैं। सौ करोड़ का एक अरब, सौ अरब का एक खरब, सौ खरब का एक शंख, फिर शंख को मिलाएं नील, नील के बाद पद्म, वैसे ही सौ-सौ आगे जोड़ते चले जाएं। बस, यहाँ जा कर के हम लोग रूक गए। दूसरे लोगों ने भी इसी तरह का हिसाब किया। कहीं मिलियन कहा, कहीं बिलियन कहा, और थोड़ा-सा और आगे चले जाते हैं टिलियन, आगे की संख्या थोड़ी बहुत व्यक्ति बोल पाता है बाकी फिर शान्त।

गणना हमारी विचित्र है, ईकाई से हमने शुरू किया लेकिन शुरूआत शून्य, ज़ीरो से आगे करोगे और ज़ीरो के नीचे भी इतनी सख्या है। मतलब इस गणित का, इस संख्या का न आदि है और न अन्त है। ज़ीरो से नीचे भी इतना ही है ज़ीरो से ऊपर भी उतना ही है और आख़िर में व्यक्ति यही कहेगा पूर्ण में से पूर्ण निकालो फिर भी पूर्ण ही बचता है। उस ज़ीरो में से ज़ीरो निकाला फिर भी वह ज़ीरो बच रहा है क्योंकि समस्त उसी में है।

आंखें कहाँ तक जाएंगी? कान कहाँ तक जाएंगे? आप कितनी तरह की ध्वनियों को पकड़ सकते हैं? आपके कान कितनी डैसिमल ध्वनि को सुन पाते हैं. उसके बाद कान बहरे होने की स्थिति में आ जाते हैं। एक सौ साठ डैसिमल तक आप की हालत ख़राब हो जाती है, धमाका होता है। वह भी

ध्वनियाँ हैं जिनको आप नहीं सुन सकते लेकिन जानवर सुनते हैं। कुत्तों को प्रशिक्षण के लिए एक अलग तरह की सीटी का प्रयोग लोग करते हैं, तीन किलोमीटर तक भी कुत्ता होगा तो यहाँ आप बजाईये वह भागता हुआ आएगा, आपको नहीं पता है। मतलब आप बोलेंगे, सीटी बजाएंगें तो आवाज़ आपको सुनाई नहीं दे रही लेकिन तीन किलोमीटर बैठे हुए कुत्ते को सुनाई दे रही है। इसीलिए अब प्रशिक्षण देने वाले लोग जानते हैं, और तो और चींटी के भी तो कान होते होंगे, उसका भी तो मुख है, वह भी तो भोजन किसी तरह करती हैं पर चींटियों को भी इतनी संवेदनशीलता है इन्सान तो बहुत पीछे रह गया है कि अगर कोई चींटी अपने बिल से निकलकर चली है और उसे यह एहसास हो जाए कि धरती के अन्दर तरंग पैदा होने लगी है, भूकम्प आने वाला है, अभी तक जितना भी आविष्कार हुआ, मनुष्य ने भी कुछ कोशिशें कीं, भूकम्प के बारे में भविष्यवाणियाँ इन्सान अक्ल लगाता है लेकिन पशु-पक्षियों को जानकारी मिल जाती है। भूकम्प आने के 24 घण्टे पहले चींटियों को पता चल जाता है, जंगल में रहने वाले पंछियों को पता लग जाता है। हम लोग तो कहते हैं हम बहुत बुद्धिमान, बड़े दिमाग़दार, बड़ी अच्छी आँखे हमारे पास, बहुत अच्छे कान हैं, हमारी चमड़ी बहुत अच्छी है, संवेदनशील है।

हमारे लोगों ने एक शब्द ढूँढा परमात्मा के लिए - वह अगोचर है, उसे देखा नहीं जा सकता, इन्द्रियों से पकड़ा नहीं जा सकता, मन वहाँ तक नहीं पहुँच सकता, बुद्धि वहाँ तक मनन नहीं कर सकती क्योंकि बुद्धि वहीं तक जाएगी जहाँ तक हम कल्पना कर सकते हैं। जो चीज़ हमने सुनी नहीं, देखी नहीं, कल्पना में भी लाएं तो कैसे लाएं? अब इतने बड़े विस्तार को कहना हो, उस परब्रह्म की सत्ता के बारे में कहना हो तो क्या कहा जाए।

भगवान कृष्ण ने स्वरूप की तरफ़ ईशारा करके कह दिया - *अक्षरं ब्रह्म परमं* - जो परब्रह्म है वह अक्षर है, सदा से है वह और सदा रहेगा, वह नष्ट नहीं होता। उसी में सब है और सबमें वह है।

समुद्र में घड़ा पानी का भरिये, स्थिति ऐसी होगी कि पानी बाहर भी है और अन्दर भी, बीच में घड़ा दिखाई दे रहा है तो हममें परमात्मा है और परमात्मा में हम हैं। मतलब पानी में हम और हम में पानी। आकाश में जैसे सारी चीज़ें हैं और अगर हम कहें *क्षर* जिसको जाना जा सके, *अक्षर* वह जिसे

आप जान ही नहीं सकते और कमाल तो यह है उस परमात्मा ने इस चैतन्य को भी तो ऐसी विशेषता दी है - हमारी आत्मा। एक छलनी वाले भवन में यह आत्मा रहती है, इतनी छोटी, इतनी सूक्ष्म कि दुनिया का छोटे से छोटा छेद जिसे आप कल्पना से भी नहीं देख सकते उसके अन्दर से भी निकल जाए बाहर। इतनी सूक्ष्म है आपकी आत्मा, लेकिन छलनी वाले, जाली वाले घर में रहती है यह आत्मा। प्राणों का पंछी हिलाती रहती है रोज़ इस शरीर के अन्दर। आश्चर्य यही है निकल कर बाहर नहीं जाती। इसी को कहा कबीर ने *नौ द्वारे का पिंजरा* (नौ दरवाज़े वाला पिंजरा है यह शरीर), *तामे पंछी पौन* (इसमें एक पंछी बैठा है हवा नाम का, पौन-पवन), *रहने का अचम्भा बड़ा* (इस शरीर में रह रहा है यह बड़ा आश्चर्य है) *गया अचम्भा कौन* (बाहर निकल जाए तो इसका क्या आश्चर्य, इसके लिए क्यों ताज्जुब करते हो)? सारे दरवाज़े खुले पड़े हैं, पंछी पंख फड़फड़ाता चल रहा है, लेकिन फिर भी बाहर नहीं जा रहा, इसका आश्चर्य करो और अगर बाहर निकल जाए इसका क्या आश्चर्य, दरवाज़े खुले पड़े हों उड़ता जा रहा था बाहर हो गए।

इस शरीर से जो इस आत्मा को जोड़ता है वह अक्षर परब्रह्म परमेश्वर है। अर्जुन ने पूछा - *किं तद्ब्रह्म* - ब्रह्म क्या है? भगवान ने उत्तर दिया - *अक्षरं ब्रह्म परमं* - जो नष्ट नहीं होता, जो अक्षर है वही परब्रह्म है।

जिसे हम, जिसे कोई मनुष्य इन्द्रियों से पकड़ नहीं सकता, मन से मनन नहीं कर सकता, कानों से जो सुना नहीं जा सके क्योंकि हम लोग अपने कानों से कितना सुन पाएंगे? बहुत सारी ऐसी ध्वनियां हैं जो आप नहीं पकड़ पाते। अभी भी कोशिशें हो रही हैं, विज्ञान यह प्रयास कर रहा है जो शब्द आज से बहुत पहले बोले गए महाभारत काल में, जिस समय कभी भगवान कृष्ण ने गीता कही होगी, उस समय के शब्दों को पकड़ने की कोशिश मनुष्य कर रहा है। आप देखिए कि आपके आस-पास कितनी ध्वनियां घूम रही हैं लेकिन आपको सुनाई नहीं दे रहीं। बस थोड़ा-सा यन्त्र पकड़ना पड़ेगा आपको। रेडियो को लेकर के आप उसे ऑन करेंगे, उसकी फ्रीकुएंसी सैट करेंगे, कौन-सी ध्वनियां पकड़ना चाहते हैं वायरलैस के माध्यम से, कॉर्डलैस के माध्यम से, टी.वी. के माध्यम से या अन्य बहुत सारे यन्त्र आपके पास हैं। अनेक ध्वनियां आपके आस-पास से गुज़र रही हैं लेकिन आपके कान नहीं पकड़ पा रहे हैं।

शब्द अपना घेरा बनाकर के चलता है, विस्तार में आता जाता है। इस दुनिया में जिसे आप जानते हैं वह तो बहुत थोड़ा है, अनजाना इतना कुछ है जहाँ तक कल्पना पहुँचेगी नहीं। हमारी दौड़ तो घर से ऑफिस, ऑफिस से घर, रिश्तेदार, पेट की समस्याएं पूरी करने की बात, तन ढाँपने की बात. दुनियादारी थोड़ी-बहुत निभाने की बात, यह एक दायरा है जिसमें हम घूम रहे हैं। लेकिन इस संसार में हमेशा ही ऐसा हुआ कि जिसने भी कुछ दुनिया में जानने की कोशिश की और वह किसी बिन्दु तक पहुँचा और बाद में जब उससे पूछा गया कितना जानते हो? तो व्यक्ति कहता है कि जब नहीं जानते थे तब तो कहते थे कि हम जानते हैं, अब जो कुछ जान पाए हैं तो लगता है कि अब हम कुछ नहीं जानते। अब लगता है कि बहुत थोड़ा जाना है। इसीलिए दुनिया के सारे ही ज्ञानी ज्ञान की चरम सीमाओं पर पहुँचने के बाद अज्ञानियों के जैसा व्यवहार करने लगे कि हम तो कुछ जानते ही नहीं हैं।

न्यूटन ने भी कह दिया था, जब पूछा गया - कितना जानते हो? तो न्यूटन ने कहा समुद्र के किनारे पड़ी हुई रेत जिसका ओर-छोर नहीं है, इसमें से एक कण उठाकर मैं अपने हाथ पर रखता हूँ, बस, इतना ही जानता हूँ और जो नहीं जान पाया हूँ वह इतना जितना की यह रेत और इसके कण दूर-दूर तक बिखरे हुए हैं। एक कण तक जान पाया हूँ, कितने कण, कितने ज़र्रे रेत के बिखरे पड़े हैं तो ज्ञान के इतने सारे ज़र्रे हैं जिनको मैं अब तक जान नहीं पाया, जिनको पकड़ नहीं पाया।

जिज्ञासा प्रारम्भ में परमात्मा ने हमको दी और हमारी कोशिश होनी चाहिए कि इस जिज्ञासा को हम मरने न दें क्योंकि हम जानने के लिए आए हैं इस संसार में। इसीलिए हम लोगों को यह सिखाया गया कि ज्ञानियों को प्रणाम करो, उन्हें सम्मान दो, वह तुम्हारी भूख जगा रहे हैं विराट् परब्रह्म को जानने के लिए। वह बता रहे हैं कि एक ऐसा लोक, जिस लोक से तुम आए हो और जिस लोक में तुम्हें जाना है, परम के लोक तक तुम्हारी यात्रा हो सके वह अनन्त है, उसका विस्तार इतना है उसकी कल्पना नहीं हो सकती। लेकिन जहाँ तुम जी रहे हो यह पशु लोक है, माया का लोक है। इस लोक की परत को तोड़ कर बाहर निकलने की कोशिश करो।

बड़ी चीज़ होती है, अपने ही ख़ज़ाने का पता कोई बता दे तो उस बताने वाले की महिमा कितनी होती है। व्यक्ति कहेगा कि समझो ख़ज़ाने के मालिक

तो तुम ही हो। तुमने हमें ख़ज़ाने की तरफ़ ईशारा कर दिया कि यह तुम्हारा ख़ज़ाना है लेकिन दुनिया के ज्ञानियों ने हर एक-एक ख़ज़ाने की चाबियाँ अपने प्यारे लोगों के हाथों में सौंप दी और कहा कि अपना ख़ज़ाना सम्भालो। ज्ञानियों ने हमेशा ही अपने आप को लुटाया है, वह लुट कर खुश हुए, क्योंकि यह ज्ञान ही ऐसा है, यह दौलत ही ऐसी है कि जितनी इसको लुटाएं, जो लूट रहा है उसको भी मिलती है और जो लुटा रहा है उसकी भी बढ़ती चली जाती है। यह दौलत ही ऐसी है।

बस, इतनी-सी बात महान् पुरूषों ने कही कि उनके चरणों को प्रणाम करो, उनके प्रति श्रद्धा इतनी रखो कि दुनिया में किसी के प्रति इतनी श्रद्धा न रखी जा सके, इतना किसी और को चाहा न जा सके, इतना मान दो उन्हें।

महात्मा बुद्ध के अनेक शिष्यों में एक शिष्य थे, सारिपुत्त। अपने गुरूदेव से बहुत प्यार करते थे। सारिपुत्त क्योंकि साधारण-सा व्यक्ति था, बुद्ध की शरण में आकर रहने लगा। बुझे हुए दीपक में थोड़े दिनों के बाद रोशनी आ गई, प्रकाश आ गया।

सारिपुत्त जिस समय महात्मा बुद्ध जी से ज्ञान का अधिकार प्राप्त कर गया, महात्मा बुद्ध ने देखा कि इसके अन्दर भी प्रकाश झिलमिलाने लगा है। कहा - सारिपुत्त अब जाओ और बाँटो इसे। यह तुम्हारे ही लिए नहीं है इस पर सारे संसार का अधिकार है, अब इसे बाँटना चाहिए।

सारिपुत्त बाँटने के लिए निकला। जिधर गया अनेकों-अनेकों लोग उसके शिष्य बनते चले गए। भीड़ पीछे भाग रही है। लेकिन लोग एक चीज़ देखते थे हर सवेरे और हर साँझ सारिपुत्त एक अलग तरह का काम करता था। अपनी डायरी निकाल कर बैठता था जिसमें महात्मा बुद्ध के प्रवचनों के कार्यक्रम, उनकी यात्राओं का उल्लेख होता था कि अब महात्मा बुद्ध कहाँ होंगे, किस दिशा में गए होंगे, भगवान बुद्ध कहाँ प्रचार कर रहे होंगे, पूरा कार्यक्रम डायरी में अंकित है। अब एक नक्शा उसके पास कौन-सा शहर किस दिशा में है जहाँ मेरे गुरू बैठे हुए हैं। ज़मीन पर नक्शे को बिछाए, दिशा का निर्धारण करे और जब हिसाब लग जाए कि इस दिशा में हैं तो बस सवेरे उठकर उसी दिशा में दण्डवत् प्रणाम करे, शाम हो तो भी उसी दिशा में प्रणाम करे।

उसके शिष्यों ने सारिपुत्त से पूछ लिया – ''यह जो इधर आप प्रणाम करते हैं, न तो इधर कोई मन्दिर है, न इधर कोई धार्मिक स्थल है, किसे प्रणाम करते हो?'

तब सारिपुत्त ने कहा – 'जिसने मेरे हृदय – मन्दिर को सजा दिया, मेरे अन्दर एक नया प्रकाश भर दिया, मुझ मिट्टी वाले शरीर के अन्दर जिसने अमरता प्रदान कर दी, मेरे गुरूदेव, जिस दिशा में होते हैं मैं रोज़ सवेरे उधर ही प्रणाम कर लिया करता हूँ, यह सारे प्रणाम मैं उन्हें ही भेजता हूँ। जिधर से प्रकाश आया इस ज़िन्दगी में, यह प्रणाम उनके लिए है, जिधर से रोशनी आई और मुझे नहला गई, संसार में ऊँचा उठा दिया, मैं उस धनी को प्रणाम कर रहा हूँ जिसने मेरे जन्मों की निर्धनता को दूर कर दिया, मैं उस बली को प्रणाम करता हूँ जिसने सारा भय ही मेरा मिटा दिया है, मैं उस परम् सुन्दर को प्रणाम करता हूँ जिसने मेरी ज़िन्दगी में भी एक सुन्दरता भर दी है। मैं उस सुगन्ध को प्रणाम करता हूँ, जिस सुगन्ध के आ जाने से इस तन में भी, इस मन में भी, इस आत्मा में भी एक नई महक आ गई है। तो जो ज्ञानी लोग हैं, जिन्होंने हमें जगाया, हमें एहसास कराया, उन्हें प्रणाम किया जाए।

विचार करके देखिए जिसका यह विराट् संसार है, जिसने इतना सुन्दर संसार रचा, विराट् ब्रह्माण्ड को, संसार को रचने वाला कितना विराट् होगा। सुन्दर संसार की रचना करने वाला कितना सुन्दर होगा, इतने रंगों-भरे संसार में जिसने विभिन्न रंग दिए वह कितना अलग-अलग रंगों का स्वामी है, वह कितना प्यारा होगा, इसकी कल्पना हम नहीं कर सकते। बस जिधर भी एहसास करें उधर प्रणाम कर लिया करें यही उस परब्रह्म के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति होगी।

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उत्तर दिया – *अक्षरं ब्रह्म परम स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।* अर्जुन ने प्रश्न किया था अध्यात्म क्या है? भगवान ने उत्तर दिया – अध्यात्म अर्थात् स्वभाव। (शब्द का जैसे उत्तर दिया गया आपको लगता है इसे समझने के लिए भी एक अलग ही बुद्धि चाहिए। अर्जुन, क्योंकि इतना पात्र है कि उसको जो भी उत्तर दिया गया उसकी समझ में पूरी तरह से आया। आपको तो प्रश्न का उत्तर जैसे भगवान कृष्ण ने दिया अगर ऐसा ही उत्तर आपको दिया जाए आपकी समझ में आने वाला नहीं है। थोड़े सरल

करके गहराई में जाकर उत्तर को समझिये।) उत्तर है कि स्वभाव ही अध्यात्म है।

अब वह स्वभाव क्या है? यह जो जितने भी जीव हैं इनका होना जो स्वाभाविक रूप में है, स्वभाविक रूप में जो जीव संसार में हैं बस वही अधि-आत्म है, आत्मा से जुड़ा हुआ अर्थात् आत्मिक स्वरूप संसार में जो सर्वत्र है।

ऐसे समझिए दुनिया में जितने भी जीव हैं, जितनी आत्माएं हैं उनका होना यह स्वभाव कहलाएगा और यही अध्यात्म है। प्रश्न उठता है - जीव नये-नये बनते रहते हैं या उतने ही हैं, जीव-आत्माएं कितनी हैं? रोज़-रोज़ नई-नई बनती होंगी तभी तो संसार में नये-नये जीवधारी आ रहे हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। जीव आत्माएं पहले जितनीं थी उतनी ही आत्माऐं आज भी हैं और उतनी ही आत्माएं आगे भी रहेंगी। यह कम ज़्यादा होने वाली नहीं हैं। प्रश्न आएगा फिर इतनी सारी जनसंख्या। परमात्मा की इस दुनिया में न जाने कितनी ब्रह्माण्ड की सृष्टियां रोज़ बन रही हैं और कितनी ऐसी सृष्टियां जिनका रोज़ प्रलय हो रहा है। कहीं के जीव कहीं पर भेजे जा रहे हैं। कितने सारे जीव-जन्तु हैं जो अपना शरीर छोड़ गए अब वह मनुष्य की देह में आ रहे हैं और अब कितने मनुष्य हैं जो पशुओं के लोक में जा रहे हैं। जीव आत्मा या तत्त्व उसे न घटाया जा सकता है न बढ़ाया जा सकता है वह जितनी हैं उतनी ही हैं।

किन्ही देशों में घोषणाएं की जा रही हैं कि जितनी जिसकी अधिक सन्तान होगी उतनी ही उसको ज़्यादा इनाम राशि दी जाएगी और किन्हीं देशों में यह घोषणा की जा रही है कि जिनकी एक सन्तान है वह ही ज़्यादा सही लोग हैं। भारत में और चीन में समस्या बड़ी भारी है। चीन में कहा जाएगा लड़का या लड़की एक ही ठीक है, भारत में कहा जा रहा है एक या दो-चाहे बेटा हो या बेटी। लेकिन कुछ देश अभी इस समस्या में भी हैं जहाँ जनसख्ंया की बड़ी कमी है। वहाँ कहा जा रहा है कि जनसंख्या जितनी होगी वह इनाम का हकदार है।

तो कहीं पर तालमेल बनाने के लिए संख्या बढ़ानी पड़ रही है और कहीं घटानी पड़ रही है लेकिन एक कमाल है परमात्मा का। हर जगह की व्यवस्था ऐसी रखी गई है कि कई जगह लोग कहते हैं कि लड़कियां अधिक उत्पन्न

हो रही हैं, कई जगह कहते हैं कि लड़के अधिक हो रहे हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। 116 लड़के और 100 के लगभग लड़कियां यह अनुपात, ऐसी व्यवस्था रखी है परमात्मा ने। आश्चर्यजनक बात यह है कि 116 लड़कों में 16 तो रोग में, बीमारियों में ख़त्म हो जाते हैं। लेकिन लड़कियों की संख्या, रोगों से लड़ने की शक्ति इनमें ज़्यादा है। दिल की बींमारी भी सबसे ज़्यादा पुरुषो में है, महिलाओं में नहीं। महिलाएं अपना दु:ख रोकर कम कर लेती हैं। थोड़ी देर रोएँगी, ख़त्म कर लेंगी। पुरूषों में, अपना दु:ख रोएँगे नहीं, बताऐंगे नहीं किसी को, अन्दर ही अन्दर घुटेंगे, पीड़ित होंगे, लेकिन परमात्मा की व्यवस्था आप देखिए, पूरा अनुपात रखा।

जहाँ युद्धों में बहुत अधिक सैनिक मर जाते हैं वहाँ बाद में फिर लड़कों की संख्या बहुत अधिक होती है, उत्पन्न होते चले जाते हैं फिर लड़के। प्रकृति अपने आप अपना नियम रखती है। पूरी व्यवस्था बनाई हुई है परमात्मा ने।

तो जीव-आत्माएं जितनी भी हैं उनकी सख्यां उतनी ही है। लेकिन इन आत्माओं का होना यही अध्यात्म है, यह स्वभाव है कि जन्म होगा फिर शरीर एक समय में छोड़ा जाएगा। कर्म का भोग आगे चलता रहेगा। आत्मा से जो जुड़ा हुआ है वही अध्यात्म है। अब अध्यात्म को उन्नति का मतलब माना जाएगा। हालांकि यहाँ यह पारिभाषिक शब्द है, यह परिभाषा कुछ अलग है गीता की।

जैसे दर्शनों में धर्म शब्द का अलग प्रयोग है, उपनिषद् में धर्म अलग है, नीतियों में धर्म शब्द का अलग प्रयोग है और आयुर्वेद शास्त्र में धर्म शब्द का अलग प्रयोग है। आयुर्वेद के अनुसार किसी चीज़ में क्या गुण है उसको धर्म कह दिया जाएगा। दर्शन शास्त्र में साधर्म्य और वैधर्म्य की व्याख्या है। हर जगह अलग-अलग शब्दों के अलग-अलग अर्थ हैं तो यहाँ पर यह समझने की बात है कि जीव आत्माओं का होना जीवों की सत्ता ही अध्यात्म है।

अगला शब्द *'अधिभूत'* क्या है? यहाँ जितने भी शब्द समझाए जा रहे हैं, सभी बड़े महत्त्वपूर्ण हैं और जो लोग आध्यात्मिक उन्नति करना चाहते हैं, भक्ति का, शास्त्र का ज्ञान लेना चाहते हैं उन लोगों को इस गहराई में उतरना ही चाहिए। यद्यपि यह एक ऐसा विषय है कि अगर हम इसकी व्याख्या और अधिक गहराई में जाकर करें तो यह आपको समझ तो आएगा लेकिन थोड़ी

मुश्किल यह ज़रूर पड़ेगी कि इतनी गहराई में जाते-जाते आप लोग थोड़े-थोड़े हिलने लग जायेंगे पर कभी-कभी डुबकी तो लगानी चाहिए। कुछ विषय ऐसे होते हैं कि जिनको जानने के लिए थोड़ा बारीक मस्तिष्क चाहिए, तीव्र मस्तिष्क चाहिए या फिर यह करना होता है कि जिसने समझाना है वह तरीक़ा ढूँढे कि कैसे आसानी से आपको भोजन पचा दिया जाए, आपको पका पकाया स्वादिष्ट बनाकर, सुपाच्य बनाकर दिया जाए कि आसानी से पच जाए।

****

गीता के आठवें अध्याय पर हम लोग चिन्तन कर रहे हैं।

अर्जुन ने भगवान कृष्ण से यह प्रश्न किया -

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥

ब्रह्म क्या है? अध्यात्म किसे कहते हैं? हे पुरुषोत्तम! कर्म किसे कहा गया है? अधिभूत संसार में किसे कहा गया है? और अधिदैव किसे पुकारा जाता है।

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मसिः ॥

- हे मधुसूदन , इस देह में, शरीर में, अधियज्ञ क्या है? *प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मसि:* - संसार से इस शरीर को छोड़ते समय साधना करने वाले लोगों के लिए आप कैसे जाने जाते हैं, इसको भी आप कृपा बतायें।

भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया -

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसञ्ज्ञितः ॥

- अर्थात्, अक्षर जो अविनाशी है वही तत्त्व परमब्रह्म परमेश्वर है। आत्मा, जो स्वयं से है, वही अध्यात्म है और सृष्टि के प्रारम्भ में, महासर्ग के प्रारम्भ में जीवों को जो कर्म से जोड़ा गया अर्थात् शरीर दिए गए और वह संसार में प्रकट हुए, इसी को कर्म कहा गया है।

अधिभूत क्षरो भाव: - अधिभूत उसे कहते हैं जो क्षर है, नष्ट होने वाली चीज़ें हैं; *पुरुषश्चाधिदैवतम्* - और जो पुरुष है अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में जो प्रकट हुए सृजन करने के लिए वह ही ब्रह्माजी अधिदैव हैं।

आगे फिर बताया गया -

अधियज्ञोऽहमेवात्र देह देहभृतां वर

मैं ही इस देह के अन्दर अन्तर्यामी परमेश्वर हूँ।

तो जैसे प्रश्न किए गए वैसे उत्तर यहाँ दिए गए हैं लेकिन इन पर जब तक विचार नहीं करेंगे यह समझ में नहीं आयेंगे।

कल हम चिन्तन कर रहे थे कि जो अक्षर है, नष्ट नहीं होता, जो सर्वोच्च सत्ता है, सदा से जो था, सदा जो है, सदा रहेगा, जो निर्गुण, निराकार, अनश्वर तुच्छ अविनाशी तत्त्व है जिसे अनिर्वचनीय कहा जायेगा जो सर्वशक्तिमान है, जो शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव है, जो दयालु, न्याय करने वाला, कृपालु है, स्वरूप को हम '*परब्रह्म*' कहते हैं, उसका विस्तार यह समस्त संसार है, ब्रह्माण्ड उसके अन्दर है और वह ब्रह्माण्ड के अन्दर है लेकिन हमारी कल्पना शक्ति केवल ब्रह्माण्ड तक ही की जाती है। मनुष्य बहुत दूर तक नहीं देख सकता। हमारी देखने की शक्ति बहुत छोटी-सी है। लेकिन यदि हम किन्हीं यन्त्रों के माध्यम से सँसार को देखने की कोशिश करें तो जितना हम देख सकते हैं वह भी एक आश्चर्यजनक चीज़ हो जाएगी। पर फिर भी एक बात ध्यान रखने की है हम कितना भी देखें तो भी हम यही कहेंगे कि तेरा पार नहीं पाया जा सकता।

उपनिषदों में यह जो 'नीति' शब्द का प्रयोग किया गया है, बताया गया कि यह है क्या परमेश्वर? ऐसी महिमा वाला, इस तरह का, इतने विस्तार वाला। तो उपनिषदों ने वहाँ पर एक शब्द प्रयोग किया 'नेति' - यही नहीं इससे भी कहीं कुछ अलग क्योंकि उसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण रूप से कहा नहीं जा सकता।

हमारा यह ब्रह्माण्ड देखा जाए तो इस ब्रह्माण्ड के अन्दर धरती भी एक गेंद की तरह ही अपने स्थान पर घूम रही है और सूर्य की परिक्रमा कर रही है। आप सोचिए, कितनी तीव्र गति है इसकी। लेकिन जिस धरती पर हम बैठे हुए हैं यह अगर साठ हज़ार कि0मी0 प्रति घंटा की गति से दौड़ रही है तो क्या हमें ऐसा एहसास होता है कि धरती हिल रही है? यही तो उसका सबसे बड़ा चमत्कार है। जब वायुयान अपनी कक्षा में स्थापित हो जाता है, पानी का गिलास भी आपने रखा हुआ है तो पानी का, गिलास का पानी भी, हिलता

हुआ नज़र नहीं आता। तभी आश्चर्य होता है कि क्या हवाई जहाज़ चल भी रहा है। व्यक्ति सोचने लगता है कि मनुष्य का बनाया हुआ यह यान, इसमें कहीं किसी प्रकार का प्रकम्पन नहीं है, लेकिन थोड़ा-सा भी बादल आगे आ जाए और घोषणा की जाए कि कृप्या अपनी-अपनी पेटियाँ बाँध लीजिए तो उसका मतलब है कि अब हिलने वाली स्थिति आ गई। किसी न किसी रूप में यह व्यवधान पड़ ही जाता है।

लेकिन ज़रा सोचकर के देखिए परमेश्वर की व्यवस्था कितनी सुन्दर है, उसका सिस्टम, कितना बढ़िया है, जहाँ किसी भी प्रकार का कोई विघ्न और किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं है।

उसे कहा गया वह सर्वोच्च सत्ता है। इतनी महान् सत्ता कि जिसके साम्राज्य में कहीं किसी भी प्रकार का कोई व्यवधान नहीं है, विघ्न बाधा नहीं है। विघ्न-बाधाएं मनुष्य के द्वारा बनाई गई व्यवस्थाओं में हैं।

मनुष्य के द्वारा बनाई गई व्यवस्थाएं जितनी भी हैं वह कभी भी सम्पूर्ण रूप से ठीक नहीं हो सकतीं, उसमें दोष रहेगा। मनुष्य अल्पज्ञ है, हम सभी जितने भी देहधारी मनुष्य हैं, जीव आत्माएं हैं, हम अल्पज्ञ हैं। परमेश्वर सर्वज्ञ है। हमारे समस्त कार्य, जितने भी हम करते हैं वह भी सम्पूर्ण नहीं हैं, उनमें सुधार की गुंजाइश हमेशा ही रहेगी, हमारी रचनाओं में, हमारे सृजन में यह नहीं कहा जा सकता कि यह सम्पूर्ण हैं। उसमें सुधार की परिस्थितियाँ बनी रहेंगी और इसीलिए मनुष्य जो भी सृजनशील है, निर्माण करने के बाद अपनी कृति से कितना भी सन्तुष्ट क्यों न हो लेकिन फिर भी यह ज़रूर कहेगा कि अभी मैं इससे भी अधिक और अच्छा कुछ बना सकता हूँ, उसमें यह संभावनाऐं रहेंगी और यही उसके विकास का क्रम है क्योंकि पूर्णता की तरफ़ जा रहा है वह।

जब तक हम इस दुनिया में रहेंगे, सीखते रहेंगे, पहले से कुछ और अच्छा करते रहेंगे। लेकिन पहले से कुछ और अच्छा करने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे तो हम अपने परमात्मा की शरण की तरफ़ बढ़ रहे हैं और अगर सृजन में सुधार जारी नहीं है, सुव्यवस्था करने के लिए हम तत्पर नहीं हैं, तो इसका मतलब है कि हमारी उन्नति की गेंद अब ऊपर नहीं जा रही है, नीचे की तरफ़ आ रही है वह। सुधार और विकास का क्रम चलना चाहिए।

तो कहा गया है - *अक्षर परब्रह्म* है अर्थात् परब्रह्म को अक्षर कहा, जो नष्ट नहीं होता जो सदा है और रहेगा। लेकिन वह सर्वोच्च सत्ता है, उससे बढ़कर संसार में कोई और सत्ता नहीं है। उसी का शासन सब जगह चलता है। वेदों को अगर पढ़िए तो वहाँ पर लिखा:

- मृत्यु का नियम बनकर के वही सर्वोच्च सत्ता, परिवर्तन का नियम बनकर वही सम्पूर्ण, सबसे बड़ी सत्ता, सारे संसार में सब पर शासन करती है।

परिवर्तन का सिद्धान्त लेकर आईए हर चीज़ को बदलती जाती है। इसीलिए उसे परिवर्तन का सम्पूर्ण अधिकार है। अगर हमें शरीर दिया है उसने तो यह उसकी अमानत है, उसने साधन दिए हैं, उसकी अमानत है, समय पर वह वापिस लेगा, शरीर को बदलेगा। उसको अधिकार है कि वह इसको सजाता भी है और फिर इसको पकाता भी है।

फलों को रस देकर अच्छी तरह सुन्दर बनाता है, पकाता है। अब उस फल को देखकर आश्चर्य होता है कि यह फल कभी किस रूप में था और आज किस रूप में है।

व्यवस्थाऐं सारी उसके हाथ में हैं इसीलिए उसे कहा है कि वह सर्वोच्च सत्ता है, सर्वशक्तिमान है और हम समस्त लोग, समस्त ब्रह्माण्ड उसके नियन्त्रण में हैं और उसका नियंत्रण पूरी तरह से ऐसा अनोखा, मतलब पकड़ इतनी मज़बूत है, उस नियंत्रण से कोई बाहर नहीं हो सकता, पकड़ से कोई छूट नहीं सकता। आना और जाना उसकी व्यवस्था है। न हम अपनी खुशी से आए और न हम अपनी खुशी से जाऐंगे, व्यवस्था उसके हाथ में है। जब भेजा था आ गए, अब जब बुलायेगा जाना पड़ेगा। कितना भी अगर हम कहें कि- हे परमात्मा, एक सैकेंड का लाखवाँ हिस्सा और हमें जीने के लिए देना। लेकिन अगर यह कह दिया जाए कि अवधि समाप्त, धर्मशाला खाली करो अब। धर्मशाला का मालिक बोल देगा जो तुम्हें टेबल दी, कुर्सी दी, सोने के लिए बहुत सुन्दर-सा बिस्तर दिया, खाने-पीने के पदार्थ दिए, सेवा के लिए नौकर-चाकर दिए, सब छोड़ो और बाहर हो जाओ और यहीं तक नहीं चार्ज देना पड़ेगा तुम्हें। जितनी चीज़ें तुम्हें दी गई थीं सारी ही चीज़ें तुम्हें वापिस करनी हैं और सारी चीज़ें वापिस करेगा व्यक्ति, कुछ भी साथ नहीं ले जाता।

हाँ, जाते समय यह ज़रूर कोशिश करता है कि धर्मशाला के मालिक को

खुले हाथ दिखा देता है कि भाई नहीं ले जा रहा हूँ कुछ, मैं आपकी धर्मशाला में से कुछ नहीं ले जा रहा हूँ क्योंकि विधाता भी जानता है कि जब यह दुनिया में आया था हर चीज़ को पकड़ता था, मुट्ठी बन्द करता था ज़रूर कुछ न कुछ साथ लेकर जा रहा होगा, चोरी करने में कमी नहीं छोड़ी इसने। तो पूरे कपड़ों की तलाशी ली जाती है इसीलिए कपड़े भी ऐसे दिए गए, कफ़न में जेब नहीं होती है। साथ बाँध कर ले जाने की कोई गठरी नहीं है, कोई व्यवस्था नहीं है, एक ही कपड़ा डाल दिया ऊपर, खुले हाथ, जैसा आया था वैसा ही जा रहा है। आते हुए मुट्ठी बन्द थी, भाग्य साथ लेकर आया था, जाते हुए हाथ खुले दिखा दिए, नहीं ले जा सकता कुछ भी, न लें जा रहा हूँ, धर्मशाला छोड़ दी वैसे ही।

हाँ, एक चीज़ मन में रह जाती है, अगर धर्मशाला का मालिक कठोर न होता, थोड़ी देर हमें मालिक बनने ही देता तो कितना अच्छा होता। हमारे मन में कुछ भी भाव बना रहे लेकिन हमने उपयोग और उपभोग करने का अधिकार खो दिया। जितने समय की अवधि दी गई थी, उपयोग करना था।

व्यवस्था परमात्मा की अनोखी है। कितनी भी हम कोशिश करें और कितना भी ज़ोर लगाएं अगर हम यह चाहेंगे कि उसको पकड़ पाएं, देख पाऐं, कैसा है, किस तरह का है ? बस यहीं आकर वह बात समझने की है। कल के चिन्तन में हमने इसलिए आपसे कहा था वह अगोचर है, इन्द्रियाँ उसे नहीं पकड़ सकतीं, आँखें नहीं देख पाऐंगी, कान सुन नहीं पायेंगे, जीभ उसे चख नहीं पायेगी, वह हमारे किसी स्पर्श में आ नहीं पायेगा, उस महान् सुगन्ध को यह नाक सूँघ नहीं पायेगी, बुद्धि की पकड़ से, मन की पकड़ से, मन की कल्पनाओं से बहुत दूर। केवल अनुमान लगाने की व्यवस्थायें हैं, अनुमान भी साधारण चीज़ नहीं, अनुमान लगाइये।

इस पूरे ब्रह्माण्ड के अन्दर धरती भी एक गेंद की तरह घूम रही है, परिक्रमा करती है, अपनी धुरी पर भी घूमती है, समस्त नक्षत्र हैं, कितने सारे नक्षत्र, कल्पना नहीं कर सकते आप। एक आकाश गंगा में खरबों नक्षत्र, अनेकों सूर्य, गिनती नहीं गिनी जा सकती। आकाश गंगाऐं भी एक नहीं, अनेक हैं। कहाँ तक मनुष्य कल्पना करेगा। कितनी दूरी पर सूरज चमक रहा है? अगर सूरज का प्रकाश धरती तक आने में आठ मिनट अट्ठारह सैकेंड लगते हैं तो

इससे भी अन्दाज़ लगाइये कि प्रकाश की गति कितनी तीव्र है। एक सैकेंड में एक लाख छियासी हज़ार मील प्रकाश की गति है। एक सैकेंड में प्रकाश एक लाख छियासी हज़ार मील चलता है, तो कितनी दूरी से प्रकाश आ रहा है और आपको जब पता लगता है कि सूरज निकला तो आठ मिनट अट्ठारह सैकेंड हो चुके हैं। इतने ऊँचाई पर व्यवस्था की है परमात्मा ने लेकिन कमाल है उसका। कक्षा में जहाँ स्थापित किया है सूर्य को उससे अंगर दो-चार अंश नीचे आ जाए तो यह धरती और इस पर बसने वाला इन्सान, इन्सान नहीं रह पायेगा. जी नहीं पायेगा और अगर दो-चार अंश और ऊपर चला जाए तो भी नहीं जी पायेगा इन्सान। नीचे आ जाए, धरती जल जाए, इन्सान जल जाए और थोड़ा ऊपर चला जाए, बर्फ़ हो जाएगी चारों तरफ़।

चन्द्रमा जहाँ पर है अगर उससे थोड़ा-सा नीचे आ जाए तो जब चन्द्रमा अपनी सम्पूर्णता पर आता है समुद्र का क्या हाल होता है इतना ज्वार आऐगा. ऐसा उछलता है, कुछ दिन पहले आप समुद्र के किनारे खड़े हों और जिस समय ज्वार आता है समुद्र के अन्दर बड़े-बड़े जहाज, हालत ही अलग हो जाती है और बाद में ज्वार के बाद भाटा आता है फिर उतार होता है।

परमात्मा ने हर चीज़ की व्यवस्था बाँधी है, चन्द्रमा के माध्यम से फलों में रस आता है, सूरज के माध्यम से पकता है, सूरज ऊष्मा भी देता है लेकिन साथ में प्रकाश रास्ते भी दिखाता है। लेकिन सूरज में भी प्रकाश किसकी व्यवस्था से है? उस परब्रह्म की व्यवस्था में जितना सोचते जाऐंगे आश्चर्य होगा।

अगर मैं आपसे यह बताता हूँ कि प्रकाश की गति एक सैंकेड में एक लाख 86 हज़ार मील है तो आप सोचिए कि यह जो हमारी आकाश गंगा है, गैलेक्सी है, जिसमें बहुत सारे सूरज हैं, नक्षत्र हैं, इसका जो व्यास है, परिधि, इसका जो गोल घेरा है, जैसे किसी एक चीज़ को मोटी चीज़ का डाया आप नापते हैं न गोलाई-एक लाख प्रकाश वर्ष माना जाता है और प्रकाश वर्ष की अगर आप गणना करें कितनी गति से, कितनी तेज़ी से प्रकाश चला और एक साल में कितनी दूरी पर पहुँचेगा, इसकी भी व्यवस्थाऐं हमारे लोगों ने कहना चाहिए हमारे देश के या विदेशों में बैठे हुए जो भी गणना करने वाले वैज्ञानिक लोग हैं उन लोगों ने जितने ढंग से प्रकाश को नाप के बताया है यह अनुमान

प्रमाण है विज्ञान की यह सही कसौटियाँ हैं जिन पर ध्यान देने से एकदम आश्चर्य लगेगा। एक प्रकाश वर्ष में छः मिलियन मील, आप मानेंगे या ऐसे कह लीजिए 58 खरब, (एक अरब में सौ अरब होते हैं) तो 58 खरब में पैंसठ लाख 69 करोड़ साठ लाख मील को एक प्रकाश वर्ष कहते हैं और एक लाख प्रकाश वर्ष लग जाए इस आकाश गंगा की मोटाई को नापने के लिए उसकी परिधि को नापने के लिए। कितनी आकाश गंगाएं हैं इसकी गणना विज्ञान नहीं कर पाया। कितने सारे सूर्य हैं, कितनी सारी पृथ्वी हैं, इसकी गणना नहीं हो पाई है, न मनुष्य कर पायेगा। लाखों करोड़ों आकाश-गंगाऐं और उनमें भी अपनी गति हैं। भयंकर गति के साथ क्योंकि आकाश में जो भी चीज़ ठहरी है तो गति के माध्यम से।

तो इस समस्त को परब्रह्म कहा गया है अर्थात्, परब्रह्म परमेश्वर ही समस्त ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर और अपनी व्यवस्था में रखे हुए है। हमारी सारी कल्पनाऐं थक जाऐंगी। मनुष्य ने अभी तक जो भी बहुत कोशिश की है क्योंकि हमने देखने की कोशिश तो की है, इन्सान ने प्रयास किए हैं। यह कहा जा सकता है कि दो मिलियन प्रकाश वर्ष हम लोग अब तक देख पाएं हैं। मतलब इतनी दूरी तक मनुष्य जा पाया है और जो मैंने गणना आपको बताई उतनी दूरी तक इन्सान नहीं देख पा रहा है और भविष्य में अगर बहुत कोशिशें हुई, दूरबीनें बहुत अच्छी हुई, यन्त्र बहुत बढ़िया बने तो यही हो सकता है कि इससे दस गुणा बीस गुणा आगे देख लेगा। लेकिन जहाँ करोड़ों, अरबों, खरबों की बात हो रही हो और वह भी मनुष्य ने अपनी गणना का आधार रख कर के यहाँ तक पहुँच पाया है, बल्कि मैं तो यह कहूँगा एक स्थिति ऐसी आ जाएगी की जहाँ हमारी गिनती समाप्त हो जाएगी और इन्सान कहेगा कि यहाँ के बाद आगे हमारी गिनने की व्यवस्था ही नहीं है।

इसीलिए यही कह सकते हैं कि तू अनन्त है और तेरी महिमा भी अनन्त है, हम तेरा पार नहीं पा सकते। यहाँ आकर उपनिषदों की भाषा में नेति ही कहना पड़ेगा, इतना ही नहीं है यह। उसे कहा गया है वह अक्षर परब्रह्म है।

अर्जुन ने पूछा था - ब्रह्म क्या है ? तो भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया - जो अक्षर है, क्षर नहीं है, नष्ट होने वाला नहीं है, सदा से जो है, सदा रहेगा, जो सर्वोच्च सत्ता है, वही अविनाशी तत्त्व, परम ब्रह्म कहलाता है।

दूसरा प्रश्न - *किमध्यात्मं*, अध्यात्म क्या है ? अधिआत्म। एक शब्द है न आध्यात्मिक, एक है भौतिक। भौतिक कहा जाता है जो भूतों से अर्थात् नश्वर पदार्थों से जो बना है। पदार्थों से बना हुआ जगत भौतिक कहलाएगा और जो आत्मा का क्षेत्र है, आत्मा का कार्य क्षेत्र जो भी है उसको हम अध्यात्म कहेंगे। कोई आदमी आध्यात्मिक है तो उसका मतलब है आत्मा सम्बन्धी विज्ञान क्षेत्र से जुड़ गया है। आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से परब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए जो व्यक्ति एक व्यवस्था से जुड़ गया है, उस व्यक्ति को हम आध्यात्मिक पुरूष कहेंगे। लेकिन यहाँ कहा गया है अध्यात्म क्या है?

भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया - *स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते* । स्वयं अपने आपको प्रकट करना, आत्मा का यही अध्यात्म है अर्थात् जीवों का होना, संसार में अपने स्वरूप को प्रकट करना, आत्मा, शरीर को जो धारण करती है, शरीर का जो स्वामी है, जो उपभोक्ता है, जो भोग करने वाला इस शरीर में बैठा हुआ है, वही अध्यात्म है और कहा गया है आत्मा ही स्वभाव है, स्वयं से अपने को प्रकट कर रहा है।

दूसरे ढंग से हम कहें - शरीर में आत्मा अपने आपको कैसे प्रकट करती है? उपनिषदों ने अलग ढंग से समझाया, दर्शन ने अलग ढंग से समझाया। तो दर्शन की भाषा में हम कहें - इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख, *ज्ञानानि आत्मनोलिंगम्* आत्मा का चिह्न है वह शरीर में आ गया है। तो जिसके आने से शरीर में इच्छा पैदा हो, किसी चीज़ को पाने की कामना, किसी से दूर भागने की इच्छा, प्रयत्न, कुछ पाने के लिए प्रयत्नशील होना, कर्म करना, सुख-दुःख की अनुभूति, जानने की इच्छा, यह चिह्न जिसके माध्यम से प्रकट हो रहे हैं, वह है आत्मा। उसी के माध्यम से शरीर में प्राणों की गति चलती है। प्राणों के माध्यम से इच्छाओं का विस्तार होता है, इच्छाओं के केन्द्र से ही हम लोग निर्णय करते हैं अच्छे बुरे का और उसी आधार पर संसार के चक्र में बँधते हैं क्योंकि दर्शन की परिभाषा में हम लोग चल रहे हैं और थोड़ी गहराई में जाना ज़रूरी है।

उदाहरण देता हूँ - किसी एक व्यक्ति ने, किसी कहानी लिखने वाले ने, किसी सम्पादक को पत्र लिखा - 'आपकी पत्रिका में छपने वाली जितनी भी कहानियाँ हैं, न इनका सिर है, न इनका पैर है। आप ढंग की कहानियाँ छापें

और अगर आपको नहीं ऐसी कहानियाँ मिलती तो मैं कहानी भेज रहा हूँ, मेरी कहानी में सिर और पैर दोनों मिलेगा आपको।'

कहानी लिख कर भेज दी; लौटती डाक से कहानी वापिस मिल गई लेखक को क्योंकि सम्पादक ने लिखा - 'आपकी कहानी में सिर भी है, पैर भी है, प्राण नहीं है और हमें प्राण वाली कहानी चाहिए, मुर्दा कहानी नहीं।

दूसरे ढंग से हम कहें मुर्दे के पाँव भी होते हैं, सिर भी होता है लेकिन बेकाम, किसी काम का नहीं और अगर मुर्दे में प्राण हैं तो फिर सिर भी काम का और पाँव भी काम के। किसी भी शरीर में जो प्राण हैं और प्राण का आधार आत्मा है उसके कारण इस शरीर की कीमत है नहीं तो सब कुछ बेकार। यह अंग प्रत्यंग होना भी बेकार है। प्राण हैं, अब तो वह क्या करते हैं, ऊर्जा शक्ति को इच्छाओं की तरफ खींचते हैं, इच्छाऐं ऊर्जा शक्ति को प्रयोग करती हैं। इच्छा का जो केन्द्र हैं, उसमें तेल प्राणी का लगता है, उपयोग करते हैं हम संसार में, धीरे-धीरे हम संसार में उलझते जाते हैं। कुछ चीज़ों को पाने की कामना, कुछ इच्छाऐं हम कर रहे हैं पाने के लिए, कुछ इच्छाऐं हम कर रहे हैं दूर भागने के लिए, दुःख से दूर भागना चाहते हैं सुख के करीब आना चाहते हैं: सुविधाओं के लिए दौड़ लगाना चाहते हैं; असुविधाओं के लिए, दुविधाओं के लिए, दूर भागना चाहते हैं, दुविधा नहीं आनी चाहिए। हे भगवान, सुख शांति देना लेकिन एक कृपा रखना - दुविधा बिल्कुल नहीं हो, पीड़ा बिल्कुल नहीं हो, क्लेश बिल्कुल नहीं हो, अशांति बिल्कुल नहीं हो, घर-परिवार देना, छोटा दो, बड़ा दो लेकिन सुख शांति रहनी चाहिए, तो कुछ पाना चाहते हैं, कुछ से दूर भागना चाहते हैं। यह आत्मा के कारण शरीर में गतिविधियाँ चलती हैं और राजा रूठ जाए नगरी से, चला जाए, नगरी सूनी।

अर्जुन ने पूछा- हे पुरूषोत्तम, कर्म क्या है? भगवान इसका भी उत्तर देते हैं -

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसञ्ज्ञितः।

यह जो सारे संसार में निर्माण के कार्य हो रहे हैं, जिस व्यवस्था से हो रहे हैं उसे कर्म कहते हैं। समूचे विश्व का विकास क्रम ही कर्म है। आनन्द की बात देखिए, संसार में लगातार विकास का क्रम चल रहा है। बीज बोया आपने गमले में, पानी डालते रहे। एक दिन आपने देखा, आपने तो कुछ किया ही

नहीं सिर्फ़ बीज बो दिया, पानी डाल दिया अब इसके बाद आपका कार्य समाप्त, विकास का क्रम जो जिस व्यवस्था से चल रहा है उसने अपना काम करना शुरू कर दिया है, वहाँ से अँकुर धीरे-धीरे बाहर निकल आया है, एक सुई की नोंक बाहर दिखाई देती है। थोड़ा ध्यान से आपने देखा तो उसके अन्दर से एक पत्ती बाहर आ गई, नोंक फिर ऊपर उठ गई, दूसरी पत्ती निकल आई। धीरे-धीरे आप देखते हैं, वह तो पौधा बनता जा रहा है। फिर आप देखते हैं कि एक दिन उस पौधे के सुन्दर-सुन्दर पत्तों के बीच एक कली मुस्कुराती हुई खिल रही है। अब आप बड़े ध्यान से देखते हैं इतने सुन्दर रंगों से युक्त एक फूल जन्म लेने लगा है। उसकी पत्तियों को कैसे लपेट कर कली के रूप में संजोया है। विकास का क्रम फिर आगे बढ़ता है, एक-दो पत्तियाँ नीचे फैल जाती हैं, कली ऊपर की तरफ उठ रही है। कुछ दिनों के बाद आप देखते हैं वह पूरा फूल खिला हुआ है।

कहीं पहाड़ी, कोई पहाड़ की तलहटी, किसी भी तरह का वहाँ शोर नहीं, वहाँ रहने वाला कोई एक संवेदनशील आदमी रात्रि में जब सोता है और अचानक आँख खुल जाए तो कहीं बाँस जंगल के अन्दर बादल गरजने से जो अंकुरित हो रहा हो, दो-दो इंच लगातार बढ़ता है। किसी खेत में ककड़ियाँ रात में बढ़ रही हों, माली लोग कहते हैं रात में उनके बढ़ने की आवाज़े आती हैं, अँकुरन जो हो रहा है आवाज़ें आ रही हैं। अगर संवेदनशील कान हैं आपके, आपको पता लगेगा कि किसी तरह विकास हो रहा है, अँधेरे में उसकी संरचना चल रही है।

मनुष्य जो भी कुछ बनाता है, प्रकाश में बैठकर बनाता है लेकिन उस मालिक का कमाल यही है अँधेरी कोठरी में निर्माण करता है, माता के गर्भ में अँधेरा है और वहीं बैठा हुआ वह चित्रकार मनुष्य के शरीर की सँरचना करता है, धीरे-धीरे शरीर बढ़ता चला जाता है और जैसे हम धरती पर आ जाते हैं, जन्म लेते हैं, विकास का क्रम कहीं रूकता नहीं, भगवान कृष्ण ने कहा इसे ही कर्म कहा गया है। यह कर्म है जो लगातार चल रहा है।

सामान्यत: कर्म जो हम लोग करते हैं वह कर्म नहीं है। हम लोग भी दो तरह के कर्म करते हैं कुछ उल्लासकारी कार्य करेंगे, कुछ कल्याणकारी कार्य करेंगे। अपने उल्लास के लिए, अपनी प्रसन्नता के लिए जो कार्य करते हैं वह

उल्लासकारी कहलायेंगे और जो कल्याण के लिए किए जायेंगे कर्म उनको कल्याणकारी कार्य कहेंगे लेकिन दुर्भाग्यजनक स्थिति देखिए कुछ लोग सृजन नहीं करते, उनकी रूचियाँ विध्वंश होती हैं। बया छोटा-सा पक्षी है, बड़े प्यार से अपना घोंसला बनाता है, कहाँ-कहाँ से किस-किस प्रकार से छोटा-सा पक्षी तिनके लेकर के आयेगा और तिनके ही नहीं, तिनकों से अपनी चोंच से छील कर धागे जैसी चीज़ बनाता है, उससे अपने घोंसले को बुनता है। तो वह तो सृजन कर रहा है लेकिन कभी-कभी बन्दर भी पहुँच जाता है, एक झटके में ही उठाकर सारा तोड़ देगा।

जीवन में यह विचित्रताऐं हैं। एक तरफ वह लोग हैं जो सृजन कर रहे हैं, एक वह लोग हैं जो विध्वंस कर रहे हैं। हम लोग दो तरह के कर्मों को कर रहे हैं। जो अच्छे और सच्चे लोग हैं वह उल्लासकारी कार्य करेंगे या कल्याणकारी कार्य करेंगे या दोनों का मिलाकर के करेंगे। लेकिन कुछ लोग हैं जिनका कार्य केवल विनाश और विध्वंस करने का है। विज्ञान के व्यक्ताओं ने अगर सृजन किया तो मनुष्य के लिए मोटरयान, वाष्पयान, रेलगाड़ियाँ, वायुयान और जलयान, जलपोत तरह-तरह के आविष्कार किये ताकि इंसान सुख से रह सके, इस भौतिक जगत को सेवक बनाकर मनुष्य के लिए विज्ञान ने खड़ा कर दिया।

आपको गर्मी लगती है। आप चाहते हैं आपके ऊपर कोई हवा करे तो किसी को नौकर आप बनाएं, विज्ञान ने यह किया कि नौकर बनाने की व्यवस्था ऐसी कर दी, किसी आदमी को नौकर नहीं बनाना यही भौतिक पदार्थ आपकी सेवा में उपस्थित हो गए, आपने सिर्फ़ बटन दबाना है, पंखा चलेगा आपके ऊपर। आप चाहते हैं कि आपका नौकर आपके लिए प्रकाश लेकर लैम्प लेकर खड़ा रहे, जहाँ आपको चाहिए वहीं लाईट होगी, आपके ऊपर। सारी व्यवस्थाओं को इस तरह से रख दिया कि आपके लिए पूर्ण सुविधाऐं हैं लेकिन यह तो एक तरह के लोग थे जिन्होंने सृजन किया। चाहे एडीसन हैं या आईन्सटीन हैं, अलग-अलग तरह की खोजें कर के संसार के लिए कुछ दिया। इनको हम भौतिक ऋषि कहेंगे। यह भी पूजनीय लोग हैं, पूरे समाज पर ही नहीं, पूरे विश्व पर इनका ऋण है।

लेकिन कुछ वह भी लोग हैं जिन्होंने विनाशकारी चीजें बनानी शुरू कर दीं। वाईरस तरह-तरह के इकट्ठे किए जा रहे हैं, इन्सान को नष्ट करने के

लिए इनका प्रयोग करेंगे, कुछ वैज्ञानिक लगे हुए हैं। हैज़े के, पेचिश के, टी.बी. के और न जाने कितने-किने घातक बीमारियों के वाईरस इकट्ठे करके उन्हें तैयार किया जा रहा है कि मनुष्य को किस तरह से सताया जाए। युद्ध हो जाए तो यह एकदम डाल दिया जाए, पूरे के पूरे लोग नष्ट किए जा सकें इतनी कोशिशें की हैं विनाशक व्यक्ति ने कि धरती पर भवन तो बने रह जाएं भवनों में बैठा हुआ इन्सान मर जाए।

जो इन्सान एक तितली के सुन्दर पंखों को निर्माण नहीं कर सकता उसे इन रंग-बिरंगे उड़ते हुए सुन्दर, मीठी आवाज़ में बोलने वाले, चहचहाने वाले पक्षियों का शिकार करने का अधिकार किसने दे दिया? जिन फूलों को हम डाली पर खिला नहीं सकते तो उनको तोड़ने का अधिकार हमको किसने दे दिया? हमें यह अधिकार नहीं है। यह तो कुछ विनाशक लोग हैं जो बिगाड़ने का काम करता है, उसे शैतान कहते हैं। कुछ सम्प्रदायों में शैतान की कल्पना है। जहाँ यह कहा गया कि शैतान का कार्य बिगाड़ने का, ग़लत सलाह देने का है।

हमारे यहाँ कहा जाता है कि मनुष्य के अन्दर आसुरी वृत्ति जागती है, तामसिकता से युक्त हो जाता है, उस समय में उसकी स्थिति ऐसी हो जाएगी, वह हर चीज़ में ग़लत चीज़ ढूँढेगा, वह अपने प्रतिपक्षी को सताने के लिए घाव देगा, घाव देने के बाद भी चैन से नहीं बैठेगा, उसके बाद उसकी पूरी कोशिश होगी कि अभी आनन्द नहीं आया। उसे किसी को सताने में आनन्द आता है। अब वह कहता है कि घाव के ऊपर नमक छिड़कने में और भी आनन्द है, तड़फते हुए देखें।

रूस में किसी समय ज़ार का शासन था। ऐतिहासिक लोग जिस तरह से व्यवस्थाऐं बताते हैं और जैसे इतिहास में कुछ विवरण लिखे हैं, ऐसी भी शासक रहे। निर्माण करने वाला राज मिस्त्री भवन बनाता हुआ, ऊपर निर्माण करता हुआ, तीसरी-चौथी मंज़िल पर बैठा हुआ है। इधर शासक अपने परिवार को मज़ा दिखाने के लिए हाथ में राईफ़ल लेता है। बन्दूक हाथ में लेकर कहता है कि देखना कितना आनन्द आएगा। अब बन्दूक़ चलाई। अब ऊपर से राज मिस्त्री को गोली लगी। ऊपर से बेचारा तड़फता हुआ नीचे गिरा और यह ताली बजाकर हँसते हैं - 'देखो कितना आनन्द आया।' यह शैतान की हँसी है।

रोम जल रहा है, तीन हज़ार लोगों को जलाकर नीरो शासक दूर अपनी वाईलिन बजाता है। तो ऐसे लोग जो संसार में विनाश कर रहे हैं, हर चीज़ को बिगाड़ने में जिनको अच्छा लगता है वह आसुरी वृत्ति से जुड़े हुए हैं, इसे कोई कर्म नहीं कहा जाएगा, विनाशक कर्म है। घोर अँधकार में पड़े रहकर सदैव दुःख भोगने के लिए वह लोग अपने लिए व्यवस्था बनाते हैं।

हमारी कोशिश होनी चाहिए संसार में हम कल्याणकारी कार्यों को करने के लिए लगें। केवल उल्लासकारी कार्यों की तरफ़ ही प्रयत्नशील न हों। अगर दान पुण्य आप करेंगे, किसी का सहयोग करेंगे उसको भी उल्लासकारी कार्य कहा गया है, इससे आपको उल्लास मिलेगा, प्रसन्नता मिलेगी। बाद में भी आत्मा दूसरा शरीर ग्रहण करेगी तो भी उल्लास और सुख मिलेगा। लेकिन जब आप आत्मसाधना में लगेंगे, अपने को साधेंगे, अपनी बुरी आदतों पर नियंत्रण करेंगे, यह कल्याणकारी कार्य है। यह इस लोक में भी कल्याण देगा और परलोक में भी आपका कल्याण करेगा। इसीलिए इसको कल्याणकारी कार्य कहा गया है। कल्याणकारी कार्यों को अपने जीवन का अंग बना लिया जाए।

भगवान ने कहा - सृष्टि की सृजना और विकास का जो क्रम चलता है उसे कर्म कहा गया है।

अर्जुन ने फिर पूछा – *अधियज्ञ: कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्धुसूदन।* हे मधुसूदन, हे कृष्ण, अब यह पूछना चाहता हूँ – अधियज्ञ क्या है जो इस देह में है? भगवान ने कहा – इस देह में जो अन्तर्यामी स्वरूप है उसे अधियज्ञ कहा गया है अर्थात् – *अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर* इस शरीर के अन्दर मैं ही अन्तर्यामी रूप अधियज्ञ हूँ। लेकिन प्रश्न तो वह भी चल रहा था। बताया गया, ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या है? अब प्रश्न यह भी है कि यह भौतिक जगत क्या है? इसे अधिभूत कहा है? भगवान ने इसको भी समझाया – *अधिभूत क्षरो भाव:* जो संसार में नष्ट होने वाला पदार्थ है उसे अधिभूत कहा गया है। पाँच भूतों से संसार बना है। आप सब जानते हैं अग्नि, जल, वायु आदि यह जो पाँच भूत हैं उन सबसे यह संसार बना है। तो यह इन सबका सम्भात है, इन सब चीज़ों का जोड़ है। यह एक कम्पोज़िशन है और उस पाँच चीज़ों को जहाँ जोड़ दिया गया है, यह जो प्रकृति का विकृत रूप अर्थात् बना हुआ रूप दिखाई देता है उसे अधिभूत कहा गया है, सृष्टि की संरचना में जो परिवर्तन का सिद्धान्त है।

भगवान के शब्दों में *अधिभूत क्षरो भाव:*। अधिभूत उसे कहेंगे जो नष्ट होने वाला भाव है। अब हम यहाँ ऐसे समझें जो सदा है, सर्वोच्च सत्ता है, वह परब्रह्म है। आत्मा वह भाव है जो इस शरीर में इस शरीर का उपभोक्ता है। कर्म यह है कि जो विकास चल रहा है सृष्टि में और अधिभूत यह है जो भौतिक पदार्थ इस संसार में बन रहे हैं और बिगड़ रहे हैं। यह हम साधारण और सीधी भाषा में अनुवाद कर रहे हैं।

आप कहते हैं कि अगर पहले ही ऐसे कहते तो कितना अच्छा था। तो फिर उसका मतलब होता है कि अगर फिर वह दार्शनिक पक्ष है, नहीं समझा जा सकता था क्योंकि शास्त्रों के दार्शनिक पक्ष को भी समझना बहुत आवश्यक है। तो ऐसे समझिए नष्ट होने वाले पदार्थ ही अधिभूत हैं। जो भी सृजी गई, सृजनशील बनाई गइ वस्तुऐं हैं उनका आधार परिवर्तनशील प्रकृति है।

यह भी एक दार्शनिक पक्ष आपके सामने रख रहा हूँ। सृजी गई समस्त वस्तुओं का आधार परिवर्तनशील प्रकृति है, समझिए- आपने वस्त्र पहनें, वस्त्र के धागों का समूह, धागे कपास से आए, कपास पौधे में फूल बनकर खिला और कपास का पौधा बीज से अंकुरित हुआ।

बीज ने वह धागे कहाँ से खींचे तो दूसरे ढंग से समझिए- आपका कपड़ा ज़मीन पर गिरा, ज़मीन पर गिरकर गल गया, गलकर उसके धागे ज़मीन ने अपनी तरफ़ खींच लिए, खींच कर उसके जो अंश हैं, अणु हैं, परमाणु हैं ज़मीन के अन्दर रख लिए। अब जब बीज वहाँ बोया गया, कपास का बीज जब अंकुरित हुआ, उस बीज ने पौधे का रूप धारण किया। अब पौधा उसी अंशों को जड़ों के माध्यम से ज़मीन से खींचकर फूल के रूप में खिलाता है वही फूल धागे बनकर, कपड़ा बनकर आपके तन पर आता है। यह एक व्यवस्था है क्योंकि वैज्ञानिक और दार्शनिक पृष्ठिभूमि में अगर हम विचार करते हैं कोई नष्ट नहीं होती, रूप बदलती है, विज्ञान भी इसको मानता है. सिर्फ़ परिवर्तन ही है।

परिवर्तन के सिद्धान्त को ही आप कुछ भी नाम दे दीजिए, मृत्यु है, जन्म है, एक परिवर्तन होगा शरीर छूटेगा, एक और परिवर्तन होगा कि शरीर फिर से धारण किया जाएगा, फिर परिवर्तन होगा- किशोरावस्था तक बच्चे का

विकास, किशोरावस्था से यौवन की तरफ़ बढ़ना यह एक परिवर्तन है, यौवन से बुढ़ापे की ओर बढ़ना यह एक परिवर्तन, बुढ़ापा फिर मृत्यु की तरफ़ बढ़ जाए तो यह एक परिवर्तन और फिर वह शरीर धारण कर ले तो यह एक परिवर्तन। परिवर्तनशील है संसार।

बौद्ध दर्शन के हिसाब से यदि हम विचार करें तो उनका कहना है कि जो प्रतिक्षण बदल रहा है वही प्रकृति का संघात यह संसार है अर्थात् एक ही संसार में, एक ही क्षण में जब आप श्वास लेते हैं दुबारा जब श्वास लेंगे संसार बदला हुआ होगा। उनके अनुसार एक ही नदी में दुबारा जब आप डुबकी लगाते हैं, नदी बदल चुकी होती है, पहला पानी आगे बह गया, जब आपने डुबकी लगाई थी तब पानी और था, जब दुबारा डुबकी लगाई तो पानी और हो गया क्योंकि पानी आगे चल रहा है। ऐसे ही जब आपने श्वास लिया था तो संसार उस समय कुछ था और अब दुबारा श्वास लिया तो संसार इतनी देर में काफी कुछ बदल गया, इस बदलाव का नाम ही संसार है, इसी को जगत कहते हैं, यह लगातार परिवर्तन चल रहा है। घटनाओं का प्रवाह है संसार। घटनाओं पर घटनाऐं लगातार चल रही हैं।

लेकिन जो नहीं बदल रहा वह है आत्मा और जो बदल रहा है वह है संसार। कहा गया - *अधिभूतं क्षरो भाव:* जो नष्ट होने वाला है वही अधिभूत है। *पुरूश्चाधिदैवतम्* - अब पूछा गया कि अधिदैव किसे कहा गया? सृष्टि की संरचना जब होती है तो जो सृजन का कार्य करता है। उस परब्रह्म की ही व्यवस्था के माध्यम से ब्रह्मजी संसार की सृजना करते हैं। उस सृजन को हम संसार में व्यवस्थित रूप में देखते हैं। व्यवस्था कैसी की गई? मनुष्य की उत्पत्ति के बाद में, पहले ब्रह्माण्ड - नौ ग्रहों की पूरी संरचना, धरती बनेगी, जलधाराऐं बहेंगी, उसके साथ फल-फूल, समस्त पदार्थ, खाद्य-पदार्थ पूरी व्यवस्था बना दी जाए तब मनुष्य की रचना होती है।

मां के पास दूध पहले भेजा जाता है, बच्चे का जन्म बाद में होता है। भोजन पहले भेजा गया और जन्म बाद में। यात्री को दुनिया में भेजने से पहले जहाँ जाकर उसने ठहरना है उसका सामान, उसका भोजन, उसकी व्यवस्था पहले से ही करके रखी गई; बाद में यात्री को भेजा गया, ऐसी व्यवस्था ऐसे से क्रम रखा। सूरज बना, दीपक पहले रख दिया, इधर धरती बन गई, चन्द्रमा

भी बन गया। धरती ठण्डी होती जा रही है अब उसमें धरती की संरचना इ-
रूप में हुई विकास होने लगा, वनस्पतियों का, औषधियों का। इस विकास के
बाद फिर जीवों की उत्पत्ति है तो कहा अधिदैव ब्रह्मा जी हैं इसकी अग-
व्याख्या हम करते हैं तो अधिक विस्तार होगा।

सार में केवल इतना ही समझिए सृष्टि का आदिक्रम जिसके माध्यम =
चलता है वह ब्रह्मा जी हैं; उन्हें अधिदैव कहा गया है और उसे आप दैवी तत्वों
का विश्वात्मा कहिए। शरीर की आत्मा आप हैं, समस्त आत्मा परमात्मा है। हम
आत्मा वह परम आत्मा, बहुत बड़ा। वेदों में ऐसा कहा गया -

एक वृक्ष है प्रकृति का, संसार का, इस पर दो पक्षी हैं। द्वासुपर्णो - सुन्दर
पंख वाले दो पक्षी और दोनों ही दिखाई दे रहे हैं इस संसार के वृक्ष पर। एक
सुपर्ण है, बहुत सुन्दर है, प्रकाश फैल रहा है उस पक्षी का। एक छोटा पक्षी
और बैठा हुआ है जो फलों को खा रहा है। वह जो फलों को खा रहा है, भोग
कर रहा वह उपभोक्ता जो ग्राहक बना हुआ है वह उन फलों को खाने वाला
यह जीवात्मा है और जो व्यवस्था देख रहा है, जिसने यह सब निर्माण किया
है, वह वाला जो पक्षी है वह परम आत्मा है, वह सारे संसार की व्यवस्था को
देख रहा है। व्यवस्था कितनी अनोखी है। कहा गया है यह कि सही चलेगा,
बन्धनमुक्त रहेगा, आनन्द ले, थोड़ा-सा भी ग़लत हो गया, बन्धन में आ
जाएगा। तो विश्वात्मा परमात्मा है, सृष्टि का आदिक्रम ब्रह्मा जी के माध्यम से
सृजना के रूप में चलता है उसे अधिदेव कहा गया है।

आगे भगवान कहते हैं यह जो मनुष्य की देह है इसमें *अधियज्ञोऽहमेवात्र
देहे* मनुष्य के शरीर में अधियज्ञ मैं ही हूँ, अन्तर्यामी मैं ही हूँ। यह भी समझने
योग्य शब्द है बड़ा प्यारा शब्द है। परमात्मा, अन्तर्यामी होकर हमारे शरीर में
विद्यमान है, सब जानता है, त्रिकाल दर्शी है वह, सर्वज्ञ है, अन्तर्यामी है।

****

गीता के जिस अध्याय पर हम लोग विचार कर रहे हैं यह आठवां अध्याय
बड़ा महत्वपूर्ण है। बड़े ही सुन्दर लेकिन गूढ़ रहस्यों से भरे हुए प्रश्नों के उत्तर
भगवान कृष्ण ने दिए। जब यह पूछा गया कि शरीर को छोड़ने के बाद कोई
भी जीव इस संसार में आपको कैसे प्राप्त कर सकता है? अन्तिम समय में
उसको कैसे अनुभूति हो सकती है? यह बात सदैव विचारणीय है कि आख़िर

में कोई व्यक्ति प्रायश्चित करे मृत्यु शैय्या पर लेट कर, वह कहे मेरे द्वारा बड़ी ग़लतियां हुईं अब तुम माफ़ करो, यह प्रायश्चित किसी काम का नहीं। गाड़ी के निकलने के बाद कोई आदमी कहे कि अब मैं ग़लती नहीं करूँगा, ठीक टाइम से पहुँच जाऊँगा, गाड़ी तू रुक, तब कोई गाड़ी रुकती नहीं है। समय हाथ से निकल जाने के बाद कोई व्यक्ति कहे कि मैंने तेरी क़द्र नहीं की अब तू मुझे मौक़ा दे। ऐसा कभी सम्भव नहीं है कि समय की रफ़्तार रुक जाये और मनुष्य को अवसर मिल जाये। इसीलिए यह बात भी विचारणीय है कि जीवन में निरन्तर ही व्यक्ति को प्रायश्चित के द्वारा आत्म-शोधन करना चाहिए। संकल्पों के माध्यम से अपने आपको ऊँचा उठाने का प्रयास करना चाहिए। समझाया गया :-

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

परम पुरुष को प्राप्त करने के लिए निरन्तर अभ्यास करना चाहिए - *अभ्यासयोगयुक्तेन* - योग युक्त हो निरन्तर का अभ्यास करें। चित्त को चलायमान न होनें दें। इसी अवस्था को निरन्तर अभ्यास के द्वारा जो सिद्ध कर लेता है उस व्यक्ति की साधना सफल होती है। इसी के लगातार अभ्यास के द्वारा व्यक्ति अपने परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

थोड़ा-सा विचार कीजिए। हमारी जो भी आदतें बनती हैं वह किसी चीज़ को बार-बार अभ्यास में लाने से पक जाती हैं। फिर हम कितना भी सोचें, कितनी भी ताक़त लगाएं, हम अपनी आदतों के अनुरूप चलने लग जाते हैं। कहा गया है कि अन्तःकरण पर पड़ी हुई अभ्यास की लकीरें, किसी भी चीज़ को बार-बार अभ्यास करने से, उसके अनुसार हमारा स्वभाव बन गया तो हमारा स्वभाव अगर अच्छे अभ्यास से भक्तिमय बन जाये तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि परम प्रभु की प्राप्ति में कोई बाधा आये। मन चंचल है, अभ्यास से ही रोकना पड़ेगा। आदतें हमें अपनी तरफ़ खींचती हैं, अभ्यास से ही हमें उनका सुधार करना पड़ेगा।

दूसरी बात है योग-युक्त होना चाहिए। चाहे आप ज्ञान-योगी हैं, भक्ति-योगी हैं, सन्यास-योगी हैं, कर्मयोगी हैं। यह सभी मार्ग जाते उसी की तरफ़ हैं। सबसे महत्वपूर्ण चीज़ है कि हम योगी होकर जिएं, योगी होने के लिए आवश्यक

बात है कि हम सन्तुलित जीवन जीएं। अपने जीवन को मर्यादापूर्ण बनायें। इस बात का पूरा ध्यान रखें कि मन का सन्तुलन बिगड़ने न पाये। हर दिन हर पल आपके मन की तराजू हिलती-डुलती है, परीक्षा हर समय होती है। मन की तराजू की सुई अगर सही जगह पर है, तब आप अपने आपे में होते हैं। आपे में होने का मतलब है स्व+स्थ- स्वस्थ हो जाना, स्व में स्थित हो जाना, अपने आपे में आ जाना। इस स्थिति में कहा जाएगा कि आदमी स्वस्थ है।

स्वस्थ रहना बहुत ज़रूरी है। जब आप स्वस्थ होंगे स्वाभाविक रूप से आपके अन्दर शान्ति होगी। स्वस्थ व्यक्ति की तीन ही तो पहचान बताई गई हैं - *पेट नरम, पांव गरम, सिर ठण्डा डाक्टर आए तो मारो डण्डा* कि फिर डाक्टर की ज़रूरत नहीं है। तीनों पहचान अलग ढंग से माथे की शीतलता, चेहरे की प्रसन्नता, शरीर के अंग प्रत्यंगों में कर्म करने का उत्साह। यह तीनों चीज़ें अगर आपके साथ हैं तो आप अपने आप में स्थित हैं। ऐसी स्थिति में आपका कर्म करना आनन्दप्रद कर्म हो जायेगा। जिस आदमी में सन्तुलन है उसकी सहनशक्ति भी बढ़ी रहती है। उद्विग्न आदमी में सहनशक्ति होती ही नहीं है। जिस आदमी का सन्तुलन है निश्चित बात है वह व्यक्ति क्षमाशील होगा। जब तक आप सन्तुलन में हो, आप दूसरों को क्षमा करते रहोगे। बड़ी बात हुई या छोटी बात आप कहोगे कोई बात नहीं है।

योगयुक्त होने का मतलब है सन्तुलित होना, योगयुक्त होने का मतलब है सबमें समभाव देखना, योगयुक्त होने का मतलब है परमात्मा से युक्त होना। अभ्यास और योग से जुड़ा हुआ जो चित्त को चंचल न होने दे, जो व्यक्ति अपने मन को चंचल नहीं होने देता, ऐसा व्यक्ति निरन्तर चिन्तन के द्वारा अपने प्रभु को पाने में समर्थ होता है।

प्रभु के स्वरूप का भी वर्णन किया गया है -:

कविं पुराणमनुशासितार मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप मादित्ववर्णं तमसः परस्तात् ॥

परम प्रभु कवि हैं, क्रान्तदर्शी हैं। *पुराणम्* सदा से है, पुराना है, जो सदा से है, सदा था और सदा रहेगा। सब में परिवर्त्तन है, प्रभु में परिवर्त्तन नहीं है। पुराना है लेकिन बहुत सुन्दर है। वही फूल रोज़ खिलते हैं। गुलाब के वैसे ही

फूल हैं लेकिन हर रोज़ नये सौन्दर्य को लेकर आते हैं। वही सूरज है जो हर रोज़ निकलता रहा है लेकिन फिर भी उसके सौन्दर्य में कमी नहीं है। वही चन्द्रमा है सदियों से जो निकल रहा है लेकिन उसके सौन्दर्य में कोई कमी नहीं है। संसार की अन्य वस्तुओं में जो कुछ भी परिवर्त्तन देख रहे हैं यह परिवर्त्तन भी उसका सौन्दर्य है, लेकिन जिसमें कोई परिवर्त्तन ही नहीं है वह परमात्मा–सत्य है, शिव है, सुन्दर है। वह क्रान्तदर्शी कवि है।

यहाँ चिन्तनीय है – क्रान्तदर्शी अर्थात् सब कुछ जानता है। उससे बढ़कर जानने वाला कोई नहीं है। *अनुशासितारम्* – केवल मात्र वही शासन करता है, हम उसके शासन में बंधे हुए हैं। उसका हुक्म सब पर एक जैसा काम करता है, उसके परिवर्त्तन के सिद्धान्त सब पर एक जैसे हैं। कोई भी व्यक्ति अगर चाहे कि उसके सामने अपनी मन मानी कर लेगा तो वह नहीं कर सकता। पहाड़ की सात तहों के नीचे भी अगर कोई चीज़ रखी हुई है परिवर्त्तन का सिद्धान्त अपना काम वहाँ भी करेगा। बनना बिगड़ना जो नियम है संसार में परमात्मा का, वह सब पर एक जैसा काम कर रहा है। यह भगवान का शासन है। इसी शासन के अन्तर्गत हम लोग दुनिया में आते हैं, अपने कर्मों का भोग भोगते हैं। फिर एक दिन ऐसी स्थिति आती है हम चाहें न चाहें अगर उसने बुला लिया तो जाना पड़ेगा।

भगवान का एक अनुशासन और देखिए। जो भी हमने कर्म किए हैं उनका अच्छा बुरा दो तरह का फल हमारे सामने आता है। बुरा फल भोगने को कोई सामने नहीं आता कि हम दुःख भोगें। लेकिन कमाल यह है कि कर्म करने में तो अपने हाथ खुले छोड़ दिए उसने, फल भोगने की बारी जब आई तब हाथों को बांध दिया। अब हम कितनी भी कोशिश करें कर्म का फल भोगे बिना हम रह नहीं सकते। हर एक के सामने कर्म अपना रूप लेकर आता है। यह बात निश्चित है परमात्मा जब रुद्र बन जाता है रुला कर छोड़ता है, कितनी भी ताकत हम लोग लगाएं लेकिन जब वह रुलाने पर आता है, हर आँख में आँसू दिखाई देता है। जब कठोर बनता है तब उसकी कठोरता का फल भी सबको भोगना पड़ता है। बात बिल्कुल ऐसी ही है कि न्याय करने वाला न्यायाधीश बहुत अच्छा है, बहुत कृपालु है, जिसके ख़िलाफ़ पड़ गया उसे लगेगा कि बहुत कठोर है, निर्दयी हो गया है।

वह गुंजाइश छोड़ देता है कि तुम अगर सुधरने की स्थिति लाओ तो कुछ छूट देने का अधिकार व्यवस्था में रखा गया है। उसके अनुसार सज़ा थोड़ी-थोड़ी कम होती चली जायेगी। लेकिन विधाता का चमत्कार देखिए एक तरफ तो वह दण्ड देता है, दूसरी तरफ़ अपनी ओर आने वाले को ब्रह्म कवच देता है। एक ओर तो सज़ा दी, वर्षा दे दी, दूसरी तरफ़ कवच दिया, छतरी भी दे दी। थोड़ा भीगोगे और थोड़ा बचोगे भी। मतलब बीमार होने से बच जाओगे और अगर छाता हाथ में लेने से अगर बुद्धि ठीक हुई तो छाता हाथ में लेकर वर्षा का आनन्द भी ले सकोगे। अगर बुद्धि ठीक नहीं हुई, मन और मस्तिष्क ठीक काम नहीं कर रहा है तो फिर आप यही कहोगे कि दुःख की वर्षा हो रही है, छाता हाथ में होते हुए भी वर्षा के छींटे तो पड़ ही रहे हैं। अगर मन मस्तिष्क ठीक है तब यह धन्यवाद करोगे कि चारों ओर दुःख की वर्षा हो रही है लेकिन परमात्मा ने फिर भी मेरे हाथ में छाता दिया जिसे मैं संभाल के पकड़े रहूँ और बचा रहा हूँ। इसीलिए जो सन्त लोग थे या जिनके हृदय में भक्ति थी उन्होंने हमेशा यही कहा कि हमें इतना सुख नहीं चाहिए जो सुख में हम तेरा ध्यान न कर सकें। भगवान ठोकर लगा कर जगाना और दुःख के घोर समुद्र से हमें उबारना। हमें बीच में रख लेना तेरा ध्यान भी करते रहें, भजन-पूजन भी करते रहें, संसार के कार्य भी करते रहें। मनुष्य हैं, गलतियाँ तो होंगी। इसीलिए जो भगवान को प्यार करता है वह उसकी व्यवस्था को स्वीकार करता है, शिकायत नहीं करता।

परमात्मा शासन करने वाला है। सब पर उसी का एक मात्र शासन चलता है। वही सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। *सर्वस्य धातारम्* सबको धारण करने वाला वही परमात्मा है। सर्दी के दिन हों और अचानक आपके घर में, रात्रि में, आपके निकट के रिश्तेदार दस बीस की संख्या में एक साथ आ जायें। ऐसी स्थिति हो कि आपको एक साथ गरम कपड़े की व्यवस्था कठिन हो जाये। भोजन की भी व्यवस्था रखनी है। तब आप कितने असमंजस में पड़ जाते हैं। सुविधा नहीं है, एक दूसरे का सहयोग लेने को तैयार होंगे। लेकिन आधी रात को सब अतिथियों की व्यवस्था में आप कितने विवश हो चिन्तित हो जाते हैं। लेकिन जो सबको धारण करने वाला, पोषण करने वाला, सबको अपने घर में सुरक्षा देने वाले भगवान की व्यवस्था कितनी बढ़िया है। जो भी इस दुनिया में आता

है सबका भोजन, पानी, वस्त्र, रहने की जगह, सब कुछ व्यवस्था करके पहले से तैयार रखता है।

कभी व्यवस्था भगवान की दुनिया की तब बिगड़ती है जब कुछ लोग चालाकी से दल बना कर या कोई तरीक़ा अपना कर, दूसरे का हक़ छीनकर तिजोरी में बंद करने लग जाते हैं। उसके कारण समाज में अव्यवस्था आती है। परमात्मा की देन में कमी नहीं है। भगवान ने तो सबको बहुत कुछ दिया है। अव्यवस्था पैदा करने वाला अगर कोई बनता है तो इन्सान बनता है। वह परमात्मा सबको धारण करता है।

बेटा अगर ग़लत रास्ते पर चल पड़ा है और उसके कारण बदनामी होने लगी है तो माँ छोड़ देगी। स्वार्थ पूरा करने को बेटा भी माँ को छोड़ देता है। लेकिन पिता परमात्मा ही ऐसा है, उसकी धरती पर बसने वाले संसार में जितने भी जीव हैं, प्राणी हैं परमात्मा सबको स्वीकार करता है, सबको कहता है कि मेरे पास हर किसी के लिए जगह है, मैं किसी के लिए इन्कार करने को राज़ी नहीं हूँ; उसकी शरण में सब हैं।

भगवान वैसे सुधरने की स्थिति सबके लिए रखता है। थोड़ा कठोर बन जायेगा, दण्ड देगा, व्यवस्था बनाएगा लेकिन अपने से दूर नहीं करेगा। जैसे-जैसे सुधार करते-करते मनुष्य अपने आपको उसके निकट लाता है उसकी सारी कृपा, दया, मनुष्य प्राप्त करने लग जाता है। जो वह शान्ति है, आनन्द है, प्रसन्नता है, सब मनुष्य को प्राप्त होने लगती है। इसीलिए हम लोग परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करके उसकी निकटता को प्राप्त करने की कोशिश करें जिससे हम भी उस सम्पत्ति के स्वामी बन सकें। यह प्रयास कल परसों या आगे कभी हम करेंगे ऐसा नहीं सोचना आज़ से अभी से प्रयास कीजिए। जितने आप संसार के लिए दयालु रहेंगे परमपिता के ख़ज़ाने से आपको दया का हिस्सा मिलना शुरू हो जायेगा, आप निर्दयी होंगे तो वहाँ से भी कठोरता आप को मिलेगी।

आप दाता बन कर चलेंगे तो परमात्मा आपको दाता ही बनाये रखेगा। अगर आपने भीख मांगने की आदत डाल ली तो फिर वही बनी रहेगी। इसीलिए अपने स्वभाव को बदल कर उसके क़रीब आने की कोशिश कीजिए। जैसा भाव लेकर जाओगे वैसा ही फल मिलना शुरू हो जायेगा। इसीलिए उसे कहा-

सर्वस्य धातारम् - सबका धारण परमात्मा करने वाला है, सबको अपने अन्दर रखता है, पोषण देता है।

अचिन्त्यरूपम् आदित्यवर्णम् तमसः परस्तात् - वही है जो सब अंधेरों से दूर है। वह ऐसा प्रकाश है, जिसमें कभी अंधेरे का प्रभाव नहीं होता। सदा रहने वाला प्रकाश है परमात्मा। यद्यपि दिया जलता है, इधर कहीं प्रकाश दिखाई देता है उधर कहीं अंधेरा दिखाई देता है। लेकिन सूर्य को अगर आप देखें तो सूर्य की विशेषता ही है कि जिसके प्रकाश के सामने कहीं अंधेरे की स्थिति होती ही नहीं। बहुत कोशिश करेगा इन्सान- दीवारें बनाएगा, तहख़ाना बनायेगा, चारों तरफ से घेर लेगा जहाँ कहीं किरणे न पहुँच पाये, ऐसी व्यवस्था बना कर अंधेरा पैदा कर ले तो बात दूसरी है। अन्यथा जहाँ तक सूर्य की किरणें हैं अंधेरा रहता ही नहीं है। सूर्य की भी अपनी सीमा रेखा है। परमात्मा वह परम प्रकाश है जिसका प्रकाश सब जगह, सब रूपों में है।

यहाँ भी एक बात अवश्य सोचना, थोड़ा-सा भी अज्ञान हमारे अन्तःकरण पर हो तो हम उस प्रकाश को नहीं देख पाते, उस प्रकाश का अनुभव नहीं कर पाते। एक बड़ी भारी कमी है। सूर्य निकला और किसी की आंख पर मोतिये का प्रभाव है, और किसी के पर्दे पर कोई विकार आ गया तो यहाँ कमी सूर्य की नहीं है। वह मैल है उसकी बड़ी भारी कमी है। परमात्मा का प्रकाश है वह; देखने वाली आँख है उनमें कहीं कमी है, उनका ही सुधार करना, उसी का नाम अभ्यास करते-करते जैसे निर्मलता आती है तब ऐसा अनुभव होता है कि हज़ारों सूर्य एक जगह इकट्ठे करके चमकाएं जाएं या हज़ारों सूर्य भी मिलकर इतना प्रकाश नहीं कर सकते जितना परम प्रभु का अनुभव होता है योगी व्यक्ति को।

योगी लोग कहते हैं कि प्रकाश ऐसा कि सूर्य का प्रकाश तो फिर भी गर्मी देता है, लेकिन उस प्रकाश में इतनी शीतलता है करोड़ों सूर्य मिलकर एक जगह रखे जायें तो प्रकाश तो इससे भी कहीं ज़्यादा, लेकिन गर्मी नहीं। उसके अन्दर मोहकता इतनी है कि सूर्य की ओर हम आँख उठाकर देखें, देख नहीं सकते चुधियां जाती हैं आँखें। उसको जब देखता है योगी अपनी आत्मा में तब उसमें आंखें चकाचौध नहीं होतीं, प्रकाश में इतना आनन्द लेता है उसमें डूबता जाये सारे संसार के समस्त भोग, समस्त सुख जैसे आकाश में एक क्षण के

लिए बिजली चमकती है। एक क्षण के लिए बिजली के चमकने के समान संसार के सुख भोगों का सुख है। इन करोड़ों सुखों को एक जगह जोड़ दो तो समाधि का आनन्द मिलता है। समाधि के करोड़ों आनन्दों को जोड़ दिया जाये तो परमात्मा में एकाकार होने की, मोक्ष की अवस्था आती है और उस परब्रह्म में समा जाये, तब इतना आनन्द है कि वह सब कल्पना से परे की स्थिति हो जाती है।

इसीलिए योगी जो समाधि का आनन्द लेने लगते हैं उनके सामने कितना राजपाट भी क्यों न हो, सुख-सुविधाएं क्यों न हों, संसार के भोग क्यों न हों, त्याग कर परमात्मा की ओर चल पड़ता है। कहता है कि लालच भी करना है तो छोटे-मोटे लालच नहीं, उस परम प्रभु को पाने का लालच करो। उस आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो जाओ, जिसको पाने के बाद फिर कुछ पाना बाक़ी नहीं रहता। इतनी ऊँचाई, उन्नति का सबसे ऊँचा शिखर, शान्ति का सबसे बड़ा कोष, प्रसन्नता का सबसे बड़ा शिखर, आदमी कितना ख़ुश हो सकता है। कोई चिन्ता न हो व्यक्ति के जीवन में, इतना निश्चिन्त, गा रहा हो, झूम रहा हो, सारी चीज़ें जहाँ आकर जुड़ जाएं वह धाम है परमात्मा का। उसे कहा *आदित्य रूपम् आदित्यवर्णम्* - उसका वर्ण उसका स्वरूप आदित्य वाला, सूरज जैसा प्रकाश वाला स्वरूप है। आदित्य का एक अर्थ है- जिसमें कहीं कोई खण्डन नहीं है, अखण्डित रूप है। ऐसा सम्पूर्ण प्रकाश जिसमें आनन्द, शान्ति, प्रसन्नता सब समाहित है। इस अचिन्त्य रूप का जो ध्यान करता है :-

प्रयाण काले मनसा चलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्येप्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

दुनिया से जाने की स्थिति जब हो, मन जिसका अचल हो जाये, भक्ति में भरपूर होकर परमात्मा से ध्यान जोड़ कर, योग का बल अपने अन्दर पैदा करके और - आज्ञाचक्र वाला जो भाग है इस स्थान पर जो अपने प्राणों को ठहरा कर, इस स्थिति में, संसार से ध्यान हटाकर, परब्रह्म में जिसका ध्यान स्थिर हो, योग बल के द्वारा अपने ऐसे प्राण टिकाकर संसार से अपने प्राणों को छोड़ता है- वही आत्मा परम प्रभु, दिव्य पुरुष को प्राप्त करने में सफल हो पाता है।

परमात्मा अन्तर्यामी होकर हमारे शरीर में विद्यमान है। वह सब जानता है-त्रिकाल दर्शी है वह, लाखों आँखों से देखता है। कब हम क्या-क्या करेंगे

वह पहले से जानता है। परमात्मा के संबंध में सोचना उसने हमें आज़ादी पूर्ण पूरी दी है अच्छा करें, बुरा करें। किसी भी तरह का कर्म हम करें, हमें कर्म करने की पूरी स्वतंत्रता है। हम चाहें तो कुछ भी न करके आराम से बैठ सकते हैं। व्यवस्था ऐसी भी होती है, टीचर अपने विद्यार्थियों को बैठाकर कहता है- आज परीक्षा है, सब विद्यार्थियों ने अपने-अपने कागज़ पर एक सुन्दर गऊ बनानी है। उसके आगे एक घास का मैदान बनाना है, गऊ घास चर रही है, मुँह खुला हुआ है - ऐसा लगना चाहिए कि बहुत जल्दी से खाने को आयी हुई है।

बच्चे अपने-अपने हिसाब से चित्र बना रहे हैं। एक बच्चा बड़ा चालाक है, कुछ भी नहीं कर रहा है बैठा है, हाथ में कोरा कागज़ लिए है।

टीचर ने कहा - गऊ बनाई? बोला-जी बिल्कुल। घास का मैदान? वह भी बना लिया। तो फिर वह दिखाई तो नहीं देते। बोला-जी पहले घास का मैदान बनाया, फिर गऊ बनाई। गऊ आई घास खाकर चली गई। अब आगे मैं क्या दिखाऊँ क्योंकि दोनों ही नहीं हैं।

आप सोचिए परीक्षा देने वाला विद्यार्थी चालाकी कर रहा है, परीक्षा लेने वाला भी जानता है कि कितनी भी चालाकी करो परीक्षक समझ लेता है कि यह चालाकी की भाषा बोल रहा है। यद्यपि वह अन्तर्यामी नहीं है किन्तु विद्यार्थी का इतना तो मनोविज्ञान जानता ही है कि वह चालाकी कर रहा है। उसने भी कह देना है कि हमने भी जैसा तुम्हारा पेपर देखा उसी हिसाब से नम्बर ज़ीरो दे दिया। हम कितनी भी चालाकी करें, कर्म करें, अच्छा करें, बुरा करें हमें स्वतत्रंता है परन्तु अन्तर्यामी परमात्मा इस देह में ही बैठा हुआ हिसाब लगा रहा है; हम सब उसके बन्धन में बंधे हुए हैं।

भगवान कृष्ण ने कहा वही मैं हूँ, मैं अलग नहीं हूँ। इस देह में हूँ, देह की व्यवस्था को देख रहा हूँ। मैं इसके अन्तर में बैठकर मन में जो कुछ मनन किया जा रहा है, हाथ से जो कुछ किया जा रहा है, उससे कोई भी किसी रूप में बच नहीं सकता। परमात्मा अन्तर्यामी है यह उसकी बहुत विशेषता है लेकिन उसकी यह बड़ी विशेषता है कि उसने हमें अन्तर्यामी नहीं बनाया। अगर हम लोग अन्तर्यामी गुण से युक्त हो जाते तो यह संसार जीने लायक़ न रह जाता। पति-पत्नी दोनों साथ रह रहे हैं, दोनों बहुत मीठी भाषा बोल रहे हैं किन्तु

किसी भी बात पर नाराज़ होकर दोनों एक दूसरे के बारे में क्या-क्या उल्टा-सीधा सोच लेते हैं। अगर उस समय एक का, एक को, पता लग जाये, उसे सोच कर तो फिर वह ज़्यादा देर तक एक घर में रह नहीं पायेंगे।

बाप-बेटा दोनों एक दूसरे से बहुत प्यार करते हैं, लेकिन कब किस बात पर गुस्सा आ जाये बाप कुछ सोचने लग जाये, बेटा अन्दर ही अन्दर कुछ और भाषा बोलने लग जाये। दोनों अन्तर्यामी हों, दोनों को एक दूसरे का पता लग जाये सम्बंध में बिगाड़ आ जायेगा।

दो पार्टनर हैं। अच्छा काम चल रहा है, दोनों के सम्बंध भी बड़े अच्छे हैं। दोनों एक दूसरे के लिए बड़ी कुर्बानियाँ करते हैं। लेकिन कभी-कभी परिस्थितिवश बड़ी विचित्र स्थिति होती है - दोनों के अन्दर न जाने कैसे-कैसे भाव आते हैं। दोनों को एक दूसरे का पता लग जाये फिर वह सम्बंध, सहयोग, सांझेदारी चलने वाली नहीं है। कुछ पर्दा रखा है परमात्मा ने।

हमारे हाथ में बुद्धि की लालटेन दी है, दस फुट दूर का ही हम देख पाते हैं। किसी गुरु ने अपने मन्द बुद्धि शिष्य को एक लालटेन, लैम्प दिया - जाओ बेटा, जंगल में दस किलोमीटर यात्रा करने के बाद दूसरा आश्रम आयेगा। वहाँ से यह यह पदार्थ लेकर आना।

बच्चा कहता है कि रात अंधेरी है, लालटेन आपने हाथ में दी है इससे तो सिर्फ़ दस फुट का ही दिखाई देता है। दस किलोमीटर मैंने जाना है इतनी दूर का दिखाई देता हो तब तो रास्ता चलूँ मैं।

गुरु ने कहा - बेटा, जितना तू दो क़दम चल रहा है उतना तुझे दस क़दम तक का दिखाई दे रहा है, इतना ही तेरे लिए काफ़ी है। तुझे इतनी दूर तक दिखाने की आवश्यकता नहीं। यह लालटेन तुझे दस क्या सौ किलोमीटर तक ले जाने में समर्थ है। लेकिन तेरे अन्दर तेरी स्थिर बुद्धि और उत्साह की शक्ति होनी चाहिए।

परमात्मा ने हमें बुद्धि की लालटेन दी है, दस क़दम दूर तक हम लोग देखते हैं। इसी से चलते-चलते हमारा भला हो रहा है। अगर हमें अन्तर्यामी बना कर भगवान हमें इतनी बड़ी लालटेन दे देता कि हमें सब कुछ दिखाई देने लग जाता तो हम इस संसार में रह ही नहीं पाते, हमें लगता संसार में न कहीं प्रेम है, न कहीं विश्वास है, न कहीं एकता है, न कहीं बसने वाली स्थिति

है क्योंकि सब अलग-अलग ढंग से सोच रहे हैं, आशंकाएं हैं सब के मन = पर चमत्कार देखिए उस परब्रह्म का कि वह सब कुछ जानता है, हम कि उसे मानते हैं और कितना उसे नहीं मानते हैं और कब क्या माँगने लग और कब क्या नाटक करने लग जाएं वह सब जानता है लेकिन उसके भी वह हमें प्यार करता है। यह उसकी बड़ी बात है कि वह हमें स्वीक करता है, सारे गुण-दोष जानने के बाद भी वह हमें स्वीकार करता है।

एक बात याद रखना - अगर आप अपने घर-परिवार और जीवन में सु होना चाहते हैं तो एक सूत्र याद रखना कि जैसे आपको आपका परमा आपके गुण-दोषों के साथ स्वीकार किए हुए है ऐसे ही आप भी अप घर-परिवार के संबंधी जनों को, पारिवारिकजनों को उनके गुण-दोषों के सा सम्पूर्ण रूप से स्वीकार कर लोगे तो। आपका जीवन सुखी हो ज़ायेगा। यह नहीं कहा जा सकता कि आपको सारे दूध के धुले हुए, बहुत स्वच्छ, ब निर्मल, बड़े सुन्दर बहुत अच्छे प्रेम करने वाले मिल जायेंगे; गुण दोष वाले ह मिलेंगे। जबकि उस परमात्मा ने स्वीकार कर लिया आप भी आपने घर-परिव में अपने लोगों को स्वीकार कर लो - जो है, जैसा है, जिस तरह का है, जैसे मेरे लोग, जैसा मेरा परिवार अच्छा है मुझे स्वीकार है, मैं उससे खुश हूँ स्वीकार करो अन्यथा समस्याएं बनी रहेंगी - जो चाहोगे मिल नहीं पायेगा मिल जायेगा वह आपका चाहा हुआ नहीं होगा; भटकाव में रहेगा - 'काश यह होता, वह होता, यह मिलता, मैं कितना सुखी होता', यह सारी चीज़ें छोड़ दीजिए। जो है, जितना है, जिस तरह का है, जिस रूप में है, उतने को स्वीकार करके, खुशी मनाते हुए उसका धन्यवाद कीजिए। इसे सीख लेंगे तो जीवन में आनन्द ही आनन्द रहेगा। अर्जुन ने फिर प्रश्न किया -

"प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः"

हे कृष्ण! दुनिया से जाते समय जो नियत आत्मायें हैं, आपमें जुड़ी हुई आत्माएं हैं, आपका भजन-पूजन करने वाले लोग हैं, वह आपको कैसे जान पाते हैं? किस रूप में आपका स्वरूप दिग्दर्शित होता है, दिखाई पड़ता है, कैसे आप जाने ज़ाते हैं? इसके संबंध में भी बताओ। इसका उत्तर भगवान कृष्ण ने दिया -

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयासि मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

प्रयाणकाल में, प्रस्थान काल का समय जब पास हो, मुझे स्मरण करता हुआ जो शरीर को छोड़ता है, जो मेरा ध्यान करता हो, शुद्ध आत्मा, अन्त काल में इस शरीर को छोड़ता है *य प्रयाति स मद्भावम् याति* - जो इस तरह से दुनिया मे जाता है वह मेरे ही स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। प्रश्न बड़ा ही मार्मिक, जीवन से जुड़ा है और इसकी बड़ी आवश्यकता है कि हम इसको जानें।

मृत्युशैय्या पर कोई व्यक्ति प्रायश्चित्त करे उस प्रायश्चित्त से मुक्ति होने वाली नहीं है। ध्यान रखना, आख़िर में जाकर कोई प्रायश्चित्त करे-बड़ी ग़लतियाँ हुई, बहुत दोष किया, हे परमात्मा मैं नहीं जानता था कि ऐसा नहीं करना चाहिए था, वैसा नहीं करना चाहिए था, मैंने तो न जाने कितनी-कितनी गल्तियाँ की, अब तू बक्शन हार है, क्षमा करने वाला है इसीलिए मेरे गुनाह बख़्श दे।'

जेल के अन्दर पंजाब का एक व्यक्ति कई हत्याएं किए हुए बैठा था। फांसी की सज़ा होने वाली, बोल क्या रहा है '*तू बख़्श गुनाह मेरे मैं खादे टुक्कर तेरे*', कितने भी बोला जाये फिर बख़्शीश नहीं होगी। फिर कोई क्षमा नहीं होगी। प्रायश्चित्त करना है तो कर ले, दुनिया से जाने से पहले तैयारी कर ले कि अपने आपको पवित्र कर लेना है। उसका प्रायश्चित्त सच्चा प्रायश्चित्त होगा। जिस व्यक्ति का जीवन संसार में सदा भगवान की ओर लगा रहा ऐसा व्यक्ति आख़िरी स्थिति में जब पहुँचेगा, परमात्मा का ही ध्यान होगा। अनुभूतियां उस प्रभु परमेश्वर की होंगी।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च

सभी स्थितियों में हे अर्जुन! मेरा ही स्मरण करना और युद्ध करना। वहाँ युद्ध के लिए यहाँ जीवन-संघर्ष के लिए कहा । अपने कर्म के लिए प्रयत्नशील हो जाओ, अपना कर्म छोड़ना नहीं, समस्त कार्यों में मेरा स्मरण करो। भगवान कहते हैं मेरा ध्यान करते हुए संसार में कर्मरत रहो। '*अन्त मति सो गति*' ऐसा जो हम लोग सुनते ही हैं कि अन्त में जैसी मति बनती है उसी के अनुसार गति होती है। जिन वस्तुओं में, जिन पदार्थों में हमारे प्राण अटके होते हैं, शरीर

छोड़ते समय जिन-जिन सम्बंधों में आसक्ति होगी वैसी ही अन्तिम व्यवस्था बनेगी।

पुराणों में भरत वंश में जड़ भरत की कथा आती है। भरत बड़े प्रतापी राजा थे लेकिन बाद में चलते-चलते मोह आ गया। तपस्या करने के लिए गए हिरण के बच्चे को पालते-पालते उसके प्रति मोह रख लिया। मोह रखने का परिणाम हुआ कि एक दिन हिरण का बच्चा अपने अन्य हिरणों के झुण्ड में शामिल होकर चला गया। भागते हुए भरत मुनि पीछे-पीछे ठोकर खाकर गिरे उस हिरन को पुकारते रहे, उसके प्रति बहुत मोह था। शरीर छूटा, साधना करने वाले, भजन-पूजन करने वाले व्यक्ति को मोह के कारण अगला जन्म हिरन का मिल गया। कथा विस्तृत है अनेक बार अनेक प्रकार से कही जाती है। कुल सार याद रखना कि कितने भी प्रतापी, कितने भी साधना वाले हों लेकिन मोह की स्थिति पूरी तरह मिटानी चाहिए।

ज्ञान चरम पर पहुँचे, वैराग्य का जन्म होना ही है। *ज्ञानस्य पराकाष्ठा वैराग्यम्* - ज्ञान पूर्णता को पहुँचता है तो वैराग्य जन्म लेता है। जब हमें वैराग्य हो जाये, छोड़ने से पहले छोड़ने का मन बन जाये - त्यागना तो है ही संसार लेकिन त्यागने की प्रसन्नता मन में जाग जाए, संसार से ऊपर उठने की स्थिति मन में जाग जाये - अगर ऐसी व्यवस्था अपनी बनाने को तत्पर हैं तो संसार को भोगने का आनन्द भी आयेगा। इसीलिए कबीर ने कहा - '*जिस मरने से जग डरे - मेरे मन आनन्द,*

मर कर ही पाइए पूरन परमानन्द।'

परमानन्द को पाने के लिए इस शरीर को तो छोड़ना ही पड़ेगा। इसीलिए मैं आनन्दित हूँ कितने क्लेश हैं दुनिया में ? पांच क्लेश माने गये हैं - अविद्या - दर्शन की भाषा चल रही है यह अध्याय दार्शनिक पृष्ठ-भूमि का है अस्मिता, राग, द्वेष,

अहंकार एक क्लेश है। पांचवां क्लेश है - अभिनिवेश - मौत का भय: सब पर सवार है यह। मौत किस रूप में? जो मेरा है उसके छिन जाने का डर ही मन में बसा हुआ है। इसके कारण हम रात-दिन भयभीत हैं। प्राणों के ऊपर आघात आता है। हमारा धन उसमें हमारे प्राण बसते हैं; हमारे संबंधी - उनमें हमारा मोह बंधा हुआ है; हमारी दुकान - इसमें हमारा मोह है; हमारा माल

उसमें हमारा स्वरूप बसा हुआ है। कोई इन चीज़ों पर आघात करे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे स्वयं पर आघात है, मेरी सुरक्षा नहीं हो पा रही है। उस समय अपने को बचाने के लिए आदमी संघर्ष करना शुरू करेगा। किसी ने मान पर हमला किया, अब उसका अपमान करने को तैयार। किसी ने धन-हानि करनी चाहिए अब आप उसका धन छीनने को तैयार। किसी ने आपके मकान को छेड़ा, आप उसके मकान को छेड़ने को तैयार। आपकी गाड़ी को किसी ने छेड़ा आप उसकी गाड़ी छेड़ने को तैयार कि मेरे प्राणों पर चोट पड़ी है। यह एक भय है जिससे बचने के लिए मनुष्य संसार में तरह-तरह के कर्म करता है। फिर संसार में क्लेश बढ़ता है।

दर्शनकारों ने बड़े ढंग से समझाया है कि कैसा क्लेश दु:ख बना कर इन्सान संसार में संघर्ष करता है। पांचों को छोड़कर ऊपर उठ जाये तो सारे ही क्लेशों से ऊपर उठ जाता है। पांचों ही चीज़ों से ऊपर उठ जाओ फिर आनन्द ही आनन्द है। ज्ञान से छोड़ो।

दु:ख से छूटने का एक मात्र आधार है ज्ञान। ज्ञान प्राप्त करो, ज्ञानी की शरण लो, ज्ञानियों के सान्निध्य में रहो, ज्ञानी लोग जहाँ भी मिलें उनके चरणों में झुको, सेवा के माध्यम से उनको प्रसन्न करो। आप अपना अधिकार बनाना चाहते हो तो बन सकता है। सिर्फ़ सेवा-सद्भावना से अधिकार बन सकता है और किसी भी प्रकार से अधिकार नहीं मिल सकता। परम पिता परमात्मा के लिए एक शब्द अच्छा समझने योग्य है।

प्रयाण काल में व्यक्ति जाते हुए अपनी मुक्ति करना चाहता है। रोज़ रात को एक दिवस का अन्त होता है। तो समझना कि आज का एक दिन का जीवन सम्पन्न हुआ, कार्यों से निवृत्त हुए। उस समय कभी-कभी यह भी विचार कर लो कि आज ही सब छोड़ कर जाना पड़ जाये तो क्या हम छोड़ने को तैयार हैं ? हमारा मोह कहाँ बसा हुआ है, किस चीज़ में बसा है? यहाँ तक सोचता है कि पीछे से रोने वाला कोई हो। साधु बनने के बाद भी बड़ी मुसीबत है - वह सोचते हैं कि मेरे इतने सारे शिष्य कितना रोना आयेगा। सारी साधना मोह में बंध कर रह जाती है।

मैं ईश्वर के संबंध में आपको कहना चाहता हूँ - हर रोज़ अपने आपको समझो उसके प्रतिनिधि हैं, उसने काम पर मुझे भेजा है। काम मुझे भगवान ने

दिया है, सौंपी है ज़िम्मेदारी मुझे। रोज़ अपने आपको भगवान का प्रतिनिधि मानकर, संसार के कार्यक्षेत्र में उतरना, काम करना। अन्दर और बाहर अपने लिए, दूसरों के लिए और बाहर के क्षेत्र में कार्य करने के लिए सोचना मैं परमात्मा का प्रतिनिधि बन कर कार्य करने आया हूँ। सही प्रयोजन, सही बुद्धि का प्रयोग संसार के कार्य क्षेत्र में करूँगा ऐसा निश्चय करो।

दूसरी बात - संसार में रहते हुए जो कर्म मैं कर रहा हूँ, आज पूरे दिन के उन समस्त कार्यों पर, अपने चेष्टाओं पर, सतर्कता से अपनी दृष्टि रखूँगा - मैं ठीक कर रहा था, ठीक कर रहा हूँ? ग़लत तो नहीं जा रहा हूँ? ग़लत संगत में तो नहीं हूँ? आपे से बाहर होने लगा हूँ, ज़्यादा जोश में आकर बात करने लगा हूँ, गुस्सा बढ़ने लगा है, लालच बढ़ने लगा है, काम का विकार अब दिमाग़ में जागने लगा है, अब मैं मोह में आ गया हूँ, अभिमान में आ गया हूँ, दूसरों को सताने लगा हूँ - सभी भावों पर सतर्कता से दृष्टि रखो। आपको अपने आपे पर स्वयं ही दृष्टि रखनी है क्योंकि ईश्वर के प्रतिनिधि हो।

तीसरी बात - अपने मालिक के सामने लेखा-जोखा पेश कर देना - यह सब कर के आया हूँ, यह ग़लतियाँ हुई हैं, इतना ठीक हूँ, इतनी कमाई करके लाया हूँ। कल से नौकरी मिलेगी नहीं तो आपका नालायक़ आदमी तो हूँ ही लेकिन नौकरी की अर्ज़ी फिर से लगा लो। हो सकता है कि आज बड़ी नौकरी है कल छोटी नौकरी मिले या हो सकता है तरक़्क़ी हो जाये।

एक बात और- परमात्मा के प्रतिनिधि हो आप, आपको संसार में उपयोग और भोग के लिए पदार्थ दिए गए हैं लेकिन एक कार्य करना - बैंक से लोन, ऋण, मिलता है, उद्योग-धंधे चलाने के लिए। जिन कार्यों के लिए आपने मांगा फैक्ट्री चलाने, कुटीर-उद्योग चलाने को मांगा, किसी ने बाग लगाने को, किसी ने डेरी फार्म बनाने को लिया। जिस-जिस के लिए ऋण लिया है उसी कार्य के लिए पैसा ख़र्च करना पड़ेगा। यह नियम है। यह भी पूरी व्यवस्था होगी कि जितना आपने जिस़ कार्य के लिए लिया है वही मूल और ब्याज़ सहित किश्तों के रूप में या एक साथ जैसे भी, जिन शर्तों से स्वीकार किया, आपको वह सब लौटाना है। आपको बहुत सारी चीज़ें दे दीं। अब ब्याज़ सहित आपको वापस करना चाहिए। अन्यथा यह भी होगा कि बैंक के पास इतनी ताक़त है कि वह वसूली करेगा - भले ही आपका उद्योग धंधा बन्द ही क्यों न हो जाये

उसने अपने पैसे वापस लेने हैं। दोबारा से ऋण नहीं मिलेगा। जो आपको सुख-सुविधाएं दी हैं उनका उपयोग करो, उपभोग करो, उनसे आनन्द भी लो, उनसे कमाओ भी लेकिन साथ में जो दिया गया है उसको वापिस भी करो, ऋण भी चुकाओ। जो लिया है उसका उपभोग करो, उसका ध्यान भी करो। अपने परमात्मा का क़र्ज़ा लौटाने की कोशिश करो नहीं तो दोबारा यह अवसर नहीं मिलेगा, ऋण नहीं मिलेगा।

उसे खुश करने का एक तरीक़ा है - बड़ा प्यारा तरीक़ा है, पूरा समर्पण उसके प्रति हो। बेटा-बाप के प्रति पूरी तरह समर्पित हो, पिता कहता है कि बच्चा मान गया है। बाप इतना खुश है तो कहता है कि ले, जल्दी से अपना चार्ज़ सम्भाल और मुझे भार से हल्का कर। सारी चीज़ें देने को तैयार हो जाता है।

आप सही प्रतिनिधि बनिये, योग्य उम्मीदवार बनिये फिर मांगने की कोई ज़रूरत नहीं है। वह तो दोनों हाथों से सब कुछ देने को तैयार रहता है, हमें तो अपनी कोशिश करनी होगी। लेकिन समर्पण ख़रा होना चाहिए।

एक बात और- परम प्रेम है प्रभु, उसकी भक्ति भी प्रेम है। यहाँ यह याद रखना कि उस परम के प्रति उस प्रेम को उजागर करना होगा। यदि आपका बहुत गहरा लगाव और प्रेम है आप उसको न जाने क्या-क्या देने को तैयार रहते हैं, उससे माँगने कुछ नहीं। अपने भगवान से कुछ भी मांगिए नहीं, उसे देने की कोशिश कीजिए - तन भी तेरा, मन भी तेरा, धन भी तेरा और हम सब इस प्यार को प्रकट करने को कहते हैं।

मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सब तोर ।

तेरा तुझको सौंपके क्या लागत है मोर ।।

सब तुझे ही अर्पण है लेकिन सिर्फ़ भाषा याद कर ली है हमने, प्यार नहीं याद रखा। जिस दिन सच्चा प्यार याद रह जायेगा, उसकी कृपाएं आपके ऊपर लगातार बरसेंगी, फिर और कुछ पाना बाक़ी नहीं रह जायेगा। यह सोचते हुए जो व्यक्ति शरीर को छोड़ता है उसकी मुक्ति होती है। उसे परब्रह्म का स्वरूप मिल जाता है, उसे फिर लौटना नहीं होता, उसका पुनर्जन्म: नहीं होता, फिर तो आनन्द की ही प्राप्ति हो जाती है।

****

इस प्रकार से जिसका शरीर छूटता है उसको परम की प्राप्ति हो जाती है यह भी बड़ा सुन्दर विवेचन है। जीवन भर जिसका ध्यान संसार की वासना में, संसार की मोह-ममता में, राग-द्वेष में, क्रोध में, दूसरों को सताने में, दूसरे का हक़ छीनने में, अपने को सुखी करने में, दूसरे को दु:खी करने का लगातार प्रयास करता रहा, उसके सामने काल बड़ा ही भयंकर रूप लेकर आता है उसका जाना बड़ा दु:खदायी होता है। सुखदायी जाना उसका होता है जिसके अन्दर परमात्मा के प्रति लगातार प्रेम, भक्ति, भजन, स्तुति, जपन, कीर्तन, उसके स्वरूप का ध्यान है और योग बल से अपने प्राणों को आज्ञाचक्र में टिका कर फिर अपने प्राण को खींच कर परम में समाता है, उसकी मुक्ति हो जाती है अर्थात् वह परम-पुरुष को प्राप्त कर लेता है।

"*अन्त मति सो गति*" तो कहा ही जाता है लेकिन यहाँ विचारणीय है लगातार का अभ्यास जो है, वह आपको आख़िर में सफल बना देता है। भक्ति आपके स्वभाव में आ जाये; जब आपके स्वभाव में आ जाये आपको जगाना न पड़े, जाग कर सही समय पर बैठ जायें; आपको बताना न पड़े कि भजन करने का समय हो गया। आप उठकर एकदम बैठ जायें, आपके अन्दर से हिचकी उठी है यह मन को कहना न पड़े कि अब अपने प्रभु का नाम लो अनायास हिचकी आई प्रभु का नाम मुंह से निकले; भोजन किया, डकार आई एकाएक आपके अन्दर से ओ३म् निकले राम या श्रीराम जो भी आप जपते हैं अनायास निकलना चाहिए। अनायास आपके ऊपर आघात हुआ, दु:ख में आपके अन्दर से आवाज़ निकल रही है, कुछ और न निकल करके एकाएक जब अपने भगवान का नाम निकले तो समझ लेना अभ्यास में नाम आ गया और उसी स्थिति में फिर गति भी होती है। इस अभ्यास को जारी रखिए

सुना जाता है राजा भोज के दरबार में एक ऐसा व्यक्ति आया जिसको बत्तीस भाषाएं आती थीं। उसने कहा बत्तीसों भाषाएं मैं ऐसे बोल सकता हूँ कोई भी यह अंदाज़ा नहीं लगा सकता कि मेरी मातृभाषा कौन-सी है?

मातृ-भाषा स्वाभाविक भाषा होती है। बच्चे के साथ बोलते समय माँ ने बोलना प्रारम्भ किया था, सर्वप्रथम बोलना जिस भाषा में वह मातृ-भाषा. माँ की भाषा होती है। मातृ-भाषा आप जब गुस्से में आयेंगे, गाली देंगे, रोयेंगे, चिल्लायेंगे,उसी भाषा में बोलेंगे।

वह यह कहता था कि बत्तीसों भाषा स्वाभाविक रूप से अनायास निकलती हैं कि यह अंदाज़ा नहीं लगा सकते कि मेरी असली मातृ-भाषा कौन-सी है? कोई अगर पता बताए मैं उसको बहुत अच्छा इनाम दूँगा। राजा ने भी कहा कि यहाँ जितने लोग बैठे हुए हैं अगर कोई यह जानकारी ठीक ढंग से करके बता दे कि इसकी असली भाषा कौन-सी है उसको हमारी ओर से भी पुरस्कार मिलेगा।

जैसे ही सांझ हुई दरबार को पूरा करने का समय हो गया। राजा के मन में दुःख हुआ कि हमारे दरबार में एक भी विद्वान ऐसा नहीं जो यह कह सके कि इसकी भाषा मैं बता दूँ। दरबार के समाप्त होने का समय होने लगा, इतनी देर में कालीदास सामने से आ गए। कवि कालीदास ने कहा - मुझे समस्या बताइये क्या है? राजा ने उन्हें बताया। कालीदास ने कहा यह बताना कोई अधिक मुश्किल काम नहीं है, यह तो मैं कल बता दूँगा आपको।

राज भवन में उस व्यक्ति को ठहराया गया। जैसे ही वह व्यक्ति सो गया कालीदास एक डण्डा लेकर पहुँच गए। सोते के पांव पर कालीदास ने ज़ोर से डण्डा मारा। जैसे ही डण्डे की चोट लगी, उसने उठकर जिस भाषा में गाली दी, कालीदास ने कहा यही है इसकी असली भाषा।

आप कितनी कोशिश कर लेना नकलीपन बाहर से ओढ़ भी लेना लेकिन जो स्वभाविक है वह तो अन्दर बसा हुआ है। जैसे ही चोट पड़ेगी वह निकल जायेगा। जब मौत के डण्डे की चोट पड़ेगी अन्दर बाहर से आप नकली कितने ही बने रहो, यह ध्यान रखना आपकी असलियत तुरन्त प्रकट हो जायेगी। इसीलिए अच्छा यही है कि असली भक्ति को अन्तःकरण में बसाओ जो मौत का डण्डा पड़ते ही परमात्मा का नाम हृदय से निकले और गति हो जाये। मृत्यु प्राणों के ऊपर अपना डण्डा मारती है। उस अवस्था में जिसके हृदय से, उनकी वाणी से परमात्मा का नाम निकलता है परमात्मा मान लेते हैं यह मेरा अपना है और उसके ऊपर अनन्त कृपा होती है। तब परमात्मा अपना स्वरूप उस पर प्रकट कर देता है।

संसार में दिखावा करने वाले बहुत भक्त हो सकते हैं। बड़ी मालाएं हैं उनके पास, विभिन्न प्रकार के तिलक हैं उनके पास, बड़ा कीर्त्तन करने वाले भी दिखाई देते हैं। नाम, वाणी पर बसा है हृदय में नहीं उतरा है। प्राणों पर जैसे

ही चोट पड़ेगी, वह नाम बाहर आयेगा, बाहर फिर वह कृपा बनकर कल्याण करेगा। उस स्थिति में कभी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। उसको तो परमात्मा आते हैं नहीं तो भयंकर रूप लेकर मृत्यु सामने खड़ी होती है।

भगवान ने आगे फिर समझाया -

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥

वेदविदो वदन्ति - हे अर्जुन! अब मैं तुम्हें वह अक्षर बताने लगा हूँ जिसका जाप करने से और ध्यान करने से परमगति प्राप्त होती है जिसको वेद के विद्वान, वेद को जानने वाले जिस अक्षर को बोलते रहे हैं *विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः* - वीतराग, मोह-ममता से ऊपर उठे हुए योगी अपने ध्यान के द्वारा जिसके अन्दर प्रवेश कर जाते हैं उस अक्षर के संबंध में मैं तुम्हें बताता हूँ - *यद् इच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति* - जिसके लिए साधक लोग सम्पूर्ण रूप से संयम करके संसार के विषय वासनाओं से, भोगों से अपने आप को अलग हटाकर पूर्ण ब्रह्मचर्य का साधन अपनाकर, ब्रह्मचर्य की ऊर्जा शक्ति को लेकर, जिसके अन्दर प्रवेश करने के लिए साधना किया करते हैं उस पद को, उस महान् शक्ति को - *''संग्रहेण प्रवक्ष्ये''* - छोटा करके तुम्हें बता रहा हूँ।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्यच ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

शरीर के सारे द्वारों को बंद करके अपने मन को हृदय में जोड़ कर अपने प्राण और आत्मा को मूर्धाय में ऊपर ले जा कर, सहस्रारचक्र में जो योग को धारण करते हुए उस अक्षर का चिन्तन करता है उसकी गति होती है, वह उस आनन्द को पा लेता है। अब मैं तुम्हें वह अक्षर बताता हूँ। अक्षर क्या है-

ओमित्येकाक्षंर ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

वह अक्षर केवल एक ओ३म् है। उस ओ३म् अक्षर को जो उच्चारण करता है, उस एक ओ३म् अक्षर को जो व्यवहार में लाए, उसका जाप करे, उसका अभ्यास करे और मेरा स्मरण करते हुए अक्षर का ध्यान करते हुए जाप करते हुए - *यः प्रयाति त्यजन्देहं* - जो इस संसार से अपनी देह को छोड़ते हुए ऐसे नाम का स्मरण करता हुआ, मेरा ध्यान करता हुआ शरीर को छोड़ता है

स याति परमां गतिम् - हे अर्जुन, उसकी परमगति होती है। सद्गति, ब्रह्मगति की प्राप्ति होती है, वह मुझे प्राप्त कर लेता है। इसीलिए एक ओ३म् अक्षर का जाप करना चाहिए। कितनी महिमा कही है।

देखा जाये तो जितनी भी ध्वनियां हैं बजाने से, टकराने से बजती हैं, हाथ पर हाथ मारेंगे आवाज़ आयेगी; किसी साज़ में फूँक मारोगे वह जो चोट पड़ती है उससे स्वर निकलता है। लेकिन एक ध्वनि है अनाहत् ध्वनि जिसको बजाया नहीं गया, बज रही है, वह अनाहत् ध्वनि है, जिसे सूफ़ी सन्तों ने, दूसरे सन्तों ने, अनहद-नाद कहा। वह ध्वनि लगातार गूंज रही है संसार में। योगी लोग उस ध्वनि के साथ अपना संबंध जोड़ते हैं। वह ध्वनि है - ओ३म्।

मन्दिर का घंटा मन्दिर में प्रवेश करते हुए सर्वप्रथम बजाने का नियम है। जैसे ही प्रवेश करेंगे टन-न-न की आवाज़ आ रही है। याद कराया जा रहा है वही जो सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है ओ३म् के रूप में उसी को तुम अनुभव करने के लिए साकार विग्रह को सामने रखकर,उसी का ध्यान करने आये हो, वही परम सत्ता अलग-अलग रूपों में, सारे संसार में दिखाई दे रही है। उसी का एक स्वरूप तुम यहाँ देख रहे हो। उसको देखते हुए अपने हृदय में स्वरूप को बसाओ। मन्दिर का घण्टा बजे, टन की आवाज़ आ रही है तो समझना वही नाद गूँज रहा है। सागर की लहरें गरजती हैं तो शंख को उठाकर कान से लगाओ तो भी आपको ऐसा ही लगेगा या शंख फूँकों तो शंख बजेगा तो भी ऐसा ही लगेगा कि यही नाद गूँज रहा है।

थोड़ा और बारीकी में देखें तो कुछ ध्वनियां ऐसी हैं जिनको सुन कर आपका शरीर भयभीत होता है। कुछ ध्वनियां ऐसी हैं जिनको सुनने से आपके शरीर में रोमांच आता है। वीरता जागती है, फौजी जब मार्च करते हुए चलते हैं तो उनके लिए दूसरी ध्वनि बजाई जाती है। कुछ ध्वनियां ऐसी हैं जिनको बजाने से आपका रोम-रोम थिरकने लगता है, आप नाचने लगते हैं। कुछ ध्वनियां ऐसी हैं जिनको सुनने के बाद आपके अन्दर उदासी आ जाती है। कुछ ध्वनियां ऐसी हैं जिनको सुनकर आपका मन रोने को करता है। कुछ ध्वनियां ऐसी हैं जिनको सुनने के साथ ही आपके चेहरे पर मुस्कुराहट आ जाती है। केवल साज़ बजेगा, साज़ पर चोट पड़ेगी और आपके अन्दर तरह-तरह के भाव प्रकट होंगे। ध्वनियों का इतना प्रभाव है।

लेकिन कुछ ध्वनियां ऐसी भी हैं जो आपको शान्ति देती हैं। उन ध्वनियों में एक परम ध्वनि है जिसका गुंजन नाभि से शुरू करके ब्रह्मरन्ध्र तक जब ले आये इन्सान तब समझना परमेश्वर की परम शक्तियों को खींचने की ताकत यह एक ध्वनि रखती है, जो आपके मन-मस्तिष्क सब जगह शान्ति बरसाती है। इस ध्वनि को ओ३म् ध्वनि कहा गया है।

साधना में बैठने वाले लोगों को *ॐकार* का उच्चारण कराया जाता है विज्ञान के हिसाब से अल्फा, बीटा, गामा किरणों का अपना एक प्रवाह है। ध्वनियां निकलती हैं अपने एक अलग ढंग से आकर शरीर पर प्रभाव डालती हैं। कोई पोज़िटिव, कोई निगेटिव और कोई न्यूट्रल है। किसी जगह में अल्फा ध्वनि और वह किरणें तेज़ी से प्रवेश नहीं करतीं, धीमे चलती हैं। एक न्यूट्रल है, एक तेज़ी से चलने वाली है - एक दम प्रवेश करती है। जैसे यह विज्ञान अपने ढंग से किसी चीज़ पर विचार करता है। अगर थोड़ा-सा और आगे जाएं. कोई भी चीज़ का उच्चारण करें स्वरों का कम्पन कितना होता है। यह इस बात पर बड़ा निर्भर करता है कि स्वरों का कम्पन करके अन्दर हृदय में आनन्द उपजेगा। इस पर हमारे योगियों ने, ऋषियों ने, बड़ा विचार किया है। भगवान ने तो वह शब्द हमारे लिए बोल ही दिया कि ओ३म् ही ऐसा अक्षर है जिसका उच्चारण करते ही अन्दर तरंग पैदा होगी। शान्ति, उत्साह आपके अन्दर संचारित होने लग जायेगा कि अन्त समय में इसका उच्चारण करने से गति होती है।

पुरुष बोलें या महिलाएं या कोयल, हैं तो ध्वनियां लेकिन स्वर कम्पन सबके अलग-अलग हैं। कोई पुरुष गाना गा रहा हो, आवाज़ में स्वर कम्पन जो उठे, उन कम्पनों से आवाज़ की मधुरता का पता लगता है। उनकी आवाज़ कितनी मधुर, कितनी आनन्द देने वाली है, कितनी अनुभूतियां उससे होती हैं, कितनी गहराई से स्वर को उठाया गया। कोई भी पुरुष बोलेगा 150 से लेकर 55 या 60 तक का मधुर स्वरों का प्रकम्पन होगा। बच्चा बोले या महिलाएं, स्वरों में माधुर्य आयेगा; उनमें 175 कम्पन होते हैं। आप लोग जानते हैं जब कोई महिला भजन गाती है एक साथ सब एक स्वर में गाएं आवाज़ मिठास से भरी हुई है, पुरुषों की आवाज़ से ज़्यादा। लेकिन यह सारे कम्पन मिला कर

जोड़ दिए जाएं तो उतना माधुर्य नहीं है जितना तब जब कोई कोयल बोलती है। उसके स्वरों में जो कम्पन पैदा होता है वह जो हृदय पर असर करता है - 500 प्रकार के कम्पन माने गए हैं कोयल के स्वर में।

कुछ ऐसे टेपरिकार्ड जिनमें जब आप कुछ बोल रहे होते हैं, गा रहे होते हैं, रिकार्ड हो रहा है तो सुई हिलती है थोड़ी, वह बताती है आवाज़ का उतार चढ़ाव। स्वरों को, कम्पन को नापने की बहुत मशीने आ गई हैं। जर्मन वैज्ञानिक इस पर विचार करते हुए अपना विचार लिखते हैं, उसमें यह लिखा -कोयल के बोलने पर जो कम्पन थे वह 500 कम्पन थे। विधिवत् जब गायत्री मंत्र का उच्चारण कराया गया- ओ३म् भूर्भुवः..... उसके उच्चारण को जब ठीक प्रकार से नापा गया तो 750 प्रकम्पन हुए, इतना प्रभाव एकदम इसका होता है। जब इन्सान केवल ओ३म् का ही उच्चारण करता है, उन कम्पनों को नापना मुश्किल हो जाता है। अनेक-अनेक रूपों में सूक्ष्म होकर हमारी तंत्रिकाओं पर और रीढ़ की हड्डी में तीन नाड़ियां मानी गई हैं - इड़ा, पिंगला, सुषम्णा, मन पर वह बहुत तेज़ी से प्रभाव करता है।

इस एक अक्षर ओ३म् का उच्चारण करने से अद्‌भुत् शक्तियां तो मिलती ही हैं अन्तिम समय में ध्यान करते हुए, जाप करते हुए, गति भी हो जाती है। इसीलिए भगवान कृष्ण कहते हैं कि इसका उच्चारण अन्तिम समय में कर सकें इसके लिए निरन्तर अभ्यास करो कि हम लगातार इस ओ३म् अक्षर को बसायें। भगवान कहते हैं ओ३म् का उच्चारण और मेरा ध्यान करो।

आगे जाकर कहा कि अक्षरों में मैं प्रणव हूँ, मैं ही ओ३म् हूँ, सीधी-सी बात है मुझे याद करना है तो ओ३म् बोलो। ओ३म् बोल रहे हो तो मेरा ही ध्यान है।

जैसा कि पिछले दिनों आपको मैंने बताया था ओ३म् कहते समय आपकी तीन अवस्थाएँ होती हैं - मुँह खुलेगा, होंठ गोल हो जायेंगे और आख़िर में होंठ बन्द हो जायेंगे।

पता लगा कि आप सर्वोच्च सत्ता को याद कर रहे हैं। इसमें तीनों रूप उनको याद हो रहे हैं। संसार को खोलने वाली सत्ता, संसार का पोषण करने वाली सत्ता, संसार का संहार करने वाली सत्ता - ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों को एकसाथ याद करना हो तो ओ३म् अक्षर का उच्चारण करेंगे।

हमारे देश में जितने मंत्र-पाठ आदि किये जाते हैं, सभी मंत्रों के पहले जब ओ३म् लगा दिया जाता है तभी मंत्र शक्तिपूर्ण हो जाता है। पुराणों में जहाँ गणेश जी का वन्दन स्तुति की मंत्र व्याख्या है वहाँ भी कहा गया है कि यह ओ३म् और कुछ नहीं आदि गणेश है। इस तरह से ओ३म् बोलने का मतलब है यह मंगलदायी है। किसी चीज़ के शुरू करने से पहले ओ३म् बोलो तो वह शुभ माना जाता है। जैसे श्रीगणेश कहते हैं। लेकिन यहाँ कुछ चिन्तकों का कहना है कि जब ओ३म् लिखते हैं तो जब ओ लिखते हैं। अ लिखा फिर उस पर ओ की मात्रा चढ़ी। उसके बाद वह तीन अक्षर प्लुत् हैं। तीन गुना ज़्यादा स्वर का उच्चारण करके बोलना और जो म् है एका-एक आपके मुँह से निकला। उच्चारण में व्याकरण के अनुसार ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत् यह तीन हैं। अ यह ह्रस्व है इसको जब दीर्घ कर देंगे तो 'आ' हो जायेगा। प्लुत् जब होगा तब आप इसे तीन मात्राओं में ओड़ बोलते जायेंगे। ओ३म् का उच्चारण करो तो तीन मात्रा की शक्ति लगाकर उच्चारण करना। फिर म् बोलना। उच्चारण की प्रक्रिया को समझाने के लिए उमसें जो तीन का अक्षर दिखाई देता है वह प्लुत् लगाया गया है।

चिन्तक लोग और गहराई में जाते हैं। वह यह कहते हैं कि यहाँ शुरूआत वाला जो अ है वह परब्रह्म है। जो उ है वह यह आत्मा है। म् है यह प्रकृति है। और थोड़ा विचार कीजिए यह आत्मा अगर अ से जुड़ती है तो अ की मात्रा ऊँचाई पर पहुँच जायेगी। अ पर जो ओ की मात्रा लगी वह ऊँचाई पर चली गई अगर यह उ (आत्मा) प्रकृति के संसार के पास जुड़ कर बैठ जाये तो फिर म् के साथ उ की मात्रा लगने से मु बनता है तब उ की मात्रा म् के पांव में लगती है। कहते हैं अगर आत्मा, प्रकृति से जुड़ेगा तो किसी के चरणों में गिरेगा, नीचे गिरेगा, पतन हो जायेगा। अगर परमात्मा से जुड़ेगा तो अ पर ओ की मात्रा ऊपर लगती है। परमात्मा उसे अपने स्वर्गधाम में ऊपर बैठाता है उसका स्थान बहुत ऊँचा हो जाता है।

भारत की अलग-अलग भाषाओं में ओंकार को लिखने की अलग-अलग विधियां हैं। जैन समुदाय जाप करते हुए ओ३म् शब्द को पहले लगाकर उच्चारण करता है। *ओ३म् णमोअरिहन्ताणं, णमोसिद्धाणं ।।*

कोई भी समाज हो सब उसी शक्ति को अलग ढंग से कह रहे हैं। *''द्रष्टव्यहुम''* कहा गया बौद्ध समुदाय में तो मानो उसी एक शक्ति को चोट देकर बताया जा रहा है कि उस तत्त्व तक पहुँचने के लिए, निर्वाण तक पहुँचने के लिए, किसी परमसत्ता तक पहुँचने के लिए, किसी भी अन्दाज़ से कहा जा रहा हो, एक ही शैली में प्राणों का वहाँ तक चोट मार कर परम तत्त्व को पाने की प्रेरणा दी जा रही है। भगवान कृष्ण ने जो निर्देश दिया है कि ओंकार का उच्चारण अभ्यास में बसा लो। - आगे फिर समझाया -

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

अर्जुन से भगवान आगे कह रहे हैं उस आदमी के लिए, उस योगी के लिए, मैं बहुत सरलता से, आसानी से मिल सकता हूँ - '*अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः*' - अनन्य-चित वाला होकर जो कोई निरन्तर सतत् भाव से *माम् स्मरति* - मुझे जपता है *नित्यशः* नित्यप्रति - अर्थात् जो मेरा ध्यान लगातार करता है नित्य-प्रति करता है और अनन्य-चित्त से करता है -

- *तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥*

उसके लिए अर्जुन, मैं बहुत सरल हूँ, आसानी से मिल जाता हूँ जो नित्यप्रति मुझसे जुड़ गया है।

इस पर थोड़ा विचार कीजिए '*अनन्य चेताः सततम् यो मां स्मरति नित्यशः*' - भगवान कहते हैं - जो मुझे अनन्य चित्त वाला होकर जाप करता है, जपन करता है, कीर्त्तन करता है, भजन करता है, उपासना करता है, प्रार्थना करता है, सिमरन करता है - नित्य नियम से करता है, बाधा नहीं आने देता बीच में, उसके लिए मैं आसानी से प्राप्त हो जाता हूँ। सुन्दर उपदेश हैं। परमात्मा की आराधना को निरन्तर करो, कभी भी नाग़ा नहीं करो, ठीक नियम से बैठना शुरू करो। यह बहुत ही प्यारे शब्द हैं। जोश में आ जाओगे कभी तो आप दो घण्टे तक साधना करोगे। कभी किसी दिन मन नहीं लगेगा, अनमने मन से थोड़ा-सा जाप किया, उठ करके खड़े हो गए। कभी आलस्य कर गए, बैठ ही नहीं पाए। कभी घर का कोई काम ऐसा निकल पड़ा कि उस काम के कारण आप बैठ नहीं पाये। कभी शरीर ठीक नहीं है, कभी कोई और विघ्न-बाधा है।

कभी कोई दु:ख पड़ गया तो आप अब बहुत ज़्यादा पक्के भक्त बनकर बैठे हुए हैं। यह भजन की बाधाएं हैं, शरीर में तामसिकता है। कभी ज़्यादा देर तक सो लिए तो शरीर ऐंठ रहा है। किसी दिन नींद पूरी नहीं हुई तो आँखों के अन्दर जलन है। कभी किसी की बात सता रही है तो जब ध्यान में बैठते हैं तो वही बात याद आती है। किसी का आकर्षण मन में है और भजन करने बैठते हैं तो वही आँखों के सामने उतरता है।

यह सब ध्यानं की बाधाएं है। अपने आप को सरल बनाओ। आसक्ति. मोह, वैर और द्वेष, निन्दा, आलोचना इसको आधार न बनाओ। किसी राजा से जब आप मिलने जाएं कितनी उमंग होगी आप में। देश का प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति से आपको मिलने का टाइम मिला हो तो तैयारी होगी पूरी, खुशी होगी। सबसे कहेंगे मैं उनसे मिलने जा रहा हूँ। कितने बढ़िया वस्त्र पहनेंगे आप, कितनी अच्छी तरह से तैयार होंगे, भोजन का भी ध्यान नहीं, मिलने जाने का उत्साह है। फिर आप सोचते हैं वहाँ जाकर बात कैसे करूँगा। कोई बात न निकल जाये, किसी और का ध्यान न आये, चेहरा ठीक रहे। जब वहाँ जाते हैं तो अपने आपको सभ्य, शिष्ट, शालीन, समझदार बनाकर प्रस्तुत करते हैं।

यह तो आप किसी एक देश के राष्ट्रपति से मिलने जा रहे हैं तब आपकी यह हालत है। ब्रह्माण्डों के नायक से मिलने जा रहे हों तो क्या उस समय तैयार होकर नहीं जाओगे, अपना मन बना करके नहीं जाओगे? उस समय तो उमंग पूरी होनी चाहिए - अपने राजा से मिलने जा रहे हैं, दुनिया का सबसे बड़ा राजा। दुनिया का राष्ट्रपति तो पता नहीं खुश होगा या नहीं किन्तु मेरा राजा अगर मन गया, सब कुछ मिल जायेगा, फिर माँगने की ज़रूरत नहीं है, सब कुछ जानता है वह। बहुत सुन्दर बन कर जाना, अच्छे वस्त्र पहनकर जाना, मिलने की उमंगे बनाकर जाना। उसको कुछ प्रभाव में डाल सको ऐसा कुछ तरीक़ा अपना करके जाना कि एक बार ब्रह्माण्ड के उस सम्राट पर अच्छा प्रभाव पड़े। एक बार यह तो एहसास दिला दो कि प्रभु, तू मेरा है और मैं तेरा हूँ। हमारा रिश्ता तो सदा का है, ऐसी तैयारी करके जाईए, नित्य का नियम बना करके हाज़िरी देना। हो सकता है कभी ऐसी बात हो ही जाये कि राजा कहे कि अब वहाँ कंगाल बस्ती में रहने की ज़रूरत नहीं, अब तू मेरे राजमहल में ही रह। जो मेरा है, वह सब तेरा ही तो है। एक बार अगर उसने अपना लिया,

फिर कुछ पाने की, सोचने की स्थिति बचेगी नहीं। इसीलिए आप उसे पूरी समग्रता से अपना बनाने के लिए चलो। अनन्य चित्त लेकर जाओ।

मंत्री से मिलने जायेंगे या राष्ट्रपति से मिलने जायेंगे तो आपका पूरा ध्यान उनकी तरफ़ है। परमात्मा से मिलने जाओ पूरा ध्यान आपका परमात्मा में ही होना चाहिए। हमारे मानने में, भावनाओं में कमी है। अगर हमारी भावना और हमारा मानना दोनों ही ठीक हो जायें तो वह समय ऐसा होगा कि जब आप उसके मन्दिर में, ध्यान में प्रवेश कर गए तो संसार का ध्यान कभी भी नहीं आयेगा। क्योंकि अगर आपके मन में परमात्मा का आकर्षण है तो ध्यान उसी का होगा संसार का नहीं होगा। यह निश्चित है। हम लोग तो एक मिनट में उसको अपना बना लेना चाहते हैं, एक मिनट में ही सब कुछ मांग करके वहाँ से निकल जाना चाहते हैं। बाकी काम भी बता कर कहते हैं कि यह सब काम आपने करने हैं, याद रख लेना भगवान! ज़रा सोचिए कैसी स्थिति है हमारी? और फिर कितनी जल्दबाज़ी। राष्ट्रपति से मिलने जाओगे तो वह आपका नौकर तो है नहीं कि वह आपका इन्तज़ार करे। इन्तज़ार तो आपने ही करनी है। फिर वहाँ जाकर आप क्या जल्दबाज़ी दिखाएंगें? राष्ट्रपति जी मेरे पास दो मिनट का टाइम है आज ज़रा जल्दी में हूँ, काम बहुत सारे हैं। वहाँ आप कोई जल्दबाज़ी नहीं दिखाएंगें। लेकिन भगवान के सामने जल्दबाज़ी दिखाते हैं। इसका मतलब आपने महत्त्व समझा ही नहीं। सतत्, निरन्तर ध्यान करना और चित्त को परमात्मा से जोड़ करके बैठना।

भगवान कहते हैं मैं तो सुलभ हूँ, मेरे मिलने में कोई देरी नहीं है, तेरे आने में देरी है। तू आ तो सही मैं तो तुझे पकड़ने को तैयार हूँ।

आगे फिर कहा - अर्जुन, उनकी गतियां होती हैं जो शुक्लपक्ष में अपना शरीर छोड़ते हैं, आत्मा को परमात्मा में बसाते हैं, जो मेरा ध्यान करते हुए इस संसार से जाते हैं। भगवान कहते हैं कुछ तो वह लोग हैं जो मुझमें समा जाते हैं अनन्त समय या सदा के लिए आनन्द में डूब जाते हैं फिर कोई अवधि नहीं है। कुछ के लिए अवधियां हैं। ब्रह्मा के एक दिन तक आनन्द भोगेंगे वह लोग जो योगी हो गए और संसार के आनन्द से ऊपर उठकर परमात्मा के आनन्द में लीन हो गए, भगवान में अपने आपको समर्पित कर दिया।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥

मानवीय गणना के अनुसार एक हज़ार युग मिलकर ब्रह्मा का एक दिन बनता है और इतनी ही बड़ी ब्रह्मा की रात्रि भी होती है। *शतं वै पुरुषः*- मनुष्य को भी सौ वर्ष की आयु दी गई है। लेकिन ब्रह्मा जी का एक दिन चार युग सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इनका एक हज़ार चक्र पूरा हो जाये तो ब्रह्माजी का एक दिन पूरा हुआ माना जायेगा। सतयुग की अवधि बड़ी होती है। सतयुग में माना जाता है कि जितने भी जीव मनुष्य जन्म लेते हैं उन सबके आनन्द की स्थिति इतनी होती है, उनमें धर्म अधिक होता है, पुण्य होता है, उत्साह, शालीनता चारों तरफ दिखाई देती है। उस समय धर्म ही धर्म होता है, अधर्म नहीं होता। त्रेता में जाकर कमी आ जाती है। एक पांव पाप का जम जाता है और तीन पांव का लंगड़ा धर्म उस समय रहता है। लेकिन द्वापर आते-आते स्थिति और ख़राब होती है। इस समय दो पांव पर धर्म खड़ा है और दो पांव पर पाप खड़ा हो जाता है। कलियुग की स्थिति ऐसी होती है, तीन पांव लेकर पाप खड़ा है और धर्म एक ही पांव लेकर टिका रहता है। उसके तीन पांव उखड़ चुके होते हैं। कलियुग को लम्बा समय नहीं दिया गया। कलियुग को सबसे छोटा माना गया। कलियुग का जो समय है वह चार लाख बत्तीस हज़ार साल का माना गया है। सतयुग सत्तरह लाख अट्ठाइस हज़ार साल का होता है, त्रेतायुग बारह लाख अट्ठानवे हज़ार वर्ष का होता है। सतयुग बड़ा, त्रेता उससे छोटा, द्वापर में आठ लाख चौंसठ हज़ार वर्ष होते हैं। यह त्रेता और सतयुग से छोटा है। सबसे छोटा है कलियुग जिसमें आप रह रहे हैं। इसको शुरू हुए लगभग पांच हज़ार दो सौ बाइस या तेइस वर्ष हो चुके हैं। कुछ लोग इस गणना को कुछ सौ दो सौ साल कम ज़्यादा करके आंकते हैं।

गणित का इतना बढ़िया हिसाब बैठता है। देखा जाये तो एक-एक सैकन्ड का भी हिसाब हमारे ग्रन्थों में लिखा हुआ है। अगर हम कलियुग को पांच हज़ार साल बीते मानते हैं तो समझ लेना अभी तो कुछ हुआ ही नहीं है। अभी तो बहुत देखेगा व्यक्ति इस संसार में। यह सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इसी तरह से एक हज़ार चक्कर लगा दे तो ब्रह्माजी का एक दिन मान लिया जायेगा कि एक दिन पूरा हो गया। इस तरह से सौ वर्ष तक ब्रह्मा जी का कार्यकाल

ं और इतने समय तक उस कार्यकाल का आनन्द आत्माएं लेती हैं लेकिन जिनकी परम मुक्ति होती है उन परम-मुक्ति वालों के लिए लौटने की स्थिति तो ही नहीं। वह तो परम आनन्द को ही भोगते रहते हैं। उनके लिए कभी यह नहीं कहा जा सकता कि कोई समष्टि वाली बात हो।

इतने ही समय तक प्रलय वाला क्रम फिर बनने वाला क्रम होता है वह ब्रह्मा जी की रात्रि मानी जाती है। ब्रह्माजी के दिन और रात्रि अलग-अलग हिसाब हैं। बहुत सारे लोग सोचते हैं कि बात विचित्र है ऐसा कैसे सम्भव है? भगवान ने सब जीवों के लिए, योनियों के लिए अलग-अलग आयु निश्चित की है। उनकी दिन-रात भी अलग-अलग बनाई है। आपको थोड़ा अजीब लगेगा लेकिन थोड़ा इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। बरसात के दिन वर्षा हो रही है। आपके देखते देखते बहुत सारे जीव एकाएक प्रगट हो जाते हैं जन्म लेते हैं और बरसात अभी हो करके हटी, बौछार पड़ी और समाप्त हो गई, इतनी देर में तेज़ धूप निकल आई। इसी के साथ वह जीव समाप्त भी हो जाते हैं।

कमाल यह देखिए इतनी देर में पैदा भी हुए मर भी गए। इतनी देर में उत्पन्न होने के साथ में स्कूल भी गए होंगे, पढ़े भी होंगे, उसके बाद उनके बच्चे भी हुए होंगे। शादी-ब्याह भी हो जाता है उसके बाद रिटायरमैंट भी उनको मिला, उनके बच्चे काम संभालने लगे, इतनी देर में उनकी समाप्ति भी हो गई, अर्थी भी चली गई। रामनाम सत भी हो गया। आप कहते हैं अभी तो बौछार ही बरसी थी। वह कहेंगे हम अपनी पूरी आयु भोग कर जा रहे हैं। आप कहेंगे क्या मज़ाक़ करके जा रहे हैं क्योंकि आपका दिन बड़ा है, उन बेचारों का बहुत छोटा है। लेकिन इतने में ही वह पूरा भोग लेते हैं।

अगर नहीं समझ में आता तो इस तरह समझिए - आपके घर के पास किसी कबूतर ने घोंसला बनाया। घोंसले में अण्डे दिए। उसमें से बच्चा भी निकला और एक-डेढ़ महीने में उसके पंख भी निकल आये और इसी एक-डेढ़ महीने में आपने देखा बच्चा उड़ने लायक़ भी हो गया। थोड़े से दिन और बीते, वह उड़ा और अभी दो दिन-चार दिन और ज़्यादा दिन बीते उसका विकास भी हो गया है और कुछ समय के बाद आप देखते हैं कि उसका भी एक घोंसला बन गया है।

आपका बच्चा बीस-पच्चीस साल में जाकर विवाह के योग्य होता है। कबूतर का बच्चा बीस-पच्चीस दिनों में ही उस स्थिति में पहुँच जाता है। उसके पंख मज़बूत हो जाते हैं और वह उड़ने की स्थिति में आ जाता है। ज़रा सोचकर देखिए - हम जिस भी प्रकार से अपनी काल-गणना करते हैं यह काल गणना में हमें लगता है कि सौ साल बहुत कम होते हैं। कबूतर तो पांच-सात साल में अपने जीवन का कार्यकाल पूरा करके चला जाता है। कुछ ऐसे जीव हैं जो एक-दो दिन में आयु भोग कर जाते हैं। कुछ ऐसे जिनको आप दो-चार साल में कहेंगे आयु पूरी करके जाते हैं। कहते हैं उत्तरायण में जो जाते हैं उनकी महान्गति होती है। जो दक्षिणायन में जाते हैं उनकी गति महान नहीं हो पाती। छः महीने का उत्तरायण है और छः महीने का दक्षिणायन। इसका मतलब छः महीने में मरते होंगे वह सब नरक में जाते होंगे और छः महीने में प्रकाश में जाते हैं। उन सबकी महान्गति होगी। उत्तरायण और दक्षिणायन का हिसाब-किताब समझिए कि जिन दिनों रात्रि बड़ी होती है वह दक्षिणायन है। जिन दिनों दिन बड़े हैं उन दिनों उत्तरायण है।

अब दूसरे ढंग से समझिए। जिनका मन अंधेरे से ज़्यादा भरा हुआ है और सात्त्विकता कम है, पाप में रूचि ज़्यादा है, समझना उनका दक्षिणायन चल रहा है और ऐसी स्थिति में जिनका शरीर छूटता है उनकी गति महान नहीं होती। लेकिन जिनके अन्दर सात्त्विकता अधिक है, सात्त्विकता बढ़ती जाती है और धार्मिकता इतनी कि हर समय धर्म में डूबे हुए हैं लेकिन अधर्म अनजाने से कभी हो जाता है समझना उनका उत्तरायण चल रहा है। ऐसे उत्तरायण में लोग जाते हैं उनकी परम् गति होती है।

शुक्लकृष्णे गति ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥

एक से तो दुनिया में व्यक्ति बार-बार आता है, कृष्ण-पक्ष में शरीर छोड़ता है तो बार-बार दुनिया में आता है। एक स्थिति ऐसी है कि जिससे फिर आना बार-बार नहीं होता। सीधा-सा भाव यही समझें। अन्तःकरण को इतना निर्मल, ऊँचा बना लिया जाता है कि हमारा ध्यान केवल परमात्मा सात्त्विकता और धर्म में लगा रहे। अन्तःकरण की ऐसी स्थिति में जब शरीर छूटेगा तो परब्रह्म को

ने का अवसर मिलेगा। इसीलिए यहाँ यह ध्यान रखना ब्रह्म सत्य है। सत्य को जीवन में स्थापित करना है।

भगवान महावीर ने सत्य के संबंध में कहा कि सत्य वह है जिसको कहने में, बोलने में वाणी में सरलता आ जाये और जिसके अपनाने से चेहरे में विकृति न आये, मनोभावों में सरलता हो, काया में सरलता हो; जिसके अपनाने से शरीर में विकृति नहीं आती वह सत्य है।

जब आप स्वाभाविक रूप से सच कह रहे होते हैं वाणी में आपके कोई दुराव-छिपाव नहीं होगा। बड़ी सरलता से कहते चले जायेंगे। सत्य कहने से शरीर में भी विकृति नहीं आती, चेहरा भी टेढ़ा-मेढ़ा नहीं होता, प्राणों पर भी चोट नहीं पड़ती। शरीर के अन्दर जो प्रक्रिया प्रवाहित है, वह भी पूरी तरह से सहज रूप से चलती रहती है।

जब झूठ कह रहे होते हैं तो एकदम इससे उल्टा हो जाता है। जब आप सत्य बोल रहे होते हैं तब आप अपने प्रभु से जुड़े हुए होते हैं। जब झूठ कह रहे होते हैं, तब अपनी शैतानियत से जुड़े हैं। तब तो टेढ़ापन आयेगा ही। इसीलिए सत्य से जुड़े रहो, सरलता बनी रहे, शान्ति बनी रहे और परम प्रभु के आनन्द से जुड़े रह सको।

जब शुक्ल पक्ष होता है तब चन्द्रमा रस बरसाता होता है वनस्पतियों पर। जिस समय कृष्णपक्ष होता है उस समय चन्द्रमा की रसधारा रूक जाती है। जब आप सात्त्विक हो गए हैं, साधना से जुड़े गए हैं तो समझो परमात्मा का चन्द्रमा आपके अन्दर भक्ति का अमृत बरसा रहा है और आप शान्ति से जुड़ गए हैं। जब आप कृष्णपक्ष से जुड़ गए तब आपके अन्दर टेढ़ापन आ रहा है, वक्रता आ रही है, बोलने में, व्यवहार करने में, टेढ़े-मेढ़े ढंग से चलने लगे हैं, कुटिलता अपना रहे हैं, चालाकी अपना रहे हैं तो गति नहीं होगी। मैं चाहूँगा शुक्लपक्ष हमारे जीवन में आ जाये जिससे जीवन की गति हो सके।

यह गीता का आठवां अध्याय था। आशा करूँगा इन सब पर आप लोग विचार करेंगे।

बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

अध्याय -आठ

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥

ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या ? और हे पुरुषोत्तम, कर्म क्या है? भूतों का (तत्त्वों का) क्षेत्र कौन-सा कहा जाता है? देवताओं का क्षेत्र कौन-सा कहा जाता है?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

हे मधुसूदन (कृष्ण), इस शरीर में यज्ञ का क्षेत्र (अंश) कौन-सा है और कैसे? फिर जिस व्यक्ति ने अपने आपको वश में कर लिया है, वह इस संसार से प्रस्थान के समय तुझको किस प्रकार जान पायेगा?

श्रीभगवानुभाव उवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

ब्रह्म (या परम) अनश्वर है, सर्वोच्च (अन्य सब वस्तुओं से उच्चतर) है। स्वभाव को ही आत्मा कहा जाता है। कर्म उस सृजनशील शक्ति का नाम है, जो सब वस्तुओं को अस्तित्व में लाने का कारण है।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥४॥

सब सिरजी गई वस्तुओं का आधार परिवर्तनशील प्रकृति है: दैवीय तत्त्वों का आधार विश्व की आत्मा है। और सब यज्ञों का आधार, हे शरीरधारियों में श्रेष्ठ (अर्जुन), इस शरीर में मैं स्वयं ही हूँ।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्तवा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

मृत्यु के समय जो कोई केवल मेरा ध्यान करता हुआ अपने शरीर का त्याग करके इस संसार से प्रयाण करता है, वह मेरे पद को प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), अन्तिम समय में मनुष्य जिस-जिस (अस्तित्व) की दशा का ध्यान करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह उसके ध्यान में सदा मग्न रहता हुआ उस दशा को ही प्राप्त करता है।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥७॥

इसीलिए तू सदा मुझे याद कर और युद्ध कर। जब तेरा मन और बुद्धि मेरी ओर एकाग्र रहेंगे, तो तू निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥८॥

हे पार्थ (अर्जुन), जो व्यक्ति निरन्तर अभ्यास द्वारा चित्त को योग में लगाकर उस परम पुरुष का ध्यान करता है, और अपने चित्त को कहीं भटकने नहीं देता, वह अवश्य ही उस दिव्य और सर्वोच्च पुरुष को प्राप्त करता है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥९॥

जो व्यक्ति उस द्रष्टा (कवि), उस पुरातन शासक का ध्यान करता है, जो कि सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और सबका धारण करने वाला है, जिसके रूप का ध्यान भी नहीं किया जा सकता और जो अंधकार से परे सूर्य के समान रंगवाला है;

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

जो व्यक्ति इस संसार से प्रस्थान के समय मन को भक्ति और योगबल से स्थिर करके और अपनी प्राणशक्ति को भौंहों के मध्य में भली भांति स्थापित करके वैसा करता है, वह उस दिव्य परम पुरुष को प्राप्त होता है।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

मैं संक्षेप में तेरे सामने उस दशा का वर्णन करता हूँ, जिसे वेद को जानने वाले अनश्वर (अक्षर) कहते हैं; वीतराग मुनि लोग जिसमें प्रवेश करते हैं और जिसकी कामना से वह ब्रह्मचर्य का जीवन बिताते हैं।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥

शरीर के सब द्वारों को संयम में रखकर, मन को हृदय में रोककर, प्राणशक्ति को मूर्धा (सिर) में स्थिर करके और योग द्वारा एकाग्र होकर;

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

और जो एक अक्षर ओ३म् (जो कि ब्रह्म है) का उच्चारण करता हुआ मुझे स्मरण करता हुआ अपने शरीर को त्याग कर इस संसार से प्रयाण करता है, वह उच्चतम लक्ष्य (परम गति) को प्राप्त होता है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

जो मनुष्य अन्य किसी वस्तु का ध्यान न करता हुआ निरन्तर मेरा ही स्मरण करता है, वह अनुशासित योगी (या वह, जो भगवान के साथ मिलकर एक हो गया है) मुझे सरलता से प्राप्त कर लेता है।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

मुझ तक पहुँच जाने के बाद वे महान् आत्माएं पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करती, जो दुःख का घर है और अस्थायी है, क्योंकि, वे आत्माएं परम सिद्धि को प्राप्त कर चुकी होती हैं।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

ब्रह्मा के लोक से लेकर नीचे के सब लोक ऐसे हैं, जिनसे फिर पुनर्जन्म की ओर लौटना होता है। परन्तु हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), मुझ तक पहुँच जाने के बाद फिर किसी को पुर्नजन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता ।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥

जो लोग इस बात को जान लेते हैं कि ब्रह्मा का दिन एक हज़ार युगों की अवधि का होता है और यह कि ब्रह्मा की रात्रि एक हज़ार युग लम्बी होती है, वह दिन और रात को जानने वाले व्यक्ति हैं।

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥

दिन के आने पर अव्यक्त से सब वस्तुएं प्रकट हो जाती हैं, और रात्रि के आने पर वह सब वस्तुएं फिर उसी अव्यक्त कही जाने वाली वस्तु में विलीन हो जाती हैं।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

हे पार्थ (अर्जुन), यह बार-बार उत्पन्न होने वाला अस्तित्वमान् वस्तुओं का समूह बिल्कुल बेबस-सा रात्रि के आगमन पर विलीन हो जाता है और दिन के आगमन पर फिर अपने अस्तित्व में प्रकट हो जाता है।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

परन्तु इस अव्यक्त से भी परे एक और अव्यक्त सनातन अस्तित्व है, जो सब अस्तित्वमान् वस्तुओं के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

यह अव्यक्त अनश्वर कहलाता है। उसे सर्वोच्च स्थिति कहा गया है। जो उसे प्राप्त कर लेते हैं, वे वापस नहीं लौटते। वही मेरा परम धाम (निवासस्थान) है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

हे पार्थ (अर्जुन), वह परम पुरुष, जिसमें सब भूत निवास करते हैं और जिससे यह संसार व्याप्त है, अनन्य भक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

हे भरतों में श्रेष्ठ (अर्जुन), अब मैं तुझे वह समय बताता हूँ, जिसमें इस संसार से प्रयाण करने वाले योगी फिर वापस नहीं लौटते और वह समय भी बताता हूँ, जिसमें प्रयाण करने वाले फिर वापस लौट आते हैं।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

अग्नि, प्रकाश, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण (जिन दिनों सूर्य, भूमध्य रेखा से उत्तर की ओर रहता है) के छः महीने - यह वह समय है, जिसमें इस संसार से प्रस्थान करने वाले ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म तक पहुँच जाते हैं।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

धुआँ, रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायन (जिन दिनों सूर्य भूमध्यरेखा से दक्षिण की ओर रहता है) के छः महीने - यह वह समय है, जिसमें प्रयाण करने वाले योगी चन्द्रमा की ज्योति प्राप्त करके वापस लौट आते हैं।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥२६॥

प्रकाशमय और अंधकारमय, संसार के यह दो मार्ग शाश्वत मार्ग समझे जाते हैं। एक से जाने वाला वापस नहीं लौटता, जबकि दूसरे से जाने वाला वापस लौट आता है।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

हे पार्थ (अर्जुन), जो योगी इन मार्गों को जान लेता है, वह कभी भ्रम में नहीं पड़ता। इसलिए हे अर्जुन, तू सदा योग में जुटा रह।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

यह सब जान लेने के बाद योगी वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तप और दान के पुण्य से प्राप्त होने वाले फलों के परे पहुँच जाता है और आदि तथा परम स्थान को प्राप्त करता है।

नवां अध्याय
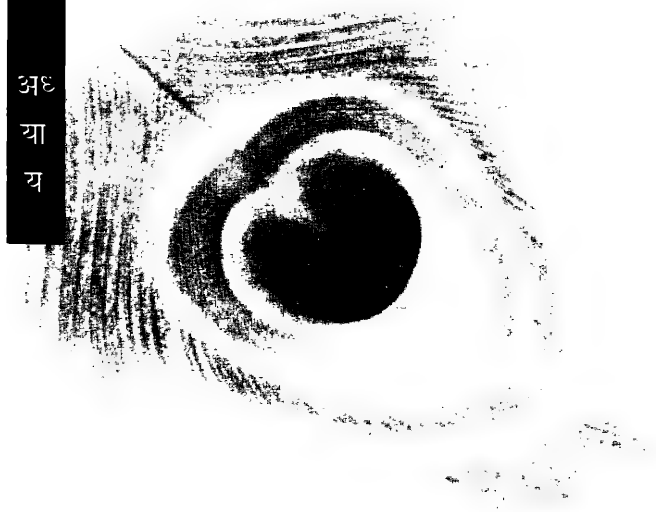
परमगुह्य ज्ञान

गीता का नवां अध्याय बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। इस अध्याय में भगवान श्री कृष्ण जो गुह्यतम् ज्ञान है, जिसको उन्होंने 'राजविद्या' कहकर के सम्बोधित किया, जिसे कहा कि यह परम ज्ञान है, उस ज्ञान को अर्जुन का माध्यम लेकर अर्थात् अर्जुन को सम्मुख रखकर भगवान श्री कृष्ण ने सारे संसार के लिए यह ज्ञान दिया। भगवान सम्बोधित करते हैं-

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

अर्जुन के लिए कहा कि तू इस गुह्यतम् ज्ञान को मुझसे सुन, मैं तेरे लिए इसको कहूँगा। यह ज्ञान विज्ञान सहित रहस्यमय ज्ञान मैं तुझे दे रहा हूँ। इसको जानने के बाद समस्त दुःखों से तुम छूट सकोगे और मोक्ष को प्राप्त कर सकोगे। ज्ञान और विज्ञान से युक्त ज्ञानमय वचनों को, सम्बोधन को, भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के लिए कह रहे हैं। यह भी कहा कि यह गुह्यतम् है, छिपाने में जिसको कहा जाए कि उससे बढ़कर, छिपाकर रखे जाने वाली चीज़ कोई नहीं है, जिसको बड़ा सुरक्षित रखा गया था, जिसे बड़ा सम्भाल कर रखा गया था, उस ज्ञान को मैं तुम्हें दे रहा हूँ।

भगवान सम्बोधित करते हैं कि आठ अध्यायों तक ज्ञान सुनने के बाद तुम्हारे अन्दर जो विशेषता आई है उस विशेषता का एक रूप यह है कि तुम दोष-दृष्टि रहित हो गए हो, *अनसूयवे*-अर्थात् वह व्यक्ति जो निन्दा से रहित है, आलोचना से रहित है, जिसमें किसी भी प्रकार का छल कपट नहीं रहा, ऐसा व्यक्ति जो समस्त प्रकार के उन कृत्यों से बच गया जिनका कार्य लगातार दूसरों को चोट पहुँचाना है, उस स्थिति से जो बच गया, जिसका मन हर जगह के गुणों को ग्रहण करने का हो गया, *अनसूयवे* - दोष दृष्टि से रहित मन वाले अर्जुन अब मैं तुझे गुह्यतम् ज्ञान दूँगा।

यहाँ समझने की बात है - ज्ञान टिकेगा ही वहीं, भक्ति टिकेगी ही वहीं जहाँ यह गुण आ जाये जो अर्जुन ने प्राप्त किया। अर्जुन में सरलता है, सहज

है, जिज्ञासा भावना भी है, समर्पण भी है, यह सब होने के साथ भी एक क
रह गई थी – दोष दृष्टि थी। अब भगवान ने सम्बोधन दिया कि तुम दोष-दृ
से रहित होकर आए हो।

किसी भी बगीचे में आप जाईये, वहाँ फूल भी होंगे तो कांटे भी ह
संसार में कहीं भी जाईये, किसी भी चीज़ को देखिए, किसी भी व्यक्ति
पास आप रहिये, सारे गुण गुण नहीं हो सकते; कहीं न कहीं, कोई न क
ऐसी चीज़ होगी ज़रूर जो पसन्द नहीं आयेगी। व्यक्ति उसी को दोष मान
है जो हमारे अनुकूल नहीं पड़ता, जो प्रतिकूल पड़ता है वह दोष और ज
अनुकूल पड़ता है वह गुण। उससे भी बड़ी एक विचित्र बात है कि जहाँ हम
राग बसा हुआ है, जिसके प्रति बहुत लगाव है, उसके दोष भी नहीं दिखाई
गुण दिखाई देते हैं; जहाँ बैर बसा हुआ है उसके गुण नहीं दिखाई देते, उस
सारे दोष ही दिखाई देते हैं। कहा- अर्जुन,अब तू राग और द्वेष से रहित हो ग
है, इसीलिए सब तेरे लिए एक जैसे ही हैं, द्वेष-दृष्टि से रहित हो गया है
इसीलिए तेरे लिए रहस्यमय ज्ञान दूँगा। अब मैं तुझे बताऊँगा क्योंकि तेरे अन्द
पात्रता देख रहा हूँ असूया रहित, निन्दा से रहित हो गया।

किसी भी प्रकार की निन्दा, दोष, उसका एक प्रभाव मन पर ज़रू
पड़ता है। जिन चीज़ों का ध्यान हम रात दिन करेंगे वह हमारे मन को पकड़ें
ज़रूर। किसी के दोष देखते-देखते उसके दोष तो हम दूर कर नहीं पाये लेकि
स्वयं ज़रूर दोषी हो जायेंगे।

कई बार देखने में आया है कि जो सुरक्षा कर्मी अपराधियों के बीच
अपराध की रोकथाम के लिए लगे रहते हैं, कभी-कभी वह उनसे बात-चर्
करते-करते ऐसी स्थिति में भी आ जाते हैं कि देखने में आया कि वह
लिप्त हो गए और बाद में उन्हें भी गिरफ्तार करके वहीं खड़ा किया जाता है
और उन्हीं के दूसरे भाई गिरफ्तार करने वाले होते हैं। रात-दिन चर्चा वही रह
न। निन्दा, दोष यह सब करते-करते यह बात निश्चित है कि मन उसे पकड़ेग
गुण ग्रहण करते-करते यह भी निश्चित बात है कि यह जीवन में गुण आये
ही, कभी न कभी, किसी न किसी रूप में अन्दर गुण बैठ जायेगा, धर्म बैठ
जायेगा।

देखने में आया है कि जो लोग सत्संग को दूर से भी सुनते रहे, कान में शब्द पड़ते रहे, एक न एक दिन संस्कार प्रभाव कर गया, खींचकर आकर बैठ गया। फिर लोगों ने देखा कि अब वह सत्संग से, भक्ति से युक्त हो गया; सब पीछे रह गए, वह व्यक्ति आगे आकर खड़ा हो गया। वह भी लोग देखे हैं सत्संगों में, धर्मस्थलों में चलते-चलते आदत पड़ गई है दोष निकालने की, चलते-चलते उन्हीं में जाकर खड़े हो गए जहाँ सब जगह का कूढ़ा-कचड़ा था।

भक्ति के लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण विषय है यह- दोष से युक्त हो या रहित हो। कहते हैं न- जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि - दृष्टिकोण जैसा बन जाता है फिर वैसी ही दुनिया आपके लिए बन जाती है। जुआरी जुआ खेलने वालों को ढूँढ लेगा, शराबी शराबियों को ढूँढ लेगा, नशेबाज़ नशेवालों को देखेगा, जेब कतरे जेब कतरों की संगति में बैठ जायेंगे जाकर और कोई भी व्यक्ति जिसके अन्दर सत्संग का रंग चढ़ा हुआ है, किसी भी शहर में जायेगा वहाँ कहाँ सत्संग होता है यह ज़रूर जाकर खोज लेगा क्योंकि सत्संग उसे खींच रहा होगा, उसकी पूरी कोशिश होगी कि उन्हीं का संग मिले, उन्हीं की मण्डली में जाकर बैठें जिनके नज़दीक जाकर बैठने से रंग पैदा होता है।

भगवान ने कहा कि तू दोष-दृष्टि से रहित है इसीलिए मैं तुझे यह गुह्यतम ज्ञान दे रहा हूँ और यह ज्ञान, यह विद्या, ज्ञान-विज्ञान से युक्त है। अर्जुन, तम इसके माध्यम से- ***यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्***-समस्त प्रकार की अशुभ चीज़ों से, दुःख देने वाली चीज़ों से तुम अवश्य छूट जाओगे, मुक्त हो जाओगे, इसीलिए मैं तुझे यह गुह्यज्ञान दे रहा हूँ। भगवान ने आगे कहा-

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

यह राजविद्या है, राजगुह्य है, यह पवित्र है और उत्तम है, प्रत्यक्ष में ही कल्याण करने वाली है, *धर्म्यं* - और यह धर्म्य विद्या है। इस राज विद्या को जो अत्यन्त सुख करने वाली है, इसको मैं तेरे लिए दे रहा हूँ, सदा रहने वाला ज्ञान, सदा कल्याण करने वाला ज्ञान तुझे दे रहा हूँ।

यहाँ फिर वही प्रश्न आयेगा - भगवान ने कहा राजविद्या दे रहा हूँ, भगवान ने यह कहा कि मैं तुम्हें *राजगुह्यम* - अब तक जिसको छिपा कर रखा

और साधारणतय: गुरु शिष्य को यह ज्ञान देते नहीं। जब देख लेते हैं कि द्वेष-दृष्टि से रहित होकर, निकटता को जब शिष्य प्राप्त कर लेता है तब गुरू इस ज्ञान को देता है।

भगवान श्रीकृष्ण गुरु हैं - ***कृष्णं वन्दे जगत्गुरुं*** - जगत के गुरु हैं। अब वह ज्ञान देने लगे हैं अर्जुन को कि तुम्हें मैं यह ज्ञान दे रहा हूँ और यह ज्ञान साधारण नहीं है, यह राजविद्या है, इस राजविद्या को मैं तुम्हारे सम्मुख रख रहा हूँ; अर्जुन, तुम दु:ख से छूट सकोगे और यह भी जानना कि इससे बढ़कर पवित्र कुछ भी नहीं है, यह पवित्रों से भी पवित्र है, इससे उत्तम कुछ भी नहीं है।

चिन्तन कीजिए- संसार में जितना भी धन है उसको समाप्त किया जा सकता है या उसके समाप्त होने की एक सीमा रेखा है लेकिन विद्या का धन न लूटने से लूटा जा सकता है, न चुराने से चुराया जा सकता है, न दबाने से यह दबता, खर्च करने से लगातार बढ़ता है, विद्या के अन्दर यह विशेषता है लेकिन कहा कि विद्या तरह-तरह की हो सकती है लेकिन विद्या श्रेष्ठ वही है जिसको जानने के बाद व्यक्ति परम तत्त्व को जान लेता है। परमतत्त्व को जानने के लिए जिस विद्या को राजविद्या कहा है, भगवान ने कहा वह मैं तुम्हें देने लगा हूँ, यह उत्तम है, पवित्र है, इसके आते ही, अन्तर में प्रतिष्ठ होते ही पवित्रता आने लगती है। कहा कि यह प्रत्यक्ष रूप में कल्याण करने वाली विद्या है।

किसी आदमी को बताया जाये, इस रोग से यह हानियाँ होंगी, इस-इस तरह से कष्ट पहुँचेगा, यह रोग लगता कैसे है यह भी बता दिया जाये। आदमी अगर समझदार है, ठीक से जानकारी हो गई फिर व्यक्ति उस रोग को अपने अन्दर लगने नहीं देगा। पूरा पता लग जाए इस ज़हर को या इस आग को छूने से तुम्हें हानि होगी व्यक्ति वहाँ नहीं जायेगा; जानकारी हो गई और जानकारी भी केवल इतने में नहीं कि सुन लिया, उदाहरण सामने प्रस्तुत कर दिया दिखा दिया - देखो, यह लोग हैं, इनकी हालत ऐसी हुई और फिर कहा कि ऐसे नहीं, तड़पते हुए इन्सान में अपनी आत्मा को बसाओ और महसूस करो कि तुम तड़प रहे हो। व्यक्ति ने वैसा करके देख लिया, अब अपने आपको एहसास करा दिया, अब उसको ज्ञान पूरी तरह से मिल गया कि ऐसा करने से इतना

कष्ट होगा, इस रोग से इतनी परेशानियाँ होंगी तो ज्ञान पूरा हो गया उसका। अब वह कभी उधर नहीं जायेगा, बच गया। जब तक सम्पूर्ण रूप से हमें जानकारी नहीं होती, तब तक हम कष्ट भोगते हैं; जानने का मतलब ही है कि छूट जाना और अगर अधूरा ज्ञान है तो व्यक्ति क्या कहेगा - खुद अनुभव करके देखता हूँ। खुद अनुभव करने के चक्कर में वह अनुभव आ पायेगा, नहीं आ पायेगा, समय भी खराब होता है, ज़िन्दगी भी दावं पर लगती है, व्यक्ति कहता है खुद का अनुभव खुद का होता है, दूसरे का अनुभव दूसरी तरह का हो सकता है। बात इतनी ही तो है कि आग में हाथ डालने से हाथ जलेगा तो ज़रूर लेकिन किसी को जरा ज़्यादा पीड़ा होगी, किसी को थोड़ी होगी क्योंकि अलग-अलग हिसाब है- किसी की सहनशक्ति थोड़ी कम होती है, किसी की ज़्यादा होती है. कोई आदमी चिल्लाता हुआ पूरे मोहल्ले को बतायेगा हाथ जल गया, एक आदमी वह है जो खुद ही घर में भी किसी को नहीं बतायेगा, अपने आप पीड़ा भोगता रहेगा लेकिन पीड़ा तो अपनी जगह रहेगी। तो तजुर्बा करने से आप आग में हाथ डालने से ही यह अहसास करें कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है तब जाकर तजुर्बा हो? नहीं, दूसरों को देखकर के अनुभव कर लो और जब अनुभव हो जाए तो फिर व्यक्ति उससे बचता है।

भगवान ने कहा कि मैं तुझे एहसास कराऊँगा। अब तू समस्त अशुभ से, दुःख से छूट सकेगा और अपना कल्याण कर सकेगा क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से कल्याणकारी है यह ज्ञान।

कहा कि यही धर्ममय है - *धर्म्यं सुसुखं* - यह स्पष्ट रूप से, अच्छे रूप से सुख करने वाला ज्ञान है, इस अव्य ज्ञान को, सुरक्षित रहने वाले ज्ञान को, नष्ट न होने वाले ज्ञान को, कल्याणकारी ज्ञान को मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

भगवान ने फिर बताया-

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

कहा कि जो श्रद्धा रहित लोग हैं, जिनके अन्दर श्रद्धा नहीं है, वह लोग, हे परंतप अर्जुन, इस धर्म को या श्रद्धा रहित लोग इस ज्ञान को जान नहीं पाते, मुझे वह प्राप्त नहीं कर पाते, संसार में दुःख भोगने के लिए फिर से भटकते हैं समझिये कि जो श्रद्धावान हैं वही तो प्राप्त करेंगे। पहले भी कहा -

श्रद्धावान लभते ज्ञानं - जो श्रद्धावान है वही ज्ञान को प्राप्त करेगा, ज श्रद्धारहित है उसको प्राप्ति नहीं होगी।

कहा कि मैं तुम्हें गुह्यतम ज्ञान दे रहा हूँ, यह ज्ञान प्रत्यक्ष रूप *कल्याण करने वाला है,* यह पवित्र ज्ञान है, इससे बढ़कर कुछ भी नहीं लेकिन यह भी एक स्पष्ट बात है कि श्रद्धा वाला व्यक्ति ही इससे ला उठायेगा, श्रद्धा रहित व्यक्ति लाभ नहीं उठा सकता। यहाँ दो चीजें ध्यान दे की हैं - दोष दृष्टि वाला व्यक्ति और श्रद्धारहित व्यक्ति भक्ति में गति प्रा नहीं कर सकता, गति उन्हीं की होगी, भक्ति में वही चल पायेंगे जिनकी दो दृष्टि न हो, कल्याणकारी मन हो और श्रद्धा वाला मन हो।

भगवान ने कहा कि जो श्रद्धारहित है वह संसार में भटकेगा बार-ब आयेगा और जिनके अन्दर श्रद्धा है वह ज़रूर छूट पायेंगे, मोक्ष से उनकी मुक्ति होगी। अब थोड़ा-सा विचार करना - श्रद्धा सम्पति है, श्रद्धा आधार है, श्रद्धा ही वह प्रकाश है जो भगवान की तरफ ले जाने में हमारा सहायक बनता है श्रद्धा यदि माता-पिता के प्रति है तो सेवा भावना बहुत रहेगी, खूब सेवा करेग व्यक्ति; श्रद्धा नहीं है तो माता-पिता की सेवा भी नहीं, दुत्कार भी सकता है घर से बाहर भी कर सकता है और श्रद्धा है तो फिर मन श्रवण कुमार है - अपनी जवानी लगा दी माता-पिता की सेवा में, अन्धे माता पिता, संसार मज़ाक उड़ा रहा है और श्रवण कुमार क्या कहता है - न जाने इन अन्धे माता पिता ने कैसे मुझे पाल पोस कर लायक बनाया; इनकी आँखें मैं हूँ, इनकी शक्ति मैं हूँ, मैं हूँ इनका संसार, मैं इन्हें ले चलूँगा सारे संसार में इनको तीर्थ कराऊँगा इनकी मुक्ति हो सके यह कोशिश करूँगा।

श्रद्धा मन में है तो श्रवण कुमार सारे तीर्थों पर माता-पिता को लेकर चल पड़ा और ऐसा भी स्थान आया जहाँ श्रद्धा नहीं रही श्रवण कुमार को, ए स्थान से होकर निकला और माता-पिता के कॉवड को ऐसे स्थान पर रखकर के छोड़कर भाग गया। अब कुछ लोग कहते हैं कि यही यमुना का किनारा रहा होगा, कुछ लोगों ने कहा कि शायद वह यही दिल्ली के आसपास का इलाका था, कॉवड रखकर के श्रवण कुमार भाग गया था यहाँ से।

किसी बुजुर्ग ने देख लिया, दूर से ईशारा किया - रुक भाई, माता-पिता को छोड़कर भाग जाना चाहता है? भाग जाना, कोई बात नहीं बस यहाँ से ए

योजन दूर तक माता-पिता को लेकर जा, उसके बाद छोड़कर भाग जाना और कहते हैं कि उसके बाद श्रवण कुमार एक योजन चलकर उसका मन बदल गया। पानी पीकर हवा बदली, स्थान बदला, परिवेश बदला, परिस्थति बदली, फिर से श्रद्धा जागी, फिर चल पड़ा लेकर।

न जाने कितनी बार ऐसा होता है - कोई स्थान, कोई व्यक्ति, कोई परिस्थिति, कोई स्थिति जीवन में ऐसी आती है श्रद्धा का अंकुर जो पैदा हुआ था वह मिट जाता है, सूख जाता है और उस समय फिर व्यक्ति छोड़कर भागने लगता है - किस चक्कर में फँस गए हम! और अचानक फिर श्रद्धा अंकुरित हो जाए तो व्यक्ति की शक्ति पहले से चार गुण नहीं दस गुणा बढ़ जाती है और फिर तेज़ी से आगे बढ़ने लग जाता है।

भगवान से इसीलिए भी हमेशा यही प्रार्थना करना - हे प्रभु! संसार में कुछ भी चीज़ जो आपने मेरे लिए जो दी हो कम हो जाए मुझे परवाह नहीं होगी, करना चाहो तो कम कर देना, सम्पत्ति कम करना, भूमि जितनी दी उसमें से कम करना चाहो कम कर देना, मकान - पाँच कमरे दिये हुए हैं, एक कमरा वापिस ले लेना, चार ही देना कोई बात नहीं, रुपये पैसे- लाखों रुपये अगर दिये हों - दस दिए हों तो एक आधा अगर कम करना चाहो तो या दो लाख कम करना चाहो तो कम कर देना, फिक्र नहीं है लेकिन श्रद्धा कम नहीं कर देना, अगर श्रद्धा कम हो गई तो मेरा परमात्मा का दरबार ही छिन जायेगा, तब तो सब कुछ ही बरबाद हो जायेगा इसीलिए मेरी श्रद्धा, मेरा विश्वास, मेरी भावनायें कम न हों।

पूरी खीर में एक बूँद ज़हर की उसे बेकार कर देती है, पूरे दूध में एक बूँद नींबू की उसे फाड़ के रख देती है। अश्रद्धा का एक बीज पूरे मन की स्थिति को तोड़कर रख देता है और आनन्द यही है, हमेशा रहा- परीक्षा लेने के लिए स्थितियाँ बनेंगी, बनती रही हैं।

कबीर साहब के सम्मुख ऐसे व्यक्ति आकर खड़े हो गए - कुछ ने तो बयान किया कि ऐसी स्थिति हुई थी कि कलयुग परीक्षा लेने के लिए सामने आकर खड़ा हो गया और यह कह दिया कि मैं चाहूँ तो आपको सारे संसार से झुका सकता हूँ और यह भी स्थिति कर सकता हूँ अकेले खड़े रह जाओगे। कबीर ने दुतकार कर के भेज दिया कि भाग जा यहाँ से, संसार आये

या जाये मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। हाँ, कर्तार मेरे पास रहना चाहिए. परमात्मा मेरे साथ रहना चाहिए। मुझे इसकी आवश्यकता है; चाहे संसार या चला जाये। अगर परमात्मा मेरे साथ है और उसका हाथ मेरे ऊपर है सब कुछ मेरे पास है।

लेकिन भारत देश की कथाओं में यह प्रचलित है कि कबीर के कलयुग भयंकर रूप लेकर खड़ा हो गया। तीन-चार तरह के लोग प्रस्तुत दिए गए,अलग-अलग रूप लेकर के तीन-चार लोग आ गए।

एक ने कहा- 'मांस जो हमारे यहाँ से खरीदा था उसके पैसे नहीं दि

एक ने कहा - 'शराब रोज पीते रहे हो, मुझे तो अब पता लगा तुम ही मुफ्त पी जाते हो, पैसे नहीं देते हो।'

कोई महिला भी आकर खड़ी हो गई और सुना जाता है कबीर के सन्निध्य में बैठकर सुनने वाले और आनन्द लेने वाले लोग क्योंकि कि को जानने की तो फुर्सत है ही नहीं, सोचने की तो ज़रूरत ही नहीं है, दिया गया इसीलिए ज़रूर कुछ न कुछ बात होगी। भाग गए। अश्रद्धा की बूँद पूरे दूध में डाल दी गई।

कबीर बैठे रहे, तमाशा देखते रहे, कोई बात नहीं। पाँच-दस शि जिन्होंने यह निश्चय किया हुआ था कि एक बार परख लिया अब कहीं ज नहीं, यहीं परमात्मा अपनी लीला दिखायेगा वह बैठे रहे, बाकी भाग गए।

कबीर अकेले बैठे हुए शाम को ध्यान कर रहे थे। कलयुग उनके प आया - 'क्यों बाबाजी! आनन्द आया? हम कैसा रूप लेकर के आए, कै भाषा लेकर के आए, कैसा तुम्हारा हिसाब कर दिया हमने। अब बताओ।'

कबीर ने कह दिया - 'भजन में बाधा मत डाल

अपनी ताकत पूरी तरह लगाकर अपना काम करता रह।'

कलयुग कहता है - नहीं एक बात बताऊँ! इन लोगों को फिर से वाप मोड़ सकता हूँ मैं; देर नहीं लगने वाली।'

कबीर ने कहा - 'कोई आए, कोई जाए, संसार का मनोरन्जन करने लिए हम नहीं खड़े हुए हैं, हमने गाना है तो करतार के लिए और मनाना तो परमात्मा को। रही पागलों की बात, जिसने लाभ लेना होगा आयेगा; जिस नहीं लेना होगा अपने घर बैठेगा।'

और विचित्रता देखिये - कलयुग हँसकर के गया और कहने लगा - 'हमारी भी महिमा है, हम भी अपनी महिमा दिखाते हैं।'

अगले दिन कलयुग कोढ़ी का रूप लेकर के आ गया। दस पन्द्रह ही लोग बैठे होंगे, कबीर साहब उन लोगों के बीच कुछ बोल रहे थे और यह कोढ़ी का रूप धारण करके कलयुग, पाप कहिये, चिल्लाने लगा - 'बाबाजी, बहुत दूर से नाम सुना, न जाने कितने आपकी छाया से ठीक हुए हैं, मुझे भी पता लगा है, आपका हल्का-सा साया भी मेरे ऊपर पड़ जाये मेरा तो कल्याण हो जायेगा।'

कबीर ने ईशारा किया कि दूर रहना लेकिन वह नज़दीक आया; बोला- 'पानी के दो छींटे मार दो, मेरा कल्याण हो जायेगा।'

कबीर तो अपनी मुद्रा में बैठे रहे। सामने रखे हुए बर्तन को किसी तरह से उसने गिरा दिया और उसी पानी को कोढ़ी अपने ऊपर लगाते हुए बोला- कि देखो भाईयो देखो, एकदम ठीक हो गया मैं, (उसका अपना ड्रामा था न) उसने कहा - 'देखा, एकदम ठीक हो गया न मैं। अरे इस युग में ऐसा चमत्कारी व्यक्ति मिल सकता है कोई? एक ही व्यक्ति है इस संसार में, अकेला व्यक्ति, इसको परखने वाला दुनिया में कोई विरला ही होगा। मैंने परख लिया है, अपना कल्याण कर लिया है।' ऐसा कहकर के चला गया वह।

अब पूरे शहर में बात फैल गई। दुनिया के लोग आ गए। पहले तो थोड़े लोग थे, अब तो हज़ारों लोग आकर खड़े हो गए। शाम के टाईम में कलयुग फिर आया और आकर कहता है - 'बाबाजी, आनन्द आया? पूरे शहर में आपकी चर्चा है। हम चाहें कुछ भी कर सकते हैं।'

कबीर ने कहा- 'जो तेरी तरफ़ देखता है न और तेरे हथकण्डों से चलता है, निश्चित बात है कि वह भक्ति से तो दूर हो जाता है, कर्तार से तो दूर हो जाता है लेकिन जिसका ध्यान परमात्मा में बसा रह जाता है उसके लिए तो चाहे एक हो या अनेक हों, उसके लिए तो परमात्मा ही एक होता है, उसके लिए परमात्मा की कृपा होती है।'

और एक बात ध्यान रखना - गुरु का बिगाड़ा, दुनिया में कोई सुधार नहीं सकता। हमारा आशीर्वाद कल्याण करेगा और हम आशीर्वाद के सिवाय कुछ दे भी नहीं सकते क्योंकि हृदय में परमात्मा है न इसीलिए सबके लिए

मंगलकामना ही करनी है, सबके कल्याण की ही कामना करनी है। संसार में श्रद्धा रहित और श्रद्धा वाले दोनों तरह के लोग दिखाई देते हैं लेकिन श्रद्धा वाला तो अपनी यात्रा ठीक ढंग से पूरी कर जायेगा, अश्रद्धा वाले व्यक्ति के लिए कहा कि इस संसार में मृत्यु को, दुःख को, कष्ट को, बार-बार भोगेगा- अर्जुन, उसका कल्याण नहीं हो सकता। द्वेष-दृष्टि से रहित हो तुम इसीलिए तुम्हें ज्ञान देता हूँ और तुम्हें यह भी कहता हूँ क्योंकि तुम श्रद्धा वाले हो इसीलिए तुम प्राप्त कर सकोगे। जो अश्रद्धा वाला है वह अपने भाग्य को खराब करता है।

भगवान ने कहा - अर्जुन, तुम्हें बताता हूँ -

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥

- इस संसार में जितने भी प्राणीमात्र हैं वह सभी प्राणी एक दिन - जब इस कल्प का, सृष्टि का अन्त होता है - तो अपनी अपनी समस्त जितने भी भूत हैं - यह पांच भूत - *सर्वभूतानि* - पांच महाभूत अपनी प्रकृति वाली स्थिति में पहुँच जाते हैं - *कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्* -सृष्टि का जैसे ही अन्त होता है, सारी चीज़ें मुझ में ही समाहित हो जाती हैं, मैं फिर से उनका सृजन करता हूँ। तुम यह महसूस करना कि मैं ही वह हूँ जो इस सारे संसार की संरचना करता हूँ और फिर अपने प्रकृति वाले रूप में सबको समाहित करने के बाद, जैसे सृष्टि की संरचना फिर से होगी, फिर वही प्राणी प्रकट होने लगता है। वह ही भूत - पांच महाभूत - फिर संसार में संघात बनकर, संयोग बनकर, इस सृष्टि का रूप धारण करके आते हैं। यह जल, अग्नि, वायु, धरती, आकाश आदि इन तत्वों के द्वारा यह जो संसार बना है, बाद में यही सब कुछ सिमटकर प्रकृति के वास्तविक रूप में पहुँच जाता है।

ज़रा सोचकर देखिये - हर चीज़ ज़र्रा-ज़र्रा बनकर उड़ती है आसमान पर। उस एक ज़र्रे के एक कण के भी अनके कण बनते हैं, उन कणों का भी परमाणु बनता है। परमाणु का भी आगे चलकर, पहले कहा जाता था तीन हिस्से, अब कहा जाता है दस हिस्से हो गए हैं उसके, सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण करती है हर चीज़ और शास्त्रों में तो ऐसा लिखा है परमाणु वह है जिसकी कल्पना से भी जिसको खण्डित न किया जा सके, टुकड़े न किए जा

नकें। तो हर चीज़ सूक्ष्म रूप में पहुँचती है, वह सूक्ष्म रूप अन्तिम समय में आकर प्रकृति का रूप होता है जिसके लिए शास्त्रों में अलग तरह से उल्लेख है, उपनिषदों में अलग तरह से उल्लेख है, वेदों में अलग है।

उस समय जब यह सृष्टि विकृत रूप में हो जाती है, प्रकृति के रूप में चली जाती है, प्रलय की अवस्था में जब चली जाती है, उस समय सत होता न असत होता, उस समय कहा जाता है एक कोहरा जैसी स्थिति होती है- न प्रकाश है न अन्धेरा है, जैसे धुंध छाई हुई है, धुंध में जैसे सब खो गया है, ऐसे ही सारा संसार - यह सूरज, यह धरती, यह चाँद, यह नदियाँ, यह पहाड़, यह सब कुछ ज़र्रा-ज़र्रा बन जाता है, कण-कण बन जाता है। कण भी ऐसा कि इन कणों का भी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म रूप अर्जुन को बताया भगवान कृष्ण ने यह अपनी प्रकृति में आकर सब समाहित हो जाता है। इस सबका चूरा करने के बाद मैं फिर से इसकी सृजना करता हूँ।

ज़रा कल्पना कीजिए सब कुछ मिटाकर के ऐसा पाऊडर बना दिया, चूर्ण बना दिया जिसको आँखें देख भी न सकें, किसी का शरीर नहीं है, किसी का मकान नहीं है, ज़मीन नहीं है, पहाड़ भी नहीं है, नदियाँ भी नहीं हैं, वनस्पतियाँ तो -बात ही ख़त्म हो गई, आग का गोला, सूरज आग का गोला है वह भी नहीं है, न समुद्र है सब कुछ मिटकर के एक रूप में आकर ठहर जाए और जितने समय तक संसार रहता है, मतलब सृष्टि जितने समय तक रहती है उतने समय तक प्रलय रहती है, सब कुछ ऐसा ही रहता है जैसे मकान को तोड़ फोड़कर, खण्डर करके चूरा-चूरा करके बिखेर दिया हो बहुत समय तक ऐसे ही पड़ा रहेगा।

फिर इच्छा होती है भगवान की और उस इच्छा से फिर संरचना शुरू होती है और जब संरचना शुरू होती है तो फिर यह सारे के सारे पाँच महाभूत आकर जुड़ने शुरू होते हैं - अग्नि, वायु, आकाश, धरती, जल सब मिलकर संरचना शुरू हो जाती है, संरचना जैसे ही शुरू हुई सब चीज़ें आकर जुड़ जायेंगी - पानी की जगह पानी आ जायेगा, समुद्र समुद्र बन जायेगा, अग्नि अपना स्थान ग्रहण कर लेगी, फिर उन्हीं के आधार पर शरीरों की संरचना होगी और जब दुनिया बनेगी तो सबसे पहले यह धरती, आकाश, सूरज, नक्षत्र सब बनने के बाद धरती पर झरने बहने लग जायें, नदियाँ बहने लग जायें,

वनस्पतियाँ उगने की स्थिति आ जाये, फूल उगने की स्थिति में आ जा
जीवों की संरचना होगी, तब प्राणी आयेंगे दुनिया में।

दुनिया में इन्सान बाद में आता है, बच्चा बाद में जन्म लेता है
दूध पहले आ जाता है, वनस्पतियाँ पहले संसार में आ जाती है, सारी ची
फल, फूल सब निर्माण हो गया, भोजन का प्रबन्ध पहले हो गया उसके
खाने वाले को बुलाया गया कि आओ, अब तुम संसार में आकर बैठो।

भगवान कहते हैं कि फिर इस संसार में मैं मनुष्य को, जीवधारियों
भेजता हूँ, व्यवस्थायें बनाता हूँ। तरह-तरह की व्यवस्था लेकर के इस सं
में जीव अपने कर्मों का भोग भोगने के लिए फिर खड़े हो जाते हैं, - *कल्*
विसृजाम्यहम् - कल्प के आदि में मैं फिर सृष्टि की संरचना करता हूँ, मत
फिर से यह सब प्राणियों को जन्म देता हूँ, फिर आ जाते हैं।

आप सोचिये, इस सृष्टि को बने हुए जितना समय हुआ, अभी तो क
चाहिए कि शुरूआत का रूप है क्योंकि कलयुग शुरू हो चुका है, चल
है जो यह, इसके भी तो अभी केवल पाँच हजार वर्ष हुए हैं, चार लाख ब
हज़ार साल तो अभी इसी के हैं - यह पूरा करेगा फिर सतयुग शुरू होगा।
उसके बाद में त्रैता आयेगा, फिर द्वापर युग शुरू होगा और फिर कल
आयेगा, क्रम चलता रहेगा। लेकिन जब यह सारी की सारी स्थितियाँ सम
हो जाती हैं फिर प्रलय होती है, प्रलय के बाद फिर भगवान कहते हैं - मैं पु
सृजना करता हूँ।

मेरे इस स्वरूप को अर्जुन जो एहसास कर ले, श्रद्धा से युक्त हो
श्रद्धा वाला व्यक्ति ही मेरे स्वरूप को जानने के लिए प्रयत्नशील होगा अ
जब वह मेरे रूप को जानेगा मुक्त हो जायेगा संसार से, दुःखों से छूट जाये
क्योंकि संसार में कितनी भी कोशिश कर ली जाए- दर्शनकारों ने लिखा
-कपिल मुनि का उपदेश है - संसार में तीन दुःख हैं दैहिक, दैविक, भौति
- आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। अत्यन्त पुरुषार्थ करने के ब
अत्यन्त निवृत्ति कर सकते हो लेकिन दुःख को सदा के लिए मिटा नहीं सक
फिर भी किसी न किसी रूप में रह जायेगा। हाँ, मोक्ष हो जाये, यही पर
पुरुषार्थ है कि मोक्ष तक पहुँच जाओ तो फिर सदा के लिए सारे दुःखों क
नाश हो जायेगा, वही एक तरीका है कि पूरी कोशिश करके वहाँ तक पहुँ

जायें; नहीं तो कितनी भी कोशिश कीजिए तीन प्रकार के दुःखों से इस संसार में हर आदमी सताया जाता है - शरीर में होने वाले दुःख, दैवी प्रकोप से आने वाले दुःख-अकाल पड़ जाए, सूखा पड़ जाए, अतिवृष्टि हो जाए, ज्वालामुखी फट जाए, भूकम्प आ जाए, महामारी फैल जाए, रोग फैल जायें, इनके द्वारा जो दुःख आता है उनसे क्या करेगा इन्सान? ऐसा हुआ न - ढाई सौ सालों से ज्वालामुखी चुप बैठा हुआ था। नगर बसा हुआ है वहाँ, ढाई सौ सालों से आबादी है, अचानक ज्वालामुखी फटा, आबादी कहीं भी नहीं है, चारों तरफ लावा ही लावा है अब इन्सान क्या कर लेता वहाँ? कौन-सी मशीनें लगा करके रोक लेता उसको? कौन से यान लेकर के आयेगा इन्सान कि ज्वालामुखी को फटने ही नहीं देगा? भूकम्प का क्या कर लेगा इन्सान? बहुत ज़्यादा बारिश होगी क्या कर लेगा इन्सान? जहाँ रेत ही रेत और रेगिस्तान, सूखा ही सूखा है क्या करेगा इन्सान वहाँ? बहुत कोशिश करके नालियों से, पम्पों से, बहुत दूर-दूर से नहरें चला करके पानी लाने की कोशिश कर भी ले, थोड़ी देर के लिए थोड़ा दुःख मिटा भी लेगा - कि दुःख को थोड़ा कम - ज़्यादा कर लोगे आप सुख को थोड़ा ज़्यादा बड़ा लोगे लेकिन पूरी तरह से सुखी हो सको यह सम्भव नहीं और पूरी तरह से दुःख मिटा सको यह सम्भव नहीं।

एक ही तरीका है- मोक्ष हो जाये फिर सारे दुःखों से छूट सकते हो और भगवान कहते हैं- इसीलिए तुझे राजविद्या बता रहा हूँ कि इसके माध्यम से ही तुम छूट सकने में समर्थ हो सकोगे, सदा के लिए दुःख दूर हो जायेंगे नहीं तो इस संसार में यह समस्या रहेगी - कभी रोज़ी-रोटी की समस्या है, कभी जो कमाया है उसकी सुरक्षा की समस्या है, फिर, जो कमा लिया है आगे वारिस है नहीं और अगर वारिस है भी सही लायक है या नहीं उसकी समस्या है - सम्भाल पायेगा, नहीं सम्भाल पायेगा? समस्याओं पर समस्या बनी रहेगी, चोर-डाकुओं का भय रहेगा, राजा के टैक्स का भय रहेगा, हर चीज़ में कहीं न कहीं, कोई न कोई भय बना रहेगा।

जहाँ रोज़ी-रोटी की बात है वहाँ सुरक्षा की बात भी है, सुविधाओं को पाने की बात भी है, मनुष्य लगातार इन्हीं चक्रों में घूमता रहता है; कहानियाँ रोज़ बदलेंगी, अलग-अलग रूप लेकर के चलेंगी लेकिन जिन्दगी का दुःख रोज़ शक्ल बदलकर सामने आयेगा। कभी रोज़ी-रोटी की समस्या थी तो कभी

परिवार की समस्या हो गई- उस समस्याओं से बाहर निकले, अब बच्चे आ सम्भालने वाले हो गए लेकिन अब शरीर में रोग आकर बैठ गए। उसके लड़ने लगे हैं, घर के लोग विपरीत खड़े हुए हैं, अब बच्चे बात सुनते नहीं हैं अब बुढ़ापे में जायें तो जायें कहाँ, शरीर साथ नहीं देता- समस्यायें रोज़ नय रूप लेकर खड़ी रहेंगी।

जो बीत जायेगा समय उसका याद करके क्या कहोगे? वह तो कोई बड़ समस्या नहीं थी, उनसे तो हमने निपट लिया, आगे ठीक बीत जाये भगवान लेकिन ध्यान रखना आगे भी समस्यायें आयेंगी।

ज़िन्दगी समस्या ही है। ज़िन्दगी संघर्ष ही है। ज़िन्दगी परीक्षा ही है ज़िन्दगी चुनौती ही है, रूप बदलती ही रहेगी।

"ज़िन्दगी है कशमकश मौत है क़ामिल सुकून
शहर में है शोरोशर, मक़बरा खामोश है।"

- जहाँ मक़बरा है न, कब्रिस्तान है, वहाँ थोड़ी देर के लिए चुप्पी दिखाई देगी लेकिन जहाँ ज़िन्दगी है वहाँ शोर रहेगा, उथल-पुथल रहेगी, इससे बचा नहीं जा सकता। तो फिर क्या करना चाहिए?

चलती चाकी देखकर दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में बाकी बचा न कोय ।

- कि संसार तो चक्की के दो पाट हैं, हर कोई पिसेगा ज़रूर लेकिन इसका जवाब क्या है?

जवाब कबीर के बेटे ने दिया। कबीर ने कहा था –

चलती चाकी देखकर दिया कबीरा रोय
दो पाटन के बीच में बाकी बचा न कोय,

साबित बचा न कोय- चक्की के पाटों के बीच में जो भी दाना पड़ेगा दला जायेगा, पिसा जायेगा। संसार में जिसने जन्म लिया पिसेगा; सुख-दुःख भोगेगा, रोयेगा भी सही, मान भी मिलेगा, अपमान भी मिलेगा, सुख भी आयेगा, दुःख भी आयेगा, उन्नति भी होगी, अवनति भी होगी, लाभ भी होगा, हानि भी होगी, जीत भी होगी, हार भी होगी, सुख-दुःख चलता रहेगा, दोनों के बीच पिसेगा इन्सान और जवाब दिया कबीर के बेटे ने–

चलती चाकी देखकर रहा कमाल ठठाए

कमाल हँस रहा है। क्यों? कि चक्की में देखो दाने पिसते भी हैं, सच बात है लेकिन कुछ दाने सुरक्षित भी रहते हैं। कौन से दाने?

कीली पासे जो रहे उनकी पिसे बलाएं

जो दाने कीली के साथ लगे रह जाते हैं वह कभी नहीं पिसा करते और संसार की चक्की की कीली है परमात्मा। उस कीले के साथ जो इन्सान रह गया, उसे संसार की चक्की भी दल नहीं सकती, दावा है- यह कबीर के बेटे ने कहा।

तो संसार में हर कोई पिसेगा, पर वह सुरक्षित रहेगा जिसका हाथ भगवान ने पकड़ रखा है न, उसको दुनिया का कोई हाथ थोड़ी देर के लिए हिला-डुला ज़रूर सकता है लेकिन बिगाड़ कुछ भी नहीं सकता क्योंकि कीली के साथ जुड़ा हुआ है। इतना ही होगा दाना घूम कर उधर से इधर वाली तरफ़ आ जायेगा, रहेगा कीली के साथ और जब तक कीली के साथ रहा तब तक पिसेगा नहीं। यह बात पूर्ण रूप से जान लेनी चाहिए।

भगवान ने कहा कि जो यह जान लेता है कि मेरे सान्निध्य में आने से शान्ति और आनन्द है वह फिर क्या करता है -

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः ।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

सदैव मेरा कीर्तन करते हुए, यतन्तश्च दृढव्रता: - यत्न करता हुआ, दृढ़ होकर, *नमस्यन्तश्च* - और नमन करता हुआ, *मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते* - मुझे भक्ति के द्वारा निरन्तर मेरी उपासना करता है, मुझे प्राप्त करता है वह, दूर चला नहीं जाता लेकिन यहाँ प्रश्न एक है - भक्ति टिकेगी कब? दृष्टि पवित्र होगी तो, श्रद्धा होगी तो, मन पक्का होगा तो, अन्दर का कच्चापन दूर होगा तभी श्रद्धा की तपस्या हो, परीक्षा हो, स्थिरता की परीक्षा हो, समर्पण की परीक्षा हो, तरह-तरह की चोट खाकर और उसके बाद भी व्यक्ति स्थिर रहे, उसके बाद जो गुरु के द्वारा दिया जाता है ज्ञान निश्चित बात है वह टिकेगा तो सही लेकिन उसके द्वारा न जाने कितनों की प्यास बुझेगी, पूरी धरती की प्यास बुझाने के लिए भी वह समर्थ हो जाता है, इतनी ताकत उसके अन्दर आ जाती है लेकिन इस परीक्षा में उसे खरा उतरना चाहिए।

भगवान ने कहा - श्रद्धा वाले बनकर, द्वेष-दृष्टि से रहित होकर, ए
स्थिरता प्राप्त करके जो मेरी तरफ़ आता है - *सततं कीर्तयन्तो* - और सदा मे
कीर्तन करता है। बात ध्यान रखने की है - कीर्तन का मतलब ही महिमा क
गान करना है, कीर्तन का मतलब ही है कि धन्यवाद के स्वरों में परमात्मा क
सामने मस्त होकर के गुनगुनाना लेकिन कब तक धन्यवाद कर सकते हैं - ज
तक अनुकूलता है, जब तक लगता है हमारे सपने पूरे हो रहे हैं, हमें सब कु
मिल रहा है जो कुछ मांगा भगवान से पूरा हो गया और जब पूरा नहीं हो र
अब कीर्तन धीमा पड़ गया, अब कभी करता है, कभी नहीं करता और अ
कभी ऐसा हो गया चोट पड़ गई तो- सब कीर्तन छोड़ बैठा, महिमा का गा
ख़त्म- अब धन्यवाद ख़त्म, शिकायत करने बैठ गया और यह भी स्थिति अ
जाती है - शिकायत कीर्तन से करे तो अलग बात है, यहाँ तो सब कुछ
छोड़कर के, पीठ करके बैठ जायेगा - जा नहीं मानता तुझे अब मैं। या तो मे
कामना पूरी कर और अगर कामना पूरी नहीं करता तो मेरा भी विश्वास ह
गया तुझ पर से - भगवान कहते हैं वह मेरा नहीं है। मेरा सतत कीर्तन कर
वाला जो है - *यतन्तश्च* जिसके यत्न में कभी कमी नहीं।

इसके लिए बहुत-बहुत बार यह उदाहरण अनेक मुखों के द्वारा उच्चारि
किया जाता है कि नारद ऋषि ने दो तरह के भक्तों को माला जपते देखा थ
- एक नीम के पेड़ के नीचे बैठा हुआ है, एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ
हुआ है। जपने वाले दोनों ही भक्तों ने नारद जी की तरफ ईशारा करके कहा-
भगवान के दरबार में जाते हो, ज़रा हिसाब-किताब हमारा भी देखकर आना
कब तक कृपा होगी? कब तक जपना पड़ेगा? कब तक बैठना पड़ेगा? माल
कब तक घुमानी पड़ेगी?

नारद जी ने कहा - 'पूछकर आऊँगा और बता दूँगा।'

पीपल के पेड़ के नीचे बैठे हुए भक्त को, (पीपल पर पत्ते थोड़े ही रह
गए थे, काफी तो उड़ गए) नारद जी ने कहा कि बस जितने इस पेड़ पर पत्ते
हैं इतने जन्म और लगेंगे पर लगातार जप करना पड़ेगा, लगातार धन्यवाद देना
पड़ेगा, शिकायत कभी नहीं करोगे, यत्न में कमी नहीं आने दोगे, साधना में
कमी नहीं आने दोगे, समर्पण में कमी नहीं आने दोगे, लगातार चलो।

उस आदमी ने ऊपर की तरफ देखा, देखने के बाद बोला – 'इतने जन्म और बेकार होंगे? हम नहीं कर सकते यह भक्ति। इतना समय खराब कर लिया हमने तो। हमसे तो अच्छे लोग हैं संसार के, पूरा आनन्द भोग रहे हैं, अगले जन्म का पता नहीं, है या नहीं है, इस जन्म का तो पूरा आनन्द ले रहे हैं, अपने से तो माला जपी नहीं जाती।' माला छोड़कर चल पड़ा।

अगले वाला भक्त नीम के पेड़ के नीचे बैठा था और वहाँ पत्ते बहुत सारे थे। नारद जी ने कहा – 'तेरा भी हिसाब लेकर आया हूँ। अपने पेड़ की तरफ देख, पत्ते गिन, देख कितने हैं, इतने जन्मों तक लगातार साधना चले तेरी, तेरी दृढ़ता मे कमी न हो।' भगवान कहते हैं न –

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रता:

जिनका यत्न लगातार है, सतत् कीर्तन है, और दृढ़ वृत्ति है जिनके व्रत में दृढ़ता है वह मुझे प्राप्त करते हैं।

तो नारदजी ने कहा – 'अगर वह दृढ़ता रही, इस जन्म में बैठे रहे अगले जन्म में हो सकता है दृढ़ता कम हो जाए तो फिर चक्कर काटने पड़ेंगे, ज़्यादा अवधि भी बढ़ सकती है। तो यह समझ लो कि अभी इतने जन्म और लगेंगे साधना करते हुए।'

उस आदमी ने इतना सुनने के बाद माला नहीं फेंकी। सबसे पहले तो नारद जी के चरण छुए और उनका धन्यवाद करके कहा– 'मेरे प्यारे की खबर लेकर के आए हो न, वह मिलेगा और पक्का मिलेगा इसमें विश्वास हो गया आज और नारदजी इन पत्तों की बात करते हो? आपको पता है अब तक कितने जन्म बीत गए उसके मिले बिना? इन पत्तों से हज़ार पेड़ इकट्ठे करके खड़े कर दो इतने जन्म बीत गए हैं, उन जन्मों के बीतने का मुझे पता लगा क्या? नहीं पता लगा पाया कि इतने जन्म मेरे बीत गए। नारद जी, किनारे पर आकर के हार नहीं मानने वाला। असलियत तो अब सामने है, अब पाने का मौका है, अब भागने वाला नहीं हूँ। नारदजी लाख-लाख शुक्र है आपका। बहुत धन्यवाद, बड़ा आभारी हूँ, सदा कृतज्ञ रहूँगा कि मेरे विश्वास को और दृढ़ करके आ गए हो कि मिलेंगे, प्राप्ति होगी।'

नारद जी ने इतना सुना। इतना सुनने के साथ ही कहा – 'हो सकता है जन्म आधे ही रह जायें।'

उस व्यक्ति ने कहा – 'कोई फ़र्क नहीं पड़ता।'

नारदजी ने कहा – 'हो सकता है इसी जन्म में प्राप्ति हो जाए।' वह आदमी रोने लगा – 'नारदजी, यह ज़िन्दगी तो उसी के नाम लगा दी है अब देर-सवेर जब भी बुलाना होगा बुला लेगा, हम तो उसके दरवाज़े पर आकर बैठ गए, अब वह सांझ बुलाता है या अगले किसी सवेरे में बुलायेगा यह उसकी मर्ज़ी है पर हमारे धैर्य की परीक्षा मत लो। यह धैर्य तो हमेशा ही रहेगा

नारदजी ने कहा – 'हो सकता है कुछ सालों में प्राप्ति हो जाए।'

भक्त कहने लगा – 'ललचाओ मत देर सवेर का फर्क ही नहीं है। आप सोचते हैं शायद ललचाने से हिल जाऊँगा; माला पकड़ी है, आसन पर बैठा हूँ शरीर गलाने के लिए तैयार बैठा हूँ।'

नारद जी को प्यार आया। उस भक्त के पास बैठ गए और कहने लगे – 'भगवान कोई देर नहीं लगाया करते, उनके यहाँ देर है भी नहीं। कितनी देर में तुम्हारी मैल गलेगी यह तुम्हारे ऊपर है, वह तो दर्शन देने के लिए रात दिन खड़ा ही हुआ है, वह तो अपने में समाहित करने के लिए तैयार खड़ा हुआ है।'

भक्त फिर इसी तरह से तो बोलता है –

तेरा जलवा जहाँ होगा
मेरा सजदा वहाँ होगा
मेरे जैसे तो लाखों होंगे
पर तेरे जैसा प्यारा कहाँ होगा

तू तो एक ही एक है, तुझे नमन करता रहूँगा, तुझे प्रणाम करता रहूँगा तुझे मानता रहूँगा; एक नहीं कई जन्म बीत जायें।

❄❄❄❄❄❄❄❄

भगवान श्री कृष्ण का यह महान अमृतमय उपदेश जो गीता के माध्यम से संसार को मिला, जिस की कढ़ी पर हम विचार कर रहे थे, थोड़ा-सा और आगे बढ़ते हुए-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

- भगवान ने कहा कि हे अर्जुन, अनन्य भाव से जिसकी निष्ठा मुझ में है, मेरे ही चिन्तन मनन में जिसने अपने आपको अर्पित कर दिया, जो मेरी उपासना में और मेरे भजन में निमग्न है, ऐसे निरन्तर मुझ में जुड़े हुए भक्तों का *योगक्षेमं वहाम्यहम्* - उनको अपनी तरफ़ जोड़ना और उनका संरक्षण करने का कार्य मैं ही करता हूँ।

दो चीज़े जीवन में बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं- एक योग और एक है क्षेम। मनुष्य अपने धन को, अपने सुख को, अपनी सुविधाओं को, अपने साधनों को जोड़ता है। बाद में फ़िक्र करता है कि जो जोड़ा है वह सुरक्षित रहे, दूर न चला जाये। जो मुझे मिला है वह प्राप्त रहे, मिलकर छूट न जाये क्योंकि हर संयोग का वियोग है संसार में, हर मिलने के बाद बिछड़ना भी संसार का नियम है, पाने के बाद खोना भी पड़ता है, जो लिया है लौटाना पड़ता है। तो व्यक्ति की यह कोशिश होती है कि जो मुझे मिला वह मुझसे दूर न हो जाए, जिसकी प्राप्ति है उसकी हानि न हो। तो इसीलिए एक स्थिति है जिसको हम कहते हैं 'क्षेम' - संरक्षण हो जाये, सुरक्षित हो जाये, जो मिला है वह बँधा रह जाए क्योंकि मनुष्य सुख चाहता है, सुविधा चाहता है, शान्ति चाहता है और फिर सुरक्षा भी चाहता है, संरक्षण भी चाहता है।

भगवान ने कहा है कि मैं अपने भक्तों का योग और क्षेम दोनों का ही वहन करता हूँ, दोनों को ही सम्भालता हूँ, जो उन्हें मिला हो उसका संरक्षण भी मैं ही करता हूँ। देना ही नहीं दिये हुए को सम्भालने की क्षमता भी मैं देता हूँ। मैं जो देता हूँ वह व्यक्ति के पास सुरक्षित रहे यह कृपा भी मेरी होती है।

लेकिन यहाँ एक अलग भाव है। जो अनन्य भाव से भगवान की भक्ति में लग गया, जिसका चिन्तन लगातार परमात्मा में है, ऐसे नित्य जुड़े हुए का संरक्षण करना, अनुकूलता देने का कार्य भी भगवान करते हैं क्योंकि भक्ति में अनुकूलता मिल जाने से ही भक्ति आती है; अगर प्रतिकूलता है, स्थितियाँ विपरीत हैं, कितनी कोशिश कर लेना नहीं आ पाओगे, गुरु का सान्निध्य लेने की कोशिश करोगे नहीं मिल पायेगा, यह कृपा भी वही देता है, यह संयोग भी वही बनाता है, उन संयोग का संरक्षण करना, सुरक्षा करने का कार्य भी परमात्मा करता है। लगन जुड़ी है, जुड़ी रह सके यह कृपा भी परमात्मा की होती है इसीलिए उससे माँगना पड़ता है, उसको सुरक्षित रखना पड़ता है।

दीया जलाना एक बात है, जलाना योग है, दोनों हाथ करके संरक्षण देन यह अलग बात है लेकिन जब योग आए उसके बाद क्षेम आना चाहिए इसीलिए भारत में बीमा निगम ने अपने स्लोगन को कहिए, प्रतीक चिन्ह को कहिये - *योगक्षेम वहाम्यहम्* ऐसा लिखा हुआ है, गीता के शब्द को वहाँ लिखकर के दर्शाया है, तुम्हारे जुड़े हुए को संरक्षित रखने का कार्य हमारा; जो तुमने जोड़ा वह सुरक्षित रहे। तो दीया जला लेना एक कार्य है, दीया जलता रहे यह दूसरा कार्य है। तो जो जलता रहे और सुरक्षित रहे, इसे क्षेम कहते हैं

परमात्मा से मन जुड़ा है किसी भी तरह से, गुरु कृपा हो गई, सत्संग में जाने से श्रद्धा जाग गई, जीवन में कोई भाव ऐसा आया कि सम्बन्ध जुड़ गया। अब जुड़े रहना, दीया जला देना तो एक कार्य हो गया लेकिन महत्त्वपूर्ण कार्य क्या है- दीया जलता रहे, सुरक्षित रहे, बुझ न जाये, उसका प्रकाश फैलता रहे।

इसीलिए धन कमा लेना एक बात, धन को सुरक्षित रखना यह दूसरी बात और वह ज़्यादा महत्वपूर्ण है। इसीलिए मनुष्य के सामने हमेशा यह रहता है - पहले जोड़ने की चिन्ता और बाद में सम्भालने और सुरक्षित रखने की चिन्ता।

भक्ति का धन कमाया; कमाया - एक बात लेकिन सुरक्षित रख पाओ यह बड़ी बात और बड़ी बात को पहले ध्यान में रखना - कि मिला है, सुरक्षित रख पाऊँ उसे, सम्भाल पाऊँ।

लेकिन भगवान ने एक वचन दिया है। इस वचन को याद रख लेना। तुम अनन्य भाव से निष्ठा रखकर मेरी तरफ आओ तो सही, तुम मेरे चिन्तन में डूबो तो सही, तुम एक बार मेरे हो तो जाओ, एक बार लगन तो लगाओ, एक बार इधर कदम तो बढ़ाओ और फिर कदम बढ़ाकर पूर्ण समर्पण तो करो, तुम्हारा मन, तुम्हारा तन, तुम्हारा धन, तुम्हारी आत्मा, तुम अपना सर्वस्व लेकर एक बार मेरे हो तो सही - भगवान कहते हैं यह जो तुम्हारा जुड़ना है इसका संरक्षण कार्य करने का ज़िम्मा मेरा है, यह ज़िम्मेदारी मैं लेता हूँ, यह वचन मेरा है - कि फिर मैं तुम्हारी सुरक्षा करूँगा, तुम एक बार आओ तो सही, तुम अर्पण तो करो।

बूँद को इतना ही करना है कि सागर में हिम्मत करके गिर जाए, फिर अगला कार्य तो सागर का है, अपने में सम्माहित करेगा और फिर बूँद को बूँद नहीं रहने देगा, फिर तो उसे सागर ही बना देगा वह।

परमात्मा में एक बार डूबो तो सही, परमात्मा की खुशबू अन्दर से आने लग जायेगी, कार्यों में दिखाई देने लग जायेगी, व्यवहार में दिखाई देने लग जायेगी और यह याद रखना कि जिस समय आपके अन्दर आ जाये न यह खुशबू अब तुम्हारा बुरा करने वाला कोई कितनी भी कोशिश करे उसका स्वयं बुरा हो जाये यह बात अलग है लेकिन तुम्हारा बुरा कभी नहीं हो सकता, इस बात में कोई शंका नहीं क्योंकि संरक्षण करने के लिए हाथ अब उसका आ गया है। एक बार अर्पण तो करें, फिर तो स्थिति सूरदास जैसी हो जाती है।

सूरदास का समर्पण अनोखा। खड़ताल लेकर गाते हैं अपने कृष्ण के गीत और गीत गाते-गाते ऐसे डूब गए कि अब अपनी होश है ही नहीं, लगातार ध्यान है तो अपने प्रभु का।

सूरदास ने अगर याद किया भगवान को तो बाल कृष्ण रूप में ही - कृष्ण के बाल रूप को। अब भगवान को अगर सामने उपस्थित होना पड़ेगा तो जैसी भावना रखी वैसे ही रूप में आयेंगे न - फिर गीता का उपदेश देने वाले एक आयु का, शरीर की आयु का विकसित रूप लेकर सामने नहीं आयेंगे। जिस रूप में याद किया, जिस भाव में पुकारा फिर उसी भाव में सामने तो आयेंगे न।

पर देखिए, सूरदास वन में बैठे हुए, गीत गाते-गाते यह भी भूल गए कितनी रात गई और कितनी तेज़ वर्षा हो रही, गाते-गाते आधी रात बीत गई। अब हाथ में डण्डा लेकर चल पड़े अपनी कुटिया की तरफ़। चलते जा रहे हैं तो रास्ते में जैसे ही जगह-जगह पानी भरा हुआ है, ध्यान एक ही - 'हे गोविन्द, कृष्ण, हे श्याम तू तो साथ ही साथ है, कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ तू नहीं है, मन में भाव लेकर चल रहे हैं और अचानक गहरा गड्डा सामने और कमाल यह भी हो गया कि पाँव रख दिया, किनारे पर पाँव रख दिया और दूसरा पाँव उठाने ही लगे हैं, किनारे पर पाँव रखा, दूसरा पाँव उठाया आगे बढ़ाने के लिए और जैसे ही वह रख देते तो गहरे खड्डे में गिरते।

लेकिन बाल-कृष्ण के रूप में ही कृष्ण प्रकट हुए, बाल-रूप लेकर ही आ गए, हाथ पकड़कर लेकर चल रहे हैं - 'बाबा, इधर नहीं, इधर गहरी खाई है, कुआं है, गिर जाओगे, चोट खा जाओगे' हाथ पकड़कर ले चले हैं। सूरदास धन्यवाद करें वह भी बात नहीं; हाँ, हाथ से हाथ थोड़ा-छुआ है।

सूरदास सोच रहे हैं - मुझे पता है रात बहुत बीत चुकी है, यह भी है कि बारिश बहुत होने से जगह-जगह पानी है, यह भी महसूस करता हूँ है यह, वन में रात्रि का समय हो, कोई बच्चा आकर राह नहीं दिखाया कर यह जो बच्चा आया है यह कोई और नहीं है यह वही तो है जिसके रात-दिन गाता है तू, यह वही तो है जिसे तू पुकारता है, यह तेरा वही तो जिसके लिए न जाने कितनी बार रोया, कितनी बार मनाने की कोशिश रहा, ऐसा कोमल स्पर्श, ऐसी पुलक भरने वाला रूप, ऐसी ऊर्जा शक्ति ए साथ शरीर में संचालित हो गई, ऐसा स्पर्श मनुष्य का नहीं होता, दिव्य श है यह।

सूरदास हाथ आगे बढ़ाकर पकड़ने की कोशिश करते हैं; उनकी सम में आ गया कि कौन है तेरे सामने। हाथ आगे बढ़ाकर जैसे ही पकड़ा कृष्ण भी समझ गए कि अन्धे व्यक्ति को पकड़ने की आदत है और पकड़क छोड़ता नहीं; हाथ खींच लिया पीछे; कि अब तक तो ठीक था, अब चालाकी पर आ गया है, अब तक तो ठीक था कि जो मैंने इसके लिए कि और जिस भाव से इसने हाथ पकड़ा था, वह सहारे की बात थी, सहारा दे मेरा काम था लेकिन यह तो पकड़कर बाँधकर रखना चाहता है।

छुड़ा लिया हाथ, चले गए। सूरदास वहीं बैठ गए। हाथ ऊपर उठा हुआ है, हाथ ऊपर उठाकर कहते हैं- 'सुन कृष्ण, मानता हूँ तुम बह बलशाली हो, सुनो मेरे गोविन्द - मैं मानता हूँ तुममें बहुत बल है, इस शर में जो बल है वह भी तुम्हारा है। मैं मानता हूँ तेरी शक्ति के सामने किसी क शक्ति नहीं टिकती लेकिन एक बात बताऊँ, यह जो तेरे भक्त हैं न इनमें एक ताकत होती है और उस ताकत के सामने तेरी ताकत भी काम न आयेगी-

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानकर मोहे

- कमज़ोर समझकर मुझे हाथ छुड़ाकर भागते हो,

हृदय से जाओगे सबल गिनूँगा तोहे

- एक बार हृदय से निकलकर तो दिखा दो तब मैं मानूँगा कि तुमसे ज़्यादा दुनिया में कोई नहीं है। हे कृष्ण, इतना तो तुम कर सकते हो, हाथ छुड़ाकर जा सकते हो लेकिन हृदय से तुम भी नहीं जा सकते क्योंकि मैंने तुम्हें हृदय में बैठाया हुआ है और जब तुम हृदय में हो तो यहाँ रहोगे ही।'

तो ज़रा सोचिए, जिसके मन में परमात्मा के प्रति अनन्य भाव आ गया, वह अनन्य भाव आनन्द देगा। उस अनन्य भाव से रक्षा होगी, उस अनन्य भाव से कल्याण होगा ही क्योंकि फिर संरक्षण का कार्य परमात्मा करते हैं।

इसीलिए मैं यह निवेदन करूँगा आपसे एक बार चिन्तन करने की स्थिति ऐसी बना लीजिए, हर समय ध्यान उसी का रहे- 'तू ही है, तू ही है, तू ही है, मैं कुछ भी नहीं, सब तेरा रूप है, तेरा ही विस्तार है यह सारा संसार, तुझसे अलग कुछ भी नहीं है,'- चिन्तन धारा में एक बार बसाओ उसे, बसाते चले जाओ, लगातार कीर्तन करते चले जाओ, परिक्रमा करो उसी की, ध्यान करो उसी का, गाओ उसका नाम, जपो उसका नाम, फिर जो जपने की सुविधायें हैं, अनुकूलता है, शुरू-शुरू में तो परीक्षा होगी क्योंकि जब तक दीया जलेगा नहीं तब तक परीक्षा होगी, एक बार दीया जलाओ तो सही, दोनों हाथों में तुम्हारे दीये को, भक्ति के दीये को सुरक्षित रखने के लिए कृष्ण अपने हाथ आगे कर देंगे, एक बार आओ तो सही, फिर अपने आप संभालेंगे, परिस्थितियाँ पैदा करेंगे।

दु:ख आये अगर बेचैन करने के लिए, बहुत बड़ा दु:ख आकर खड़ा हो जाए, भक्ति में मन नहीं लगने दे रहा हो तो दु:ख को ठीक करने का काम परमात्मा करेंगे, लगायेंगे भक्ति में और अगर बहुत सुख आ जाये और प्रमाद, आलस्य और घमण्ड आ जाए, फिर ठोकर लगाकर जगायेंगे और अपनी राह में लगायेंगे, संरक्षण करने का कार्य कृष्ण अपने आप करेंगे। एक बार उस तरफ भावना से जुड़ जाओ, एक बार कह दो उसके लिए- मेरे पास मेरा कुछ भी नहीं है,

"मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सब तोर
तेरा तुझ को सौंप के क्या लागत है मोर"

त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये - हे कृष्ण, सब तेरा ही है
गोविन्द, सब यह जितना मेरे पास जो भी कुछ है सब तेरा ही है। इसीलिए
प्रति अर्पण करते हुए, तेरे दिये हुए को तुझे लौटाने में मुझे क्या लगेगा,
चीज़ थी ले ली - अगर हम ऐसा मान लें तो किसी भी संयोग का, किसी
लाभ का, किसी भी जीत का छिन जाने के बाद हार में बदल जाना, हानि
जाना, संयोग का वियोग हो जाना, कभी कष्टदायक नहीं होगा। फिर
सोचोगे - अगर उसने सम्बन्ध, वस्तु पदार्थ, मान, धन, जो भी कुछ उसने दि
है और अगर वह ठीक समझता है फिर देगा क्योंकि हमारी ज़रूरत तो उ
ज़्यादा पता है।

संत राबिया बसरी ने कभी कहा था; किसी एक दूसरे सूफी सन्त
आकर कह दिया - 'राबिया, तेरे पास टूटा हुआ बर्तन, फटी हुई चिटाई, ए
मोमबत्ती, इसके सिवाय कुछ और है नहीं, रात-दिन भक्ति में बैठी रहती है
या तो मैं तेरे लिए धन लाकर दूँ किसी अमीर को बोल देता हूँ, तेरे लिए पै
दे देगा या फिर तू ही ऐसा कर उससे माँग ले जो अमीरों को भी अमीर बना
करता है, जो गरीब को, रंक को, राजा बनाकर बैठा दिया करता है या उस
माँग।'

राबिया बसरी ने एकदम हाथ से ईशारा करके मना कर दिया - 'नहीं
माँगना नहीं, किसी से लेना भी नहीं, उसको पता है कि कौन-सी चीज कै
किसके सामने रखूँ जिससे इसका ध्यान मेरी तरफ़ बना रहे, तो मेरा ध्या
उसकी तरफ़ बना रहे इस चीज़ का उसे एहसास है, जो चीज़ ज़रूरत समझ
है अपने आप भेज देता है। इसीलिए मैं उससे माँगूंगी नहीं, उसे कहूँगी भी नह
क्योंकि ज़िम्मा उसका है, मेरा ज़िम्मा इतना ही है कि अपना मन उसकी तर
लगाए रखूँ और उसको पुकारती रहूँ, उसका नाम जपती रहूँ, उसके साम
सजदा करती हूँ - यह काम मेरा है। जो देना है, नहीं देना है यह काम उसक
जितना ठीक समझता है उतना देता है। जब उसे लगता है अब नहीं देना चाहि
क्योंकि ज़्यादा देने से इधर-उधर भटक सकता है या भक्त इधर-उधर ज
सकता है तब वह नहीं देता। जितना ज़रूरी है दे रहा है इसीलिए माँगना नह
है मैंने और साथ में यह भी एहसास करा दिया कि राबिया के टूटे हुए बर्त
की तरफ़ मत देख, फटी हुई चिटाई की तरफ़ मत देख, इस चीज़ का एहसा

कर कि अन्दर की दौलत कितनी मेरे अन्दर उसने मौजूद कर दी है, कितनी अमीरी अन्दर दे दी है, इस बात का भी एहसास कर कि उसने देकर ऐसा मालामाल कर दिया कि दुनिया को तो यही दिखता है कि गरीब है लेकिन मुझे पता है कितनी बड़ी अमीरी उसने दी है, इसीलिए उससे माँगना और शिकायत करने की मुझे आवश्यकता नहीं, मेरी आवश्यकता तो इतनी है अपने मालिक के सामने सजदा करती रहूँ, सिर झुकाती रहूँ, उसकी बन्दगी करती रहूँ।'

इतना ही हमारा कार्य है - जपें, नाम पुकारें। भगवान ने कहा-

पत्रं पुष्पं, फलं तोयं योमे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

- उसका दिया हुआ प्रसाद या भेंट चढ़ाई हुई जो मेरे प्रति एक निष्ठा में निमग्न है, उसके पत्र, पुष्प, फल, जल जो भी कुछ वह मेरे प्रति भक्ति में अर्पण करता है, उसके द्वारा दिए हुए को झपट कर खाता हूँ मैं। जो मेरे लिए अर्पण करने आया है न, बड़े प्यार से आगे बढ़कर के मैं उसे लेकर ग्रहण करता हूँ, भोग लगा लेता हूँ।

यह शब्द बड़े प्यारे हैं - क्या अर्पण करोगे? भगवान ने कहा- *पत्रं*, कोई पत्ता, कोई फूल, कोई फल, कुछ नहीं तो थोड़ा जल ही सही, संसार की वह चीज़ जिसकी कोई कीमत संसार में ज़्यादा नहीं जानी जाती - एक फूल, कोई फल, एक कोई पत्ता, थोड़ा-सा कोई जल- वह भी तुम लेकर के आओगे, भक्तिपूर्वक, भावनापूर्वक लेकर के आओगे, मैं आगे बढ़कर के तुम्हारे भोग को, तुम्हारे प्रसाद को, तुम्हारे अर्पण को, तुम्हारी श्रद्धा भावना को भोग लगाऊँगा, स्वीकार करूँगा।

चिन्तन करने वाली बात यह है - कितना अर्पण कर दिया आपने सवाल यह नहीं है, किस भावना से अर्पण किया प्रश्न यह है।

सुदामा लेकर गया चावल। भगवान ने उसके चावल ग्रहण किए और समझने की बात यह है जिस प्यार से भगवान ले रहे हैं और उसको दे रहे हैं वे क्या रहे है? उसके चावलों को खा रहे हैं और दे क्या रहे हैं? अपनी करुणा, अपना प्रेम, संसार की समृद्धि। भक्त लोग तो कहते हैं कि भगवान के इस कृत्य को देखकर रुकमणि भी आश्चर्य में पड़ गई। जितने प्रेम से ग्रहण कर रहे हैं उतने ही प्रेम से न जाने इनको क्या-क्या प्रदान किए जा रहे हैं लेकिन

इस कथा में एक बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है - क्योंकि जिस कथा को सब जा
हैं उसकी मार्मिक बात को ज़रूर पकड़ लेना चाहिए इसीलिए इस कथ
विषद वर्णन नहीं कर रहा हूँ - सिर्फ़ इतना बता रहा हूँ - सुदामा के
क्या थे?

सुदामा जब घर से चला था, उसके घर में कुछ भी उस समय वस्
पदार्थ ऐसा नहीं था जिसे वह कुछ धन कह सकें। लोक-व्यवहार को
में रखकर उसकी पत्नी पड़ोस से कुछ चावल लेकर आई, लोक-व्य
चलता है न महिलाओं का। घर में मेहमान आ जाएं ज़्यादा मेहमान हों
महिलायें क्या करती हैं कि आस-पड़ोस से कुछ वस्तुएं ले आयेंगी तुरन्त
काम चलायेंगी, जब उसके घर में मेहमान आयेंगे तो फिर यह उसका
चलाएगी, ऐसा मिलजुल कर पता भी नहीं लगता काम पूरे हो जाते हैं
मेहमान भी सोचता है - कमाल का आदर है, देर लगी भी नहीं, सम्मान
हो गया। ठीक समय पर ठीक ढंग से सब चीजें सामने उपस्थित कर
लोक-व्यवहार में ही चलता है, यह महिलाओं का लोक-व्यवहार है।

अब जिसके घर में कुछ भी नहीं उसके पास थोड़े से दो मुट्ठी चा
उसी की पोटली बनाकर के जो अपने कृष्ण के सामने आया है, उसने जो चा
अर्पण किए उन चावलों में समझना उसका सर्वस्व था, उसका सब कुछ

दीन भाव से सुदामा ने कहा - कृष्ण, (बोला नहीं, मन - मन में
दिया), अपना सर्वस्व लेकर आया हूँ लेकिन इतना दीन-हीन गरीब हूँ
पोटली तुझसे छिपाकर खड़ा हुआ हूँ, तुझे देने के लिए लाया हूँ लेकिन
वैभव देखकर शर्म आती है जिसके पास सब कुछ है उसे दो दाने चावल
अर्पण करूँ?

भक्त की स्थिति हमेशा ऐसी आती ज़रूर है। जिसका साम्राज्य
संसार में फैला हुआ है, जो सबको दे रहा है, रत्नों की खान उसी ने पैदा
है, स्वर्ण उसी ने उत्पन्न किया है, फूल उसी के हैं, भोजन उसी का है,
उसको क्या अर्पण करें? एक बार तो संकोच में आ जायेगा भक्त, क्या दूँ तु
मैं देने वाला कौन, तेरे दिए हुए को ही तो रात-दिन खाता हूँ, तेरे लिए
मकान में रहता हूँ, तेरी दी हुई हवा में सांस लेता हूँ, तेरे दिए हुए जल
ग्रहण करता हूँ, तुझे मैं क्या अर्पण करूँ?

पोटली छिपा करके सुदामा खड़ा हुआ है, कृष्ण के सामने आने नहीं दे रहा है और कृष्ण समझ रहे हैं – सर्वस्व लेकर आया है मेरे पास, अपना सब कुछ लेकर के आया है। अब भगवान फिर क्या करते हैं – छीन करके, झपट करके खाने की कोशिश करते हैं, मतलब आगे बढ़कर के लेते हैं भगवान कि अगर तू इतनी भावना से आया है मेरे पास अब मैं तेरे दिए हुए का भोग लगाऊँगा और भोग लगाना ही क्या है, जैसे अग्नि में थोड़ी-सी आहुति दी वह अनेक गुणा बढ़ गई, जैसे ज़मीन में थोड़े-से दाने बोए अनेक गुण फसल के रूप में आपके सामने आ गए। भगवान ने भोग क्या लगाया न जाने कितना कुछ वापस कर दिया।

तुम थोड़ा मेरे लिए अर्पण करो, तुम्हारे लिए न जाने क्या-क्या मैं दे सकता हूँ यह कृष्ण अपने सन्देश में वचन देते हैं – जो तुम मेरे लिए प्रयत्न करते हुए भावना से अर्पण करोगे बदले में तुम्हें न जाने कितना कुछ दिया जा सकता है इसकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

यह राज-भाग, यह घर-परिवार का सुख, यह समृद्धि, यह सुव्यवस्थायें, यह निष्ठा वाले वफ़ादार नौकर, जान छिड़कने वाले रिश्तेदार, आज्ञाकारी बच्चे – अगर उसकी कृपा है न तब तो यह सब रहता है, नहीं तो ध्यान रखना बहुत चालाकी करके अपने घर में समृद्धि का ढेर लगा सकते हो लेकिन सुख नहीं ले सकोगे। बच्चे लायक नहीं रहेंगे, आज्ञाकारी नहीं रहेंगे, घर में प्रेम नहीं रहेगा, नौकरों की भीड़ लगा सकते हो पैसे के आधार पर वफ़ादार नहीं मिलेंगे, चोरी भी कर सकते हैं, हमला भी कर सकते हैं, छीनने की कोशिश भी कर सकते हैं। नौकर खरीद लोगे, सेवक नहीं मिलेगा, नौकरी में किसी को भी लाकर खड़ा कर दो लेकिन जो आपके लिए अपना सब कुछ दाव पर लगा दे वह आपको ऐसे नहीं मिलने वाला, वह तो वह व्यवस्था बनाता है, ऊपर वाला जो है नं, जो सर्वोपरि है, सर्वोच्च है जिससे बढ़कर कोई सत्ता दुनिया में नहीं, जिसके दरबार के आगे कोई दरबार नहीं, उसकी कृपा हो तो यह सब कुछ मिलता है।

इसीलिए भगवान ने कहा कि तुम भक्तिपूर्वक, भावनापूर्वक कोई पत्र, कोई पुष्प, कोई फूल, कोई जल की बूँद ही अर्पण कर दोगे मैं उसे भी प्रेम से ग्रहण कर लूँगा।

भगवान ने फिर कहा-

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

– जो तुम करोगे संसार में, जो भी कर्म करोगे, जो कुछ खाओगे, जो हवन करोगे, *यज्जुहोषि* – जो तुम संसार में हवन करो, बड़े-बड़े यज्ञ करो अपने लिए नहीं करना मेरे लिए करना। कहना – 'मेरे प्रभु, यह यज्ञ भी तेरे निमित्त है। मेरा हर कर्म इसीलिए है कि तू मान जाए और मेरा हो जाए, अपने लिए नहीं; चलूँगा, खाऊँगा, कर्म करूँगा तेरे लिए; तेरा नौकर हूँ न; तेरी नौकरी में हूँ' – ऐसा महसूस करके अगर उसके लिए कर्म करो, भगवान कहते हैं – *यत्करोषि यदश्नासि* – जो खाओ, जो कर्म करो, *यज्जुहोषि* – और जो हवन करो, – *ददासि यत्* – और तो तुम किसी को दो भी सही, दान करो *यत्तपस्यसि* – जो दुनिया में बड़े-बड़े तप तुम करते हो, मतलब बहुत-बहुत सह जाते हो, भगवान कहते हैं मेरे लिए सहना।

कृष्ण, तू नाराज़ हो जायेगा, इसीलिए मैंने अपना आवेश अपने वश में रख लिया क्योंकि दुनिया रूठ जाये कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा, तू नहीं रूठना चाहिए इसीलिए तेरे लिए सह रहा हूँ; सारे संसार को बर्दाशत कर लूँगा पर तेरा कोप बर्दाशत नहीं होगा।

कबीर ने लिखा –

करबट भला न करवट तेरी

काशी में करबट था न। भक्ति में डूबे-डूबे लोग नाम जपते-जपते जब यह देखते थे कि इस तन को अब रखना नहीं है, अब तो तुझे अर्पण कर देना है तो वहाँ एक कुएँ में आरे लगे होते थे जिसमें लोग छलांग लगाकर अपने आपको, शरीर को अर्पण कर देते थे; किसी समय ऐसी परम्परा रही। उसका नाम करबट था। मतलब शरीर त्याग देने की स्थिति जहाँ बनी हुई थी। अब कबीर ने कहा- *करबट भला* – कि तू नाराज़ हो गया न, करबट में कटकर मर जाना अच्छा – *न करवट तेरी* – तूने जो पीठ कर ली है न, नाराज़ होकर मुँह फेर लिया, वह अच्छा नहीं लगता

करबट भला न करवट तेरी
हाथ पकड़ सुन विनती मेरी

तू एक बार हाथ पकड़, मेरी विनती सुन, अपने चरणों में लगा, अपने से कभी दूर मत कर नहीं तो तेरे बिना, तेरे ध्यान के बिना, तेरी भक्ति के बिना संसार में मर जाना अच्छा लेकिन तुझसे अलग रहकर जीना अच्छी बात नहीं- यह कबीर का वह भाव है कि सारे संसार की पीड़ा को सह लेंगे, तेरे लिए सब कुछ सहा जा सकता है लेकिन परमात्मा तेरा रुठना नहीं सहा जा सकता, तू रूठना नहीं। इसको कबीर ने जिस ढंग से कहा वह ढंग परमात्मा का ही है।

अर्जुन, जो तप करते हो मेरे लिए करो, मेरे लिए सहो संसार में और सहनशक्ति अपनाते-अपनाते संसार से अगर उपराम हो रहे हो, संसार से अगर ध्यान हट रहा है, संसार से ध्यान हटा लेना, लेकिन मेरी तरफ़ बनाए रखना।

यह जो तुम भाव अपनाओगे इससे मैं तुम्हारा बना रहूँगा, अर्थात् तुम मुझसे अलग नहीं रहोगे, मेरा आनन्द पूरी तरह प्राप्त कर सकोगे।

यह जो ज्ञान जिसकी हम अभी चर्चा कर रहे हैं भगवान ने इसको "गुह्यतम" कहा है; इसको मैंने छुपाया हुआ था; इसको 'राजविद्या' कहा है, इससे बढ़कर विद्या नहीं है, इससे बढ़कर ज्ञान नहीं है।

अर्जुन से कहा कि तू अब उस स्थिति में आ गया है क्योंकि तेरी द्वेष-दृष्टि नहीं है, तेरी श्रद्धा गहरी है, इसीलिए तुझे राज़ की बात बता रहा हूँ - कोई भी पत्र, पुष्प, फल, जल, भावना से आकर अर्पण कर देना मैं उसे ग्रहण कर लूँगा। यह भी करना - जो संसार में कर्म करो यह सोचकर करना- मालिक की रज़ामन्दी के लिए, भगवान को प्रसन्न करने के लिए, उसकी नौकरी के लिए कार्य कर रहा हूँ; उसने व्यवस्था दी है ऐसी, कुछ कर्म करने पड़ेंगे मुझे; संसार के दायित्व निभाने पड़ेंगे, दायित्व निभाऊँगा, लेकिन उसके लिए तो ध्यान उसी का बना रहेगा; ग्रहण करूँगा, कोई चीज़ खाऊँगा कहना फिर - 'मेरे ठाकुर अब भोग लगाओ, तेरे दिए हुए प्रसाद को अब ग्रहण करने लगा हूँ; अन्दर तू ही है, बाहर भी तू ही है' और भोजन में अगर स्वाद आ रहा है तो यह भी मानना वह स्वाद संसार का नहीं, तेरे प्यार का ही स्वाद है, *यज्जुहोसि* - जो हवन करो, संसार में कोई भी बड़े से बड़े उपकारी कार्य कर जाओ लेकिन उपकारी कार्यों को, महान् से महान् कार्यों को करने के बाद भी एक बात का ख्याल रखना: अपनी "मैं" को आगे नहीं आने देना। उसने कराया है, उसने कहा है न, उसने प्रेरणा दी है न, मेरे प्रभु ने, उस परमात्मा

की प्रेरणा से ही तो इधर आया हूँ, उसी के कारण तो ऐसा करने लगा हूँ, शायद इसीलिए कि मुझे और लायक बनाना चाहता है, इतनी बड़ी सेवा दी, इतना बड़ा अवसर दिया, इतना बड़ा महान कार्य करने का मौका दिया, यह उसकी कृपा है, उसका धन्यवाद देते रहना और कहना - 'भगवान, फल भले ही थोड़ा देना, न देना, पर नौकरी में लगे रहें।'

कहते हैं कि बस, दरवाज़े से लगन लगाकर बैठे रहो कब खुलेगा इसकी चिन्ता नहीं करना, इतनी ध्यान में बात रखना कि दरवाज़े तक पहुँच गए हैं, बैठ गए हैं आकर और यह तो पक्का विश्वास होता है कि दरवाज़ा कभी न कभी तो खुलता ही है। हमारा कार्य तो इतना ही है कि उसके द्वार पर जाकर बैठ जायें, हाज़री लगायें, यह बात निश्चित है देर सवेर दरवाज़ा खुलेगा, दर्शन होंगे, अन्दर बुलाया जायेगा। हो सकता है, जब बुला लिया जाए, गद्दी पर ही बैठा दिया जाए - यह तेरा है, सम्भाल ।

भक्त भी जब परमात्मा का स्वरूप धारण करते-करते उसका हो जाता है, तो वैसी बादशाहत मिल जाती है उसे। स्वामी रामतीर्थ ने अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया था और राजा लोग देखकर या दुनिया के अमीर लोग देखकर कहते थे इस आदमी के पास बादशाहित क्या है, देखने में तो कुछ भी नहीं है!

लेकिन सच्चे बादशाह लोग तो वही होते हैं जो अन्दर की दौलत से मालामाल होते हैं।

भगवान ने कहा कि जो भी तुम बड़े से बड़े कार्य करो अपनी 'मैं' को नहीं आगे आने देना, मेरे लिए अर्पण करना, जो संसार में - *ददासि यत्* - जो कुछ दोगे, दान करोगे, मेरे लिए करना, यह मान करके करना कि उसने कराया है, उसने मौका दिया है, मान पाने का मौका दिया।

मुझे यह बात कई बार कहते हुए बहुत अच्छा लगता है कि चन्द्रमा से किसी ने पूछा- 'चन्द्रदेव, तुम्हारे पास प्रकाश अपना नहीं है, सूरज का है, सूरज का प्रकाश तुम्हारे से प्रतिबिम्बित होकर, रिफ्लैक्ट होकर संसार में आता है लेकिन सूरज का प्रकाश स्वयं जब धरती पर गिरता है तो गर्मी देता है, जलता है, पर तुम्हारे से जब वह प्रकाश धरती पर आता है तो जलता नहीं शान्ति देता है, आखिर बात क्या है?'

कहते हैं उस समय चन्द्रमा ने यह कहा - 'सूरज के पास अपना प्रकाश है, अपनी अकड़ से भी वह दे सकते हैं, गर्मी से भी दे सकते हैं, स्वाभिमान से भी दे सकते हैं, जैसे चाहें वैसे दें, इसीलिए तो उनके प्रकाश में गर्मी हो सकती है लेकिन मुझ गरीब के पास अपना क्या है, किसी का दिया हुआ आगे देना है झुक करके दे दिया जाए - यह सोचकर जब झुककर देता हूँ, वही प्रकाश, वही सूरज वाला प्रकाश जब मैं धरती को देता हूँ, शान्ति देता हूँ वह शीतल हो जाता है, वह ठण्डा हो जाता है।'

दिए हुए परमात्मा के प्रसाद को, उसकी कृपाओं से थोड़ा-सा हिस्सा अगर कहीं देना पड़े तो सिर झुकाकर देना।

बड़ी अजीब चीज़ है हमारी- जब भी हम देने पर आते हैं किसी को, अहसान जतायेंगे, दस बात करेंगे, एक घंटे का भाषण साथ में देंगे- 'मैंने दिया है, इसीलिए दिया है, वैसे दिया है' - बड़ी गर्मी खाकर देते हैं।

अगर कभी देने की स्थिति आए, परमात्मा ने इस लायक बना दिया आपको तो बड़े प्यार से देना, झुककर देना, शुक्र बनाना उस मालिक का कि आपने इस लायक बना दिया हमें कि आज हम भी देने वाले हो गए। याद कर लेना उन दिनों को जब हालत यह थी- दूसरों के सहारे की तलाश आँखों में हमेशा रहती थी - कोई आदमी आए, सहयोगी बने, मेरा काम चले, अपना बिज़नस क्या कुछ भी नहीं था, कोई फैक्ट्री नहीं, कोई काम नहीं, मारा-मारा घूमता फिर रहा है इन्सान उस हालत में और आज अगर इतना कुछ दे दिया और आगे किसी को देते हो बड़ा हिसाब लगाते हो, अपनी शर्तें रखते हो - इस तरह से काम करना, उस तरह से काम करना, उसके दिये हुए को आगे देना प्यार से देना, सिर झुकाकर देना।

चन्द्रमा ने सूर्य के दिये हुए प्रकाश को धरती को लौटाया है, बड़ा सिर झुकाकर लौटाया इसीलिए चन्द्रमा का प्रकाश संसार के लिए शीतल है, ठण्डा बन गया है, चन्द्रमा की चाँदनी से रात्रि कितनी सुन्दर हो जाती है, वनस्पतियों का रूप कितना सुन्दर हो जाता है, तुम्हारे दान से और तुम्हारे कार्य से संसार में इतनी शोभा बढ़ेगी - लोग कहेंगे ऐसे व्यक्ति के नज़दीक हम हैं, इसकी अपनी विशेषतायें हैं।

भगवान ने कहा- जो कुछ तुम दो- *यत् तपस्यसि* - और जो तुम तप करो, सह जाओ, मेरे अर्पण कर देना - तेरे लिए किया है, तुझे अर्पण, तूने नियुक्त किया था तूने ही तो मुझे जोड़ा था, तूने ही तो ज़िम्मेदारी दी थी, तू ही तो हृदय में बोला था, तूने ही तो मुझे प्रेरणा दी मैं कुछ कर सकूँ, तो तेरी प्रेरणा के लिए तुझे धन्यवाद, अपना आपा तेरे प्रति अर्पित करता हूँ, प्रभु, मेरे दिये हुए को नहीं तेरी कृपा को तेरे सम्मुख कृतज्ञता पूर्वक अर्पण करने को जो प्रेरणा तेरी हुई है उसके लिए मैं धन्यवाद करता हूँ कि तूने इस लायक मुझे बनाए रखा।

भगवान ने एक शब्द और ऐसा कहा जो हम लोगों के लिए कहते हैं न गुदगुद्दी पैदा कर देती है कुछ चीजें - मिट्टी की इस दुनिया में, धूल मिट्टी इस शरीर पर कहीं न कहीं लगती ज़रूर है। जीवन में चलते-चलते काम करते-करते कुछ गलतियाँ होती ज़रूर हैं, भूल होती हैं।

भगवान ने कहा-

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

- वह व्यक्ति, उसे तुम साधु की तरह ही मानना, कितना भी बड़े से बड़ा दुराचारी, दुष्ट प्रकृति का मनुष्य रहा हो, अनन्य भाव से मेरा भजन करने लग जाए, मेरी तरफ़ आ जाए, तुम उसे साधु ही मानना, महापुरुष ही मानना, अच्छा ही मानना, मेरी तरफ़ आ गया न।

कोयले को फिर कोयला नहीं कहना, फिर काला नहीं कहना जब वह अग्नि के बीच पहुँच गया। अग्नि में गिर गया सम्भावना सुलगने की हो गई, अग्नि उसने पकड़ ली, भक्ति पकड़ ली, अब कोयले को कोयला नहीं कहना, अब वह काला नहीं है, अब कालिक वाली बात नहीं है, अब तो अग्नि जलेगी और प्रकाश उसके अन्दर आयेगा, अब वह न जाने कितनों कितनों को ऊर्जा देगा और प्रकाश देगा, एक बार कोई मेरी शक्ति पकड़ ले, कितना भी दुराचारी, दुष्ट रहा हो, जो मेरी भक्ति में एक बार आ जायेगा, प्रकाश उसके अन्दर जब आने लग जायेगा तो सारे संसार में प्रकाशित होगा क्योंकि अब मैं उसके अन्दर आ गया हूँ, फिर उसका कल्याण होगा।

हम सब के सब कोयले सही, परमात्मा तो अग्नि पूंज है। इतनी बात हो जाए कि अगर अग्नि पकड़ ले एक बार कोयले को अब कोयला कोयला नहीं रहेगा, अब वह प्रकाश बनेगा, अब वह ऊर्जा बनेगा, अब उसमें अग्नि जागेगी।

भगवान ने कहा –

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

– अर्जुन, बड़ा जल्दी वह आदमी धर्मात्मा होगा, मेरी अग्नि जल गई न उसके अन्दर भक्ति जाग गई, *शश्वच्छान्तिं निगच्छति* – बड़ी जल्दी ही उसके अन्दर शान्ति की प्राप्ति होगी।

अर्जुन, इस बात को जान लेना कि जो मेरा भक्त हो गया, मेरा बन गया – *न मे भक्तः प्रणश्यति* – उसका विनाश कभी नहीं हो सकता, उसका बुरा कभी नहीं हो सकता क्योंकि वह मेरा हो गया, वह ऊपर उठेगा ज़रूर, उसका कल्याण होगा ज़रूर – यह वचन है गीता का, गीता में भगवान ने यह वचन दिया है।

इतनी ही बात है कि अग्नि सुलगाओ अन्दर, इस कोयले में बात बनेगी ज़रूर। दुःख यह है – जागती भी है बात अन्दर लेकिन कहीं न कहीं, कोई न कोई पानी डालकर इस कोयले की आग को बुझाने की कोशिश करता है। फ़र्क अग्नि पर पड़ने वाला नहीं है, फ़र्क तो कोयले पर ही पड़ेगा, भक्त को ही फ़र्क पड़ेगा। अगर ध्यान वहाँ से हट गया तो नुकसान किसका है? नुकसान उसी का है जिसको कुछ पाना था।

इसीलिए ज़्यादातर मैंने देखा है कि जो साधना करने वाले योगी लोग हैं अगर उन लोगों को हमने कभी कहा कि संसार में आकर संसार के लिए कुछ कार्य किया जाए, वह इन पचड़ों में कभी नहीं पड़ते। वह कहते हैं संसार में उतरने का मतलब संसार के कीचड़ को अपने ऊपर लगाना, तनाव सहना, प्रतिकूलतायें खड़ी कर लेना अपने लिए? जब वह चरण मिल गए हैं फिर तो उनकी सेवा करनी है, फिर संसार की नहीं। वह लोग नहीं आते इधर।

हाँ, अगर सन्त हृदय हो, योग-युक्त हो जाना एक बात है लेकिन सन्त हृदय जब बन जाता है फिर दया बहुत आती है, फिर आदमी कहता है मैं

सहूँगा सारे संसार के लिए क्योंकि कर्त्तार की मर्ज़ी है यह। जब वह बर्दाशत नहीं कर सकता किसी के आँसुओं को, जब कोई मां-बाप अपने बच्चे के आँसुओं को बर्दाशत नहीं कर सकते तो फिर हम भी इस दुनिया में रोते बिखलते इन्सान के आँसू कैसे बर्दाशत कर सकते हैं, हमें तो उनका कल्याण करना ही पड़ेगा, हमें उनके कल्याण के लिए जाना ही पड़ेगा।

यह बात सच है कि अगर परमात्मा की तरफ़ हम लग गए कोशिश करो अग्नि बुझे नहीं और एक बार अग्नि जल पड़ी कभी बुरा नहीं होने वाला आपका, भला ही होगा, पर अग्नि जागृत रहनी चाहिए; अपनी अग्नि को, आग को, जगाए रखो।

लोग शहीदों को याद करते हैं किस लिए?

देश भक्ति की आग जागती रहे। रामधारी सिंह दिनकर ने कभी शहीदों की तरफ ईशारा करके कहा था -

तुमने दिया देश को जीवन
देश तुम्हें क्या देगा?
अपनी आग बुझाने को
नाम तुम्हारा लेगा।

अपने अन्दर उस आग को जगाने के लिए तुम्हारा नाम लेगा कि हमारी आग जागती रहे, हम भी देश के लिए कुछ कर सकें।

गुरु के नज़दीक किस लिए बैठो - आग जगे कोयले के अन्दर, अग्नि पकड़ ले उसे।

भगवान ने इस अध्याय के अन्त में एक सन्देश और दिया- नवम् अध्याय - सारे अध्याय वैसे तो बहुत प्यारे हैं लेकिन यहाँ कहा -

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

- *मन्मना भव* - मेरे मन वाला हो, *मद्भक्तो* - मेरे भजने वाला बन, *मद्याजी* - मेरे लिए भजन करने वाला बन, *मां नमस्कुरु* - सारे प्रणाम मेरे लिए भेज ।

दुनिया के आगे हाथ जोड़ते हैं न हम लोग - साहब जी, मालिक साहब, फलाने साहब, यह जी, वह जी, जिससे मतलब सिद्ध हो रहा है उसको पना

नहीं क्या-क्या बोलते हैं हम किन्तु ध्यान रहे नमस्करणीय एक ही है, सारे प्रणाम उसके नाम जो हमारे प्रणाम के योग्य है - हमारा परमात्मा ।

'अर्जुन, तेरे प्रणाम मेरे लिए हों, मेरा भजन करना, मेरे लिए ही यज्ञ करना, मेरी भक्ति में डूबना, मेरे मन वाला बनना। अपने आपे को मेरे परायण कर लेना, निश्चित बात है मुझे ही प्राप्त होगा, मुझसे कहीं दूर जाने वाला नहीं, तेरा कल्याण होगा इसीलिए तू सदा मुझे ही नमन कर, मेरा नाम जप।'

ज़िन्दगी में, जो भी ज़िन्दगी की अवधि बाकी है, जो समय बाकी है यह श्वांस उस भगवान के नाम अर्पण कर दो कि तेरा नाम जपते हुए मेरी ज़िन्दगी गुज़रे, मेरा सारा जीवन तेरा नाम जपते बीत जाए, मेरी लगन और कहीं हो न हो प्रभु तेरे चरणों में ज़रूर हो, कुछ और पाना नहीं तेरी कृपा के सिवाय, मुझे कहीं और जाना नहीं तेरे धाम के सिवाय, मुझे कुछ और चाहना नहीं तेरी चाह के सिवाय, मुझे कुछ होना नहीं तेरा होने के सिवाय।

यह मैं कोई कविता नहीं बना रहा हूँ। होगा यही कि जब उसका ध्यान करके कुछ कहोगे, जो कुछ कहोगे, वह कविता अपने आप बनेगी।

इसीलिए मैं आपसे यह निवेदन करूँगा - प्रभु को अपना सर्वस्व अर्पण कीजिए, आपके अन्दर वही जाग जायेगा, आपके अन्दर वह बादशाहत अपने आप अन्दर जागृत हो जायेगी जिस बादशाहत के लिए दुनिया में जगह-जगह भटकते हैं, सारी दुनिया में हम लोग भटकते फिरते हैं, सारा भटकना बन्द हो जायेगा।

बहुत-बहुत शुभकामनाएं

अध्याय - नौ

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥

मैं तुझको, जो कि ईर्ष्या से रहित है, विज्ञानसहित ज्ञान का यह गम्भीर रहस्य बतलाता हूँ, जिसे जानकर तू सब बुराईयों से मुक्त हो जाएगा।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥

यह सबसे बड़ा ज्ञान है; सबसे बड़ा रहस्य है; यह सबसे अधिक पवित्र है; यह प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा जाना जाता है; यह धर्मानुकूल है; इसका अभ्यास करना सरल है और यह अनश्वर है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

हे शत्रुओं को सताने वाले (अर्जुन), जो लोग इस मार्ग में श्रद्धा नहीं रखते, वह मुझे प्राप्त न करके फिर मर्त्य जीवन (संसार) के मार्ग में लौट आते हैं।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥

इस सारे संसार को मैंने अपने अव्यक्त रूप द्वारा व्याप्त किया हुआ है। सब प्राणी मुझमें निवास करते हैं, किन्तु मैं उनमें निवास नहीं करता।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥५॥

और (फिर भी) सब भूतों (अस्तित्वमान् वस्तुओं) का निवास मुझमें नहीं है; मेरे इस दिव्य रहस्य को देख। मेरी आत्मा जो सब भूतों का मूल है, वह सब भूतों को सभाले तो हुए है, किन्तु वह उनमें निवास नहीं करती।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

जिस प्रकार सब ओर चलती हुई प्रचंड हवा सदा आकाश में स्थित रहती है, उसी प्रकार तू समझ ले कि सब भूत (विद्यमान वस्तुए) मुझमें निवास करते हैं।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), कल्प (चक्र) की समाप्ति पर सब भूत (अस्तित्वमान् वस्तुए) उस प्रकृति में समा जाते हैं, जो मेरी अपनी है और अगले कल्प (चक्र) के आरम्भ में मैं उन्हें फिर बाहर निकाल देता हूँ।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

अपनी प्रकृति को वश में रखते हुए मैं इन भूतों के समूह को बारम्बार उत्पन्न करता हूँ जोकि प्रकृति के वश में होने के कारण बिल्कुल बेबस हैं।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥

हे धन को जीतने वाले (अर्जुन), ये कर्म मुझे बन्धन में नहीं डालते, क्योंकि मैं इन कर्मों में अनासक्त और उदासीन-सा बैठा रहता हूँ।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), मेरी देख-रेख में यह प्रकृति सब चराचर वस्तुओं को जन्म देती है और इसके द्वारा यह संसार-चक्र घूमता है।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

मूढ़ (अज्ञानी) लोग मानव-शरीर धारण किए हुए मेरी अवहेलना करते हैं, क्योंकि वे मेरी उच्चतर प्रकृति को, सब भूतों (अस्तित्वमान् वस्तुओं) के स्वामी के रूप में नहीं जानते।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

वे लोग असुरों और राक्षसों के मोहक स्वभाव को धारण करते हैं। उनकी महत्त्वाकांक्षाएं व्यर्थ रहती हैं, उनके कर्म व्यर्थ रहते हैं, उनका ज्ञान व्यर्थ रहता है और वे विवेकहीन हो जाते हैं।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

हे पार्थ (अर्जुन), वे महान् आत्मावाले लोग, जो दिव्य प्रकृति में निवास करते हैं, मुझे सब अस्तित्वमान् वस्तुओं का अनश्वर मूल समझकर अनन्य चित्त से मेरी उपासना करते हैं।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

सदा मेरा गुणगान करते हुए, यत्न करते हुए और अपने व्रतों पर स्थिर रहते हुए, भक्ति के साथ मुझे प्रणाम करते हुए और सदा योग में लगे हुए वे मेरी पूजा करते हैं।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥

अन्य लोग ज्ञानयज्ञ द्वारा यज्ञ करते हुए मेरी उपासना करते हैं। वह मुझे एक रूपवाला और साथ ही अनेक रूपों वाला, सब दिशाओं की ओर अभिमुख जानकर मेरी पूजा करते हैं।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

मैं ही कर्मकांड हूँ, मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही पितरों के लिए पिंडदान हूँ, मैं ही औषधि हूँ, मैं ही मन्त्र हूँ, मैं ही घृत हूँ, मैं ही अग्नि हूँ, और मैं ही आहुति हूँ।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ।।१७।।

मैं इस संसार का पिता हूँ, माता हूँ, संभालने वाला हूँ, और पितामह हूँ। मैं ज्ञान का लक्ष्य हूँ, पवित्र करने वाला हूँ, मैं **ओ३म्** *ध्वनि हूँ और मैं ही ऋग्, साम और यजुर्वेद भी हूँ।*

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।।१८।।

मैं ही लक्ष्य हूँ, भरण-पोषण करने वाला हूँ, स्वामी हूँ, साक्षी हूँ, निवास-स्थान हूँ, शरण हूँ और मित्र हूँ। मैं ही उत्पत्ति और विनाश हूँ; मैं ही स्थिति हूँ; मैं ही विश्राम का स्थान हूँ और अनश्वर का बीज हूँ।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ।।१९।।

मै तपता (गरमी देता) हूँ; मैं ही वर्षा को रोकता हूँ और छोड़ता हूँ। मैं अमरता हूँ और साथ ही मृत्यु भी हूँ। हे अर्जुन, मैं सत् (जिसका अस्तित्व है) भी हूँ और असत् भी हूँ।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०॥

तीन वेदों के जानने वाले लोग, जो सोमरस का पान करते हैं और पापों से मुक्त हो चुके हैं, यज्ञों द्वारा मेरी उपासना करते हुए स्वर्ग पहुँचने के लिए प्रार्थना करते हैं। वे (स्वर्ग के राजा) इन्द्र के पवित्र लोक में पहुँचते हैं और वहाँ पर देवों को प्राप्त होने वाले सुखों का उपभोग करते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

उस विशाल स्वर्गलोक का आनन्द लेने के बाद जब उनका पुण्य समाप्त हो जाता है, तब वे फिर मर्त्यलोक में आ जाते हैं; इस प्रकार वेदोक्त धर्म का पालन करते हुए और सुखोपभोग की इच्छा रखते हुए वे परिवर्तनशील (जो ज़न्म और मरण के वशवर्ती हैं) आवागमन को प्राप्त करते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

परन्तु लोग अनन्य भाव से सदा अध्यवसायपूर्वक मेरा ही चिन्तन करते रहते हैं, मैं उनके योग (अप्राप्त की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त की रक्षा) का भार स्वयं संभालता हूँ।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

अन्य देवताओं के भी जो भक्त श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा करते हैं, हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), वह भी केवल मेरी पूजा ही करते हैं, यद्यपि उनकी यह पूजा ठीक विधि के अनुसार नहीं होती।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥२४॥

मैं सब यज्ञों का उपभोग करने वाला और स्वामी हूँ। परन्तु यह लोग मुझे मेरे वास्तविक रूप में नहीं जानते, इसीलिए वे नीचे गिरते हैं।

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥२५॥

देवताओं के पुजारी देवताओं को प्राप्त करते हैं, पितरों के पुजारी पितरों को प्राप्त करते हैं, भूतों के पुजारी भूतों को प्राप्त करते हैं, और जो मेरी पूजा करते हैं, वे मुझे प्राप्त करते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

जो कोई मुझे श्रद्धा के साथ पत्ती, फूल, फल या जल चढ़ाता है, उसके प्रेमपूर्वक और शुद्ध हृदय से दिए गए उस उपहार को मैं अवश्य स्वीकार करता हूँ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

जो कुछ तू करता है, जो कुछ तू खाता है, जो कुछ तू यज्ञ करता है और जो कुछ तू दान देता है और जो कुछ तू तपस्या करता है, हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), तू वह सब मुझे दिया जा रहा है उपहार समझकर कर।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

इस प्रकार तू उन शुभ और अशुभ परिणामों से मुक्त हो जाएगा, जोकि कर्म के बन्धन हैं। अपने मन को कर्मों के त्याग के मार्ग में दृढ़तापूर्वक लगाकर तू मुक्त हो जाएगा और मुझे प्राप्त हो जाएगा।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

मैं सब प्राणियों में एक जैसा ही हूँ। मुझे न तो किसी से द्वेष है, न किसी से प्रेम। परन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे अन्दर हैं और मैं भी उनके अन्दर हूँ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥

यदि कोई बड़े से बड़ा दुराचारी व्यक्ति भी अनन्य भाव से मेरी पूजा करता है, तो उसे धर्मात्मा ही समझना चाहिए, क्योंकि उसने अच्छा निश्चय कर लिया है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

वह जल्दी ही धर्मात्मा बन जाता है और उसे चिरस्थायी शान्ति प्राप्त हो जाती है। हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), इस बात को निश्चित रूप से समझ ले कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥३२॥

हे पार्थ (अर्जुन), जो लोग मेरी शरण ले लेते हैं, चाहे वे नीच कुलों में उत्पन्न हुए हों, स्त्रियां हों, वैश्य हों, या शूद्र हों, वे भी उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

फिर पवित्र ब्राह्मणों और भक्त राजर्षियों का तो कहना ही क्या! इस अस्थायी और दुःखपूर्ण संसार में आकर अब तू मेरी पूजा कर।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

अपने मन को मुझमें स्थिर कर; मेरा भक्त बन; मेरी पूजा कर; मुझे प्रणाम कर। इस प्रकार अपने-आपको अनुशासन में रखते हुए मुझे अपना लक्ष्य बनाकर तू मुझ तक पहुँच जाएगा।

दसवां अध्याय

विभूतियोग

परमात्मा की असीम अनुकम्पा रही। पिछले कुछ समय से हम लोग भगवान श्री कृष्ण के ही अमृतमय संदेश 'गीता' के सम्बन्ध में विचार करते रहे। गीता भगवान श्री कृष्ण की पवित्र अमृतमयी वाणी है और जो गीता में है वह संजीवनी है, सम्पूर्ण जीवन को आनन्दित करने का एक बहुत सुन्दर प्रकार। सौभाग्य के क्षण होते हैं तक जब हमारा मन गीता के संगीत से जुड़ जाए क्योंकि विषाद से प्रसाद की ओर ले चलने की प्रक्रिया का नाम गीता है, कायरता से वीरता की ओर ले चलने का सन्देश गीता है। संसार की उलझनों के पार निकल कर सुलझा हुआ मन मस्तिष्क लेकर संसार में कर्तव्य कर्मों को करने की दिशा शक्ति जहाँ से मिलती है उसका नाम गीता है। गीता कायरता को वीरता का सन्देश देती है, मृत्यु से अमृत की ओर ले चलती है इसीलिए मैं इसको संजीवनी कहता हूँ।

पिछले कुछ समय तक हम लोग नवम अध्याय तक चिन्तन करते रहे। आईये, आज दसवें अध्याय में प्रवेश करें। इस अध्याय में परमात्मा ही सबका आदि वही मूल है, उसको जान लेने के बाद सब कुछ जान लिया जाता है। इस भावना को भगवान कृष्ण ने अर्जुन को माध्यम बनाकर समझाया। भगवान ने कहा –

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥

अर्जुन फिर तुम मेरे परम वचनों को, महान वचनों को सुनो क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो इसीलिए मैं तुम्हें हितकामना से यह महान रहस्य सुनने के लिए तत्पर हुआ हूँ। यहाँ एक शब्द बड़ा ही अनोखा है। भगवान ने कहा कि तुम मेरे प्रिय हो इसीलिए तुम्हारे हित की कामना को ध्यान में रखकर तुम्हारे लिए यह परम वचन, रहस्यमयी ज्ञान, देने लगा हूँ। अब तक जो कुछ दिया गया वह भी महत्त्वपूर्ण ज्ञान था लेकिन रहस्य वचन, ज्ञान की चरम सीमा, वह अज्ञात रहस्य जो अनायास नहीं दिया जा सकता उसके लिए एक बात आवश्यक है – आत्मियता हो।

गुरू और शिष्य में जब आत्मियता होती है तब गुरु अपने शिष्य क रहस्यात्मक ज्ञान देता है। जिन रहस्यों को व्यक्ति सुलझा नहीं सकता, गुरू उस अनन्त ज्ञान को, महत्त्वपूर्ण ज्ञान को, उस समय देता है जब वह आत्मियता क अनुभव करता है।

अर्जुन उस स्थिति में आ गया जब मन असंदिग्ध है, संशय नहीं रह श्रद्धा जाग गयी है अर्जुन के अन्दर। श्रद्धा इतनी गहरी, अब अर्जुन पूरी तरह से आत्मसात् करने के लिए तत्पर है। तभी भगवान ने कहा कि तू मेरा प्रि है, अब मैं तुझे रहस्यात्मक ज्ञान देता हूँ। वह ज्ञान देने लगा हूँ जिससे समस्त गुत्थियाँ सुलझ जाऐंगी और यह भी कहा कि हितकामना से मैं तुम्हें ज्ञान द रहा हूँ, तुम्हारा हित हो सके।

यह ध्यान रखना कि संसार में हितकारी वस्तु ज्ञान से अलग कुछ भ नहीं सर्वप्रथम तात्विक ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान से सम्बद्ध होकर के हम बैठें, ज्ञान को जानें, ज्ञान में उतरें, सर्वप्रथम आवश्यकता हमारी यही है। ऐ समझिए कि आँख खुल जाना बहुत आवश्यक है और जाग जाने के बाद फि सब कुछ प्राप्त होने में कोई शंका नहीं रह जाएगी। भगवान ने कहा कि मैं तुम्हे प्रिय मानता हूँ, अब तुम्हारे लिए रहस्यात्मक ज्ञान दे रहा हूँ।

तो इस बात की कोशिश कीजिए कि गुरु के सम्मुख पहुँचते-पहुँच एक ऐसी स्थिति अपने अन्दर लाने का प्रयास करो कि आत्मियता हो जा अपनापन आ जाए और फिर अपने आप सब कुछ गुरु रहस्यात्मक ज्ञान उ सम्पत्ति का स्वामी हमें बना दें। भगवान के साथ भी अपनी आत्मियता जोड़ि कि तू मेरा अपना है, मेरा सगा है।

यह जो कहा जाता है न -

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणम त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम् देवदेव ।।

यहाँ स्तुति ही नहीं है भगवान की, आत्मियता जोड़ने की कोशिश है हे प्रभु, तू ही माता है, पिता है, बन्धु है, सखा है। सबसे पहले 'माता' श का प्रयोग किया, सबसे ज्यादा आत्मियता किससे होती है? सर्वप्रथम जिस आत्मियता जागती है वह माँ है। इन्सान सबसे पहले माँ का ही न पुकारता है।

आत्मियता का दूसरा रूप है पिता। ऊँगली पकड़ कर चलना ही नहीं सिखाता संसार का ज्ञान कराता है। माँ ममता का रूप है तो पिता सुरक्षा और संरक्षण है। ममतामयी माँ भगवान तुम ही हो, तुम्हीं संरक्षण देने वाले पिता हो और ऐसे बन्धु हो, रिश्तेदार हो जिससे हमारा रिश्ता सदा का है। संसार के अन्य सब रिश्ते थोड़ी देर के लिए हैं। न जाने कब इन सम्बन्धों में दरार आ जाए और कब टूट जाए। लेकिन परमात्मा के साथ ऐसा सम्बन्ध है जो कभी टूटता नहीं है।

कहा - तुम सखा हो। मित्र वही जो साथ रहे, साथ दे, सहयोग करे, गुणों को प्रकट करे, कमज़ोरियों में दोष निकाल कर मित्र को दबाए नहीं, उसकी शक्ति बने। हाँ, हितकामना से कान में प्यार से कह दे - मित्र, अगर यह कमी दूर हो जाए तो मेरे मित्र जैसा संसार में कोई दूसरा नहीं हो सकता। वह हित की कामना से कान में कहता है। दोषों को बताएगा तो हित की कामना से तब जब देखेगा कि अब अच्छे मूड में सुनने की स्थिति में है, प्यार से मजबूर करता है पूरी तरह से बदल जाने के लिए। अगर संसार के किसी और व्यक्ति की बात करें। कोई किसी की कमज़ोरी को कहना चाहता है इसीलिए नहीं की सुधर जाए, इसीलिए नहीं कि वह हित चाहता है, अपनी 'मैं' को ऊँचा दिखाने के लिए और दूसरे को नीचा दिखाने के लिए व्यक्ति दूसरे की कमजोरियों को सामने रखता है।

परमात्मा को कहा कि वह मित्र है, बोलता है हृदय में, बड़ा धीमे से बोलता है। आप जानते हैं कि जब हमारे अन्दर कभी ग़लत कार्य करते हुए घबराहट आए, दूसरों को हम बताना न चाहें, जब यह एहसास होने लग जाए, भय, शंका, लज्जा, घृणा, अन्दर से जब परमात्मा टोके, सोचना बड़े हित की भावना से भगवान अन्दर से हमें प्रेरित कर रहा है और जब हृदय में प्रेम जगाए और मिलने के लिए, सहयोग करने के लिए तत्पर करें सोचना कि मेरे परमात्मा ने मुझे आशीर्वाद दिया। वह अन्दर बैठकर सहयोगी बना हुआ है। इसीलिए परमात्मा से अगर अपनापन हो तो भक्ति होती है और तभी उसकी रहस्यात्मक ध्वनि अन्दर में सुनाई देती है। उससे निकटता स्थापित करने की कोशिश कीजिए। कभी-कभी इन्सान रिश्तों में और आत्मियता में एक चीज़ और महत्त्वपूर्ण मान लेता है और वह है - धन। लोग कहते हैं रिश्तेदार काम आएं न आएं, माता पिता काम आएं न आएं लेकिन पैसा तो काम आयेगा।

तो भक्त ने भगवान को यह भी कह दिया कि दुनिया में लोगों के लि पैसा कीमती होगा, धन कीमती होगा, उसमें व्यक्ति सगापन देखने लगता है लेकिन मेरे प्रभु मेरा तो धन भी तू ही है, माता भी तू ही है, पिता भी तू ही है, बन्धु भी तू ही है, सखा भी तू ही। *त्वमेव विद्या द्रविणम् त्वमेव* तू ही ज्ञान है। ज्ञान को भी सगा कहा गया है। ज्ञान मनुष्य के लिए सबसे ज़्यादा अपना है - खर्च करने से बढ़ता है, छीनने से छीना नहीं जा सकता। देश में जाओ या परदेस में जाओ सब जगह आपके लिए लाभकारी चीज़ है विद्या आपका ज्ञान। कहते हैं इससे बढ़कर सगा कौन होगा? लेकिन भक्त यहाँ भी कहता है कि विद्या भी हो सकता है कभी बुद्धि न काम कर पाए। विद्या अपनी अपनी है, अपनापन है विद्या में, मेरे परमात्मा मेरी विद्या तू ही है, मेरा धन भी तू ही है और आगे जाकर के क्या कहा- क्या कहूँ संसार में जो कभी कुछ महत्त्वपूर्ण होगा - *त्वमेव सर्वम् मम् देव देव* तू ही मेरा सब कुछ है। जो कुछ हमारा जिसको हम सब कुछ मान बैठे हैं जो भी चीज़ है हमारी उनसे आत्मियता होती है और जो आत्मीय चीज़ है, आपकी अपनी चीज़ है उसके छिन जाने से, छूट जाने से या छूटने की आशंका ही मन में हो, घबराहट होने लगती है। मेरा सुख न छिन जाए, मेरा धन न छिन जाए, मेरी वस्तु दूर न चली जाए, मेरा सगा सम्बन्धी मुझसे दूर न हो जाए। सिर्फ़ छिन जाने की या दूर हो जाने की शंका से भी घबराहट होने लगती है।

भगवान के प्रति इतनी ही आत्मियता बनाओ कि तू कभी मुझसे दूर न होना और कभी मेरा हाथ न छोड़ना, मेरा सहारा सदा बनना, मेरी शक्ति बनना मेरे भगवान मुझे हिम्मत देना। जब गिरूं तो संभालना, जब कमज़ोर पड़ूँ तो शक्ति देना और जब मुझे आवश्यकता पड़े दुनिया के सामने हाथ न फैलाऊँ माँगू तो तेरे ही दरवाज़े पर आकर माँगू और अगर कभी रोऊँ तो दुनिया के सामने तो कभी न रोऊँ, अगर आँख में आँसू आए तो परमात्मा तेरे सामने ही आए, संसार के सामने कभी न आए - तो यह आत्मियता है, अपनापन है और इस अपनेपन को लेकर के फिर आप बैठिए प्रभु के सम्मुख। आप यह अनुभव करेंगे ज्ञान आपके हृदय में अनायास जागृत होगा।

गुरु के नज़दीक जाना हो और ज्ञान प्राप्त करना हो तो वहाँ भी आत्मियता अन्दर धारण करनी ही चाहिए। इसके बिना ज्ञान मिलेगा नहीं

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कहा – तू मेरा आत्मीय है, मेरा प्यारा है अब मैं तेरी हितकामना से तुझे महान वचन सुनाने के लिए तत्पर हुआ हूँ। और महान वचन क्या बताने लगे हैं भगवान –

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वश : ॥

– अर्जुन, देवता लोग और महर्षि लोग मेरे स्वरूप को और प्रभाव को जान नहीं पाए क्योंकि मैं समस्त देवताओं का आदि हूँ और ऋषियों का कारण भी मैं ही हूँ। अर्थात् परमात्मा ही समस्त सृष्टि का आदि है, देवों का, ऋषियों का सबका कारण वही है। देवता लोग भी उसे नहीं जान पाते अर्थात् उसके रहस्य को जान पाना आसान नहीं है।

भगवान ने कहा – जितने भी देवगण हैं वह मुझे नहीं जान पाए, ऋषि महर्षि लोग भी नहीं जान पाए। यह भी एक आश्चर्यजनक बात है कि हम कितनी भी कोशिश करें, कितनी भी उड़ान भरें परमात्मा की महिमा को सम्पूर्ण रूप से नहीं जान सकते।

उपनिषदों में एक वर्णन आता है जिसका सार यह है कि आदि में जब सृष्टि की रचना हुई तो एक चिह्न प्रकट हुआ और वह प्रतीक चिह्न धरती से लेकर आकाश तक फैलना शुरू हो गया। उसको जानने के लिए देवता लोगों ने कोशिश की, ऊपर तक उड़ान भरते रहे पक्षी बनकर, ज़मीन के अन्दर तक पहुँचने की कोशिश की और आखिर में सब के मुख से यही निकला कि यह आदि अन्त इसका नहीं है और उसी को आधार मानकर शिवलिंग का स्वरूप रखा गया कि भगवान का स्वरूप वह है जिसका न आदि न अन्त।

दुनिया की हर वस्तु का कहीं न कहीं आदि अन्त है लेकिन परमात्मा का कहीं, आदि अन्त नहीं है और उसका कोई जनक भी नहीं है इसीलिए भगवान को कहा – 'स्वयंभू' – स्वयंभु का अर्थ है जो स्वयं से है जैसे 'खुदा', खुदा का अर्थ हुआ 'जो खुद से है' जिसको किसी ने बनाया नहीं, जो सदा से है, जिसका कोई आदिकारण नहीं है। तो जो सदा से है और जिसकी महिमा को कोई जान नहीं सकता; भगवान ने कहा कि न देवता जान पाए हैं न ऋषि लोग जान पाएंगे। कहा – क्योंकि मैं अनादि हूँ और मैं ही लोक महेश्वर हूँ जो मेरे स्वरूप को जान लेता है, इस रूप को जानता है कि सब

में मैं हूँ सब मुझमें हैं इसकी जब अनुभूति कर लेता है। भगवान कहते हैं सिर्फ ज्ञान प्राप्त कर लेने से ही *सर्वपापैः प्रमुच्यते* सब पापों से वह मुक्त हो जाता है, छूट जाता है। मतलब ऐसा व्यक्ति जो ज्ञान से अपने आप को जागृत कर चुका हो परब्रह्म के सम्बन्ध में जान गया हो, सब पापों से छूट जाएगा। इसीलिए यह मानना ज़रूरी है कि पहले ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में ही हम प्रयत्नशील हों और समस्त कार्य अपने, उनको इतना महत्व न दें। मतलब यह कि अन्धेरी गुफा में कोई व्यक्ति चला जा रहा हो तो, चलते हुए न जाने कितनी बार चोट खाएगा। बस इतना ही कार्य करने की आवश्यकता है कि एक दीया जला दिया जाए तो बहुत सारी ठोकरों से और बड़ी भारी चोट से और दुःख से बचा जा सकता है। कहते हैं इस दुनिया में चलते-चलते न जाने कितनी बार इन्सान ठोकरें खाता है, चोट खाता है, दुःख पाता है। कारण क्या है? क्योंकि उसकी बुद्धि का दीया जगा नहीं है। तब तक भटकता रहेगा और दुःख भोगता रहेगा जब तक दीया जगेगा नहीं और अन्धेरा मिटेगा नहीं। इसीलिए ज्ञानियों को दुःख नहीं, परेशानी नहीं।

चाणक्य ने इसीलिए तो कह दिया कि दुनिया में दो ही व्यक्ति सुखी हैं - या तो परले दर्ज़े का ज्ञानी हो या फिर परले दर्ज़े का मूर्ख आदमी हो। यह बीच वाला आदमी तो सोचता ही रहता है हर समय और जो सोच में पड़ा हुआ है, जो चिन्ता में डूबा हुआ है उसको कहीं न कहीं भय है, कहीं न कहीं आशंका है दुःख तो रहेगा ही। जो परले दर्ज़े का ज्ञानी है वह दुनिया के पचड़े में नहीं पड़ता, ऊपर उठ जाता है इन चीज़ों से और परले दर्ज़े का मूर्ख हो वह भी दुनिया छोड़कर अलग ही बैठ जाता है, वह अपनी दुनिया में मस्त रहता है, उसे किसी से कुछ लेना देना ही नहीं। तो चाणक्य तो यह कहते हैं या तो फिर बुद्धि को उठाकर ताक पर रख दो। एकदम ही ऐसे मस्त होकर बैठ जाओ कि दुनियादारी की ख़बर ही न रहे, अपने में खो जाओ। या फिर इतने ऊँचे उठो कि सारे संसार का ज्ञान तुम्हें हो जाए और तुम्हारी बुद्धि का दीया जग जाए, तुम्हारे अन्तस्थ का दीया जग जाए तो निश्चित बात है ठोकरें खाने से बच जाओगे और जीवन में हर क्षण में, हर रूप में आनन्द और शान्ति छा जाएगी।

तो मूर्ख तो बना नहीं जा सकता, न बनना चाहिए क्योंकि मनुष्य जब तक दुनिया में है तब तक उसे कुछ न कुछ सीखना है, जानना है। जानने के लिए कहा जाता है परब्रह्म की ओर चलिए सब कुछ जान लिया जाएगा।

आप सोचिए भारत में यह जो ऋषि मुनि लोग हुए है इन्होंने इतना कुछ ज्ञान की ऐसी-ऐसी चीजें कही हैं जिनके बारे में सुनने से आश्चर्य होता है कि इन लोगों के पास कहाँ प्रयोगशालाएँ थी जिनमें इन लोगों ने चिन्तन करके परिक्षण करके ऐसी अद्भुत चीजें दीं कि जो आज खोजी जा रही हैं।

कणाद् ऋषि ने कभी किसी समय में कहा था कि तुम शब्द को पकड़ सकते हो, उसका उपयोग कर सकते हो। कणाद् ने यह भी कहा था कि शब्द जो है आकाश में गोल घेरे की तरह फैलता है और आखिर में जाकर वह तरंग बन जाता है, विद्युत की धारा बन जाता है, उसको पकड़ा जा सकता है।

अगर कणाद् के सम्बन्ध में आप जानकारी लें तो आपको हैरानी होगी कि केवल एक समय में दो ग्राम अनाज खाकर कणाद् ऋषि साधना करते थे और अनाज भी कैसा गेहूँ के अनाज के दानों को ज़मीन से इकट्ठा कर के जब किसान लोग फसल उठाकर चले जाते थे तो खेत में जो थोड़ा बहुत अन्न गिरा रह जाता था उन अनाज के कणों को इकट्ठा कर के कणाद् ऋषि अपनी कुटिया में जमा कर लेते थे। तब वह कहते थे कि यह अनाज के दाने जो बच गए हैं इन पर या तो चिड़िया या पक्षियों का अधिकार है या मुझ जैसे व्यक्ति का अधिकार है क्योंकि अगर यह बचा रह गया अनाज तो ज़मीन में गिर कर दुबारा पैदा होगा और इस समय फसल का समय नहीं है, खराब हो जाएगा। इससे किसी को हानि भी नहीं, किसी का हक भी नहीं चुराया जा रहा है; तो उसको पवित्र मानकर इकट्ठा करते थे। सात्विक और पवित्र मन लेकर तब उन्होंने साधना करके जो कुछ प्राप्त किया कणाद् ऋषि ने वैषिषिक दर्शन संसार को दिया। पर चिन्तन कीजिए कौन-सी प्रयोगशाला में उन्होंने प्रयोग किए थे?

अन्दर की प्रयोगशाला में रहस्यों को खोजें। इन ऋषियों ने कहा कि *यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे, यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे* - जैसे तुम्हारे पिण्ड में है वैसे ही बाहर ब्रह्माण्ड में है, मतलब, जो शरीर में है वही बाहर है, जो बाहर है वही शरीर में है और आश्चर्यजनक बात है जो-जो कुछ इन्होंने कहा विज्ञान

उसे सिद्ध कर रहा है। इन लोगों ने कहा कि विद्युत की धाराओं को तुम प्रयोग में ला सकते हो और वह चीजें प्रयोग में लाई जा रही हैं। पाँच भूतों के द्वार तुम कार्य कर सकते हो। अब जैसे भारद्वाज ऋषि ने एक ग्रंथ दिया संसार को, जिसको विमान शास्त्र के रूप में भी लोगों ने जाना। उस में से एक खण्ड निकालकर के विमान शास्त्र के रूप में पुस्तकें अब भी मिलती हैं और आपको हैरानी होगी कि विमान बनाने की प्रक्रिया भारद्वाज ऋषि ने उसमें लिखी हैं विमान कैसे बनाओगे। हज़ारों साल पहले यह राईट ब्रदर्स जो इटली में हुए जिनके बारे में कहा जाता है इन्होंने वायुयान की खोज की, पहला निर्माण किया लेकिन इन लोगों की बात तो अभी बड़ी नज़दीक वाली बात है। इस शताब्दी का प्रारम्भ जो आप देखते हैं इसमें यह चीज़ें सामने आई हैं लेकिन हज़ारों साल पहले आपके देश के ऋषि ने यह लिखने का प्रयास किया, बताया कि विमान तैयार कर सकते हो और उस सम्बन्ध में यहाँ तक कह दिया; अगर पुराने ग्रन्थ आप उठाकर देखें तो यह भी लिखा है कि कौन-से साधन से आप विमान को उड़ाओगे। तेलों का वर्णन तो वहाँ पर है लेकिन कौन-से तेल? कहा कि जिनसे प्रदूषण न फैले और व्यक्ति के स्वास्थ्य पर हानि न हो। आगे चलकर के यह भी कहा - पारे का प्रयोग कर सकते हो, फिर आगे चलकर के बताया तुम चाहो तो सूरज की ऊर्जा का प्रयोग मणियों के माध्यम से कर के अपने विमान को चला सकते हो। अब ज़रा सोचिए इन लोगों की प्रयोगशालाएँ कौन-सी थीं? परमात्मा से अपने को जोड़ा इसीलिए इन लोगों को यह ज्ञान, संसारिक ज्ञान भी, आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त हो गया।

मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि परब्रह्म परमेश्वर की ओर चलने से सब कुछ जान लिया जा सकता है। ज़्यादातर हमारी सारी की सारी दौड़-भाग शरीर से और शरीर की आवश्यकता पूरी करने के लिए ही लगी हुई है। थोड़ा अन्दर में जाने की कोशिश शुरू करें। कुछ ऐसा प्राप्त किया जा सकता है जिसके बारे में आप यह कह सकते हो कि अब कुछ जानना बाकी नहीं है।

भगवान ने यह कहा ऋषि लोग और देवता लोग मुझे नहीं जान पाए लेकिन जिन्होंने मुझे जान लिया वह सब पापों से छूट गया क्योंकि आदमी जब भी गुनाह करेगा, ग़लत तरफ़ चलेगा अज्ञान की अवस्था में ही चलेगा। जैसे ही उसको होश आती चली जाएगी संभलता चला जाएगा। भगवान ने फिर कहा -

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥

कुछ गुणों का वर्णन किया कि यह गुण मेरे अन्दर से ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के अन्दर बुद्धि, ज्ञान, असम्मोह, मूर्खता की पूर्ण स्थिति की समाप्ति-असम्मूढ़ता - कि मेरे नज़दीक आने से यह लाभ होता है।

परमात्मा हृदय में ज्ञान देता है और कैसे देता है आप लोगों को बहुत सारी चीजें अनायास पता चलती है। मैं एक उदाहरण दे रहा हूँ आपको। एक बूढ़ी माँ रेगिस्तान में एक पोटली संभाले हुए यात्रा कर रही थी। चलते-चलते थक गई। रेगिस्तान में चलने वाला रेगिस्तान का जहाज है-ऊँट। ऊँट का सवार कोई चला जा रहा था तो बूढ़ी माँ ने आवाज़ दी- 'ऊँट वाले भईया, मुझे बैठाओगे?' ऊँट वाले ने मना कर दिया। बूढ़ी माँ ने कहा - 'फिर एक काम करो यह जो मेरी पोटली है न इसको रख लो ऊँट पर और आगे जो गाँव आएगा उसमें पीपल के साथ जो कुआं है वहाँ पर रख देना। मैं आऊँगी, ले लूँगी।'

ऊँट वाले ने गुस्सा करते हुए कहा - 'मेरे पास फालतू समय नहीं है कि तुम्हारी गठरी लेकर के चलूँ।' बूढ़ी माँ ने कहा - 'बेटा गठरी भारी है, बूढ़े शरीर से ले जाने में कठिनाई होगी तेरा सहयोग मिल जाए कितना अच्छा हो।' इसने एकदम इन्कार कर दिया - 'नहीं, मैं नहीं ले जाने वाला' और ऐसा कह कर के ऊँट लेकर के चल पड़ा। आगे चलते-चलते उसके मन में आया - अगर मैं बूढ़ी माँ की गठरी रख लेता और उसमें तो कोई न कोई कीमती चीज़ होगी, रुपया पैसा भी होगा, गहने भी होंगे और भी कीमती चीजें हो सकती हैं; बूढ़ी माँ से तो चला भी नहीं जाएगा और मैं तो ऊँट से भागता हुआ कहीं से कहीं पहुँच जाऊँगा। तो ठगने का बहुत अच्छा अवसर है; बूढ़ी माँ तो खुद ही अवसर दे रही है।

ऊँट को वापिस लेकर के आया और बूढ़ी माँ के पास आकर के कहता है - अच्छा माता, मुझे तेरे ऊपर दया आ गई है, अब तुम अपनी गठरी दे दो, मैं लेकर चलता हूँ। बूढ़ी माँ ने इन्कार कर दिया - नहीं बेटा, अब नहीं दूँगी। ऊँट वाला बोला - 'किसने मना कर दिया आपको? बूढ़ी माँ ने कहा - 'जिसने तेरे मन में यह कह दिया कि बूढ़ी माँ की गठरी ले ले उसी ने आकर

मुझे यह भी बता दिया कि अब नहीं देना इसको। पहले तू कुछ और था, अब तू कुछ और है। पहले तेरा मन साफ था, मैं अपनी गठरी देने को तैयार थी अब तेरे मन में खोट आ गया है इसीलिए अब देने के लिए तैयार नहीं हूँ। व्यक्ति कहता है किसने समझा दिया? बोली-'जिसने यह समझा दिया कि गठरी ले ले उसने मुझसे यह भी कह दिया कि गठरी न देना।'

तो कौन बोल जाता है हृदय के अन्दर? यह ज्ञान आता कहाँ से है? एकाएक दूसरों के मनोभावों के बारे में एकदम जानकारी हो जाती है। आपके मन में पवित्रता है तो पवित्रता का पता लगता है। आपके अन्दर खोट जागने लगा है तो पता लग जाता है। आपके हृदय में प्रेम है तो उसका पता लगता है। आपके मन में द्वेष है तो उसका पता लगता है।

भगवान ने कहा यह जो ज्ञान आता है न यह मेरी तरफ से ही आता है बुद्धि देता हूँ तो मैं ही देता हूँ।

यहाँ हम यह व्यास वचन को याद कर सकते हैं कि भगवान जब किसी को दण्डित करता है तो बुद्धि हरता है और जब कृपा करता है तो सुबुद्धि देता है। भगवान ने कहा बुद्धि, ज्ञान असम्मोह, बुद्धि का मिलना, ज्ञान का मिलना और सम्पूर्ण प्रकार की मूर्खता का नाश होना मेरे कारण होता है, मेरे निकट बैठने से होता है, मेरी कृपा से प्राप्त होता है। सदैव एक ही कामना करना कि भगवान हमारे समस्त अज्ञान को दूर करना, ऐसा ज्ञान जगा दो कि होश में आ जाएं, ऐसा छींटा लगाओ कि अब सोने वाली स्थिति फिर कभी न हो। इस भाव को ध्यान में रखना। ऋषियों को ज्ञान मिला। जितने भी सन्त हुए, साधक लोग हुए उनके पास में क्या दौलत थी? एक ही सम्पत्ति मिल गई - ज्ञान की सम्पत्ति। हम भी उसके अधिकारी बनने की कोशिश करें। बुद्धि मिल गई यह भी एक बात निश्चित है निर्णय करने की शक्ति आएगी।

रॉक फैलर ने कहा था न उनसे किसी ने पूछा कि सफलता का राज़ क्या है? आप जो इतने सफल रहे- अमरीका के बहुत बड़े धनपति। उससे पूछा गया इतने बड़े धनी बने, इतने बड़े सफल इन्सान बने, तो उसका राज़ क्या है? उस व्यक्ति ने क्या कहा? उसने कहा - 'सही समय पर सही निर्णय करने की जो क्षमता मेरी थी, उसके कारण मैं सफल हुआ। अगर सही समय पर सही निर्णय नहीं ले पाता तो आज जो कुछ मैं बन पाया हूँ कभी न बन पाता। बहुत

लोग हैं, जो सोचते रह जाते हैं, निर्णय ही नहीं कर पाते हैं। उनके सामने आगे बढ़ने का, आगे जाने का पूरा-पूरा अवसर होता है लेकिन निर्णय करने की क्षमता नहीं होती। रॉक फैलर ने कहा कि मेरे ऊपर यह कृपा रही है मेरे पास में यह खास बात रही है ठीक समय पर ठीक निर्णय लेने में मैं एकदम तत्पर हो गया।' सवाल करने वाले ने एक सवाल और किया - यह ठीक निर्णय करने की शक्ति आपके अन्दर कहाँ से आयी? इस व्यक्ति ने कहा ज्ञान से। पूछा गया - ज्ञान किसी विश्वविद्यालय में पढ़ा क्या? इस आदमी ने आगे कमाल की बात कही कि ज्ञान ही नहीं, ज्ञान के साथ तजुर्बा, तजुर्बा खुद किया, स्वयं के तजुर्बे से और दूसरे के अनुभव से मैंने जो सबक लिया उसके आधार पर मेरे पास ऐसी बुद्धि रही मैं ठीक समय पर ठीक निर्णय ले पाया, उसके कारण इतना सफल हो पाया हूँ।

अगर हम इसको दूसरे ढंग से कहें - यह ठीक समय पर ठीक निर्णय लेने की जो स्थिति है यह भी तो परमात्मा की कृपा है न। जब यह कृपा प्राप्त हो जाती है तो निर्णय ऐसा लेता है इन्सान कि सफलताओं पर सफलतायें मिलती चली जाती हैं नहीं तो आदमी अपने-अपने दायरे में कैद है उससे आगे जा ही नहीं पाता, दायरा छोड़ कर बाहर निकल नहीं पाता। हम सब अपने-अपने दायरों में गोल-गोल घूम रहे हैं। इन दायरों से बाहर निकलने की अगर हम कोशिश करना चाहते हैं तो इसके लिए एक ही स्थिति है - सुबुद्धि की कामना करो, सुमति माँगो - 'मेरे प्रभु, सुमति बख़्शो, ऐसी बुद्धि प्रदान करो कि हमारा जीवन निरन्तर सफलता की ओर बढ़ता चला जाए।'

भगवान ने कहा - ज्ञान, बुद्धि और समस्त प्रकार की मूर्खता का नाश, मतलब ऐसी स्थिति मूर्खता न हो, सम्पूर्ण ज्ञान हो और बुद्धि तीव्र कि ऐसी स्थिति जब आए तो सोचना यह मेरे से ही आती है।

अगला शब्द फिर कहा - *क्षमा सत्यं दमः शमः* - मुझसे ही जागता है क्षमा का भाव अर्थात् जब आदमी क्षमा शील होता है न - किसी की बड़ी बड़ी गलती को क्षमा कर दे, भगवान कहते हैं वह आदमी मेरे नज़दीक है, मेरे करीब है या मेरा प्यारा बन जाने के बाद यह गुण मिलता है व्यक्ति क्षमाशील हो जाता है।

द्रौपदी के पाँचों बेटों की हत्या करने वाला अश्वत्थामा जब द्रौपदी के सम्मुख लाया गया, द्रौपदी उस समय बाल फैलाए बैठी हुई थी और भीम से रोते-रोते कह रही थी कि जब तक हत्यारे को मेरे सामने नहीं लाओगे मेरे मन को चैन मिलने वाला नहीं। जब हत्यारा सामने लाकर के खड़ा कर दिया गया जंज़ीरों में बांधा हुआ है उसको। अब भीम कहता है कि कहो तो इसके सिर के टुकड़े कर दूँ, कहो तो सारे शरीर के टुकड़े करके पशु-पक्षियों के आगे डाल दूँ।

द्रौपदी ने ध्यान से देखा उसको और ध्यान से देखने के बाद एकदम उसकी माँ का ध्यान आया। द्रोणाचार्य का बेटा, पिता है नहीं अब, घर में सिर्फ एक माँ है और उसका यह एक बेटा। द्रौपदी सोच रही है, मन-मन में, तू ने मेरे बच्चों को मार कर मुझे निपुती बना गया, तूने तो दया नहीं की। मन-मन में सोच रही है लेकिन मैं इस पर नहीं तो इसकी माँ पर तो दया कर ही सकती हूँ। भीम से कहा – 'अश्वत्थामा को छोड़ दो।'

युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव और गदा लिए हुए भीम पाँचों के पाँचों आश्चर्य में पड़ गए। जिसके लिए रात-दिन रो रहे थे, द्रौपदी तुम रात-दिन यह आवाज़ मुंह से निकाल रही थी कि किसी तरह से हत्यारे को मेरे सम्मुख लाओ, जब तक उसका मरा हुआ मुंह नहीं देखूंगी मुझे चैन नहीं मिलेगा, मेरे बच्चों की हत्या करने वाला मेरे सामने आना चाहिए। अब यह आ गया है तो इसको माफ कर रही हो?

द्रौपदी ने कहा कि अगर तुम लोग मेरे दिल को चैन देना चाहते हो तो इसको छोड़ दो, बन्धन उसके खोल दिए गए। अश्वत्थामा वहीं बैठा रहा अश्वत्थामा ने कहा – मेरे ऊपर दया कर रहे हो? मारते क्यों नहीं? द्रौपदी के मुंह से एक ही वचन निकला – 'मैं तुम्हारे ऊपर दया नहीं कर रही हूँ, पीछे तुम्हारे घर में तुम्हारी माँ बैठी हुई है और जिस महिला के बच्चे उसके सामने खत्म हो जाएं, निपुती माँ किस स्थिति में, जिसके सिर पर पति की छाया भी न हो, कैसे जिन्दगी बिताती है इसकी मैं कल्पना कर सकती हूँ। मैं तेरे ऊपर नहीं तेरी माँ के ऊपर दया कर रही हूँ। तूने तो मेरे बच्चों की ज़िन्दगी छीन ली लेकिन मैं तुझे ज़िन्दगी दे रही हूँ। तेरा उपकार नहीं तेरी माँ के ऊपर उपकार कर रही हूँ। मैं नहीं चाहती कि अगर मेरी आँख में आँसू रहें तो तेरी

घर में तेरी माँ की आँख में आँसू रहें, मैं चाहती हूँ कि भले ही आँख में आँसू रहें लेकिन तेरी माँ की आँख में आँसू कभी न आएं।

ऐसा कहकर जैसे ही द्रौपदी ने उसे कहा कि निकल जा यहाँ से, तब भगवान कृष्ण ने द्रौपदी के सिर पर हाथ रखकर के कहा – 'द्रौपदी, आज पता लगा तू कृष्ण की बहन है, तूने सिद्ध कर दिया कि तू कृष्ण की बहन है।'

अर्थात् कृष्ण वहीं हैं जहाँ क्षमा है और जहाँ क्षमा नहीं है वहाँ कृष्ण नहीं। कृष्ण के स्वरूप को पूजना चाहते हो, क्षमा को पूजना शुरू करो। क्षमा जैसे-जैसे आपके अन्दर उभरती जाएगी आपका गोविन्द आपके अन्दर जागृत हो जाएगा। आपको लगेगा कि कृष्ण ने आपको एक हाथ से संभाल लिया है।

इसीलिए कहा जाता है कि क्षमा वीरों का आभूषण है, बहादुरों की पहचान है वह क्षमा करते हैं, आतताईयों की पहचान है वह दूसरों को दुःख दिया करते हैं। जिस आदमी के अन्दर ताकत है, दण्डित करने का पूरा अधि कार है, ठोकर मार सकता है, चोट लगा सकता है और वह आदमी क्षमा कर दे तो माना जाएगा सबसे सुन्दर और सबसे बढ़िया आभूषण उसने धारण कर लिया, अब उसके अन्दर सजावट आ गई, वह सच्चे आभूषण से युक्त हो गया; यही है गौरव, यही है सौन्दर्य जीवन का, बहादुरी का, वीरता का कि क्षमाशील हो जाओ, माफ करना सीखो। माफी मांगना भी गुण है, इसको सज्जनता माना गया है। 'सौरी' कह देना, इसको आप अंग्रेजी की परम्परा कहें ऐसी बात नहीं है। गलती मानना भी, हमारे ग्रन्थों में कहा गया है – जो आदमी प्रायश्चित नहीं कर सकता और अपनी कमज़ोरी को दूर नहीं कर सकता वह आदमी कभी ऊँचाई पर नहीं जा सकता इसीलिए आदमी को पहले अपनी गलती माननी चाहिए। सौरी कहना तो आना चाहिए, माफ करना, जो शब्द बोलते हैं न लेकिन सौरी कह देना तो बहुत आसान है। क्षमा के लिए प्रार्थना करना कि माफ कीजिए, यह कह देना तो बहुत आसान है लेकिन यह बड़ा मुश्किल है कि कोई व्यक्ति कह दे कि चलो कोई बात नहीं। यह शब्द अगर कभी मुंह से निकालो भी न अगर कहो सौरी अनायास नहीं निकालना, हृदय की गहराई से निकालना कि माफ करना भाई, गलती हुई है। हृदय की गहराई से बोलना, सच में मुझसे गलती हुई है, अपराधी हूँ, क्षमा चाहता हूँ। और दूसरा आदमी भी हृदय पर हाथ रखकर कह दे अच्छा चल तू इतनी गहराई से

एहसास कर रहा है तो मैं भी तुझे माफ करता हूँ। ऐसा जब एहसास जागत है तो सोचना आपके हृदय में परमात्मा कृपा करने के लिए उतर आए हैं; वह बहुत बड़ी ऊँचाई होती है। भगवान ने कहा कि किसी के अन्दर क्षमा गुण है सोचना वहाँ मैं हूँ या क्षमा करने वाला व्यक्ति मेरे नज़दीक आ जाता है।

माफ़ करने के लिए हमेशा तत्पर रहो। दूसरे की कमजोरियों को अगर कभी देखते हो क्षमा करने के गुण को कभी भूलना नहीं। भगवान ने शब्द कहे *-सत्यं दम: शम:* सत्यता यह जहाँ से आए वहाँ मैं हूँ। जिसके जीवन में सत्य है समझना धर्म है, जहाँ सत्य है वहाँ धर्म है, जहाँ धर्म है वहाँ सत्य है। सत्य को कहा गया है कि सत्य वह शक्ति है जिसको मन, आत्मा, हृदय, सम्पूर्ण शरीर, सहज और सरल रूप में स्वीकार करता है। मतलब सत्य आपके अन्दर है तो सत्य कहने में आपके अन्दर ज़ोर नहीं पड़ता और अगर आपको झूठ कहना हो तो पूरे शरीर पर ज़ोर पड़ता है, जीभ भी लड़खड़ाती है, दिमाग भी सोचने लगता है, दिल पर भी दबाव पड़ता है इसीलिए जो 'लाई डिटैक्टर' है जिससे झूठ पकड़ा जाता है उसमें यही तो कम्पन नोट किए जाते हैं कि कितना दबाव पड़ रहा है किस शब्द को बोलते समय कितना दबाव पड़ रहा है। तो जिस शब्द को बोलते हुए दबाव बढ़ा उसका मतलब झूठ था। तो वहाँ निशान आ जाता है यह झूठ, यह सही। समझना जहाँ पाप है वहाँ आपके ऊपर दबाव आ जाएगा और जहाँ पुण्य है वहाँ दबाव नहीं आ रहा। जहाँ पुण्य है वहाँ परमात्मा है, परमात्मा जहाँ है वहाँ सरलता बनी हुई है, शान्ति बनी हुई है और जहाँ आप परमात्मा से दूर हो रहे हैं वहाँ अशान्ति बढ़ती जा रही है, दु:ख बढ़ता जा रहा है।

भगवान ने कहा - मैं सत्य में हूँ, सत्य मुझमें प्रतिष्ठित है और फिर शब्द देखिए बड़े प्यारे शब्द है - *दम: शम:* जब तुम अपने आपे पर नियन्त्रण लगाते हो तो समझना कि मैं ही नज़दीक आ गया हूँ और जब तुम मन-माना व्यवहार करने लग जाते हो तो समझना तुम मुझसे दूर हो गए हो। कितनी प्यारी बात है। अपने को नियन्त्रण में ले आओ परमात्मा के निकट हो जाओगे और अपनी होश खोकर, मनमाना करके, पशुता अपनाओगे तो सोच लेना अपने भगवान से बहुत दूर हो गए हो। इसीलिए अपने अन्दर ही पशुता को मिटाने के लिए प्रयत्नशील हो और नियन्त्रण लगाओ।

नियन्त्रण कहाँ-कहाँ से शुरू करोगे आप? अपनी तारीफ में जब बहुत कुछ कहने लग जाते हो आप तब रोकना अपने को, दूसरे की निन्दा करने में जब आपकी जीभ उत्सुक हो जाए तो रोकना। दुश्मन की निन्दा सुनने के लिए कान उत्सुक हों और कहीं कोई हमारी तारीफ कर रहा हो और हमारे कान खुल जाएं एकदम कहें - 'वाह-वाह क्या कमाल की बात कही' अपने मतलब की बात सुनने के लिए जब हम उत्सुक हो जाएं, स्वार्थसिद्धि वाली बात, दूसरे को, दुष्टों को, ख़ासतौर से वह लोग जो हमारे दुश्मन हैं उनके सम्बन्ध में बुराई सुनने के लिए जब कान उत्सुक होने लग जाएं नियन्त्रण लगाओ उस समय अपने आपे पर। अपने कानों में अपनी निन्दा के शब्द भी जाने दो। साबुन का काम करेंगे। कबीर साहब ने कहा - *'न निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटि छवाये।'* छवाये से छिपाए कह लीजिए कि अपने आँगन में, अपनी कुटिया में छिपा कर रखना निन्दक को। कारण - *बिन साबुन बिन पानी के निर्मल करे सुभाये।* वह तो पानी भी लेकर नहीं आता साबुन भी नहीं लगाता और आपके अन्दर निखार पैदा कर देता है, आपके मन को निर्मल कर देता है कि उससे बढ़िया आपका हितकारी कौन हो सकता है? हज़ार काम छोड़कर आपकी सफाई में लगा हुआ है।

लेकिन कबीर भी जिस युग में रहे होंगे उस समय के निन्दक भी कुछ अलग ही टाईप के रहे होंगे। आज के समय में तो अकारण निन्दा करने वाले लोग हैं जिनसे सबक लोगे तो क्या लोगे? अकारण बैर रखने वाले लोग, वह लोग जो दूसरे की उन्नति को देख कर जल रहे हैं इसीलिए निन्दा कर रहे हैं। उनके लिए क्या इलाज करोगे आप? उनसे क्या सबक लोगे आप? हाँ, इतना ही कर सकते हो उनके लिए मँगलकामना करना और यह कहना - 'भगवान उनका भी भला कर, उनका भी भला हो।' लेकिन कानों पर नियन्त्रण तो लगाना चाहिए।

हमारे देश की, वेदों की एक मांगलिक प्रार्थना है - 'भगवान हमारे कान से भद्र शब्द ही सुनाई दें, आँखों से अच्छा ही देखते जाएं, जिधर देखें अच्छा देखें, जहाँ सुने अच्छे शब्दों को सुनें और उन्हीं का संग्रह करें।' गलत चीज़ें सुनते-सुनते आपके अन्दर भी कूड़ा-कचरा जमा हो जाता है। तो यह प्रयत्नशील हो जाएं कि हमारे अन्दर गलत चीज़ न आए और अच्छी से अच्छी चीज़ों का

संग्रह करने वाले बन जाओ। भगवान ने कहा जो अपने पर नियन्त्रण लगाता है वह मेरे निकट है। शमः और जिसके अन्दर क्षमा है, शान्ति है, शान्ति में जीता है, शान्ति में व्यवहार करता है, शांत रहने का स्वभाव बन गया है तो भगवान कहते हैं वह मेरी कृपा का ही फल है या मेरे निकट आने से यह गुण मिला करता है। तुम शान्त रहना मेरा प्रसाद मानकर उसे स्वीकार करो। ऐसे समझिए - न तो वाणी से अशान्ति दो, न हाव भाव से, न व्यवहार से, न कर्म से बल्कि कोशिश करो हर किसी के लिए शान्ति बांट सको। फूल बांटने वाले व्यक्ति को एक चीज़ तो मिल ही जाती है - सारे फूल उठाकर के बांट जाए थोड़ी बहुत खुशबू तो हाथ में लगी रह जाएगी। शान्ति देने वाले व्यक्ति के लिए निश्चित बात है जो दूसरों को शान्ति दे रहा है उसके हृदय में तो शान्ति देने का काम परमात्मा ही किया करता है, वह सदैव शान्त रहेगा, सदा आनन्दित रहेगा।

❊❊❊❊❊❊❊❊

आपके सम्मुख मैं जो अध्याय प्रस्तुत कर रहा हूँ, गीता का यह दसवां अध्याय है। दसवां अध्याय भगवान श्रीकृष्ण की विभूतियों के सम्बन्ध में सुन्दर दिग्दर्शन हमें कराता है।

भगवान ने कहा - अर्जुन, तू मेरा प्रिय है इसीलिए मैं तेरे सामने हित कामना से यह परम वचन कहने लगा हूँ । परम वचन का मतलब यह है - जिससे आगे कोई वचन नहीं हो सकते, जिससे महत्त्वपूर्ण कुछ और हो नहीं सकता। परमवचन का मतलब है वह अन्तिम सत्य जिस सत्य के बाद फिर कुछ और जानना और पाना बाक़ी नहीं रहता।

भगवान श्रीकृष्ण उस परमवचन के सम्बन्ध में उपदेश दे रहे हैं, परमवचन अर्थात् परमसत्य, जिसमें कुछ और कहने की गुंजाइश न हो।

भगवान ने कहा -

बुद्धिर्ज्ञानसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥

– भगवान श्रीकृष्ण ने यह उपदेश दिया कि बुद्धि, ज्ञान और असंदिग्धता – उत्तम बुद्धि की प्राप्ति, यह भी मुझसे ही प्राप्त होती है अर्थात् मेरे द्वारा ही उत्तम बुद्धि, ज्ञान और असंदिग्ध मन, असंदिग्ध अवस्था, मतलब यह है कि जीवन में कहीं न कहीं कोई न कोई सन्देह रहता है, आशंका रहती है। भगवान ने कहा कि ऐसा असंदिग्ध स्वरूप मैं प्रदान करता हूँ कि संशयरहित स्थिति आ जाए, यह मेरी कृपा का ही फल है।

क्षमा का गुण, जो वीरों का आभूषण है, बड़प्पन को प्राप्त करके, ऊँचाई को प्राप्त करके, दूसरों को क्षमा करने के लिए उत्सुक हो जाना – भगवान कहते हैं कि यह मेरे कारण ही उपजता है।

सत्यं दमः शमः – किसी व्यक्ति के जीवन में सत्यता है, सत्यनिष्ठ है, भगवान कहते हैं कि यह कृपा भी मेरे ही कारण जागती है; *दमः शमः* – व्यक्ति अपने आपके को नियंत्रित करने लग जाए, अपने आवेश को अपने वश में रख ले यह एक महत्त्वपूर्ण गुण है। किसी व्यक्ति में इस गुण का जाग जाने का मतलब है कि मेरी कृपा उसको प्राप्त हो गई।

शमः – व्यक्ति शान्ति में जीवन जिये, यह भी मेरे कारण ही होता है। यह विभूतियाँ जो परमात्मा की हैं मनुष्य के अन्दर अगर यह गुण जागने लग जायें तो यह मानना चाहिए कि इसमें परमात्मा की बड़ी भारी कृपा हमारे ऊपर है।

व्यक्ति के जीवन में क्षमा का गुण हो, शान्ति हो, सत्यता हो, वह परमात्मा के निकट है। छल-कपट है, धोखा देने की भावना है, दूसरे को क्षमा नहीं कर सकता, छोटी-सी बात को ही गांठ बाँधकर बैठ जाए, थोड़ी-सी चोट खाने के बाद दूसरे को – चोट देने वाले व्यक्ति को, सदा के लिए खत्म करने की भावनाऐं जागती हों, ऐसी अवस्था जिस व्यक्ति के अन्दर है समझना कि वहाँ राक्षसी वृत्ति जागृत हो गई और परमात्मा से एकदम विमुख हो गया।

लेकिन जब व्यक्ति के अन्दर करूणा, दया, क्षमा, सहनशीलता, शान्ति, सद्भाव – यह जागृत हों तो यह परमात्मा की अनन्त कृपा का फल है।

भगवान ने कहा कि सुख और दुःख की अनुभूतियाँ – इनके पीछे भी मैं ही खड़ा हूँ।

आदिशंकराचार्य ने यहाँ एक शब्द का प्रयोग किया हुआ है कि
सबको स्वयं के कर्म का कारण मानना चाहिए कि यदि हम दुःख
हैं या अपयश के भागी होते हैं या फिर किसी स्थिति में डर पैदा हो
– यह जो भी कुछ भाव आते हैं, इन सबके पीछे भी मानना कि
हमारा है और परिणाम परमात्मा की तरफ़ से है और यदि सुख के
बन रहे हैं तो मानना कर्म भले ही हमारा हो लेकिन कृपा परमात्मा
क्योंकि मनुष्य यदि विचार करे कि जो परमात्मा ने हमें कुछ दिया
क्या उसका हिसाब कभी लगा सकेंगे ?

थोड़ी-सी हवा पंखों के द्वारा आपने ली, थोड़ा प्रकाश लिया बल्ब
माध्यम से, ट्यूब लाईट के माध्यम से, बिजली आपके घर में आई, थोड़ा
पानी आपने प्रयोग किया जिसके ऊपर भी नल के साथ मीटर लगा
है, बिल आपके घर में आता है – जो भी कुछ संसार में आप
प्रशासन के माध्यम से, किसी गॅवरमैन्ट के माध्यम से सुविधाएं भोगते
तो उन सुविधाओं के बदले आपके घर में बिल आता है, आपको वह
चुकाना पड़ता है लेकिन जिसका अन्न आप खा रहे हैं, जिसकी हवा
आप जीवन में उतार रहे हैं, जीवनी-शक्ति ले रहे हैं, जिसमें सांस लेते
जिसका जल आप ग्रहण करते हैं और जिसकी विद्युत के बल्ब –
और चन्द्र निरन्तर आपके ऊपर कृपा कर रहे हैं, तो कभी आपने देखा
कोई बिल उधर से आया हो और आपको कहा गया हो कि
बदले में दो?

बल्कि यह कहा जाना चाहिए कि जितना-जितना कुछ परमात्मा
दिया, अगर उसका बदला चुकाने के लिए हम बैठें, हमारे पास
सम्पत्ति या इतनी कोई चीज़ हो भी नहीं सकती जो हम बदला चुका
वहबिल अदा कर सकें।

मैंने सुना है, बरसों तक साधना करने वाला एक कोई साधक, शिलाख
पर बैठा हुआ, गंगा के तट पर, साधना करते-करते उसके अन्दर निख
आ गया, तेजस्विता आई, कृपायें जागने लगीं, लेकिन इतना गुण होने
बाद कहीं न कहीं से अहंकार जाग गया। उसे लगा कि अब मेरी वा
प्रतिष्ठित हो गई, आशीर्वाद किसी को दिया तो लगता है और अगर कि

के लिए कठोर कह दिया तो उसका बुरा हो गया। मेरी तपस्या का फल है और अब मुझे मिलने लगा है।

तो एक दिन बैठकर, हाथ जोड़कर उसने कहा - दुनिया के मालिक, अब तेरी शरण में बैठे-बैठे, पच्चीस साल हो गए तप करते-करते, छब्बीसवां वर्ष शुरू हो गया, इच्छा है कि चालीस साल तक बैठकर लगातार साधना करूँ । लेकिन मैं यह चाहता हूँ कि ज़रा हिसाब-किताब हो जाना चाहिए, जो कुछ मैंने किया उसके बदले में आप क्या-क्या दे रहे हैं तो ज़रा थोड़ा कुछ स्पष्ट तो करें। कितना-कितना कुछ देना चाहते हैं? परमात्मा पच्चीस साल तक मैंने अपनी ज़िन्दगी के तेरी राह में लगाए हैं, अभी पन्द्रह वर्ष तक और बैठने की इच्छा है, तब संसार के बीच में जाऊँगा। मैं तुझसे यह नहीं कहता कि तू कुछ अपनी तरफ़ से दे। मैं सिर्फ़ इतना माँगता हूँ कि जो मैंने किया उसका बदला तू दे, तराज़ू में रखकर के हिसाब-किताब कर दे।

कहते हैं कि उस समय आवाज़ आने लगी पेड़ों की तरफ़ से, नदी की तरफ़ से, जिस चट्टान पर वह बैठा हुआ था उसके नीचे से भी आवाज़ आने लगी, चारों तरफ़ से आवाज़ आ रही थी - 'हिसाब करो, हिसाब करो।'

अब जब चारों तरफ़ से आवाज़ आने लगी इसने कहा - 'भगवान मैंने अपने हिसाब के लिए कहा है, यह और लोग भी हिसाब के लिए आ गए हैं?'

आकाश से आवाज़ आई - 'यह लोग तुझसे हिसाब माँगने के लिए खड़े हुए हैं, मुझसे नहीं। ध्यान से सुनो।'

तो यह आवाज़ सुनता है कि चट्टान से आवाज़ आती है नीचे से - 'हे भगवान यह आदमी पच्चीस साल से मेरे ऊपर बैठा हुआ है बोझ बनकर के, मेरा भी हिसाब करो। अब कम से कम इतनी कृपा कर दो कि यह कम से कम पच्चीस दिन तक मुझे अपने सिर पर उठाकर के बैठे, मेरा हिसाब हो तो उसके बाद दूसरों का करना।

पेड़ों की तरफ़ से आवाज़ आई कि हमारे फल खाए इसने; वनस्पतियों की तरफ से आवाज आई कि हमारे कन्द-मूल ग्रहण किए इसने, हमारा भी हिसाब

हो। या तो इसके शरीर को हम ग्रहण करें या यह कोई और चीज़ बदले में दे।

गंगा नदी की तरफ़ से भी आवाज़ आई - इसके शरीर में जो खून बह रहा है उसमें कुछ न कुछ मेरा हिस्सा भी है, क्योंकि मैंने जल दिया है इसको

हवा की तरफ़ से आवाज़ आई कि इसमें मेरा भी हिस्सा है - यह प्राण वायु जो इसके शरीर में चल रही है वह मेरी ही तो है इसीलिए बदले में हमें भी तो कुछ मिलना ही चाहिए और उसके बाद तो चारों तरफ़ से इतनी आवाज़ें आने लगीं; चारों तरफ़ से आवाज़े आ रही हैं - 'हिसाब कीजिए।'

अब यह व्यक्ति घबरा गया और घबराकर के इसने कहा - 'जितना बदला मैंने चुकाना है, जितना क़र्ज़ मेरे सिर पर है वह तो इतना है कि पच्चीस साल क्या, पच्चीस ज़िन्दगी भी लेकर के इनके कर्ज़े चुकाने आऊँ तो भी बदला नहीं चुका सकता। इसीलिए भगवान मेरा हिसाब नहीं करना, अगर बदले में कुछ देना है तो मेरे कर्म के बदले में नहीं, अपनी कृपा के बदले में जो कुछ देना चाहे वह तू दे दे, मेरे कर्म इतने बड़े नहीं। मैं कौन-से कर्म करके, पुण्य करके कहूँगा कि इनका बदला दे? मुझे तो तेरी कृपा का फल चाहिए।'

हिसाब होने लग जाए न, नौकर और मालिक दोनों ही आमने-सामने बैठ जाएं, हिसाब होगा पाई-पाई का और अगर मालिक कृपा करने बैठ जाए तो? हिसाब तो कितना निकला - दस-पन्द्रह रूपये का, सौ-डेढ़ सौ रूपये का और कृपा में मालिक ने क्या किया चार-पाँच हज़ार रुपये उठाकर हाथ में रख दिए - भाई, मैं तेरी सेवा से बहुत खुश हूँ, यह रख।

अगर व्यक्ति कहे कि यह क्या है? तो मालिक क्या कहता है - यह मेरी प्रसन्नता है, मैं तुझसे खुश हूँ न इसीलिए इसका कोई हिसाब नहीं है, इसका कोई बदला नहीं है, तूने हमें प्रसन्न कर दिया बस इस बदले में बेहिसाब हम तुझे दे रहे हैं और अगर हम तुझसे नाराज हो जायें तो फिर बात यह है कि नौकरी भी गई।

परमात्मा कृपा करते हैं तो बेहिसाब सब कुछ देते हैं और अगर कठोर बन जायें, अपना वह अधिकार भी छीन लेगा जहाँ व्यक्ति बैठा हुआ था और सुशोभित हो रहा था।

इसीलिए यदि उससे कुछ माँगना ही है तो उससे उसकी प्रसन्नता माँगो। वेदों में एक मन्त्र है जिसका अर्थ है - 'तुम माता हो, हे प्रभु, तुम ही पिता हो, अनेक-अनेक उपकार करने वाले पिता तुम ही हो, हम आपसे क्या माँगने चले हैं? - हम चाहते हैं कि प्रभु आप अपनी सन्तान पर प्रसन्न हो जाओ।' पिता प्रसन्न हो गया, बिन माँगे भी अपनी सारी सम्पत्ति उठाकर बेटे को दे रहा है और नाराज़ हो गया तो अपना नाम भी हटा लेता है, घोषणा कर देता है अख़बारों में कि अब इस युवक से मेरा कोई लेन-देन नहीं और इससे मेरा कोई सम्बंध नहीं है, मैं अपना नाम भी इसके सिर से हटा रहा हूँ। प्रसन्न हो जाए तो फिर अख़बारों में कोई घोषणा नहीं करनी पड़ती, सूचना नहीं देनी पड़ती कि मैं अपने बेटे से बहुत खुश हो गया हूँ, अब मैं इसको सम्पत्ति दे रहा हूँ, अपनी मिल भी इसको दे रहा हूँ, मकान दे रहा हूँ, दुकान दे रहा हूँ फिर समझाने की अवस्था नहीं, घोषणा करने की आवश्यकता नहीं, जो कुछ पिता का है वह तो पुत्र का हो ही गया।

इसीलिए परमात्मा की प्रसन्नता हो, कृपा हो, तो सब कुछ प्राप्त होता है। कहा कि जो भी कुछ तुम्हें सुख मिला, अभयता मिली, आनन्द मिला, शान्ति प्राप्त हुई, मेरी कृपा का फल है, जहाँ कहीं तुम दुःख भोग रहे हो, अशान्त हो रहे हो वहाँ समझना तुम्हारा कर्म तुम्हारे लिए कठोर बनकर खड़ा हो गया और परिणाम देने का कार्य मेरे हाथ में आ गया।

भगवान ने कहा -

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः

- तुम जो दाता बनकर खड़े हो गए हो, मान दिलाने का कार्य मैं कर रहा हूँ, मेरे दिए हुए को आगे देने की भावना जो तेरे अन्दर जाग गई, मेरी कृपा पाने का और समाज में, दुनिया में, मान पाने का अवसर तुझे मिला, अगर इस लायक़ बने हो कि दुःखी और दीन के आँसू छीन सको और उनके चेहरे पर प्रसन्नता ला सको तो यह सोचना चाहिए कि आपके ऊपर उस परमात्मा बहुत प्रसन्न हैं जिन्होंने आपके ऊपर इतनी बड़ी कृपा की और हमेशा भगवान से माँगना कि हे प्रभु! यह अधिकार छीनना नहीं, यह हाथ देने के लिए सदा उठते रहें, यह हाथ कभी किसी के सामने फैले नहीं, किसी के सामने माँगने वाली स्थिति कभी न आए।

अहिंसा समता - और अगर हमारे अन्दर अहिंसक भाव जागे हैं: न तो हिंसक भाव होते हैं - दूसरों को सताने की भावना; एक स्थिति ऐसी होती है कि जिसको दुनिया सता रही है, उसको बचाने के लिए व्यक्ति सहयोगी बन जाए और दूसरों के प्रति प्रेम और करूणा का स्वभाव बना ले व्यक्ति, तो सोचना चाहिए कि निकटता प्राप्त हो गई है परमात्मा की।

भक्ति का फल यही है - अहिंसक स्थिति आ जाए जीवन में, पर-पीड़ा ही हिंसा है - चाहे आप किसी को मन से, मन के अन्दर द्वेष जगाकर मानसिक रूप से दुःखी कर रहे हैं, या किसी के प्रति हाव-भाव से ऐसा व्यवहार प्रकट कर रहे हैं कि किसी व्यक्ति को दुःख मिल रहा है, वाणी से बोलकर के सताते हैं या दिमाग़ से किसी को सता रहे हैं।

- कई लोग क़लम की मार से ऐसा मार देते हैं दूसरे को कि घर-परिवार तबाह हो जाते हैं, कई लोग वाणी से मारते हैं, कई लोग बुद्धि की मार से दूसरे को ख़त्म कर देते हैं, यह सब तरह-तरह की हिंसाऐं हैं, इन हिंसाओं से अपने आपको जो बचाए और बाँटना सीख ले जीवन में भगवान कहते हैं कि यह मेरी ही कृपा का प्रभाव है, मेरे निकट आने का यह लाभ है अर्थात् जिस समय परमात्मा की कृपा प्रकट होती है तो चेहरे पर प्रेम, करूणा, सौहार्द, सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना - यह प्रकट होने लगते हैं।

समता - सब के प्रति एक भाव दिखाई देगा कि सब में वही मेरा प्रभु है। भगवान कहते हैं - *तुष्टि* - यह भी मेरी कृपा का फल है। बड़ा प्यारा शब्द है यह।

तुष्टि को समझना हो तो 'सन्तुष्टि' को समझिए, अन्दर से तृप्ति हो जाना कि मेरे पास बहुत कुछ है, तृप्त हूँ, अब धन्यवाद करने के लिए तत्पर हो गया हूँ, जैसे किसी बच्चे को उसकी मनचाही सारी वस्तुएं मिल जायें और जब वस्तुओं को वह प्राप्त करके, खुश होकर, ताली बजाता और कहने लगता है - 'मेरे पिता बहुत अच्छे हैं, माँ बहुत अच्छी है जिसने सब कुछ मुझे दे दिया।' अब उस समय जो हिलोर उसके अन्दर उठी है और वह धन्यवाद करने की स्थिति में आ जाए तो सोचना चाहिए कि वह स्थिति भी, जो प्रकट हुई है बच्चे में, वह धन्यवाद के शब्द जो

उसके अन्दर से निकलने लगे हैं, जानता नहीं कैसे धन्यवाद किया जाए, बस इतना ही कहता है - मेरे पिता बहुत अच्छे हैं, माँ बहुत अच्छी हैं, मेरी बात मानकर सब कुछ मेरे लिए रख दिया - यही प्रार्थना है, इसी का नाम भक्ति है, धन्यवादी हो जायें हम, उसके प्रति भाव प्रकट करें - तूने क्या नहीं दिया और अगर माँ-बाप कहें कुछ और चाहिए? 'नहीं', सब कुछ तो है' यह जो तुष्टि है, यह जो तृप्ति आई है - 'सब कुछ है न' माँगने की आवश्यकता नहीं है, मेरे चाहने से पहले आप समझ लेते हो कि मुझे क्या चाहिए, पिता, तुम बहुत अच्छे हो' - यह तृप्ति का भाव जब आता है तो प्रार्थना उस समय धन्यवाद के रूप में प्रकट होती है और जो धन्यवाद के रूप में प्रार्थना प्रकट होती है वही वास्तव में वास्तविक प्रार्थना है।

इसीलिए यह निवेदन करना चाहता हूँ - परमात्मा की कृपा प्रकट होगी, सुबुद्धि प्राप्त होगी, ज्ञान मिलेगा, असंदिग्ध मन हो जायेगा, क्षमा, सत्य, स्वयं पर नियन्त्रण, शान्ति यह विभूतियाँ आपको प्राप्त होने लग जायेंगी।

भगवान कहते हैं - *तपो दानं यशः* - कोई आदमी तपस्वी बना है, यह भी मेरे सान्निध्य का फल है, मेरी कृपा का फल है। संसार में किसी व्यक्ति के अन्दर बड़े-बड़े कष्ट सहन करके संसार का भला करने के लिए या आत्मोत्थान के लिए कष्ट सहने की भावना जागी, यह भी अनायास नहीं जागती। किसी-किसी विरले घर के अन्दर कोई ऐसा लाल पैदा होता है जो संसार के ताप हरने के लिए कार्य किया करता है।

लेकिन एक बात है - संसार में कुछ-कुछ लोग ऐसे हैं जो अपनी सन्तान को यही शिक्षा देते हैं - मैं तुझे संसार के भोग-वासना में फंसने वाला नहीं बनाना चाहता हूँ, मैं चाहता हूँ कि कोई माँ कहे कि बेटा, मैं यह चाहती हूँ तू इतना ऊँचा उठे कि संसार के दुःख दूर करने वाला बन जाए या भक्ति के माध्यम से इतना ऊँचा उठ जाए, अपने परमात्मा का प्यारा बच्चा बन सके, भक्त बन सके।

मदालसा ने यह कोशिश की। अपने बेटे को लोरी गाकर के यह समझाना शुरू किया -

शुद्धोसि बुद्धोसि निरञ्जनोसि । संसार माया परिवर्जितोसि ।।

- तू शुद्ध-बुद्ध है, तेरा स्वरूप शुद्ध है, संसार में मैला होने के लिए नहीं आया, तू बुद्ध है, ज्ञानी है, ज्ञान पाने के लिए आया है, अज्ञानियों की तरह भटकने के लिए नहीं, मूर्खता से परे चलने वाला है तू, मूर्खता में डूबकर संसार में उलझकर लड़ाई-झगड़ों में फँसने वाला नहीं, जहाँ सारे झगड़े समाप्त हो जाते हैं, उस परम ज्ञान को उपलब्ध होकर संसार में प्रेम बाँटने के लिए और अपने परमात्मा का प्यार पाने के लिए तू संसार में आया है।

निरञ्जनोसि - निरंजन का स्वरूप है तू, संसार में रमेगा नहीं, विरक्त होने के लिए आया है। *संसार माया परिवर्जितोसि* - संसार की माया को छोड़ने के लिए आया है, माया के बँधन में बँधने के लिए नहीं आया।

अब छोटा-सा बच्चा क्या समझे लेकिन बड़ा होते-होते पूछने लगा - 'माँ, यह तू लोरी क्या गाती है?' अब माँ उसे समझाने लगी - 'बेटा, इस दुनिया में लोग कैसे फँसते हैं - संसार की चीज़ें इकट्ठी करते हैं, फिर दिखायेंगे मैं तुझसे बड़ा, फिर देखेंगे कि कोई उससे आगे चला गया तो उसके प्रति बैर रखेंगे, झूठी शान दिखायेंगे, इसी दायरे में इर्द-गिर्द घूमते-घूमते संसार के भोगों के बीच चक्कर काटते-काटते उनकी ज़िन्दगी पूरी हो जाती है।

एक वह होते हैं जो इस माया को तोड़कर जिससे मिलने के लिए मनुष्य की देह मिली - परब्रह्म परमेश्वर - उसके नज़दीक बैठते हैं और फिर यह माया उनकी दासी बनकर उनके चरणों में बैठा करती है। असली राजा दुनिया के वही हैं जो संसार के पदार्थों की सत्ता को अधिकार में लेने की कामना रखते हैं। वह संसार में थोड़ी देर की चमक रखने वाले राजा इतने बड़े नहीं होते, तेरे पिता भी राजा हैं लेकिन मैं तुझे परम पिता परमात्मा, जो सारे संसार का सबसे बड़ा राजा है, उससे मिलने के लिए भेज रही हूँ। तू साधना करने के लिए जा। बेटा, इसके लिए एक कार्य करना पड़ेगा। दुनिया की भीड़ से दूर कहीं एकान्त, शान्त, वन में या किसी नदी के तट पर या पर्वत की गुफा में या जहाँ प्रकृति अपना साम्राज्य, अपनी विभूतियाँ, अपना ऐश्वर्य बिछाए बैठी है, उस जगह पर

कहीं जाकर के एकान्त में जाकर के अपने परमात्मा को अपनी आवाज़ सुनाना, हृदय की गहराईयों से पुकारना, तेरे ऊपर कृपा होगी, परमात्मा अपना साम्राज्य तुझे देगा।

बच्चों को यह लोरियाँ गा-गाकर सुनाती रही मदालसा और इतनी बड़ी विभूति का स्वामी बना दिया। हिमालय के माने हुए योगियों में नाम हो गया। योग-अग्नि से अपने आपको मुक्त करके परब्रह्म को प्राप्त कर गए वह लोग।

हाँ, एक बेटे को उसने, जब उसके पति ने बहुत कहा कि एक बच्चा तो ऐसा हो जो धर्मात्मा हो, संसार में राजा बनकर कार्य करे, एक बच्चा तो ऐसा होना चाहिए तब मदालसा ने एक बेटे को राजसिक, थोड़ी-सी सात्विकता भरी हुई शिक्षाएं देनी शुरू कीं; वह धर्मात्मा राजा बना।

तो कोई-कोई माँ या कोई पिता संसार में ऐसा होता है जो यह कहता है कि दुनिया की उलझनों में उलझने के लिए मैं तुम्हें नहीं भेज रहा, उलझनों के पार निकलकर परमतत्त्व की ओर जाने के लिए प्रेरणा दे रहा हूँ।

दुःख की बात तो यह है कि अगर कोई युवावस्था में इधर चल भी पड़े तो माँ-बाप ही आज के समय में दुःखी होने लगते हैं - इस समय में इसकी बुद्धि क्या हो गई है।

बल्कि सौभाग्य मानना चाहिए कि अगर किसी के अन्दर ऐसा गुण जागा है तो यह तो बहुत बड़ी कृपा हुई।

तो भगवान ने कहा - कोई तपस्वी, कोई साधक, साधना वाला, कोई भक्ति वाला, अगर संसार में कहीं दिखाई देता है तो मेरी कृपा का फल है। यश बढ़ता है किसी का - तो भगवान कहते हैं - यहाँ मैं आ गया हूँ, मेरी कृपा का फल है।

हाँ, कहीं-कहीं यह स्थितियाँ भी ज़रूर दिखाई देती हैं - मन और मस्तिष्क को, आत्मा को, और बलवान करने के लिए परमात्मा वह स्थितियाँ भी देता है - बैर से, द्वेष से, अकारण कोई व्यक्ति बैर भाव रखते हुए मिटाने की कामना करे या अपयश सामने आए - तो उसका मतलब होता है कि भले ही उसमें कारण व्यक्ति का कुछ अपना कर्म भी हो सकता है

लेकिन एक बात तो निश्चित है - आप देखते हैं कि कोई व्यक्ति सं॰ में किसी चीज़ को, किन्हीं सुन्दर फूलों को देखता है। वह फूल इ॰ सुन्दर क्यों लगते हैं? क्योंकि आस-पास और सारी चीज़ें, जितनी भी हरिय॰ है, उन हरियाली के बीच में वह फूल सबसे ज़्यादा सुन्दर चमक रहा ह॰ है। अर्थात् अंधेरे के बीच चमकने वाला तारा इसीलिए सुन्दर दिखाई देता ॰ क्योंकि उसके पीछे अंधेरे की बैक-ग्राउण्ड होती है, अंधेरे की भूमि॰ होती है।

परमात्मा शायद यह भी याद कराना चाहते हैं कि तेरे गुणों की सुगन्॰ का यश जो तेरे सामने आया है, यह इस बात का एहसास कराता है ॰ यह साधारण चीज़ नहीं, जो मिली है। जिसको बहुत मान मिलता है उसको अगर थोड़ी-सी भी अपमान की सुई चुभ जाए बड़ा दर्द करती ॰ और जो अपमान के बीच में जीता हो उसे थोड़ा-सा मान मिल ज॰ उसको बड़ी प्रसन्नता मिलती है।

लेकिन जीवन में यह दोनों ही स्थितियाँ होती हैं। जिनसे हम मान च॰ रहे होते हैं वह अपमान देंगे और जिनसे मान चाहते नहीं वह आपको म॰ देने के लिए आकर खड़े हो जाते हैं।

ज्यादातर लोगों का कहना है कि परिवार के लिए हमने इतना कुछ किया, इन लोगों के मुँह से कभी मान के दो शब्द ही नहीं हमने सुन॰ लेकिन जिसके ऊपर कृपा प्रभु की है, जिसको परमात्मा का मान मि॰ गया फिर उसे संसार का मान मिले न मिले कोई फ़र्क नहीं पड़ता; संसा॰ के जितने भी महान् पुरूष हुए हैं, दुनिया भर के लोगों ने अपमान देने क॰ कोशिश की लेकिन परमात्मा का मान मिल रहा था न उनको इसीलिए व॰ अपमान उनको छू नहीं पाया, इसीलिए वह कभी अशान्त हो नहीं पाए।

कोई भी ऐसा सन्त संसार में नहीं हुआ - निन्दा करने वाले, दुःख दे॰ वाले, कष्ट पहुँचाने वाले, सामने न पहुँचे हों लेकिन चेहरा उनका हमेश॰ खिला रह गया क्योंकि परमात्मा के मान से वह सम्मानित था।

तो यह कोशिश करना कि परमात्मा का प्यार हमें मिल सके, औ॰ उसके द्वारा दिया गया मान प्राप्त हो सके, हम उसके पात्र बने रहे जा॰ उसकी स्थिति अपने अन्दर बनाए रखें।

भगवान ने कहा - भाव और अभाव - कुछ होना और न हो पाना, यहाँ भी मैं कहीं न कहीं दिखाई देता हूँ, यह मेरी विभूतियाँ हैं।

संसार में यह देखने को मिलता है कि संसार तरह-तरह का है - कहीं कोई व्यक्ति सुख में बैठा हुआ है, समृद्धि के शिखर पर बैठा हुआ है, सुन्दर भवन उसके हैं और किसी-किसी की स्थिति यह है - न रहने का ठिकाना, न खाने का ठिकाना, न व्यक्ति के पास वस्त्र हैं, न भोजन। बच्चा भी अगर उसका जन्म लेता है, दूध की व्यवस्था नहीं हो पाती, उसे भी प्यार नहीं मिल पाता, थप्पड़ लगते हैं, कहीं भी उठाकर पत्थर पर लिटा दिया जाता है।

एक तरफ वह स्थितियाँ कि जिसने कभी कठोरता देखी ही नहीं है - फूलों के पलने पर सोया पड़ा है- भगवान कहते हैं यह भाव और अभाव - कोई रात-दिन हँसता मुस्कुराता दिखाई देता है और किसी की रोते-रोते आँखें सूझ गईं, कोई ऐसा मस्त होकर सोया पड़ा है कि उसके पास, लगता है कि दुनिया का सबसे बड़ा राजा वही है और कोई वह लोग हैं कि सारी रात करवटें बदलते रहते हैं, चैन नहीं, नींद नहीं, प्रसन्नता नहीं, शान्ति नहीं।

कमाल तो यह है कि चालाकी करने के बाद भी अगर इन्सान बहुत कोशिश करके बड़ा सुन्दर भवन बना भी ले पर जिसको खुश करना चाहता है न परमात्मा, उसे झोंपड़ी में भी प्रसन्नता दे देता है और जिसके ऊपर कृपा नहीं करता, अपनी चालाकी से बनाए हुए भवन में बैठने के बाद भी इन्सान की आँख में आँसू बहते रहते हैं क्योंकि उसके ऊपर कृपा परमात्मा की नहीं हो पाती।

इसीलिए संसार में विचित्र-विचित्र रूप दिखाई देते हैं। भगवान ने कहा है -

भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः

संसार में तरह-तरह के यह जो भाव दिखाई देते हैं, यह नाना रूप जो हैं, मुझसे ही पैदा होते हैं, यह मेरी ही विभूतियाँ हैं, मेरा ही ऐश्वर्य है संसार में। कोई राज कर रहा है और कोई आदेश का पालन करने के लिए खड़ा है, एक आदमी सैल्यूट कर रहा है और एक वह जिसे सलाम किया

जा रहा है; अजीब चीज़ तो यह एक ही माता-पिता के अलग-अलग संतान, अलग-अलग बेटे; एक की हालत बहुत सम्मान वाली, एक दयनीय एक राजा बना बैठा है एक भिखारी वाली स्थिति में है। माता-पिता ने सम्पत्ति बराबर बाँटी, लेकिन भाग्य ने कह दिया - तेरे बाँटने से कुछ होने वाली नहीं है, मैं जिसे चाहूँ, जिस रूप में लाकर खड़ा कर दूँ। लेकिन वह भाग्य की संरचना करने वाला कौन है, वह लिखने वाला भी तो परमात्मा है।

भगवान ने कहा मेरी ही विभूतियाँ हैं यह जो संसार में दिखाई देती हैं।

पर परमात्मा ने एक चीज़ सबको दी है - पुरूषार्थ और प्रार्थना। दोनों का मेल बैठाकर के चलो आप। अगर भाग्य मार मारता भी है तो भी अपनी प्रार्थना से और अपने पुरूषार्थ से इतना आगे बढ़ो कि दुनिया दबा न पाए और आकाश के ऊँचे शिखर तक आप पहुँच सकें इसीलिए अपने पुरूषार्थ को और अपनी प्रार्थना को भूलना नहीं, इसे निरन्तर अपनाओ इससे कल्याण होगा।

संसार में ऐसे लोग हुए। अपने देश के एक बहुत अच्छे वैज्ञानिक थे जगदीश चन्द्र बसु, जिन्हें जगदीश चन्द्र बोस भी लोग बोलते थे। इनके जीवन में एक ख़ास चीज़ थी - यह व्यक्ति कुछ बनने के लिए, कुछ करने के लिए प्रयत्नशील तो बहुत थे और पुरूषार्थ भी बहुत करते रहे।

भाग्य ने एक मार मार दी। इस व्यक्ति ने बेतार का तार, वॉयरलेस-सिस्टम बनाने की कोशिश करी और सफल भी हो गया, लेकिन भाग्य की मार ऐसी हुई कि इस व्यक्ति का प्रयोग लोगों के सामने आ नहीं पाया और ईटली के जो मॉरकोनी थी, वह जल्दी सफल हो गए, उनकी चीज़ सामने आ गई।

अब यह आदमी एक बार तो निराश हो गया - इतनी मेहनत करके गरीब इन्सान, ग़रीबी के वातावरण में पला हुआ, मेहनत करने का फल मिला नहीं। अचानक इसके मन में एक भाव जागा - क्या मेरे पास केवल एक ही आविष्कार करने के लिए था या मैं कुछ और भी कर सकता हूँ?

जिसको भगवान ने अन्दर ऊर्जा शक्ति दी है वह व्यक्ति संसार में बहुत कुछ कर सकता है, मुझे फिर से बैठना चाहिए, कुछ दूसरे कार्य के लिए तैयार होना चाहिए।
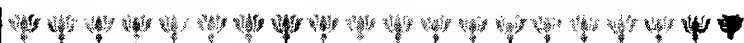
जगदीश चन्द्र बसु दूसरे ढंग से कुछ कार्य करने के लिए तैयार हुए। उन्होंने वृक्षों में जीव है, मतलब वृक्ष भी सांस लेते हैं, वृक्षों में भी प्राणधारा है, यह भी गर्मी-सर्दी महसूस करते हैं, इनके अन्दर भी संवेदनाऐं हैं, इनको भी सुख-दुःख की अनुभूति होती है - इस चीज़ को सिद्ध करने बैठ गए।

अब हर आदमी मज़ाक़ उड़ाए कि यह सब क्या है ? जगदीश चन्द्र बसु ने बताना शुरू किया - पौधे जब मुस्कुराते हैं तो कैसी स्थिति में होते हैं, जब वह दुःखी होते हैं तो उस समय उनकी स्थिति कैसी होती है।

संसार भर के लोगों ने मज़ाक़ उड़ाना शुरू किया और यह व्यक्ति प्रयत्न करता रहा कि मैंने कुछ करना है।

आख़िर में इसने रॉयल सोसाइटी, लण्डन में अपने प्रयोग भेजे और प्रयोग भेजकर के कहा कि मैंने जो कुछ किया है यह संसार में चौंका देने वाली चीज़ होगी। आप, मेरे प्रयोगों के सम्बन्ध में उसने पूरी फाईल अपनी भेजी। उन लोगों ने भी पूरा विचार किया और विचार करने के बाद यह कह दिया कि तुम्हारे प्रयोगों पर विश्वास नहीं होता। तुम यहाँ हमारे सामने आओ।

तब इसने सोचा कि मैं दूसरों के सामने अपनी चीज़ लाऊँ कैसे? तो उन्होंने एक यन्त्र बनाया। यन्त्र से वृक्षों के अन्दर जो गति-स्पन्दन, संवेदनायें प्रकट होती हैं उन सबको नापने वाला यन्त्र था जो छोटी-सी गति को भी करोड़ों गुणा बढ़ाकर के बता सकता था और लिख भी सकता था, ग्राफ वग़ैरह बन सकते थे उससे।

अब वह यह यन्त्र बनाकर, लेकर के लन्दन पहुँचे। वहाँ जब जाकर इन्होंने सिद्ध करना शुरू किया - रॉयल सोसाईटी ने एक साथ कहा कि मानना पड़ेगा और उसके बाद में उन्होंने इसको 'सर' की उपाधि दी; आत्म-विश्वास बढ़ गया।

फ्रांस वाले लोगों ने बुलाया कि आप हमारे देश में आइये, हम सब मिलकर आपके प्रयोग को देखना चाहते हैं।

तो फ्रांस के सभागार में यह जिस समय पहुँचा, दुनिया भर के वैज्ञानिक लोग वहाँ इकट्ठे थे लेकिन दुर्भाग्य से कोई ईर्ष्या करने वाले लोग भी साथ-साथ पहुँच गए।

इसने प्रयोग दिखाना था कि यह पौधे सामने हैं, मैं इनको सॉयनाईड का इंजैक्शन लगाऊँगा और अभी देखना यह कैसे मुरझाते हैं, कैसे मरते हैं।

इसने सॉयनाईड मँगाया तो जिस बर्तन में मँगाया गया, उसमें से इसने इंजैक्शन भरा और भरने के साथ में ही जैसे ही पौधे को लगाया, पौधा तो मरा नहीं।

अब जितने भी लोग थे वह सब हैरान होकर देख रहे हैं। उन्होंने कहा इस आदमी ने इतना बड़ा सम्मान भी प्राप्त किया और प्रयोग दिखाया. प्रयोग सफल नहीं हुआ। वैज्ञानिक लोग जो इसके चेहरे की तरफ़ देख रहे थे, इसने वह घोल, जो सॉयनाईड वाला घोल था, उठाया, मुँह से लगाया और पी गया।

सब लोग चिल्लाने लगे - 'नहीं, नहीं, नहीं, नहीं, पीना नहीं। प्रयोग सफल नहीं हुआ तो कोई बात नहीं, तुम क्यों अपनी ज़िन्दगी ख़राब करने लगे हो, क्यों अपने को मारने लगे हो।'

इसने उस घोल को पीने के साथ में कहा - 'मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अगर वह ज़हर था तो पौधे भरने चाहिए थे और अगर ज़हर नहीं था तो फिर मुझे भी नहीं मरना चाहिए, मुझे भी मौत नहीं आनी चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह चीज़ ज़हर नहीं है, किसी व्यक्ति ने चालाकी की है, कुछ और चीज़ मिलाई है और हो सकता है कि यह साधारण-सी कोई चीज़ हो और बाद में पता लगा किसी ने साधारण-सा कोई पाऊडर वैसे ही घोल मिलाकर के बना करके रख दिया था ताकि इसका प्रयोग सफल न हो और वह व्यक्ति उसको पीकर के बैठ गया।

जब कुछ नहीं हुआ, थोड़ी देर के बाद में एक वैज्ञानिक उठा, उसने शुद्ध सही सॉयनाईड लाकर के सामने रख दिया।

बसु ने इन्जैकशन भरकर जैसे ही पौधे में लगाया और पौधा जब मुरझाया और एकदम लोगों ने जब तालियों की गड़गड़ाहट से इसको कहा कि तेरा प्रयोग सफल हो गया, तब इसकी आँख में आँसू आ गए। उसने कहा कि लाख कोशिश करें, ईर्ष्या वाले लोग, लेकिन मुझे पता है कि अगर मैं पुरूषार्थी हूँ और विश्वास करता हूँ तो मैं ज़रूर सफल होऊँगा। वह सफल हुआ।

दुनिया-दुनिया भर के लोग दबाने के लिए लगेंगे लेकिन अपनी प्रार्थना पर भरोसा रखना और अपने पुरूषार्थ पर भरोसा रखना। कभी भी कोई कमी नहीं आयेगी, दृढ़ता से आगे बढ़ना लेकिन मैं एक चीज़ आपको और कहना चाहता हूँ -

जगदीश चन्द्र बसु ने आगे चलकर के, उसके साथ एक स्थिति जागी, उसने कहा बड़े प्रयोग करूँ। उसने एक प्रयोगशाला बनाई। प्रयोगशाला के लिए यन्त्र तैयार करने में उस व्यक्ति का घर तक बिक गया, मतलब सारी चीज़ें उसने प्रयोगशाला में लगा दीं, सारी सम्पत्ति, जो कुछ उसके पास था सब कुछ उसने लगा दिया प्रयोगशाला में कि नये-नये आविष्कार करूँ, मुझे और आगे बढ़ना चाहिए।

उन्हीं दिनों बंगाल में अकाल पड़ गया। जगदीश चन्द्र बसु की प्रयोगशाला देखने के लिए लोग दूर-दूर से आते थे। विदेशी वैज्ञानिक तो आकर यहाँ तक कहते थे कि साधारण-सी टेबल पर बैठकर तुम जो काम कर रहे हो, सारी दुनिया को चौंका दिया, तुम्हारे पास तो साधन भी पूरे नहीं हैं, लेकिन फिर भी उस व्यक्ति ने अकाल के दौरान अपनी प्रयोगशाला बेचने की घोषणा कर दी कि कोई भी ख़रीदना चाहे मेरी प्रयोगशाला को ख़रीद सकता है।

दुनिया भर के लोग इकट्ठे हो गए, रिश्तेदार आ गए, उसके मित्र लोग आ गए, परिचित लोग आ गए, प्रशंसक लोग आ गए। सबने कहा, क्यों बेचना चाहते हो? तुम्हारे प्राण तुम्हारी प्रयोगशाला में अटके हुए हैं।

इसने कहा - हाँ, मैं मानता हूँ, प्रयोगशाला मेरी ज़िन्दगी है, मेरे प्राण हैं, लेकिन आज मेरे भाईयों पर जो संकट आया है, इस देश में जो संकट आया है, अकाल से जो भाई मर रहे हैं, मुझे लगता है कि मैं अपने प्राण भी इनको दे दूँ, मैं अपनी प्रयोगशाला बेचकर के इन लोगों के लिए लगाना चाहता हूँ, इनके लिए ज़िन्दगी देना चाहता हूँ। रोने लगे जगदीश चन्द्र बसु। कहने लगे कि आज मेरी प्रयोगशाला बिक रही है, मैं बेचूँगा इसको, अगर कुछ बच्चों को बचा पाया, कुछ ज़िन्दगी बचा पाया तो मुझे लगेगा मैं अपनी प्रयोगशाला बचा ले गया।

लोगों ने कहा -नहीं, हम सब इकट्ठे होते हैं, सब लोग सह
करेंगे, पैसा इकट्ठा करेंगे, अकाल से पीड़ित लोगों की सहायता के लि
कार्य करेंगे।

जगदीश चन्द्र बसु जो पौधों की संवेदना को समझता था क्या व
इन्सान की संवेदना को नहीं समझता था? उस व्यक्ति ने फिर से
इकट्ठे करके ग़रीबों की सेवा में, जो बच्चे अनाथ हो गए थे उनकी सेव
में और जो अकाल से मर रहे थे उनकी सेवा में पैसा लगाना शुरू किया

किसी ने पूछा - क्या मिला ? तो उस समय एक बात कही उ
व्यक्ति ने। उसने कहा कि जब मैंने विज्ञान के प्रयोग किए तो उससे मु
एक वाह-वाह मिली लेकिन आज जो इन अकाल पीड़ित लोगों की सेव
की इससे मेरे दिल को जो भी कुछ मिला है वह वाह-वाह तो नहीं
लेकिन हृदय आह कहकर के वाह-वाह कह करके उछल पड़ा कि य
प्रयोगशाला भी तेरी बहुत प्यारी प्रयोगशाला है।

यह तरह-तरह के भाव हैं, मनुष्य के अन्दर जब जागते हैं तो समझ
परमात्मा की कोई विशेष कृपा हुई है। भाग्यशाली लोग होते हैं जो अ
अन्दर, अपने हृदय में अपने परमात्मा को प्रकट करते हैं, अर्थात् उसक
अन्तर आवाज़ को सुनकर कार्य करते हैं।

भगवान ने कहा -

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।।

जो पहले समय में महर्षि लोग हुए हैं, चार प्रकार के जो मनु हुए हैं
यह सब के सब मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। जितनी भी संसार में उत्प
दिखाई देती है वह सब मेरे द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं, संसार में समस्त प्रक
का विकास, संसार की गतिविधियाँ, भगवान कहते हैं वह सब मुझसे ह
उत्पन्न होती हैं, मुझसे ही संचालित होती हैं। आगे चलकर के फिर एक
और उपदेश दिया

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।

- कि संसार में कुछ लोग जो मेरे अन्दर अपने चित्त को बसाए हुए हैं. मुझमें जिन्होंने अपने आपको रमा दिया, *मद्‌गतप्राणा* - मुझ में जिनके प्राण समाविष्ट हो गए अर्थात् अपने आपे को जिसने मुझे अर्पित कर दिया है. - *बोधयन्तः परस्परम्* - मेरे बारे में जानकारी देने के लिए संसार में जो निकल पड़े हैं, *कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति* - जो मेरी महिमा कह-कह कर रात-दिन खुश होते हैं, *रमन्ति च* - मुझमें जो रमण करते हैं, वह मेरा ही स्वरूप है, मेरे ही प्यारे लोग हैं, अर्थात् जिनका चित्त परमात्मा में अर्पित हो गया है, जिनके प्राण परमात्मा में बस गए हैं, जो परमात्मा की महिमा का गान और उसका ज्ञान संसार में बाँटते हुए घूम रहे हैं, जो रात-दिन लोगों से चर्चा करते हैं तो परमात्मा की ही करते हैं, अर्जुन, वह मेरे अन्दर ही रमण करते हैं, वह मेरे अन्दर बसे हैं और मैं उनके अन्दर बसा हूँ, वह न मुझसे दूर हैं और न मैं उनसे दूर हूँ। बड़ा प्यारा श्लोक है यह। न जाने कितनी करूणा से और कितने प्यार से परमात्मा ने इस शब्द को कहा होगा। भगवान कृष्ण ने यह शब्द बड़े प्यार से कहे हैं।

किसी-किसी व्यक्ति के जीवन में यह स्थिति आती है - अपना सर्वस्व अपने परमात्मा को मानकर अपने प्राण उसमें बसा लेता है, हर समय उसकी धुन में ही रहता है।

स्वामी राम, जिन्हें हम स्वामी रामतीर्थ के रूप में जानते हैं, ऐसे ही मस्त दीवाने थे। हर समय राम नाम अपना बोल करके कहते थे - 'राम को भूख लगी लेकिन राम भूखा नहीं है।' 'राम ने यह शरीर रखा हुआ है न, इसको कुछ देना पड़ेगा।'

किसी आदमी ने एक बार स्वामी रामतीर्थ से पूछा - 'महात्मा जी क्या बजा है?' उन्होंने कहा - 'एक'।

एक घण्टे बाद वह आदमी फिर आया। उसने फिर पूछा - 'महात्मा जी क्या बजा है?' बोले - 'एक बजा है।' एक दो घण्टे के बाद फिर आया वह। आते ही फिर उसने कहा - 'महात्माजी, क्या बजा है?' बोले 'एक बजा है।' उस आदमी ने अपना माथा पीट लिया। 'महाराज घड़ी ख़राब है या कुछ और ख़राब है? एक ही टाईम बता रहे हो?'

रामतीर्थ बड़े प्यार से बैठे हुए थे। उन्होंने कहा - 'भाई तू एक बार क्या दस बार भी पूछेगा, आज क्या तू छः महीने के बाद भी पूछेगा, तो भी तुझे बताऊँगा एक ही बजा है, क्योंकि इस सारे संसार में एक ही तो बज रहा, एक ही का तो नाद गूँज रहा है, यह सब उसी एक का ही तो स्वरूप बज रहा है सारे संसार में, वह एक ही तो है मेरे अन्दर भी वह एक ही बज रहा है, तेरे अन्दर भी एक ही बज रहा है, उसी की आवाज़ उसी की ध्वनियाँ हैं इस सारे संसार में। किसी फूल में देखेगा वहाँ भी वह एक ही बज रहा है, किसी नदी को तू बहता हुआ देखेगा वहाँ भी वह एक ही बज रहा है, उसी की तो तरंग है वह। और तो और कभी किसी पंछी को गाते हुए सुनना - कोयल जब गाये, मोर जब नाचे वहाँ भी वह एक ही बज रहा है।

यह लोग क्योंकि परमात्मा में रमे हुए लोग हैं, इसीलिए जिधर देख रहे हैं, उसका रूप देख रहे हैं और संसार के लोग संसार की तरह व्यवहार कर रहे हैं उनके साथ - घड़ी में क्या बजा है? और वह क्या कहते हैं? इस घड़ी में क्या हर घड़ी में एक बजा है, वही परमात्मा, सर्वत्र वही है, उसी का कालचक्र, उसी का समय, उसी के द्वारा आने वाला इन्सान, जाने वाला इन्सान, सब उसी में हैं।

भगवान ने कहा कि मैं रमता हूँ, उनमें वह मुझमें रमे हुए हैं, जिनके प्राण मुझमें लग गए हैं, जो मेरी ही चर्चा करते हैं मेरा ही गान गाते हैं, आपस में बातचीत भी करेंगे तो मेरी ही चर्चा करेंगे।

परमात्मा की भक्ति का चरम रूप तब होता है - उठते-बैठते, सोते-जागते, मिलते-बिछुड़ते, सबसे परमात्मा की चर्चा शुरू हो जाए और अगर संसार की चर्चा भगवान के दरबार में भी शुरू हो जाए तो समझ लेना चिह्न ज़रूर हमने धारण कर रखे हैं भक्ति के लेकिन भक्ति से तो हम दूर हैं क्योंकि जहाँ भी हम जाते हैं अपना संसार अपने साथ लेकर जाते हैं।

श्मशान भूमि को 'शिव भूमि' कहा जाता है, कहते हैं कि भगवान शिव का स्थान है वह। अब शिवजी का स्थान है से मतलब क्या हुआ? कि वहाँ जाकर के एक बार तो शिवजी की याद आ ही जायेगी, मतलब भगवान की याद आ ही जायेगी - जलती हुई चितायें, रोते हुए लोग

विदाई देते हुए इन्सान, जाने वाले को विदाई दे रहे हैं, हाथ में जल लेकर छोड़ा जा रहा है, तिनका रिश्तों का तोड़ा जा रहा है, पुत्र अपने कन्धे पर घड़ा रखकर अर्थी की परिक्रमा करता है कि तुम्हारी यादों, तुम्हारी स्मृतियों, तुम्हारी अच्छाईयों की परिक्रमा करते हुए आज कह रहा हूँ - 'ज़िन्दगी घड़े की तरह थी' और ऐसा कहकर जो घड़ा गिराया जाता है, घड़ा टूटता है, कहा जाता है कि जीवन ऐसा ही तो है, एक झटके के साथ टूट कर बिखकर गया; अब जुड़ने वाला नहीं घड़ा, अब इसमें पानी नहीं रखा जा सकेगा। टूट गया शरीर। वहाँ जाकर तो एक बार याद आ ही जाती है परमात्मा की; 'भाई, क्या लेकर आया इन्सान, क्या लेकर जायेगा, क्या रखा है इस दुनिया में, सब झूठ का झमेला, दो दिन की ज़िन्दगी लेकर आए हम, हँस लिए, रो लिए, फिर चल पड़े।

कई लोग कहते हैं, बड़े सपने थे इस आदमी के, बड़ी जल्दी तरक़्क़ी भी बहुत की पर बेचारा उलझता-उलझता चला गया संसार से। भाई, ऐसे ही ज़िन्दगी हमारी भी कभी न कभी ख़त्म हो जायेगी, कुछ कहा तो नहीं जा सकता, कोई लम्बी ज़िन्दगी तो किसी की भी नहीं है, अब इस आदमी की कोई बहुत लम्बी उम्र थोड़े ही थी', - आदमी ऐसे बातचीत करता है। एक बार एहसास होता है कि ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं, उस समय हर एक के मुँह से निकलता है - 'राम नाम सत्य है, हरि का नाम सत्य है।'

थोड़ी देर तक भगवान याद आ गया, पूरा-पूरा याद आ गया और वैराग्य भी जाग गया, संसार से सम्बन्ध भी हट गया लेकिन कितनी देर के लिए? ओस की बूँदें थोड़ी देर ही ठहरती हैं पत्तियों के ऊपर, हमारे मन की पत्तियों के ऊपर भी परमात्मा की कृपा या वैराग्य की ओस वाली बूँदें बहुत थोड़ी देर तक ठहरती हैं, उसके बाद फिर उड़ जाती हैं, फिर हम संसार की चर्चा करने लग जाते हैं, वहीं खड़े-खड़े लोग कहने लग जाते हैं 'बड़ा टाईम लग रहा है, बड़ी देर लग रही है', कोई किसी की लकड़ियों को देखकर बोलने लग जाता है - 'यहाँ भी लोग बिज़नस कर रहे हैं देखो।'

संसार का रूप अन्दर जागृत होने में कोई ज़्यादा देर नहीं लगती लेकिन परमात्मा का बन्दा वह है - चाहे बस्ती में रहे या श्मशान की तरफ़ चले

- उसकी चर्चा में परमात्मा ही बसा होता है, वह कुछ और याद करता नहीं केवल परमात्मा को ही याद करता है, परमात्मा में ही जीता है, करता है तो उसके लिए, श्वास लेता है तो मानो श्वास में परमात्मा को ले रहा है, बैठेगा, उठेगा, चलेगा, फिरेगा, हर रूप में यही एहसास कि मैं अपने प्रभु की गोद में बैठा हुआ हूँ।

कबीर साहब ने इसी को तो कहा -

"जहाँ-जहाँ चलूँ तेरी परिक्रमा करता हुआ, जहाँ बैठूँ महसूस करूँ कि तेरी गोद में हूँ। जहाँ लेट जाऊँ यह एहसास करूँ कि तुझे दण्डवत् कर रहा हूँ और जो कुछ खाऊँ यह मानूँ कि तेरा प्रसाद है, और जिस जल को ग्रहण करूँ तो यह महसूस करूँ कि वह तेरा चरणामृत है, न तुझसे कुछ अलग है, न तुझसे कुछ दूर, तू ही मेरे अन्दर बसा हुआ है, तू ही मेरे बाहर है, तू ही सारा संसार है, तू ही मेरा करतार है।"

****

गीता का यह दसवां अध्याय जिसमें भगवान की विभूतियों का वर्णन है बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और कृपा से भरा हुआ, प्यारा अध्याय है। इसी कड़ी में विचार करते हुए भगवान के शब्दों पर ध्यान को टिकाईये-

तेशां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

- हे अर्जुन, निरन्तर जो प्यार से मेरा भजन करने वाले हैं, ऐसे भक्तों को मैं बुद्धियोग देता हूँ, *मामुपयान्ति ते* - इससे वह मुझे प्राप्त हो जाते हैं। मुझे मेरा नाम, निरन्तर सतत् भाव से, नित्य नियम से जपने वाले जितने भी भक्त लोग हैं, उन सबको मैं बुद्धियोग देता हूँ, जिसके कारण वह लोग मुझे प्राप्त हो जाते हैं। बड़ा ही सुन्दर संदेश है।

हमारे वश में केवल इतना ही कार्य है कि हम परमात्मा का नाम जपें गुहार करते रहें, पेड़ लगाते रहें, फ़रियाद करते रहें, सुनवाई होगी। उसके दर पर हर रोज़ नित्य-नियम से आकर बैठ जाय जो समय मैंने अपने प्रभु को दिया वह संसार का समय नहीं है और जो समय परमात्मा का है उसमें उसी को पुकारो। उससे मिलने की चाह मन में इतनी तीव्र करो, ऐसी उत्सुकता पैदा

करो कि उसी समय जाकर पुकार करने के लिए बैठ जाओ - हे प्रभु! सुनें न सुनें, लेकिन मैं तो आ गया हूँ। तेरी कृपा भी अद्भुत है, विशाल है, लेकिन मेरा धैर्य भी छोटा नहीं है। कोई बात नहीं इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में सही, अगले जन्म में नहीं सही तो उससे अगले जन्म में सही -

राम नाम रटते रहो, जब तक घट में प्राण,

कभी तो दीन दयालु के भनक पड़ेगी कान।

कभी तो दीन दयाल का ध्यान जायेगा। तो जो प्रीतिपूर्वक और प्यार से निरन्तर भजते हैं, लगे रहते हैं उसकी लगन में और उनके निकट जाकर बैठते हैं, जिनके निकट बैठने से रंग भक्ति का और गहरा होता है, उन गुरूओं का आशीर्वाद लेने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं, जो हमारे मिलने की चाह को और बढ़ा देते हैं, जो हमारे हौसले को और हमारे उत्साह को टूटने नहीं देते, जो हमारी श्रद्धा की दृष्टढ़ता को और बढ़ा देते हैं, उनका सान्निध्य करने से लगन तीव्र हो जायेगी।

भगवान कहते हैं कि फिर मैं एक ऐसी कृपा करता हूँ, बुद्धियोग देता हूँ, ऐसी अनोखी प्यारी बुद्धि देता हूँ, उस बुद्धि का मतलब यही होगा कि फिर तुम मेरे निकट आ जाओगे, मुझे प्राप्त कर सकते हो; यद्यपि मन और बुद्धि इनको वहाँ प्रवेश करने की अनुमति नहीं है, यह सब तो बाहर ही रह जाते हैं। परमात्मा के सुंदर महल में प्रवेश करना हो तो मन, बुद्धि, चित्त, अहं यह सब तो बाहर रह जाते हैं, लेकिन फिर बुद्धियोग का क्या होगा? मेधावी होना एक बात है, प्रज्ञावान होना एक बात है; प्रज्ञा पुरुष संसार में सब नहीं होते, मेधावी भी कोई हज़ारों, लाखों में एक होता है, करोड़ों में कोई प्रज्ञापुरुष होता है और ऋतम्भरा बुद्धि जिसे मिल जाये - वह बुद्धि, जो चुनाव करती है परमात्मा का, उसके मार्ग का - करोड़ों-करोड़ों इंसानों में किसी को वह बुद्धि प्राप्त होती है। उस बुद्धि का मतलब ही है अनासक्त होकर संसार से, संसार के ऊपर उठकर, संसार के मालिक की तरफ़ चलने की विशेषता जब आ जाये, जब स्थितियाँ ऐसी आ जायें कि नीर-क्षीर का विवेक कर सकें। विवेकानंद रामकृष्ण परमहंस के पास यही तो कहने गये थे, रोज़ी-रोटी, नौकरी मुझे मिल जाये। रामकृष्ण परमहंस ने कहा - जाओ, माँ से जाकर माँग लो। जगत-जननी माँ के दरबार में कह दिया कि जाकर के वहाँ माँगना और बाद

- उसकी चर्चा में परमात्मा ही बसा होता है, वह कुछ और याद करता ही नहीं केवल परमात्मा को ही याद करता है, परमात्मा में ही जीता है, कर्म करता है तो उसके लिए, श्वास लेता है तो मानो श्वास में परमात्मा को ही ले रहा है, बैठेगा, उठेगा, चलेगा, फिरेगा, हर रूप में यही एहसास करेगा कि मैं अपने प्रभु की गोद में बैठा हुआ हूँ।

कबीर साहब ने इसी को तो कहा -

"जहाँ-जहाँ चलूँ तेरी परिक्रमा करता हुआ, जहाँ बैठूँ महसूस करूँ कि तेरी गोद में हूँ। जहाँ लेट जाऊँ यह एहसास करूँ कि तुझे दण्डवत् कर रहा हूँ और जो कुछ खाऊँ यह मानूँ कि तेरा प्रसाद है, और जिस जल को ग्रहण करूँ तो यह महसूस करूँ कि वह तेरा चरणामृत है, न तुझसे कुछ अलग है, न तुझसे कुछ दूर, तू ही मेरे अन्दर बसा हुआ है, तू ही मेरे बाहर है, तू ही सारा संसार है, तू ही मेरा करतार है।"

❋❋❋❋❋❋❋❋

गीता का यह दसवां अध्याय जिसमें भगवान की विभूतियों का वर्णन है, बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और कृपा से भरा हुआ, प्यारा अध्याय है। इसी कड़ी में विचार करते हुए भगवान के शब्दों पर ध्यान को टिकाईये-

तेशां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

- हे अर्जुन, निरन्तर जो प्यार से मेरा भजन करने वाले हैं, ऐसे भक्तों को मैं बुद्धियोग देता हूँ, *मामुपयान्ति ते* - इससे वह मुझे प्राप्त हो जाते हैं। मुझे, मेरा नाम, निरन्तर सतत् भाव से, नित्य नियम से जपने वाले जितने भी भक्त लोग हैं, उन सबको मैं बुद्धियोग देता हूँ, जिसके कारण वह लोग मुझे प्राप्त हो जाते हैं। बड़ा ही सुन्दर संदेश है।

हमारे वश में केवल इतना ही कार्य है कि हम परमात्मा का नाम जपें, गुहार करते रहें, पेड़ लगाते रहें, फ़रियाद करते रहें, सुनवाई होगी। उसके दर पर हर रोज़ नित्य-नियम से आकर बैठ जाय जो समय मैंने अपने प्रभु को दिया वह संसार का समय नहीं है और जो समय परमात्मा का है उसमें उसी को पुकारो। उससे मिलने की चाह मन में इतनी तीव्र करो, ऐसी उत्सुकता पैदा

करो कि उसी समय जाकर पुकार करने के लिए बैठ जाओ - हे प्रभु! सुनें न सुनें, लेकिन मैं तो आ गया हूँ। तेरी कृपा भी अद्भुत है, विशाल है, लेकिन मेरा धैर्य भी छोटा नहीं है। कोई बात नहीं इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में सही, अगले जन्म में नहीं सही तो उससे अगले जन्म में सही -

राम नाम रटते रहो, जब तक घट में प्राण,

कभी तो दीन दयालु के भनक पड़ेगी कान।

कभी तो दीन दयाल का ध्यान जायेगा। तो जो प्रीतिपूर्वक और प्यार से निरन्तर भजते हैं, लगे रहते हैं उसकी लगन में और उनके निकट जाकर बैठते हैं, जिनके निकट बैठने से रंग भक्ति का और गहरा होता है, उन गुरूओं का आशीर्वाद लेने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं, जो हमारे मिलने की चाह को और बढ़ा देते हैं, जो हमारे हौसले को और हमारे उत्साह को टूटने नहीं देते, जो हमारी श्रद्धा की दृष्टढ़ता को और बढ़ा देते हैं, उनका सान्निध्य करने से लगन तीव्र हो जायेगी।

भगवान कहते हैं कि फिर मैं एक ऐसी कृपा करता हूँ, बुद्धियोग देता हूँ, ऐसी अनोखी प्यारी बुद्धि देता हूँ, उस बुद्धि का मतलब यही होगा कि फिर तुम मेरे निकट आ जाओगे, मुझे प्राप्त कर सकते हो; यद्यपि मन और बुद्धि इनको वहाँ प्रवेश करने की अनुमति नहीं है, यह सब तो बाहर ही रह जाते हैं। परमात्मा के सुंदर महल में प्रवेश करना हो तो मन, बुद्धि, चित्त, अहं यह सब तो बाहर रह जाते हैं, लेकिन फिर बुद्धियोग का क्या होगा? मेधावी होना एक बात है, प्रज्ञावान होना एक बात है; प्रज्ञा पुरुष संसार में सब नहीं होते, मेधावी भी कोई हज़ारों, लाखों में एक होता है, करोड़ों में कोई प्रज्ञापुरुष होता है और ऋतम्भरा बुद्धि जिसे मिल जाये - वह बुद्धि, जो चुनाव करती है परमात्मा का, उसके मार्ग का - करोड़ों-करोड़ों इंसानों में किसी को वह बुद्धि प्राप्त होती है। उस बुद्धि का मतलब ही है अनासक्त होकर संसार से, संसार के ऊपर उठकर, संसार के मालिक की तरफ़ चलने की विशेषता जब आ जाये, जब स्थितियाँ ऐसी आ जायें कि नीर-क्षीर का विवेक कर सकें। विवेकानंद रामकृष्ण परमहंस के पास यही तो कहने गये थे, रोज़ी-रोटी, नौकरी कह मिल जाये। रामकृष्ण परमहंस ने कहा - जाओ, माँ से जाकर माँग लो। जगत-जननी माँ के दरबार में कह दिया कि जाकर के वहाँ माँगना और बाद

में आप लोग जानते हैं कि विवेकानंद को रामकृष्ण परमहंस ने क्या दिया? वही बुद्धियोग दी। नौकरी माँगने वाला संसार को नौकरी दे गया। रोज़ी-रोटी माँगने वाले इंसान को ऐसी रोज़ी-रोटी दी सदा-सदा की जन्म-जन्मान्तरों की भूख मिटा कर रख दी गुरू की कृपा ऐसी हो गई।

इसीलिए यह बुद्धियोग मिलना आसान नहीं है, यह कृपा प्राप्त होना आसान नहीं है। किसी के भाग्य जाग जायें, किसी के पूर्वजों का तप, किसी के पूर्वजों का पुण्य किसी के हिस्से आ जाये, खुद की भूख जाग जाये, लगातार प्रयत्नशील हो जाये, प्यार से भजता जाये परमात्मा को, ऐसा व्यक्ति माँगे का क्या? तेरे इस सुंदर दृष्टश्यों से भरी हुई दुनिया में परमात्मा मुझे तो कोई गंगा का तट दे, सघन वनों की छाया, पहाड़ों का सान्निध्य, मधुर बयार बहती हो, प्रभात में उठूँ, तेरी ही तान सुनाई दे, जिधर चलूँ तेरे ही दृष्टश्य दिखाई दें, स्नान करूँ, तो मानूँ तुझमें ही हूँ, भोजन ग्रहण करूँ तो मानूँ तेरा प्रसाद और तेरा रस ग्रहण कर रहा हूँ, श्वास-श्वास में तुझे बसा लूँ, अब और किसी से रिश्ता नहीं रह गया क्योंकि सबसे बड़ा रिश्तेदार तो तू ही है। ढूँढेगा उन चरणों को जिन चरणों के निकट बैठने से, जिनकी धूल लग जाने से माथे पर, इस माथे में विशेषता आ जाये। तो जो प्यार से भजने वाले लोग हैं परमात्मा उनको बुद्धियोग देता है और इसी से भगवान कहते हैं फिर मेरी प्राप्ति कर लेता है, वह मुझे प्राप्त हो जाता है। भगवान ने जब यह समझाया तो अर्जुन ने उस समय भगवान की वन्दना में कुछ शब्द कहे -

अर्जुन उवाच - अर्जुन फिर बोला -

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुष शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।।

- हे गोविन्द *परं ब्रह्म* और *परं धाम* पवित्रों में भी पवित्र, तुम ही तो हो अर्थात् मेरा गोविन्द ही सर्वत्र है, मेरा प्रभु ही परब्रह्म है, वही परमधाम है। पुरुष शास्वतम् यह संसार एक पुरी है, एक नगर यह है। इस नगरी में बसने वाले पुरुष, कृष्ण, मैंने आपको पहचाना। आप ही हो *शाश्वतम दिव्यम्* - और दिव्य हो, *आदिदेवम्* - आदिं देव तुम ही हो। *अजम् विभुम्* - तुम्हीं अजन्मा हो और सर्वत्र व्याप्त हो। परमेश्वर की सुंदर विभूति का वर्णन किया। भगवान परब्रह्म है और वही परमधाम है। सारी दुनिया में आप कहीं भी जायें, कितने सुंदर

होटलों में ठहरें, सुंदर से सुंदर दृष्यों भरे संसार में घूमें लेकिन चैन मिलेगा अपने घर में।

अर्जुन ने कहा - जहाँ जाकर चैन मिलता है वह परमधाम तुम ही तो हो। मैं कहीं भी रह कर आ जाऊँ, किसी भी शरीर में रहकर आ जाऊँ, कहीं भी दौड़कर के आ जाऊँ, लेकिन जब तेरे धाम में आकर बैठता हूँ तो फिर कुछ और पाना बाक़ी नहीं रह जाता क्योंकि तुम ही सम्पूर्ण हो, तुम ही सब कुछ हो, तुम ही परमधाम हो, तुम ही परब्रह्म हो।

ईश्वर का वह रूप जिससे परे कुछ और है ही नहीं, जहाँ जाकर समस्त रास्ते बंद हो जायें, जिसे पाने के बाद बाक़ी कुछ पाना न रह जाये, जिसके पाकर फिर कहीं और की चाह न हो जाये, जो पवित्र है, *पवित्रम् परम* - परम पवित्र - यह भी बड़ा प्यारा शब्द है। दुनिया में कहीं पर भी आप किसी भी रूप में आप देखें पवित्रता अधिक देर ठहरती नहीं है। कीचड़ की इस दुनिया में चलते-चलते पांव पर कीचड़ तो लगता ही है; सुंदर खिले हुए फूल कहीं प्रभात में ओस पड़ी हुई हो सूरज की पहली किरणें चमकें और आप जाकर खड़े हो जायें जब तक आप दूर से देख रहे हैं तब तक वह सब पवित्र है, उसका सौन्दर्य कुछ और है; मैले हाथों वाले इंसान के हाथ या पांव जहाँ भी स्पर्श करते हैं पवित्रता फिर नहीं रह जाती। इसीलिए कहा जाता है कि ओस के मोती थोड़ी देर के लिए ही ठहरते हैं और सूरज आकर के उनको चुनकर के ले जाता है, वह थोड़ी देर के लिए ही मिला करते हैं। कहा जाता है उस समय कोई आकर भाग्य वाला उन मोतियों को देखता हो और सैर करता हुआ उनके दर्शन करते हुए, एहसास करता हो कि मेरा परमात्मा अपने सौन्दर्य के कण रोज़ बिखेर कर के जाता है तो कहते हैं उसकी ज़िन्दगी भी फिर मोतियों जैसी क़ीमती बन जाया करती है। इसीलिए कहा कि प्रभात में आंनद लेना चाहिए। लेकिन परम पवित्र है परमात्मा। संसार में कहीं भी, किसी भी रूप में, कहीं भी पवित्रता अधिक देर तक नहीं टिकती लेकिन जो पवित्रता सदा है, उसकी पाकीज़गी ऐसी अनोखी, अपनी आँखों से या अपने स्वरूप से अगर स्पर्श करें भी सही तो यह एहसास होगा - तू कितना क्षूद्र है, कितना सुंदर है कितना अच्छा है। मेरी आँखों की मैल भी मैला न कर दे भगवान मुझे तो दूर ही रखना - फिर एहसास होता है कि नहीं-नहीं कोयला कितना भी काला

क्यों न हो लेकिन अग्नि के पास जब जाता है उसकी कालिख दूर हो जा
है, कोयला भी आग बन जाता है। परमात्मा अपने निकट ला, मेरी अपवित्र
भी दूर हो जायेगी और मैं भी तेरे जैसा पवित्र हो जाऊँगा क्योंकि तेरा ही
रूप हूँ मैं। इसीलिए उसे परमधाम कहा, उसे पवित्रों का पवित्र कहा, *पवित्रं परमं भवान् पुरुषम् शाश्वतम्* - इस पुरी में, इस नगरी में बसने वाले तुम
तो हो।

शरीर एक नगरी है। इसका राजा हमारी आत्मा लेकिन इस राजा का
महाराजा - *परब्रह्म परमेश्वर* - सारे संसार का वही तो एक मात्र सौन्दर्य है
उसी पर सब टिका हुआ है, वही एक आधार है। माला के मनके धागे में
हैं, मनके दिखाई देते हैं, धागा नहीं। फूलों की सुंदर माला में फूल दिखाई
हैं लेकिन जिस धागे में वह फूल ठहरे हुए हैं वह धागा नहीं दिखाई देता.
सारे संसार में तरह-तरह के दृष्य दिखाई देते हैं लेकिन दृष्यों के पीछे का
- परमात्मा - दिखाई नहीं देता, उसे तो कोई-कोई देखा करता है। उसके
तो जो क्षीण दोष वाले हैं, पवित्र आत्मा हैं, साधना में बैठने वाले लोग हैं
दर्शन करेंगे उसका। अगर किस्मत ने साथ दिया, इधर की लगन लगी
किसी महान पुरुश का सान्निध्य मिल गया, रोज़ भगवान से प्रार्थना करना
माँगना कि - हे प्रभु, यह चरण छूटे नहीं, यह लगन टूटे नहीं, तेरा प्यार
न जाये, तू मुझसे छूट न जाये, मेरा पूरा ध्यान तेरी तरफ ही हो - यही प्रार्थना
करना भगवान से।

शाश्वतम् दिव्यमादिदेवमजं - प्रभु आप शाश्वत हो, सदा से हो; मनुष्य
साधारण है, क्षणभंगुर है। किसी की कविता थी -

रात यूं कहने लगा मुझसे गगन का चाँद
आदमी भी क्या अनोखा जीव है

कवि की अपनी कविता और अपनी उड़ान है, बात कर रहा है -

रात यूं कहने लगा मुझसे गगन का चाँद - आसमान के चाँद ने मुझसे
बात कही - *आदमी भी क्या अनोखा जीव है*, इंसान क्या अनोखा जीव है
अपने हाथों से उलझनें बनाता है, अपने हाथों से उलझन बनाकर फंसता है और
फिर उसमें उलझकर के रोता है, मैं इसका खेल रोज़ देखता हूँ, इसे छटपटाते
हुए देखता हूँ; चाँद ने कहा लेकिन आज तक मैंने ऐसे कम लोग देखे हैं जो

इस धरती धाम पर आकर उलझे नहीं, सुलझे हैं और मुझे देखकर सदा मुस्कुराते रहें और जो सृष्टा है उसकी महिमा को गाते हुए उस तक पहुँच जायें ऐसे लोग मैंने बहुत कम देखे हैं संसार में।

हम लोग क्षणभंगुर शरीर लेकर आये हैं संसार में, ज़्यादा देर तक टिकने वाले नहीं हैं। परिवर्तनों से भरे हुए संसार में आकर बैठे, घटनाओं का प्रवाह है यह संसार, लगातार घटनाएं घट रही हैं, लगातार परिवर्तन हो रहा है, बदलती दुनिया में सब कुछ बदलेगा हमारी आत्मा नहीं, हमारा परमात्मा नहीं।

जो नहीं बदल सकता हमें उससे जुड़ना चाहिए, उसे शाश्वत् कहा है, सदा रहेगा वह, वही सनातन है, जो सदा से है, *दिव्यम्* - उससे दिव्य और कुछ है ही नहीं, प्रकाशपुंज, *आदिदेवम्* - सभी देवताओं का आदि वही है अर्थात् प्रारंभ वहीं से है, परब्रह्म परमेश्वर ही प्रारंभ है अर्थात् उसी से सब प्रारब्ध है, उसका आदि कोई नहीं, उसका अंत कोई नहीं, कहा है वह अजन्मा है, जन्म नहीं लेता। अपनी अनुभूतियाँ करायेगा, एहसास करायेगा लेकिन शरीर से अलग हटा हुआ है। शरीर संसार में दिखाई देंगे लेकिन शरीर के माध्यम से जो लीला दिखाई दे रही है परमात्मा उस सबसे अलग हटा हुआ है, संसार को शिक्षा देता है, समझाता है; कभी अपने महान पुरुषों के माध्यम से, कभी अपने अवतारों के माध्यम से, कभी आप्त पुरुषों के माध्यम से, कभी अपने ऋषियों के माध्यम से, या फिर एहसास कराने के लिए उसे कोई भी माध्यम चुन लेना पड़ता है कभी तो वह रविदास के रूप में दिखाई देता है तो कभी सूरदास के रूप में, कभी तुलसीदास के रूप में, कभी आदिशंकराचार्य के रूप में, या अन्य संतों के रूप में।

सूरदास जी हाथ में जो पकड़कर जिस साज़ से वह गाने बैठे, वह खड़ताल, कोई और ख़ास साज़ नहीं है, खड़ताल हाथ में ले रखी है, उसी को बजाते हैं सूरदास, भगवान को मना रहे हैं। सोचिए तो सही कि क्या ऐसे हीरे जवाहरात लगा लिए उसने खड़ताल में अपने मालिक को रिझाकर, अपने सामने लाकर खड़ा कर दिया। रेत के टीलों से गीत उभरे मीरा के रूप में, द्वारका तक पहुँची है, वृंदावन आयी और जैसे यमुना समुद्र में जाकर मिलती है मीरा ने भी यही सोचा। वृंदावन से होती हुई यह यमुना सागर तक जाकर मिलती है, इस वृंदावन से चलकर मेरे कृष्ण द्वारिका तक पहुँचे जहाँ समुद्र है;

क्षीरसागर में भी तो वह हैं; यमुना वहाँ तक गयी है, यमुना तो भक्ति है। मैं भी भक्ति का सहारा लेकर चलूँ और वहाँ तक पहुँच जाऊँ, गीत गाते-गाते वहाँ जाकर खड़ी हो जाऊँ। द्वारिका में जाकर के मीरा ने गीत गाये, परमात्मा के लिए रोई, नाचती रही और कहते हैं फिर लौटना नहीं हुआ मीरा का, समाहित हो गयी अपने भगवान में।

अब यह जो ऐसी दिव्यता जिनको प्राप्त हुई उन्होंने अपनी भक्ति से उस शाश्वत को, उस दिव्य को, दिव्य तेज के रूप में प्राप्त कर लिया, और उसमें समाहित हो गयी। कोई भी माध्यम आप पकड़ लेना - गाकर मनाना, तप करके मनाना, तपस्या करके मनाना, आत्म-साधना के द्वारा मनाना, यज्ञ-हवन करके मनाना या फिर आत्मसाक्षात्कार करते-करते समाधि के माध्यम से प्राणों को छोड़कर उसमें समाहित हो जाना या जन सेवा करते-करते, दूसरों के दर्द बंटाते-बंटाते, मुख से जाप करते-करते उसको प्राप्त कर लेना।

वह भी लोग देखे हैं। बंगाल के लोगों को देखा, चैतन्य की परम्परा के लोग। तुलसी बीच में रखकर और फिर हाथ ढोल पर चल रहे हैं, नाचते हुए गाते हुए, पांव की ताल बढ़ती जाती है, हाथों की ताल बढ़ती जा रही है, मन का उद्वेग बढ़ता जाता है, हाथ उठा-उठा करके गोविंद को, कृष्ण को पुकारते-पुकारते, सुध-बुध खोकर गिर पड़ते हैं। ढंग तो वह भी है बात इतनी है प्रक्रिया कुछ भी बनाओ, यह मन, यह आत्मा, यह हमारा स्वरूप परमात्मा के चरणों में लिप्त हो जाये, उसमें रम जाये वह कोई भी प्रक्रिया आप अपना लेना, वह प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण नहीं है, आप पहुँचने के लिए गाड़ी पकड़ के के चले थे, साईकिल से चले थे, कार से चले थे, रेलगाड़ी लेकर चले थे लेकिन बात इतनी है कि आप चले थे और आपकी लगन थी, आप चलते-चलते चले गये और आप पहुँच गये, पहुँचना ही महत्त्वपूर्ण है।

कोई भी माध्यम पकड़ कर चलना, लगन और निष्ठा में कमी नहीं आने देना। अर्जुन ने फिर यह भी कहा -

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥

- कैसे जानूँ आपको, कैसे चिन्तन करूँ, कौन-सा भाव लेकर के तेरा चिन्तन करते-करते, तुझे ही प्राप्त कर लूँ? अपने स्वरूप के संबंध में, आप

ऐश्वर्य के संबंध में कुछ तो बताओ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान ने फिर उत्तर दिया, क्योंकि अर्जुन ने यह जानना चाहा कि आप अपने स्वरूप को विस्तार से बताओ - *विस्तरेणत्मनो योगं विभूतिं च जनादर्न्* - अपना जो स्वरूप है और अपनी जो विभूति, अपना जो ऐश्वर्य है, उसे ज़रा विस्तार से बताओ।

कभी किसी चीज़ को आप जब देखते हैं तो देखने में दो चीज़ें हैं, एक तो जैसी चीज़ है वह, एक वह आपके वर्णन करने का ढंग क्या है? हर आदमी अपने ढंग से वर्णन करता है और जब वर्णन करता है उस स्वरूप में उसकी व्याख्या भी जुड़ जाती है। जो जैसा है वैसा व्यक्ति पूरा वर्णन नहीं कर सकता है, उसमें अपनी व्याख्याऐं जोड़ देता है। दुःखी मन वाला होगा दुःख जोड़ लेगा, खुशीमन वाला होगा खुशियाँ जोड़ लेगा, वासना वाला होगा वासना जोड़ लेगा, क्रोध वाला होगा क्रोध जोड़ लेगा, मोह वाला मोह जोड़ लेगा, व्याख्याओं में कुछ और भी जुड़ जाता है, जो जैसा है, जिस तरह का, वैसा हम प्रस्तुत कर ही नहीं पाते।

अर्जुन ने कहा हमारी व्याख्याऐं, हमारा कहना, हमारा समझना अधूरा है, आप अपने स्वरूप को स्वयं ही बताओ? लेकिन विस्तार से बताना। देखा जाये तो गीता वास्तव में बड़ी अद्भुत है, इसे जितने प्यार से आप पढ़ना शुरू करेंगे, उससे भी ज्यादा ज़रूरी चीज़ है शब्दों को पढ़कर फिर आँखें बंद कर लेना, फिर अपने अंदर ही अपने कृष्ण को कहना कि तुम ही तो सुनाओ अपनी वाणी को। क्या अर्जुन ही ज़्यादा सगा था, हम नहीं? क्या वही तेरा था, हम नहीं? क्या वही पात्र था, हम नहीं हो सकते? रिश्ता तो जन्म-जन्म का है; बात शुरू हो जानी चाहिए। और आप देखेंगे कि अंदर से फिर अनुभूतियाँ होंगी और फिर स्वरूप भी कुछ और प्रकट होगा, आपके अंदर एक नयी गीता जन्म लेगी, जो आपको एक अलग तरह से आनन्दित करेगी।

कोशिश करके बैठिए ज़रूर, प्रारंभ में मुझे ध्यान है - मैं व्याख्यायें पढ़ने के लिए बैठ रहा था गीता के संबंध में, मुझे लगा कि गीता से दूर हो गया हूँ क्योंकि हर एक व्यक्ति ने अपने आपको जोड़ दिया है गीता के साथ। कृष्ण कम दिखाई दिये, व्यक्ति ज़्यादा दिखाई दिये, व्याख्याता शब्दों का जाल बुन रहे हैं। बड़ी समस्या हुई। मैंने कहा - हम समझें कैसे? मूल गीता के श्लोक सामने रख लिए, दोहराना शुरू कर दिया और कमाल तो यह है कि जैसे-जैसे

शलोकों पर ध्यान देना शुरू किया, महसूस यह हुआ कि गीता अपना रहस्य स्वयं बताने के लिए तैयार हो गयी है और मैं तो यह कहूँगा कि जो हम शब्दों से कह रहे हैं उसमें फिर भी कुछ कमी रह जायेगी, लेकिन गीता को पढ़ते-पढ़ते अनायास हृदय में जब चिन्तन करोगे तो जो कुछ सुनाई देगा उसमें कहीं कोई कमी नहीं, वह तो पूरा आनंद बन जाता है, उसमें उसी ढंग से डूबना चाहिए। भगवान ने समझाया -

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिशां रविरंशंमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥

- आदित्य जो हैं उनमें मुझे विष्णु मानो, जो ज्योति है, प्रकाश है संसार में, उन सब प्रकाशों में जो सुंदर प्रकाश है वह सूरज का है, तो मुझे सूरज मानो, मरुतों में मरीचि, नक्षत्रों में शशी, आकाश में अनेक सितारे चमकते हैं. लेकिन रात की शोभा नक्षत्र नहीं हैं, चाँद से ही रात्रि की शोभा है। भगवान ने कहा इस संसार में चमक और भी चीज़ों में है लेकिन सारे संसार की शोभा मुझसे है, मैं ही हूँ जिसकी चमक से सारे संसार की वस्तुओं में चमक दिखाई देती है। नक्षत्रो में जैसे चन्द्रमा है, प्रकाश में जैसे सूर्य, जैसे आदित्यो में विष्णु. इन रूपों में तुम मेरा अहसास करो।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥

- वेदो में मैं सामवेद हूँ, वैसे तो चारों वेद ही भगवान का रूप हैं लेकिन भगवान कृष्ण कहते हैं कि मुझे तुम सामवेद का रूप अनुभव करो। यह थोड़ा समझने के लिए, बुद्धि पर थोड़ा ज़ोर डालिये। ऋग्वेद को अगर आप पढ़ें उसका ज्ञानकाण्ड कहा गया है, जो यजुर्वेद है वह कर्मकाण्ड है, जो अर्थवेद है उपासना काण्ड है, जो सामवेद है वह भक्ति काण्ड है। समस्त वेदों में जो भक्ति है, जो भजन है, भाव है, भगवान कृष्ण ने कहा वही मैं हूँ। ज्ञान, कर्म. उपासना के बीच सामवेद, साम-संगीत है, गीत में मन एकदम बंध जाता है तो सामसंगीत में एकदम ऐसी अनुभूतियाँ होती हैं, कान गूँजने लगता है, तरंग पैदा होती है।

भगवान ने कहा तुम यह महसूस करो समस्त वेद एक पवित्र ज्ञान हैं उस ज्ञान में जो स्वरलहरी है और उसमें जो आनंद की अनुभूति है वह आनन्द

की अनुभूति मैं ही हूँ, मुझसे अलग कुछ नहीं है। देवताओं में मैं वसु हूँ, इन्द्रियों में मन, प्राणी मात्र में मैं चेतना हूँ, होश हूँ, आत्म तत्त्व हूँ। जो आत्म तत्त्व है सारे प्राणियों में, वह मुझे ही तुम महसूस करो। थोड़ा विचार कीजिए इस पर।

भगवान ने कहा इन्द्रियों में मैं मन हूँ। जो हमारी इन्द्रियां हैं, उन इन्द्रियों के पीछे मन है। मन न हो तो यह इन्द्रियाँ किसी काम की नहीं हैं और मज़े की बात यह है कि अगर इन्द्रियों से संबंध तोड़ना हो तो मन का संबंध इनसे ख़त्म कर दो। आँख रूप देखना चाहती है, कान शब्द सुनना चाहते हैं, नाक सुगंध के लिए लालायित है और यह त्वचा शरीर की त्वचा के कोमल स्पर्ष के लिए व्याकुल, जीभ स्वाद के लिए बेचैन, लेकिन किस लिए? क्योंकि इनके पीछे मन है, मन इनका राजा है, इन्द्रियों का राजा मन है।

भगवान ने कहा – जो मन है और उसकी तरंग और उसकी गति है वहाँ मैं ही हूँ, मुझसे अलग नहीं है वह। यद्यपि मन जड़ है लेकिन भगवान ने कहा वहाँ भी मैं बैठा हुआ हूँ – *भूतानामस्मि चेतना* – समस्त प्राणियों में मैं चेतना हूँ। शब्द को ज़रा ध्यान से समझना। जितने भी संसार में जीव-जन्तु हैं, इन सब जीव-जन्तुओं में भगवान ने कहा कि मैं चेतन तत्त्व हूँ, मैं चेतना बनकर सब में बैठा हुआ हूँ। अपने सामने चलते हुई किसी चींटी को देखना, सर्प को देखना, कुत्ते को देखना, किसी सज्जन मनुष्य को देखना, किसी दुष्ट मनुष्य को देखना, किसी भिखारी को देखना, किसी गलित कुष्ठ को देखना सबको देखकर अलग-अलग भाव आपके मन में आयेंगे।

छोटी-सी चींटी को दौड़ता हुआ देखकर आप कहेंगे – इतनी छोटी, इतने काम में लगी हुई है; सर्प को देखकर के आप कहेंगे – मौत लहराती हुई जा रही है; किसी कुत्ते को देखेंगे आप, सोचेंगे – निक्रिष्ट जीव है; भिखारी को देखेंगे आप – हाथ हैं, ज़िन्दगी माँग कर पूरी करना चाहता है; कुष्ठ रोगी को देखेंगे – घृणा जागेगी, भाग्य की मार देखो, सब कुछ सुंदर था, सब गल गया, कोढ़ बन गया; सज्जन की सज्जनता को देखोगे – मन में प्यार जागेगा; दुष्ट की दुष्टता को देखोगे द्वेष जागेगा लेकिन सबको देखने के बाद एक एहसास करना – सब में एक ही तरह की चेतना दौड़ रही है, सब में मेरा परमात्मा ही दौड़ रहा है, इसीलिए किसी से घृणा नहीं, सभी से प्यार, सब में मैं हूँ, सब

मेरे जैसे हैं, अर्थात् सब में उन अनुभूतियों को करूँ - इस चींटी के रूप में अगर मैं होता तो मैं भी तो ऐसे ही चलता न, चींटी ज़िन्दगी बचाना चाहती है. बचना चाहती है, मुझे कोशिश करनी चाहिए इन्हें बचाकर चलूँ।

भगवान ने कहा कि सब प्राणियों में मैं चेतना बनकर बैठा हुआ हूँ, मैं हूँ वहाँ इसका एहसास करो। यह एहसास जब जीवन में आता है तो एक बात दिखाई देती है - व्यक्ति का जीवन संत का जीवन हो जाता है।

किसी व्यक्ति ने जाकर किसी फ़क़ीर से, किसी संत से पूछ लिया - यह जो हमारा जीवन है इसे और सुंदर बनाने की चाह हो तो हमारे लिए कोई उपदेश करो, जीवन को और अच्छा कैसे बनायें?

फ़क़ीर ने अपने पास रखी हुई तीन चीज़ें उठाकर मुट्ठी में पकड़ीं और उस व्यक्ति को दे दीं - थोड़ी सी रूई, एक मोमबत्ती और रूई के अंदर लगी हुई सुई - तीनों चीज़ें पकड़ाई और हाथ में देने के बाद कहा - 'बस, हो गया उपेदश अब जाओ।'

आदमी चल पड़ा। समझ में नहीं आया; उसने फिर वापिस आकर कहा - 'महाराज, यह जो कुछ दिया है यह समझ में नहीं आता।'

महात्मा ने कहा - 'यह रूई दी है न, इसकी एक ही ख़ासियत है धागा-धागा बनकर यह हर एक की लाज ढांपती है, मेरे परमात्मा का प्यारा इंसान वह है जो दूसरों की लाज ढांपा करता है और दूसरों को संरक्षण देता है।

यह मोमबत्ती लेकिन प्रकाश बनकर सब जगह फैलेगी और दूसरों को भटकने से बचायेगी, सहारा बनती है। अगर और परमात्मा का प्यारा बनना चाहते हो, पूरी ज़िन्दगी लगा देना लेकिन दूसरों के लिए प्रकाश बनकर के रहना, भले ही खो जाओ, मोमबत्ती खोया नहीं करती, मोम बनकर जलती ज़रूर है लेकिन वह प्रकाश बनकर आकाश में फैल जाती है, ऊँचाई तक पहुँच जाती है, वह अपने परमात्मा तक पहुँच जाती है, तुम इसी रूप को धारण करना।

तीसरी चीज़ तुम्हें दी है मैंने सुई, सुई का कोई महत्त्व वैसे तो कोई नहीं जानता लेकिन सुई के बिना संसार का काम चलता नहीं। टुकड़ों को, फटे हुओं को, कटे हुओं को जोड़ने का काम सुई करती है, सुई के बिना कोई जुड़ा नहीं

करता, दुनिया में परमात्मा का प्यारा भक्त वही है जो फटे हुए दिलों को सिला करता है, जो टूटे हुओं को जोड़ा करता है, बिखरे हुओं को जो इकट्ठा कर दे, यही मेरा उपदेश है।'

उस व्यक्ति ने कहा - अगर मैं आपसे पूछता नहीं तो मैं सोचता महात्मा जी के पास इतनी देर तक गया था, तीन चीज़ें उठाकर दे दीं, मेरे घर में क्या कमी पड़ रही थी? मेरे घर में नहीं थीं क्या? लेकिन आज पता लगा मेरे घर में नहीं थीं यह चीज़ें। यह चीज़ किसी-किसी के घर में जब जागृत होती है, किसी को पता लगता है कि ज़िन्दगी को सुंदर ऐसे बनाओ बस उसके बाद फिर वह नहीं रहता, उसके अंदर उसका परमात्मा प्रकट हो जाता है और वह परमात्मा का रूप धारण करके संसार में विचरित होने लगता है। विचरते-विचरते खुद भी आनंद लेगा और सारे संसार को बाँटेगा। प्राणी मात्र में जो चेतन तत्त्व को देखने लगता है, एक अलग ही स्वरूप को धारण कर लेता है।

भगवान ने आगे फिर उपदेश दिया -

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेषो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चामस्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥

- रुद्रों में मैं शंकर हूँ अर्थात् शंकर और मैं अलग नहीं, यक्ष और राक्षसों में जो धन है, कुबेर, मैं ही हूँ, दुनिया में इंसान को और सारी चीज़ों के साथ, सारे रिश्तों के साथ, सब महत्त्वों के साथ सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण चीज़ लगती है धन। उर्दू में ज़र कहा जाता है। किसी ने कहा था - *'ऐ ज़र तू खुदा तो नहीं, पर खुदा से कम भी नहीं।'* पैसे के लिए कहा कि धन तू भगवान तो नहीं है लेकिन लगता है कि भगवान से कम भी नहीं है और यहाँ कहा है भगवान ने कि मैं धन में भी आकर के बैठा हुआ हूँ। इसीलिए तो वह प्यारा लगता है। लेकिन धन में नहीं अटक जाना, धन में बैठे हुए मुझको देखना कि अगर यह धन मेरी तरफ़ लगेगा तो फिर मुझे प्राप्त कर लोगे और अगर मुझे धन की तरफ़ लगाना शुरू कर दोगे तो मेरे से भी दूर हो जाओगे, इसीलिए समझना। यक्षों में, राक्षसों में जो कुबेर हैं, वित्त के स्वामी हैं वह मैं ही हूँ, रूद्रों में मैं शंकर हूँ, वसुओं में पावक हूँ, आठ वसु माने जाते हैं, यह प्राण भी वसु हैं, जिससे बसा जाये, जिनके माध्यम से रहा जाये, कहते हैं यह अग्नि वसु है लेकिन वसुओं में भी भगवान ने कहा मैं अग्नि बनकर बैठा हुआ हूँ।
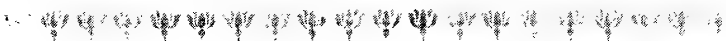
इंसान जहाँ भी जाकर बसेगा, अग्नि की ज़रूरत पड़ेगी, अग्नि के बिना उसका काम नहीं चलता। एक जठराग्नि है, एक विद्युत वाली अग्नि जो आकाश में विराजमान है, एक अग्नि वह जो आपके चूल्हे में है, एक अग्नि वह जो शमशान घाट में जलती है, इन अग्नियों के बीच में ही तो जीवन पूरा होता है। भगवान ने कहा - अग्नि बनकर के मैं ही बैठा हुआ हूँ, अलग-अलग रूप हैं मेरे। पर्वतों में मैं सुमेरू हूँ, सुमेरू से मतलब यहाँ सुमेरू पर्वत के साथ-साथ उस भाव को भी लेना, सोने का पहाड़, जो स्वर्णिम है, जो सुंदर है, ऐसा पर्वत जो महत्त्वपूर्ण है अर्थात् जीवन की वह शिखर जो जीवन की समस्त सफलताओं से युक्त है वह सफलता का शिखर भी मैं ही हूँ, मुझसे अलग हटकर के कुछ नहीं देखना।

महर्षीणां भष्टगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥

यद्यपि व्याख्या करने भी हम बैठें तो एक-एक शब्द ही अपने आप में महीनों की व्याख्या ले सकता है। लेकिन मैंने आपको सार में कहना है - ऋषियों में भृगु को बहुत ऊँचा माना गया है, भगवान ने कहा - जितने भी ऋषि- महर्षि हैं उनमें भृगु मैं हूँ, भृगु देखने में छोटे थे लेकिन दूरदर्शी और भृगुसंहिता के बारे में तो आप लोग जानते हैं, जो सब कुछ बता दे पहले और भृगु का एक अर्थ है - जो पवित्रता से भरा हुआ है। ऋषियों की पवित्रता मैं हूँ, ऋषियों का भविष्य के संबंध में दिया जाने वाला वक्तव्य वह वक्तव्य मैं हूँ। युगदृष्टा कोई भी व्यक्ति संसार में होगा वह केवल उस समय के लिए नहीं बोल रहा होता, लाखों करोड़ों साल, आने वाले समय के लिए वह कुछ ऐसे कह जाता है, लोग कहते हैं इसे कैसे मालूम था? लाखों साल के बाद भी यह समस्यायें खड़ी होंगी। हाँ, कभी-कभी ऐसा हुआ है, हज़ारों साल पहले के किसी ऋषि ने, किसी संत ने, किसी ज्ञानी ने कुछ कह दिया, हज़ारों साल बाद के इंसानों ने कहा - उस वक़्त में उनका होना बहुत जल्दी हो गया, उस समय पहचानने वाले लोग नहीं थे, अब अगर वह बोलते तो ज़्यादा अच्छा होता लेकिन उनको हज़ारों साल आगे तक का दिखाई देता है। वह अनोखे लोग होते हैं पर उनके अनोखेपन में जो भी कुछ अनोखापन है, वह भगवान की कृपा का ही फल है। भगवान अपने संदेश तरह-तरह से संसार में भेजता है।

भगवान ने कहा – मैं ऋषियों में भृगु हूँ, *गिरामस्म्येकमक्षरम्* – एकम्अक्षरम्, एक अक्षर समस्त वाणियों में मैं हूँ। जितनी भी वाणियाँ हैं उन सबमें सबसे सार्थक एक ही अक्षर है और वह एक अक्षर को माना गया ओंकार – ओ३म्, *प्रणम्, उद्गीत;* वाणी सार्थक हो जाती है ओ३म् बोलकर – कि समस्त वाणियों में मैं एक ओ३म् – इसीलिए समस्त श्लोक, मंत्र या मांगलिक वचन जब भी हम प्रार्थना के लिए बोलेंगे तो पहले ओ३म बोलते हैं, ओ३म बोलने का मतलब होता है उस प्रार्थना में, या उस मंत्र में शक्ति आये। भगवान ने कहा – सब वाणियों में मैं ओ३महूँ, क्योंकि बिना ओ३मके वाणी वाणी नहीं है।

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि – जितने भी यज्ञ हैं, उन सब में जो जप यज्ञ है वह मैं हूँ। परमात्मा के नाम का जो जप है वह बड़ा प्यारा यज्ञ है और यह यज्ञ भी अंदर जागृत होना आसान चीज़ नहीं है, रात-दिन परमात्मा के नाम में लगना, कार्य करते हुए जपना, जैसे कबीर ने ताना-बाना बुनते हुए परमात्मा का नाम गाया, तिरूवल्लुवर ने साड़ियां बुनते हुए भगवान का नाम गाया, या जैसे संत एकनाथ ने घर-गृहस्थी में रहकर भी अपने परमात्मा को प्राप्त कर लिया, नाम गाते चले गये, पुरन्दरदास ने अपने गीतों में अपने भगवान को बसाया, मीरा ने अपने नृत्य में अपने प्रभु को बसाया, जिस तरह से सूरदास ने अपनी खड़ताल बजाकर के अपने भगवान को मनाया; संसार के कार्य भी हो रहे हैं लेकिन उनका जप चल रहा है। यह जो जप चलता है लगातार यह एक यज्ञ है। समस्त प्रकार के यज्ञों में क्योंकि सारे यज्ञ ही परमात्मा तक पहुँचने के लिए माध्यम हैं लेकिन कहते हैं जिन यज्ञों के माध्यम से इंसान परमात्मा के ज़्यादा क़रीब होता है उन सबमें सबसे महत्त्वपूर्ण यज्ञ है, जप यज्ञ। परमात्मा का नाम जपना, कि वह मैं ही हूँ लेकिन इस यज्ञ का लाभ तब होता है जब व्यक्ति परमात्मा की महिमा का एहसास करता है।

सोचिए, किसी को हीरे की खान के नज़दीक बैठा हुआ देखकर आप सोचें – ज़रूर हीरे की खान का मालिक बन गया हो और वह व्यक्ति वहाँ कांच की गोलियों से खेल रहा हो, पूरी मेहनत कर रहा हो कांच की गोलियां इकट्ठी करने में; गंगा के किनारे कोई आदमी जाकर कुआँ खोदने लग जाये, इन दोनों ही आदमियों को आप मूर्ख कहेंगे, आप कहेंगे – हीरे की खान सामने है, थोड़ा नीचे उतर हीरे बटोर कर ले आ, सदा की ग़रीबी दूर हो जायेगी। गंगा

के किनारे बैठा हुआ है, इतनी मेहनत करने की ज़रूरत नहीं है, कुआँ खोदने की, गंगा सामने बह रही है, जा पानी भर के ला और अपनी तृप्ति कर और अपने को पवित्र कर ले। जो ऐसा नहीं कर पा रहा है वह मूर्ख है। हीरे की खान है परमात्मा, हीरे की खान में न उतरकर के संसार के पदार्थों की कांच वाली गोलियां कोई इकट्ठी करे उसे मूर्ख ही माना जायेगा, गंगा नाम है परमात्मा का और उसके निकट बैठकर के भी कोई आदमी कुआँ खोदने के लिए प्रयास करने लग जाये वह मूर्खता है। परमात्मा को पाने की या परमात्मा के निकट होने के बाद भी संसार के और सारे प्रयत्न निरर्थक हैं, सबसे बड़ा प्रयत्न यही है कि संसार के ताने-बाने को बुनते-बुनते अपने परमात्मा की तरफ़ चलना है। यही सबसे बड़ा यज्ञ होगा और यही जप यज्ञ है। इस यज्ञ की ओर अपने आपको उन्मुख करने के लिए भगवान ने कहा - कि यज्ञों में मैं जप यज्ञ हूँ, और जो पहाड़ हैं, उन सब में मैं हिमालय हूँ, स्थिरता का प्रतीक। जो भी कुछ स्थिर है संसार में उनमें सबसे ज़्यादा स्थिरता का परिचायक है पर्वत। भगवान ने कहा - किसी इंसान के अंदर कहीं स्थिरता दिखाई दे, डोल न रहा हो, बड़ी-बड़ी परिस्थितयों के सामने भी अडोल बन कर खड़ा हुआ है, उसके अडोल बनने में मेरी कृपा का परिणाम है। समझना धैर्यशील इंसानों के अंदर धैर्य बनकर मैं ही बैठा हुआ हूँ क्योंकि पहाड़ों में मैं हिमालय हूँ।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥

यह भी बड़ा प्यारा शब्द है लेकिन व्याख्या ज़्यादा है और हम अब उस बिन्दु पर पहुँचे गये हैं कि व्याख्या वाली स्थिति नहीं है, इसीलिए सार सुनिये। साम संगीतों में बृहत्साम अधिक महत्त्वपूर्ण है, जहाँ स्वर लहरियों का एक अलग ही चमत्कार होता है। संगीत की लहरी चल रही हो, स्वर जब चरम पर पहुँच जाये, अनुभूतियां होने लग जायें, अपनी 'मैं' को इंसान भूल जाये, खो जाये रस में; अब वह जो रस में खो जायेगा इंसान, किसी बांसुरी की तान में डूबने लग जायेगा, उस स्थिति को एक जगह जोड़िये और जो अनुभूति आनंद की उस समय होती है, रस की होती है, उस रस में भगवान कहते हैं मुझे ही अनुभव करो, जैसे रस टपकने लगा। भगवान ने कहा - समस्त छंदो में मैं गायत्री हूँ, या जो मंत्र हैं, मंत्रो में मैं गायत्री मंत्र हूँ। गायत्री का अर्थ है गाने

वाले का जो तान करे, जो उसे गाये और उसकी रक्षा करने का काम वह मंत्र कर जाये उसका नाम गायत्री है। प्राणों में जो संगीत फूँक दे उसे गायत्री कहा गया है, जो समस्त मंत्रो में जो मंत्र रक्षा करने वाला बन जाये, वह मंत्र, रक्षा करने वाला मंत्र मैं हूँ।

मासानां मार्गषीर्षो - सभी महीनों में जो माघ का महीना है, मार्घशीर्ज़ वह मैं हूँ। शीतलता, शांति, जीवन में जहाँ-जहाँ भी शांति है, शीतलता है, शांति परमात्मा की कृपा है, कहते हैं किसी के अंदर भी अगर शांति है, उस शांति को यह महसूस करो वह मेरी कृपा का फल है।

ऽहमृतूनां कुसुमाकरः - जितनी भी ऋतुऐं हैं न, भगवान कहते हैं - उन ऋतुओं में जो वसन्त ऋतु है वह मैं हूँ। हर आने वाली ऋतु, हर आने वाला मौसम बड़ा ही सुंदर और सुहावना होता है। हर मौसम का आना और जाना अच्छा लगता है लेकिन वसंत ऋतु एक ऐसी है जिसका आना ही अच्छा लगता है, जिसका जाना अच्छा नहीं लगता, इसीलिए उसे वसन्त ऋतु कहा गया क्योंकि उसमें सौन्दर्य है। कहते हैं जो भक्ति, जो आनंद, जो प्रेम, जो सौहार्द आपके हृदय में आ जाये, उसका आना जब अच्छा लगता है और जाना बुरा, भगवान कहते हैं - वह कुसुमों से, फूलों से लदा हुआ मौसम, पहाड़ों का मौसम वह मैं हूँ, सब मांसों में, सब ऋतुओं में वही सौन्दर्य है।

यद्यपि इस पूरे अध्याय के संबंध में अभी और भी कुछ कहा जाना चाहिए था लेकिन जितनी अवधि रखी गयी है उस अवधि के आधार पर जो कुछ मैंने कहा मैं यह आशा करूँगा बहुत प्यार से आप लोग विचार करेंगे।

बहुत-बहुत शुभकामनाएं

अध्याय - दस

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

हे बलवान् बाहुओं वाले (अर्जुन), और भी मेरे सर्वोच्च वचन को सुन। तेरी शुभकामना से मैं तुझे यह सब बता रहा हूँ, क्योंकि तू (मेरी बातों में) आनन्द ले रहा है।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥

मेरे उद्गम या मूल को न तो देवगण ही जानते हैं और न ही महर्षि लोग ही; क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का मूल हूँ।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

जो कोई मुझ अजन्मा, अनादि और सब लोकों के शक्तिशाली स्वामी को जानता है, मर्त्य लोगों में वही भ्रमरहित है और वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥४॥

बुद्धि, ज्ञान, मूढता या भ्रम से मुक्ति, धैर्य (क्षमा), सत्य, आत्मसंयम और शान्ति, सुख और दुःख, अस्तित्व और अनस्तित्व (भाव और अभाव), भय और निर्भयता -

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एवं पृथग्विधाः ॥५॥

अहिंसा, समचित्तता, सन्तुष्टि, तपस्या, दान, यश और बदनामी, ये सब प्राणियों की विभिन्न दशाएं हैं, जो मुझसे ही उत्पन्न होती हैं।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥

पुराने सात महर्षि और चार मनु भी मेरी प्रकृति के ही हैं और वे मेरे मन से उत्पन्न हुए हैं, और उनसे संसार के यह सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥७॥

जो कोई मेरी इस विभूति (यश या प्रकटन) को और शक्ति (स्थिर कर्म) को तत्त्व-रूप में जानता है, वह अविचलित योग द्वारा मेरे साथ संयुक्त हो जाता है, अर्थात् मिल जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥

मैं सब वस्तुओं का उत्पत्तिस्थान हूँ; मुझमें ही सारी (सृष्टि) चलती है। इस बात को जानते हुए ज्ञानी लोग विश्वासपूर्वक मेरी पूजा करते हैं।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥९॥

उनके विचार मुझमें स्थिर हो जाते हैं; उनके जीवन (पूर्णतया) मेरे प्रति समर्पित होते हैं; एक दूसरे को ज्ञान देते हुए और सदा मेरे विषय में वार्तालाप करते हुए वे सन्तुष्ट रहते हैं और मुझमें ही आनन्द अनुभव करते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०॥

जो लोग इस प्रकार निरन्तर मेरी भक्ति करते हैं और प्रीतिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं बुद्धि की एकाग्रता प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा वे मेरे पास पहुँच जाते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११॥

इन पर दयालु होने के कारण मैं अपनी वास्तविक दशा में रहता हुआ ज्ञान के चमकते हुए दीपक द्वारा उनके अज्ञान से उत्पन्न अंधकार को नष्ट कर देता हूँ।

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरूषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥

तू परब्रह्म है, परमधाम है और तू परम पवित्र करने वाला है, शाश्वत दिव्य पुरुष है। तू सबसे प्रथम देवता है, अजन्मा है और सर्वव्यापी है।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

सब ऋषियों ने तेरे विषय में यही कहा है; यहाँ तक कि दिव्य ऋषि नारद, साथ ही असित, देवल और व्यास ने भी यही कहा है और तूने स्वयं भी यही मुझे बताया है।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

हे केशव (कृष्ण), जो कुछ तू कहता है, मैं उस सबको सत्य मानता हूँ। हे स्वामी, तेरे व्यक्त रूप को न तो देवता जानते हैं और न दानव।

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेष देवदेव जगत्पते ॥१५॥

हे पुरुषोत्तम, सब प्राणियों के मूल, सब प्राणियों के स्वामी, देवताओं के देवता, सारे संसार के स्वामी, केवल तू ही अपने द्वारा अपने-आपको जानता है।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥

तू मुझे अपने उन सबके सब दिव्य प्रकटरूपों को (विभूतियों को) बता जिनके द्वारा तू इन सब लोकों को व्याप्त करके (उनमें और उनसे परे) निवास करता है।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

हे योगी, मैं निरन्तर ध्यान करता हुआ तुझे किस प्रकार जान सकता हूँ? हे भगवान्, मैं तुम्हारे किन-किन विविध रूपों में तुम्हारा ध्यान करूं।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८॥

हे जनार्दन (कृष्ण), तू विस्तार से अपनी शक्तियों और विभूतियों का वर्णन कर; क्योंकि मैं तेरे अमृततुल्य वचनों को सुनकर अघा ही नहीं रहा हूँ।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९॥

हे कुरुओं में श्रेष्ठ (अर्जुन), मैं तुझे अपने दिव्य रूप बतलाऊँगा। मैं केवल प्रमुख-प्रमुख रूप बताऊँगा, क्योंकि मेरे विस्तार का तो कहीं कोई अन्त ही नहीं है (विस्तार से बताने लगूं तो उसका अन्त ही न होगा)

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥

हे गुडाकेश (अर्जुन), मैं सब प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ आत्मा हूँ। मैं सब भूतों (वस्तुओं या प्राणियों) का प्रारम्भ, मध्य और अन्त हूँ।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

आदित्यों में मैं विष्णु हूँ; प्रकाशों में (ज्योतियों में) मैं दमकता हुआ सूर्य हूँ, मरुतों में मैं मरीचि हूँ; नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

वेदों में मैं सामवेद हूँ; देवताओं में मैं इन्द्र हूँ; इन्द्रियों में मैं मन हूँ और प्राणियों में मैं चेतना हूँ।

रुद्रदाणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

रुद्रो में मैं शंकर (शिव) हूँ; यक्षों और राक्षसों में मैं कुबेर हूँ; वस्तुओं में मैं अग्नि हूँ, और पर्वत शिखरो में मैं मेरू हूँ।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

हे पार्थ (अर्जुन), मुझे तू पुरोहितों में मुख्य पुरोहित बृहस्पति समझ, (युद्ध के) सेनापतियों में मैं स्कन्द हूँ; जलाश्यों में मैं समुद्र हूँ।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

महान ऋषियों में मैं भृगु हूँ; वाणियों (वचन) में मैं एक अक्षर ***'ओ३म्'*** *हूँ; यज्ञो में मैं जपयज्ञ (मौन उपासना) हूँ स्थावर (अचल) वस्तुओं में मैं हिमालय हूँ।*

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥२६॥

वृक्षों में मैं पीपल हूँ और दिव्य ऋषियों में मैं नारद हूँ; मैं गन्धर्वो में चित्ररथ हूँ और सिद्ध ऋषियों में कपिल मुनि हूँ।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

अश्वो में तू मुझे उच्चैःश्रवा समझ, जो अमृत से उत्पन्न हुआ था; श्रेष्ठ हाथियों में मैं ऐरावत (इन्द्र का हाथी) हूँ और मनुष्यों में मैं राजा हूँ।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

शस्त्रों में मैं वज्र हूँ; गौओं में मैं कामधेनु हूँ; सन्तानों को उत्पन्न करने वालो में मैं कामदेव हूँ और सर्पों में मैं वासुकि हूँ।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

नागों में मैं अनन्त (शेषनाग) हूँ; जलचरो में मैं वरुण हूँ; (दिवंगत) पूर्वजों में (पितरों में) मैं अर्यमा हूँ; नियम और व्यवस्था का पालन करने वालों में मैं यम हूँ।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

दैत्यों में मैं प्रह्लाद हूँ; गणना करने वालो में मैं काल हूँ; पशुओं में मैं पशुराज सिंह हूँ और पक्षियों में मैं विनता का पुत्र (गरुड़) हूँ।

पवनः पवतामास्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥३१॥

पवित्र करने वालों में मैं वायु हूँ; शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ; मच्छों में मैं मगरमच्छ हूँ और नदियों में मैं गंगा हूँ।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥

हे अर्जुन, मैं सब सिरजी गई वस्तुओं का (सृष्टियों का) आदि, अन्त और मध्य हूँ; विद्याओं में मैं अध्यात्मविद्या हूँ; वाद-विवाद करने वालों का मैं तर्क हूँ।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥३३॥

अक्षरों में मैं 'अ' अक्षर हूँ और समासो में मैं द्वन्द्व समास हूँ; मैं ही अनश्वरकाल हूँ और मैं ही वह विधाता हूँ, जिसके मुख सब दिशाओं में विद्यमान हैं।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥३४॥

मैं सबको निगल जाने वाली मृत्यु हूँ और मैं भविष्य में होने वाली सब वस्तुओं का उद्गम हूँ; नारियों में मैं कीर्ति, लक्ष्मी, वाणी, स्मृति, बुद्धि, दृढ़ता और क्षमा (धीरता) हूँ।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

इसी प्रकार साम (गीतों) में मैं बृहत् साम हूँ; छन्दों में मैं गायत्री हूँ; महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ और ऋतुओं में मैं कुसुमाकर (फूलों की खान, वसन्त) हूँ।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३६॥

छलने वालों का मैं जुआ (द्यूत) हूँ; मैं तेजस्वियों का तेज हूँ; मैं विजय हूँ; मैं प्रयत्न हूँ; और अच्छे लोगों में मैं अच्छाई हूँ।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥३७॥

वृष्णियों में मैं वासुदेव हूँ; पांडवों में मैं धनंजय (अर्जुन) हूँ; मुनियों में मैं व्यास हूँ और कवियों में मैं उशना कवि हूँ।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

दमन करने वालों का मैं (सज़ा देने का) दंड हूँ; जो लोग विजय प्राप्त करना चाहते हैं, उनकी मैं नीति हूँ; रहस्यपूर्ण वस्तुओं में मैं मौन हूँ और ज्ञानियों का मैं ज्ञान हूँ।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥३९॥

हे अर्जुन, सब वस्तुओं का जो भी कुछ बीज है, वह मैं हूँ; चराचर वस्तुओं में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो मेरे बिना रह सके।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥४०॥

हे शत्रु को जीतने वाले (अर्जुन), मेरी दिव्य विभूतियों का कोई अन्त नहीं है। जो कुछ मैंने तुझे बताया है, वह तो मेरी असीम महिमा का केवल निदर्शन-मात्र है।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥४१॥

जो भी कोई प्राणी, गौरव, चारुता और शक्ति से युक्त है, तू समझ ले कि वह मेरे ही तेज के अंश से उत्पन्न हुआ है।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

परन्तु हे अर्जुन, तुझे इस विस्तृत ज्ञान की क्या आवश्यकता है? मैं इस सम्पूर्ण विश्व को अपने ज़रा-से अंश द्वारा व्याप्त करके इसे संभाले रहता हूँ।

ग्यारहवां अध्याय

विश्वरूप दर्शन योग

ता का ग्यारहवां अध्याय भगवान के विराट स्वरूप के दर्शन का अध्याय है। इस अध्याय में भगवान ने अपने विराट स्वरूप का दर्शन कराया है। प्रारम्भ में अर्जुन भगवान से निवेदन करते हैं -

मदनुग्रहाय परम गुह्यमध्यात्म संज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥

आपके अनुग्रह से, आपकी अत्यंत अनन्त कृपा से मुझे जो यह परम गुह्यज्ञान *अध्यात्म संज्ञितम्* - जिसे अध्यात्म के नाम से जाना गया, इन आपके वचनों के माध्यम से - *मोहोऽयं विगतो मम* - मेरा यह मोह नष्ट हो गया है। अर्जुन ने कहा कि आपकी कृपा से जो परम गुह्यज्ञान है, जिसे अध्यात्म ज्ञान के नाम से जाना गया, इस ज्ञान को पाकर मैं धन्य हुआ और मेरा समस्त प्रकार का मोह, अज्ञान नष्ट हो गया; क्योंकि मोहग्रस्त होने के कारण ही अर्जुन अपने कर्त्तव्य के रथ से उतरकर भागना चाहता था। जब भी हम अज्ञान में होते हैं उस समय यह समस्या ज़रूर रहती है।

अज्ञान का भयंकर प्रभाव जीवन में होता है - हम अपनी ज़िम्मेदारियां और अपने कर्त्तव्यों से भागने की बात सोचने लगते हैं। बहुत बार ऐसा होता है। जीवन की समस्याओं का सामना जूझकर के ही किया जा सकता है। जीवन में ऐसा संभव नहीं है कि समस्याओं से भाग लेने से कोई व्यक्ति अपने दु:ख से छुटकारा पा सकता है। समस्या जिस कारण है उस कारण का निदान करना बहुत आवश्यक है और यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि हम मूल को सींचना शुरू करें, पत्तों में पानी न दें। पत्ते दिखाई देते हैं इसीलिए लोग पत्तों में ही पानी डालने लगते हैं। समस्या दिखाई देती है लेकिन गाँठ कहाँ बँधी हुई है इसको व्यक्ति नहीं देखता। अगर उस गाँठ को ढीला कर दिया जाये जिसके कारण हम बँधे हुए हैं, जिसके कारण बंधन में हैं, जिसके कारण हम कष्ट में हैं तो कष्ट का निवारण हो सकता है। इसीलिए गाँठ और बँधन एक ही है संसार में और वह है मोह, अज्ञान, जो व्यक्ति को जकड़ ले। अर्जुन ने कहा आपकी कृपा ऐसी हुई है -

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।

आपके अनुग्रह से, आपकी कृपा से मुझे यह जो गुह्यतम ज्ञान मिला जिसे अध्यात्मसंज्ञितम् कहा गया, उस ज्ञान का प्रभाव यह हुआ है कि मेरा मोह दूर हो गया, मैं आपके लिए अनुग्रहीत हूँ, आभारी हूँ कि आपने मेरा मोह तोड़ा, मेरा अज्ञान तोड़ा, मुझे जगाया, मुझे होश में लेकर आये।

बड़ी चीज़ यह है - अँधेरे में भटकते हुए, ठोकर खाते हुए इंसान के लिए एक दीया जला देना साधारण चीज़ नहीं होती। व्यक्ति को उसका स्वरूप याद करा देना यह साधारण बात नहीं होती, व्यक्ति को उसके कर्त्तव्य की ओर उन्मुक्त कर देना यह साधारण बात नहीं होती। गुरू इतना ही करता है। उसके स्वरूप में शिष्य के स्वरूप को शिष्य के सामने रखकर अवगत कराता है - कि तुम हो कौन? क्या रूप है तुम्हारा? अपने को जान लो।

किशकिन्धा की गुफ़ा में बैठे हुए हनुमान एक अलग ही रूप में थे राम जी से मिलना हुआ तो रूप अलग बना और जिस दिन हनुमानजी को जागृत किया गया, बताया गया कि - हे हनुमान, समस्त देवताओं की दिव्य शक्तियाँ आप में हैं, धरती का धैर्य आप में है, पवन की गति आप में है अग्नि का तेज आप में है, विद्युत की कड़क आप के अन्दर है - हनुमान अपनी स्तुति सुनते-सुनते शरीर को और अपने अन्तःस्वरूप को विकसित होता हुआ अनुभव करते हैं। फिर कहा गया कि यह सागर कुछ भी नहीं है हनुमान आपके सामने। तुम चाहो तो एक छलाँग में इसे पार कर सकते हो। आत्म-स्वरूप का बोध हुआ तो एक छलाँग में सागर पार कर गये हनुमान जी। मतलब क्या हुआ? अगर आपको अपना ज्ञान हो जाये, आत्मबोध हो जाये, तो फिर भव-सागर कुछ भी नहीं, एक छलाँग में ही पार कर जाओगे। इसमें भटकने की बात फिर है ही नहीं। जिसको कहा जाता है कि बड़ा ही दुस्तर है, नहीं तरा जा सकता, जिसे कहा जाता है कि पार करना बहुत मुश्किल है, कैसे पार होंगे? आत्म-बोध होने का मतलब है, अपने स्वरूप को जानने का मतलब है, इतना शक्ति सम्पन्न हो जाना जैसे कोई शेर, सिंह - शावक, शेर का बच्चा, बकरियों के झुंड में पला और अचानक उसने किसी शेर की दहाड़ एक दिन सुन ली और उसने देखा

कि सारी बकरियाँ डर-डर कर भाग रही हैं; जो अब तक रौब जमाते थे सब डर के भाग रहे हैं। अब उसको समझ में आया कि यह आवाज़ तो मैं भी निकाल सकता हूँ। उधर से एक शेर पुकारता है इधर से यह शेर दहाड़ने लगा, बकरियों का झुँड भागने लगा। आज तक दुम दबाकर, सबके सामने गर्दन झुका कर बैठा था, अब यह जो चला है वन के अन्दर इसको देखकर सब डर रहे हैं, दिशायें झुक गयी हैं क्योंकि शेर को अपने सिंहत्व का, शेरपने का ज्ञान हो गया - मैं तो शेर हूँ। अब तक क्या महसूस करता था? मैं भी बकरियों की तरह बकरी ही हूँ। तो जब तक बोध नहीं होता तब तक स्थिति ऐसी है कि जैसे कोई शेर बकरियों के बीच बैठा हुआ है, गर्दन दबाये हुए, झुका हुआ, शुद्र जीव दबा रहे हैं, धमका रहे हैं, और जैसे ही जाग्रति आ गई जाग्रति का परिणाम है - शक्ति जाग्रत हो गयी, अपने अंदर का शेर जाग गया।

अर्जुन ने कहा - मेरा मोह टूट गया है, आपकी कृपा से टूटा है। अब अपने स्वरूप का बोध होने लगा है, यह आपकी कृपा का फल है, सोये हुए सिंह को जगा दिया, बुझी हुई अग्नि में फिर से चिंगारियाँ प्रकट हो गई हैं, फिर से ज्वाला जागी है। खोया हुआ इंसान फिर अपनी समृद्धि को पा गया, भटकते हुए राजा को फिर से नगरी मिल गई। शरीर को छोड़कर निकली हुई आत्मा दोबारा शरीर में आ गई, फिर से प्राण संचारित हो गये। मोह टूटना ही साधारण बात नहीं है, असाधारण बात है यह, जाग्रत हो जाना साधारण बात नहीं है।

गुरू गोरखनाथ ने अपने गुरू मत्सेन्द्रनाथ नाथ के लिए कभी गीत गाते हुए कहा था - *जाग मछुन्दर जाग,* गोरख आया - मेरे गुरूदेव सारे संसार को आपकी आवश्यकता है। आज आपको कहने के लिए आपका शिष्य आपके सामने आ गया। जगाने के लिए खड़े हो गये। कई बार आवाज़ देनी पड़ती है। मोह किसी भी रूप में टूट जाये लेकिन टूटना चाहिए। दुर्भाग्य यह है कि बहुत-बहुत चोट खाकर संसार में भटकते-भटकते, बिलखते-बिखरते, जाग ही नहीं पाते हैं हम। समस्या वही पेट, पेट को भरना, तन को ढाँपना, घर-गृहस्थी के चक्कर काटना, इससे बाहर नहीं निकल पा रहे हैं। पेट तो चिड़ियाँ भी भर रही हैं, चीटियाँ भी भर रही हैं,

कीड़े-मकोड़े भी अपने घर-परिवार के ईद-गिर्द उसी परिक्रमा में लगे हुए हैं, इससे आगे उनकी दौड़ है ही नहीं। हमारी दौड़ उतनी ही है अपने परिवार तक, अपने मोह तक।

क्या किसी महान पुरूष का परिवार नहीं था? उनके संबंधी नहीं थे? उनकी आवश्यकताऐं नहीं थीं? उनके लिए कोई पारिवारिक और निजी समस्या नहीं थी? उनके लिए भी थी, लेकिन फिर भी उन्होंने अपने विकास को इतना विस्तृत कर दिया कि सारे संसार के लिए हो गये और यह बात निश्चित है कि जो दूसरों की समस्याओं को दूर किया करता है उसकी समस्याओं को तो परमात्मा अपने आप दूर किया करता है, उसे कभी कोई कष्ट नहीं होता।

इसीलिए एक बार अपने मोह को तोड़कर परमात्मा की ओर चलने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। बहुत-बहुत सुनना, सत्संग, शास्त्र का मनन, महान पुरूषों के सान्निध्य में बैठना, जहाँ सेवा का अवसर है सेवा करना, दीन और दुखियों के प्रति सहानुभूति रखकर सहयोग करना, अभिमान का विनाश करके, विनम्र भाव रख कर चित्त को कोमल बनाना, बैरियों के प्रति भी मंगल कामना रखते हुए अपने परमात्मा का प्रिय होना, यह सब प्रयोग करते चले जाईये और फिर आप देखिए कि आप अपने स्वरूप में उपस्थित हो जायेंगे।

अर्जुन ने कहा कि मेरा मोह टूटा है आपकी कृपा से। कभी भी अगर जाग्रति आयेगी जीवन में, तभी जाग्रति आयेगी जब प्रभु की कृपा होगी। विचित्र लगता था हम लोग साधना के लिए उत्तरकाशी में थे। दु:खी इंसान रोता हुआ आया और आकर महात्मा जी के सामने बोला - महात्मा जी आज बड़ा परेशान हूँ, मेरे बच्चों ने सताया मुझे। अब मुझे उनके प्रति कोई लगाव नहीं रह गया। क्या इस दिन के लिए मैंने उनको पाला-पोसा था कि ऐसा व्यवहार करें? महाराज अब तो एक बात सच लगती है, भगवान नाम ही सच है बाकी सब झूठ है। उसने कहा मेरे बच्चों ने जो कुछ किया, आप जरा दो सांत्वना के शब्द तो मुझे कहो।

महात्मा जी बोले - एक काम करो, अन्दर मन्दिर में जाओ और भगवान का धन्यवाद करो कि कम से कम तुम्हें इतनी जल्दी जाग्रति तो

आ गई, तुम उस मोह से टूट कर परमात्मा की तरफ़ तो जुड़ गये, इतनी जल्दी होश आ गई। उन्होंने कहा कि हम तो साधना मैं बैठकर इतने समय तक इस मोह को तोड़ने में लगे हुए हैं, तुम्हें तो संसार ने एक झटके से ही मोह से तोड़कर इधर जगा दिया तो उनका भी धन्यवाद करके आओ। धन्यवाद करना इस बात का कि मेरा कर्त्तव्य तो केवल दायित्व निभाना था। दायित्व निभाते-निभाते मैं मोह में फँस गया। तुमने जगा दिया कि ड्यूटी पूरी कर दी मैंने। अब वह अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं या नहीं करते हैं मुझे क्या लेना देना। मुझे तो एक ही बात सोचनी चाहिए कि मेरा शरीर आखिरी समय तक चलता रहे और मुझे कभी किसी की ज़रूरत न पड़े, मैं सेवा कर दूँ पर मुझे सेवा की ज़रूरत न पड़े।

जैसे कभी जर्मन कवि गेटे ने कहा था - परमात्मा का बनाया हुआ यह संसार - यह पेड़, यह पौधे, यह पहाड़, यह नदियाँ, यह हवा, यह लगातार कुछ न कुछ अपने से देते हैं। विधाता ने इनको बनाया तो विधाता की कृपा का परिणाम जो भी जीवन में है, उसका बदला चुका रहे हैं यह लोग, आखिरी समय तक बाँटते रहते हैं। एक मनुष्य ही ऐसा है जो परमात्मा का क़र्ज़दार होकर भी उसका क़र्ज़ा चुकाना नहीं चाहता, कभी धन्यवाद नहीं करता, कभी बाँटता नहीं, कभी कुछ देता नहीं, और इस संसार का नियम है-जितना बाँट दोगे, उतने ही महान हो जाओगे। जब दोगे तो देने में तुम ऊँचे हो, देवता हो; जैसे ही हाथ फैला लिया स्थिति बदल जायेगी। भगवान से यही माँगना - हे प्रभु, यह हाथ देने के लिए उठता रहे, कभी किसी के सामने न फैले। माँगने वाले का कभी पेट नहीं भरा करता और देने वाले को कभी कमी नहीं रहा करती। उस आदमी को कभी कमी नहीं रहती जो दे रहा है, जो बाँट रहा है और जिसकी लेने की कामना हर समय है उसका मन कभी भरेगा ही नहीं।

अर्जुन ने कहा - **एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।**
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥

- हे कृष्ण, आपने जो कुछ मुझे बताया और मेरे लिए कहा, मैंने आपकी महिमा को जाना, समझा, लेकिन आपके रूप को और आपके ऐश्वर्य को *द्रष्टुमिच्छामि* देखने की इच्छा रखता हूँ। मैं आपका स्वरूप देखना चाहता

हूँ। आपकी महिमा जानता हूँ, समझने लगा हूँ लेकिन फिर भी आपके रूप को आपके ऐश्वर्य को देखने की इच्छा है। अर्जुन के ऐसा कहने पर भगवान ने कहा -

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

भगवान ने कहा - अर्जुन, तुम इन आँखों से मेरे ऐश्वर्य को, रूप को स्वरूप को, नहीं देख सकोगे, इन आँखों से दर्शन नहीं होंगे। *दिव्यं ददामि ते चक्षुं* - मैं तेरे लिए दिव्य चक्षु देता हूँ *पश्य मे योगमैश्वरम्* - तब तुम मेरे ऐश्वर्य को देखना, मेरे स्वरूप को देखना। तुम्हें दिव्य नेत्र देता हूँ, दिव्य चक्षु देता हूँ, इन आँखों से देखना तुम।

ज़्यादातर तो संसार में ऐसा होता है कि जो भी कुछ हम देखते हैं जैसा-जैसा देखते हैं उसमें ज़्यादातर हमारी अपनी व्याख्यायें भी होती हैं। वह चीज़ जैसी होती है वैसी ही नहीं, उसमें ज़्यादातर हम अपनी चीजें भी जोड़ लेते हैं।

भगवान ने कहा कि अगर अब तुम जो कुछ देखना चाहते हो इन आँखों से तो तुम देख नहीं सकोगे क्योंकि परमात्मा के लिए यह आँखें वहाँ तक नहीं जा सकती, यह बाहर रह जाती हैं। यह कान उन शब्दों को नहीं सुन सकते वह शब्द सुनने के लिए इन कानों की आवश्यकता नहीं है। अगर इन इन्द्रियों से वह पकड़ में आता होता तो दुनिया भर के लोग वश में कर लेते भगवान को। अगर हमारी पकड़ में, जिस रूप में हम संसार में हैं, ऐसे अगर पकड़ में भगवान आता होता तो अब तक भगवान किसी न किसी के क़ब्ज़े में बँधा हुआ दिखाई देता।

भगवान को कहा गया - अगोचर है वह, इन आँखों से नहीं देखा जा सकता, अतिन्द्रिय - इन्द्रियों से परे है, इन्द्रियाँ वहाँ नहीं जा सकतीं, मन नहीं जा सकता, बुद्धि नहीं जा सकती। मन का मनन करने का भी एक दायरा है उससे आगे मन नहीं जा सकता। बुद्धि जो निर्णय करती है, धारणा होती है बुद्धि ऐसा दर्शन शास्त्रों में कहा गया है। निश्चय करने का कार्य बुद्धि का है लेकिन यह भी वहाँ तक नहीं जा सकती, यह सब बाहर रह जाते हैं भगवान ने कहा इसीलिए मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूँ। उन आँखों से तुम मेरे

रूप देखना। प्रश्न यह है कि संसार में जब भी किसी योगी ने, किसी साधक ने, परमात्मा के स्वरूप का दर्शन किया, इन आँखों से तो कभी नहीं किया। किया है तो आंतरिक आँखों से किया है, दिव्य चक्षुओं से किया है। यह तीसरा नेत्र खुले या अन्त:प्रज्ञा जागे, यह सब दिव्य चक्षु ही हैं। अन्त:प्रज्ञा जाग जाये, अन्त्:करण नहीं, अन्त:स्वरूप हमारा जाग्रत हो जाये तो फिर दर्शन होते हैं।

साधना में, समाधि में बैठने के बाद एक विचित्र स्थिति होती है। यह जो ध्यान है ध्यान में तो मनुष्य का मन खो जाता है, कुछ भी विचार नहीं बचता, अपनी 'मैं' नहीं बचती, कुछ सोच ही नहीं सकते उस समय तो आप। नींद में आप कुछ सोचते हैं क्या? नींद भी एक तरह का ध्यान है। उस समय आपका मन खो जाता है। लेकिन नींद में होश नहीं होती। जागे हुए की नींद ध्यान है। जब आप जाग्रत हैं और नींद में हैं, जागे हुए, होश में रहते हुए, एक नींद जो आ जाये, दिमाग़ सो जाये, शान्ति आ जाये यह ध्यानावस्था है। लेकिन ध्यान में डूबते-डूबते, जब कभी और अन्दर प्रवेश हो जाये फिर रस धारा टपकती है, रस का अवगाहन करता है व्यक्ति। आनन्द की अनुभूतियाँ अन्दर में इतनी होने लगती हैं; आपको विचित्र लगेगा जो लोग अन्दर की अनुभूतियाँ लेने लगते हैं, उन्हें संसार के दृश्यों में आनन्द नहीं आता। बार-बार पीढ़ा होती है कि क्यों दुनिया के बीच में क्यों उलझे हुए हैं, क्यों नहीं यहाँ से निकल कर अलग कहीं बैठ जाएं। अगर स्वाद चखा है तो बड़ी छटपटाहट होती है, हड़बड़ाहट होगी, छटपटाहट होगी, दु:ख लगेगा, सबसे छूट के वहाँ बैठें जाकर जहाँ केवल उसका नाद अन्दर सुनाई दे, उसकी धुन में खो जायें, उसका आनन्द लेने लग जायें क्योंकि उससे बढ़कर कुछ है नहीं। यह संसार के पदार्थ, संसार की चीज़ें, कभी अच्छी नहीं लगेंगी। वह आनन्द ही एक अलग तरह का है।

लेकिन एक बात ध्यान रखना कि उस आनन्द को पाने के लिए दुनिया में हर चीज़ का मूल्य चुकाना पड़ता है। उस आनन्द के लिए भी एक मूल्य चुकाना पड़ता है - अपनी 'मैं' को खोना पड़ता है, संसार से अलग होना पड़ता है; अनासक्त होकर अंदर डूबते चले जायें, आज्ञा चक्र से ध्यान शुरू हो, सहस्त्रार चक्र तक पहुँच जायें, अंदर की कुण्डलनी शक्ति जाग्रत होकर शक्ति केन्द्र से मिल जाए, समाधि गठित हो जाये तो सारे संसार का सारा सुख, भोग,

आनन्द, वैभव एक जगह जोड़ना वह जो सारा सुख होगा वह बिल्कुल ऐसा अनुभव होगा जैसे आकाश में बिजली अचानक कड़क कर के, चमक कर बंद हो गयी। बस ऐसा ही क्षणिक संसार का सुख लगेगा। समाधि का आनन्द लिया तो फिर ऐसा महसूस होगा यह सारे आनन्द लाखों गुणा जोड़कर के एक जगह रख दिए जायें तो ऐसा आनन्द समाधि का आनन्द है। वहाँ तक पहुँचना आसान कार्य नहीं है, उसके लिए बड़ी भारी तपस्या, गुरूकृपा, और उससे भी बड़ी चीज़ उपनिषदों में जैसे कहा - जिसको परमात्मा स्वयं वरण करना चाहे. जिसके लिए आज्ञा हो जाये कि इसको प्रवेश दिया जा रहा है, जिस पर परमात्मा कृपा कर दें कि इसका प्रवेश स्वीकार हो गया, वह दर्शन करता है।

अर्जुन की बड़ी भारी क़िस्मत अच्छी थी; भगवान ने कहा - तुझे आँखें दे रहा हूँ, तू देख। उस दर्शन को करने के लिए यह आँखें मिल पाना आसान बात नहीं। पहली बात तो यह रही कि अर्जुन ने पहचाना, समझा, मोह को छोड़ कर, 'मैं' को हटाकर, उस निश्छल बुद्धि को धारण कर गया जिसमें कहीं छल नहीं है, कपट नहीं है, कठोरता नहीं है, सरल हो गया। मोह टूट गया तब उसने कहा कि आपकी बड़ी कृपा हुई इसीलिए अब आपका स्वरूप पहचानना चाहता हूँ। तब भगवान ने कहा कि अच्छा मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूँ, अब तुम देखो।

बहुत बार ऐसा होता है कि हम किनारे तक पहुँच कर भी वापिस भँवरों पर लौट आते हैं, पहुँच गये थे फिर रह गये वहीं, क्योंकि दुर्भाग्य फिर खींच लाता है। अगर थोड़ी और हिम्मत करके, और आगे चलते, बहुत बड़ी बात घट सकती थी, बात बन सकती थी, लेकिन हम लौट आते हैं फिर - अभी तक तो कुछ बात बनी नहीं अब पता नहीं बनेगी कि नहीं बनेगी तो चलो छोड़ो: साधना करते-करते बहुत लोग किनारे तक पहुँचते-पहुँचते वापिस आ जाते हैं और अगर एक झटका और लगा जाते तो उनकी प्राप्ति हो जाती, वह पहुँच जाते। इसीलिए बड़ा ही लगन का और निष्ठा का कार्य है यह। इसमें कभी भी इंसान को ढीलापन नहीं आने देना चाहिए। लगन अपनी गहरी रखनी चाहिए. लगातार चलता जाये, चलता जाये, चलता जाये।

कोलम्बस ने जैसे यात्रा करते-करते तीन ही दिन रह गये थे और उसके साथ के मल्लाह ने, सबने यह कह दिया, कि नई दुनिया की खोज करने के

लिए यह व्यक्ति चला है, तीन महीने का राशन था वह भी ख़त्म होने को है, तीन ही दिन बाक़ी बचे हैं। यात्रा करते-करते इतना समय हो गया, अब कहाँ हम समुद्र से आगे कोई दुनिया खोज पायेंगे?

रात्रि में सबने मिलकर योजना बनाई कोलम्बस को मारकर फेंक देंगे समुद्र में, कोई नई दुनिया नहीं है, वापिस चलेंगे अपने देश।

अब पुर्तगाल से चले हुए लोग, तीन महीने पूरे होने वाले हैं, तीन दिन के बाद यात्रा को और मन में यह सोच रहे हैं कि अब कोई नई दुनिया की खोज होने वाली नहीं है। इसको मारकर फेंक दिया जाए, इस आदमी ने बहकाया है हमको; मारने के लिए तैयार हो गये।

कोलम्बस सोया पड़ा था, उसने उनकी बातें सुन लीं थी। उठ के बैठ गया। उसने कहा तुम मुझे मारना चाहते हो? मारो। लेकिन तुम्हारे पास तीन महीने का राशन अब नहीं है, तीन दिन का ही है। तीन महीने का ही राशन लेकर आये थे, अब वापिस नहीं जा सकोगे, मरोगे तो फिर भी। वापिस जाने में भी मरोगे, तो इतने दिन भरोसा किया है तो तीन दिन और सही।

अब वह सब कहते हैं लेकिन तुम तीन दिन में ही ऐसा क्या कर लोगे? कोलम्बस बोला कि तीन दिन में बहुत कुछ हो सकता है। कोलम्बस ने कहा किनारे पर पहुँचकर वापिस लौटना नहीं चाहता। अब एक झटके की बात रह गयी है, पहुँचूंगा, और तीन दिन के बाद ही नई दुनिया की खोज करके सारे संसार के सामने कोलम्बस जिस तरह से स्थापित हुआ। अगर वह व्यक्ति उस समय घबरा जाता, जैसे सारे लोग मिलकर मारने की योजना बना रहे थे, तो दुनिया में कभी उसका नाम नहीं लिया जाता।

बहुत बार जीवन में ऐसा होगा - किनारे तक पहुँचते-पहुँचते घबरा जाओगे। जब घबराहट होने लग जाये उस समय बहुत धीरज की ज़रूरत है, उस समय और हिम्मत करके आगे बढ़ो और निश्चित बात है सफल हो जाओगे। अपनी दृढ़ता को छोड़ना नहीं चाहिए, अपनी निष्ठा को कम नहीं होने देना चाहिए, पूर्ण रूप से सफलता मिल सकती है। इसीलिए अन्तस चक्षु लगाकर भी यह दिव्य नेत्र मिल जायें या साधना से हम अपने उस तीसरे नेत्र को खोल लें तो प्राप्ति होती है। इसमें कोई संदेह वाली बात नहीं है।

भगवान ने कहा कि मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूँ, इनके माध्यम से तु देखो। तो परमात्मा की कृपा होती है, गुरूकृपा होती है, साधना का फल मिल है कि जो आपको वह चक्षु मिल जाते हैं जिससे आप अन्तस्त में बैठे हु अपने प्रभु को देखने में सफल होते हैं। यह साधारण चीज़ नहीं है, प्रा आसानी से तो नहीं होगी, बैठे रहना लगन के साथ; जिस दिन कृपा हो ग प्रभु की अपना स्वरूप दिखायेगा वह।

भगवान ने स्वयं कहा मैं तुझे अपना रूप दिखाता हूँ लेकिन पहले तु दिव्य चक्षु देता हूँ। जैसे ही दिव्य चक्षु प्राप्त हुए, अर्जुन देखता है एक ए विराट रूप - धरती से आकाश, ब्रह्माण्ड तक फैला हुआ रूप। अनेक-अनं देवी देवताओं के स्वरूप अपने भगवान में उसने देखने शुरू किये, दिव् मालायें और दिव्य वदन, समस्त प्रकार की दिव्यता को देखना शुरू कि महसूस हो रहा है कि सब कुछ इन्हीं के अन्दर है। एक अद्‌भुत प्रकाश क देखा।

गीता में यह वर्णन आता है कि जिस समय भगवान ने यह कहा कि मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूँ, तब धृतराष्ट्र को संजय ने कहा - हे धृतराष्ट्र, तब ए हुआ एक विराट पुंज देखने को मिला अर्जुन को जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड त सारा स्वरूप फैला हुआ है - अनेक मुख हैं, दिव्य आभाएं हैं, अनेक दिव् सुगंध, अनेक मालाएं हैं - अद्‌भुत रूप सामने आया अर्जुन के, एक दिव् प्रकाश फैल गया।

दिवि सूर्यसहस्त्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥

कहा कि एक साथ ब्रह्माण्ड का सूर्य हज़ारों गुणा रूप धारण करके मतलब हज़ारों सूरज ब्रह्माण्ड में एक साथ द्युलोक में चमकने लग जाएं, ए प्रकाश फैल गया। मानो एक साथ हज़ारों सूरज जाग गए हों, जाग्रत हो गये हैं प्रकाश फैलने लगा हो। द्युलोक में जैसे हज़ारों सूरज एक जगह आकर जुड़ जायें और उनका जो प्रकाश फैलता होगा कि ऐसा प्रकाश उस समय हुअ संजय ने तो यह भी कहा कि हज़ारों सूरज मिलकर भी इतना प्रकाश नहीं क सकते जैसा प्रकाश उस समय देखने को मिला।

यह एक विचित्र चीज़ है - ध्यान में बैठे हुए लोग या समाधि का आनन्द लेते हुए लोगों को भी अनुभूतियाँ होती हैं। वैसे तो गन्धर्व लोक की साधना करते-करते शुरूआत में जिस समय नाद सुनाई देने लगते हैं उसी समय एक विचित्र बात होती है। तरह-तरह के संगीत एक जगह आकर जुड़ जायेंगे। आनन्द यह होता है कि उस समय आपको लगेगा कि सारी दुनिया के जितने भी सुन्दर वाद्य-यंत्र हो सकते हैं उनके द्वारा निकलने वाली ध्वनियाँ हो सकती हैं वह सब एक जगह आकर जुड़ जायेंगी। ऐसा मधुर स्वर गूँजता है उस समय।

कहते हैं न कि बाँसुरी की तान सुनकर हिरन सुध खो देता है। उस समय की स्थिति ऐसी होती है कि अपनी सुध तो होती ही नहीं पर वह तान सुनने के बाद फिर कुछ सुनने की इच्छा होगी ही नहीं, कभी भी नहीं होगी। जिसने वह संगीत सुन लिया हो न, उसके सामने संसार का कोई संगीत होता ही नहीं, फीका लगता है और फिर दृश्य भी हैं, बड़े अद्‌भुत दृश्य।

वैसे तो यह होता है कि हर एक की अपनी अनुभूतियाँ होती हैं लेकिन जैसा महसूस होता है उसमें यह अनुभव में आता है - आकाश में सारे सितारे एक जगह हैं, चाँद भी है, इधर से सूरज का प्रकाश भी है। अब ऐसी चीज़ नहीं होती संसार में। लेकिन वहाँ ऐसा अनुभव होगा कि हम उस दिव्य प्रकाश में पंख लगा कर उड़ने लगे हैं और संसार के आँगन में, गगन के आँगन में जैसे पंख लगाकर उड़ते-उड़ते मन करता है कि आज सूरज को छू लूँ, सितारे बटोर लूँ। नीचे से लेकर आकाश तक चारों तरफ यही लगेगा कि जैसे हीरे -मोती बिखरे पड़े हों न ऐसे सितारे सारे गिरे पड़े हुए दिखाई देते हैं, सब तरफ प्रकाश है।

फिर व्यक्ति कहता है - तेरा आँगन इतना सुन्दर है, संसार के राजा तू कितना सुंदर होगा, तेरा आनन्द कितना अद्‌भुत है। अभी तो तेरे महल के क़रीब पहुँचा हूँ तो यह आनन्द मिलने लगा है और जब तेरे नज़दीक जाकर बैठूँगा, तेरे राजसिंहासन के पास जाकर बैठूँगा वहाँ कैसा आनन्द होता होगा! ऐसी अनुभूतियाँ होती हैं उस समय और आपको एक आश्चर्य की बात और बताऊँ। सारे इन्द्रधनुष एक साथ अनेक रंगों को लेकर, सातों रंगों को लेकर चमक रहे हैं। इधर कमल खिले हुए हैं, इधर आप देख रहे हैं कि नीचे बर्फ़ है, ऐसी

ताज़ी बर्फ़ जहाँ अभी किसी के पाँव पड़े नहीं हैं। सुन्दर फूल हैं जिनपर ओस ताज़ी-ताज़ी गिरी है उनको अभी किसी ने छुआ नहीं, वह वासन्ती बयार बह रही है जिसमें सुगन्ध है, ठंडक है, थोड़ी सिहरन भी है। इधर से कोमल प्रकाश सामने आता है तो लगता है इस ठंडक के बीच इस प्रकाश की आवश्यकता है - यह सब होगा लेकिन इसको, इस आनन्द को लेते, अचानक तीव्र प्रकाश की अनुभूति जब होगी, तब सुध खो जायेगी, सारे दृश्य कुछ भी नहीं, फिर नहीं बोल सकोगे कुछ भी। फिर आगे कहने के लिए बचता ही नहीं कुछ कि वह क्या है? फिर क्या आप बताओगे? क्योंकि दूसरा संसार में कोई उदाहरण दिया भी नहीं जा सकता, ऐसा कहीं देखा नहीं है, ऐसा कहीं अनुभव नहीं किया, ऐसा किसी ने बताया नहीं, ऐसा कोई स्वाद चखा नहीं, ऐसा कोई स्पर्श अब तक अनुभव में नहीं आया तो फिर कैसे बतायेगा कोई?

पर एक सच बात बताऊँ आपको - अगर यह आनन्द लिया है, वहाँ से लौटने की इच्छा कभी नहीं होती। बल्कि एक स्थिति आ जाती है, मन करता है कि इस तन को अर्पण कर दें, जल्दी से जल्दी संसार में भटकने की इच्छा नहीं। बहुत से योगी तो इस आनन्द को लेने के साथ-साथ योग अग्नि के माध्यम से अपने शरीर को अर्पण कर देते हैं। उन्होंने कहा कि जिस दर्शन के लिए तूने यह देह दी थी तेरा दीदार हो गया, अब इसको ढोने से फ़ायदा है क्या? बड़ी अजीब तरह की अनुभूतियाँ होती हैं।

लेकिन एक बात और भी है - कमज़ोर मन, कमज़ोर शरीर, कमज़ोर प्राण लेकर उस ऊर्जा को नहीं संभाल सकते आप। इसीलिए कहा जाता है कि बहुत संयम की, ऊर्जा को संभालने की आवश्यकता होती है।

जिन लोगों को ध्यान साधना में हम लोग बिठाते हैं कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि थोड़ी-सी भी ऊर्जा हिलकर ऊपर उठना शुरू करे ऐसा कंपन शुरू होता है, बहुत लोग बोलने लग जाते हैं, बहुत गिरने लग जाते हैं, चिल्लाने लग जाते हैं। कंपन आ जायेगा नहीं संभल पाता उनसे, इतना आसान है भी नहीं। अभी बरेली में ध्यान साधना शुरू हुई, एक दिन की साधना थी, प्रभात के समय में साधना शुरू हुई। तो जैसे भाव-विभोर हुए हज़ारों लोग हैं, लहर में आये और मैं यह देखता हूँ कि एक साथ दस-बीस आदमी इतनी ज़ोर-ज़ोर से रोते हुए कपंन ऐसा अंदर से शुरू हुआ, कुछ तो वहीं गिर गये, नहीं संभाल

पा रहे है, साधना चलती रही। बाद में बुलाया। क्या लगा तुम्हें? कष्ट हुआ था क्या? कहते हैं कष्ट तो यह हुआ है कि आँख खुल गई है। आँख नहीं खुलनी चाहिए थी, ऐसे ही डूबे रहते। यह आनन्द ही अलग है। लेकिन वह लोग ऊर्जा संभाल नहीं पाते हैं। ऊर्जा जैसे-जैसे ऊँचाई की ओर उठनी शुरू होती है, कमज़ोर शरीर नहीं संभाल सकता। इसीलिए ज़्यादातर साधक लोगों ने संयम साधना करते-करते, संसार छोड़ कर अलग ही जाकर बैठ गये वनों के अंदर कि संयम साधते हुए, ब्रह्मचर्य का पालन करते-करते, शरीर के समस्त प्राणों को उर्दो-गमन करते-करते इस शक्ति को शिव से जोड़ना है। इसीलिए पूरी ताक़त उधर ही लगा देते हैं क्योंकि वह कहते हैं और जन्म लेने की अब आवश्यकता नहीं है, अब तो इसी जन्म में कल्याण करने की इच्छा है। तो ऐसे क़िस्मत वाले तो बहुत कम लोग होते हैं।

जो संसार के माध्यम से उधर जाना चाहते हैं उनके लिए भी हज़ार प्रकार हैं। लेकिन वह अद्‌भुत प्रकाश होता है जब उधर की तरफ़ व्यक्ति चलता है। जब वह झलक मिलती है न सचमुच ऐसा ही अनुभव में आयेगा कि इतना सारा प्रकाश और हम नहीं होते, आम आदमी नहीं देख पा रहा। मतलब और सारे लोग खड़े हैं उनको नहीं दिखाई देता, एक को ही क्यों दिखाई दे रहा है?

ट्राँसमीटर से न जाने कितनी-कितनी ध्वनियाँ रिले की जा रही हैं जिसका रिसीवर ऑन है वही तो कैच करेगा। ध्वनियाँ तो यहाँ बहुत सारी गूँज रही हैं लेकिन अपना-अपना रेडियो सैट लेकर के बैठिए आप, थोड़ा-सा ट्यून कीजिए, अलग-अलग आवाज़ें शुरू हो जायेंगी। इस स्टेशन से यह गाने चल रहे हैं, दूसरी जगह से दूसरा प्रसारण चल रहा है। एक ही जगह में इतनी-इतनी ध्वनियाँ और अगर आप सारे रेडियो बंद करें और उसके बाद कहें कि अब कोई ध्वनि है क्या? आप कहेंगे कोई ध्वनि नहीं है यहाँ झूठ बोला जा रहा है और अगर यंत्र शुरू कर दिया जाये पता लगेगा कि ध्वनियाँ तो बहुत सारी आस-पास घूम रही हैं। वायरलैस से भी बहुत सारी ध्वनियाँ आस-पास से जा रही है, कॉर्डलेस फोन से जा रही हैं, तो किसी के सेल्यूलर फोन की आवाज़ें इधर से जा रही हैं, कुछ ग्रह-उपग्रहों की आवाज़ें जा रही हैं। कुछ ऐसी आवाज़ें भी हैं जिनको आज के यंत्र पकड़ ही नहीं सकते। बड़ी कोशिशें हो

रही हैं कि आज से पाँच दस हज़ार साल पहले की आवाज़ों को पकड़ा जा सके। इतने अच्छे रिसीवर बनाने की कोशिश हो रही है लेकिन जिसका रिसीवर ऑन है, जिसकी रेडियो खुली हुई है और ट्यून है जिस स्टेशन से. वहीं की आवाज़ पकड़ना शुरू कर देता नहीं तो आवाज़ें तो यहाँ बहुत सारी हैं।

तो परमात्मा की दिव्यता तो यहाँ बह रही है लेकिन जिसका अन्तःचक्षु खुल गया है वह तो दर्शन कर लेगा नहीं तो सब कोई दर्शन नहीं कर सकता. सबको दर्शन होंगे भी नहीं।

भगवान ने कहा कि अब तुझे देखने वाली आँखे दे रहा हूँ, और उसने जैसे ही आँखें मिलीं, जो कुछ देखा उसमें एक अद्भुत प्रकाश देखा, प्रकाश इतना भारी करोड़ों सूरज एक जगह आकर जुड़ जायें, उनका प्रकाश फैलना शुरू हो, वे भी इतना प्रकाश नहीं कर सकते जितना बड़ा प्रकाश प्रभु का अर्जुन ने देखा। तब अर्जुन ने कहा -

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ - मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥

अर्जुन ने कहा - देख रहा हूँ हे देव ! आपके शरीर में मैं सब कुछ देख रहा हूँ। समस्त प्राणियों के संघ को देख रहा हूँ। सारे प्राणी आपके शरीर में आकर समाहित हो रहे हैं। आपके शरीर में ही विराट रूप मैं देख रहा हूँ। *ब्रह्माणम्* ब्रह्मा जी को देख रहा हूँ, *ईशम्* ईश्वर को अर्थात् शिव जी को देख रहा हूँ और कमल के आसन पर बैठे हुए, दिव्य सर्प से युक्त आप स्वरूप को अर्थात् विष्णुजी के स्वरूप को भी देख रहा हूँ, ऋषियों को देख रहा हूँ महर्षियों को देख रहा हूँ, दिव्य सर्पों को देख रहा हूँ। सीधा-सा मतलब यह है कि ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियाँ, दिव्य स्वरूप, ईश्वर का रूप, जिस-जिस रूप में भी महिमा सुनी गयी वह सारी महिमा आज आँखों से देख रहा हूँ। भगवान का क्या-क्या स्वरूप होता होगा यह जो महिमा आज तक सुनता था, वह आज देख रहा हूँ, सामने देख रहा हूँ।

ऐसा होता है - बहुत सारी चीज़ें हम लोग सुनते रहते हैं क्या ऐसा संभव है? हमें सबसे ज़्यादा आनन्द तब आया जब हम लोग साधना में योगियों के बीच में बैठते थे और उन लोगों से चर्चायें सुनते थे, किस-किस तरह की चीज़ें

आप लोगों ने अनुभव की थीं, अपने-अपने अनुभव यह बताते थे। उन अनुभवों में बड़ी विचित्र चीज़ें सुनीं। एक बार तो करनी-भरनी के चक्र के संबंध में विचार होता रहा और सच में तीन चार योगियों ने कहा कि शरीर की गुदशा के समय में विशेष साधना करने के लिए बैठे। उस समय अजीब चीज़ें दिखाई दीं। विराट विशाल पक्षी देखे जो व्यक्ति के मांस को नोच रहे हैं। कहीं किसी ब्रह्माण्ड में, धरती आकाश में, कहीं भी नहीं हैं लेकिन अनुभूतियाँ हुई इंसान को। जब इंसान सजा भोगता है, दु:ख भोगता है, लगेगा है उसका मांस नोचा जा रहा है, आग में तपाया जा रहा है, कढ़ाहों में उबाला जा रहा है।

देखा जाये तो जो कुछ हम लोग यह उपदेश सुन रहे होते हैं इसकी अनुभूति आमतौर से व्यक्ति नहीं कर पाता। यही कहेगा कि शास्त्र में लिखा है, किसी ने बता दिया, सुन लिया लेकिन दिमाग़ नहीं मानता। पर साधना वाले लोग जो अलग-अलग तरह की अनुभूतियाँ करते हैं उन लोगों के अनुभव कभी सुनिये, आपको बड़ा आश्चर्य लगेगा कि सब अनुभूतियां होती हैं।

ऐसे भी लोग हैं, अपने यहाँ बहुत सारे ऐसे लोग हैं, ऐसी महिलाएं आकर के बैठती हैं, जो यह आकर के कहती हैं कि हमें पन्द्रह दिन, महीना पहले, सब कुछ महसूस होता है। उनके लिए समस्या है इस बात की कि अपने जीवन में घटने वाली घटनाएं पहले ही पता लगती हैं और डर पैदा हो जाता है कि भगवान ने यह कौन-सा टेलीविज़न हमारा खोल दिया, यह तो बंद हो जाना चाहिए। वह हम लोगों के पास यह सोच कर आते हैं कि यह शायद हम लोग इस टेलीविज़न को रिपेयर करने वाले कोई रिपेयर मास्टर हैं। वह कहते हैं यह टेलीविज़न बंद हो जाना चाहिए - महीना पहले का दिखाई दे रहा है, नहीं दिखाई देना चाहिए।

इब्राहिम लिंकन को, जब उनकी हत्या हुई, तो तीन दिन पहले सपना आया और सपने में जागकर एकदम हड़बड़ाहट के साथ उठकर बैठ गये। पत्नी से कहा उन्होंने कि मैंने यह देखा है कि तीन आदमी खड़े हुए हैं, एक काले कपड़े पहने हुए और फलाँ कमरे में मैं मरा पड़ा हूँ और तू इधर खड़ी रो रही है। पूरा वर्णन एक-एक करके सब कर दिया। पत्नी ने साथ में डाँट कर ज़ोर से बोल दिया कि आप ऐसी चीज़ें मत कहा करें, जाकर सो जायें, सपना है, सपने सच नहीं होते। और तीन दिन के बाद उसकी पत्नी ने वैसे ही देखा -

उसी कमरे में लाश पड़ी हुई थी, तीन आदमी सामने खड़े हुए थे, काले कपड़े वाला व्यक्ति भी साथ था। ऐसी बड़ी विचित्र घटनाएं हैं लेकिन यह हमारा संदर्भ नहीं है इस संबंध में विचार करने का; पर अनुभूतियाँ होने लगती हैं। बहुत कुछ विचित्र दिखाई देता है जिसकी कल्पना नहीं कर सकते हैं आप। कई लोगों को एक्सीडेंट होने से ऐसी आवाजें सुनाई देने लगीं रेडियो चल रहा है, अन्दर ही रेडियो चल रहा है। अब चौबीस घंटे का रेडियो चल पड़ा। उसको बंद करने का भी कोई साधन नहीं है। यह बड़ी विचित्र चीजें हैं, इनकी आप कभी कल्पना नहीं कर सकते।

आपके मन मस्तिष्क में, यह जो आपका मस्तिष्क है इसमें इतनी-इतनी अद्भुत चीजें हैं यह तो जाग्रत नहीं हैं। आप सोचिए कि विज्ञान यह कहता है कि 90 प्रतिशत तो मस्तिष्क की सारी की सारी शक्तियाँ सोई रह जाती हैं। व्यक्ति दो प्रतिशत से लेकर ज़्यादा से ज़्यादा 10 प्रतिशत तक का ही अपने मस्तिष्क का उपयोग कर पाता है उसकी 90 प्रतिशत शक्तियाँ तो सोई रह जाती हैं।

अमेरिका के राष्ट्रपति हुए हैं जार्ज वाशिंगटन। उनके एक बहुत ही अच्छे सहयोगी व्यक्ति थे फ्रैंकलिन। वह व्यक्ति बहुत अच्छा फ़ौजी था, बड़ा भारी योद्धा, बड़ा अच्छा संगीतज्ञ। संगीत की जानकारी भी उसकी बड़ी भारी थी और बड़ा बढ़िया पत्रकार भी, अच्छा खिलाड़ी भी, अच्छा लेखक, अच्छा कवि। अब एक आदमी में यह सारी चीज़ें कैसे हो सकती हैं? संगीतज्ञ हो, राजनीतिज्ञ हो, खिलाड़ी हो, कवि हो पत्रकार हो, बड़ा अच्छा योद्धा हो - एक व्यक्ति में सारी चीजें हो जायें ऐसा आसानी से तो नहीं होता।

बेंजामिन फ्रैंकलिन के संबंध में यह कहा जाता है कि इंसान के अंदर जो-जो भी गुण हो सकते हैं सारे उस आदमी में दिखाई देते थे। एक बार किसी ने उस व्यक्ति से पूछ लिया कि आख़िर आपके पास कोई दिव्य शक्तियाँ हैं जिसके कारण आप इतनी सारी चीजें एक साथ इकट्ठी कर पाये? (अमेरिका की आज़ादी में इस व्यक्ति का बड़ा भारी यागदान था।) तो इस व्यक्ति ने कहा कि हाँ, मेरे साथ छः दिव्य शक्तियाँ हैं, वह मेरे साथ-साथ ही रहती हैं हर समय। पूछा वह देवता हैं या देवियाँ हैं? इसने कहा देवता भी हैं और देवियाँ भी हैं। छः के छः मेरे साथ रहते हैं, हर समय। अब पूछने वाला आदमी बड़ा हैरान पता नहीं ऐसी कौन-सी चीज बताने जा रहे हैं।

इसने कहा पहली चीज़ मेरे पास है एक देवता जो मेरे साथ रहता है वह है उत्साह। एक देवी है जिसका नाम है आशा, एक प्रसन्नता, एक देवता मनयोग, पूरी लगन, एक है कर्मठता। बताना शुरू किया यह देवी देवता मेरे साथ रहते हैं और मैंने इनका साथ नहीं छोड़ा, इन्होंने मेरा साथ नहीं छोड़ा, यह सदा मेरा साथ निभाते हैं।

देखा जाये तो यह देवी देवता तो आप लोगों के साथ भी हो सकते हैं। लेकिन सारे के सारे इंसान फ्रैंकलिन तो बन नहीं सकते। समस्या वहाँ आती है कि हमारे अंदर के देवी देवता तो सोये रह जाते हैं और ऐसे लोगों के जो देवी देवता हैं वह जागे रह जाते हैं। आशा, उत्साह, साहस, धैर्य, प्रसन्नता - सारे यह विशेष गुण हैं। अगर इन सब देवी-देवताओं को हम अपने अंदर जाग्रत कर लें तो यह जो मन मस्तिष्क हमारा है इसके अंदर दिव्य चीज़ें जाग्रत हो सकती हैं, साधारण दिखाई देने वाला इंसान असाधारण हो सकता है सारा संसार देखकर कह सकता है कि क्या संसार में ऐसे भी लोग हो सकते हैं? क्या इतनी ऊँचाई भी हो सकती है?

बल्कि मैं तो यह कहा करता हूँ कि दुनिया के जितने भी महान पुरूष हैं वह कीर्तिमान हैं, रिकॉर्ड है। कोई एवरेस्ट तक पहुँचा न तो एक रिकॉर्ड बन गया है, एक कीर्तिमान बन गया है। अब कोई महापुरूष दुनिया में हुआ तो वह किसी मानवता की उच्च शिखर का कीर्तिमान है, रिकॉर्ड बन गया है कि इंसानियत यहाँ तक पहुँच सकती है। इंसान इतना ऊँचा हो सकता है, संभावनाएं हैं, हम चलें तो वहाँ तक पहुँच सकते हैं।

फ्रैंकलिन से किसी ने पूछा - लेकिन एक बात तो बताओ, हम भी उत्साहित होते हैं, हमारे अंदर भी आशा आती है, हमारे अंदर भी धैर्य है, मनोयोग हमारे अंदर भी है, कर्मठता हमारे अंदर भी है, लेकिन हम लोग तो सदा तो इनका उपयोग नहीं कर पाते, बहुत बार ऐसा होता है कलह-कलेश भी होती है। कलह हो जायेगी, कलेश हो जायेगा, झंझट आ जायेंगे। किसी के द्वारा कभी हम बहुत अच्छे प्रभावित होते हैं, कभी चोट खा जाते हैं तो ऐसी स्थितियों में इंसान इन सारे देवी देवताओं को कैसे साथ रख सकता है? सदा व्यक्ति आशान्वित रहे कि मैं ठीक चल रहा हूँ, आगे बढ़ रहा हूँ, मुझे आगे बढ़ना चाहिए, आगे चलना चाहिए, रूकना नहीं चाहिए। मन में निराशा भी

आयेगी, चोट भी पड़ेगी, परिस्थितियाँ भी बदलेंगी। उस समय फ्रैंकलिन ने एक बात कही कि मैं ग़रीब था। परिस्थितियाँ मेरे सामने भी बड़ी विचित्र रहीं।

※※※※※※※※※

उस समय फैंक्लिन ने एक बात कही कि मैं गरीब था, परिस्थितियाँ मेरे सामने भी बड़ी विचित्र थीं, सताया मैं भी गया लेकिन मैंने साधारण लड़ाईयों के लिए अपनी ऊर्जा शक्ति नहीं रखी, छोटी-छोटी बातों के लिए अपनी ऊर्जा शक्ति लगा दूँ? मैंने सोचा अगर यह ऊर्जा शक्ति लगानी है तो फिर किसी बड़ी लड़ाई के लिए, किसी विदेशी ताकत से लड़कर अपने देश को आज़ाद कर लूँ, इस ताकत को मैं वहाँ इस्तेमाल कर लूँ? यह सोचकर मैंने अपनी शक्ति को उधर लगा दिया। छोटी-छोटी बातों में लड़ते हुए, दुःखी होते हुए, अपनी ताकत को नहीं लगाया; अपनी शक्ति का और अपने उत्साह का प्रयोग किया मैंने। संगीत सीखने में, कला में, लिखने में, पत्रकार बनने में और कहा राजनीतिज्ञ बनने में, अच्छा सलाहकार बनने में, अच्छा सहयोगी बनने में, एक निष्ठ होकर, पूर्ण वफादार होकर, एक जगह क्योंकि जार्ज वाशिंगटन का सहयोगी था मैं। उनके साथ सहयोगी बनकर काम करने का। मेरे सामने भी परिस्थितियाँ थीं लेकिन मैंने परिस्थितियों को महत्त्व नहीं दिया। जिस दिशा में जाना था उस दिशा में बढ़ता चला गया। उसका परिणाम कि आज जहाँ पहुँचा हूँ, स्वयं तो संतुष्ट हूँ दूसरे लोग भी प्रेरणा लेते हैं।

तो मैं यह बताना चाहता हूँ कि आपके अन्दर वह सारी शक्तियाँ हैं. आपके अन्दर आपके देवी-देवता भी हैं, आप सब कुछ अपने अन्दर दर्शन कर सकते हैं पर अपने को जगाने की आवश्यकता है।

अर्जुन ने देखा भगवान की देह में समस्त रूप दिखाई दिए - ब्रह्माजी का रूप देखा, शिवजी का रूप देखा, विष्णुजी का स्वरूप देखा, ऋषियों महर्षियों को देखा।

कहा जाता है न यह जो हमारी आँखें हैं इन आँखों में एक तरफ़, एक आँख में वशिष्ठ हैं दूसरी आँख में वामदेव बैठे हुए हैं, ऋषि हैं यहाँ। कहते हैं कि आँख में इन दो ऋषियों को बैठा लेना ही बात नहीं है इनको जान लेना भी बात है। वामदेव का मतलब है सुन्दर, वशिष्ठ का मतलब है विशिष्ट

आँखों में विशिष्टता हो और आँखों में सुन्दरता हो। दुनिया का सुन्दर रूप ही देखा जाए, अच्छाई देखी जाए और विशिष्टता देखी जाए तो तुम्हारी आँख में यह देवता, यह जो ऋषि आकर बैठ जाए तो तुम्हें ऋषि होने में ज़्यादा देर लगेगी नहीं। पूरा वर्णन है कि तुम्हारे अन्दर यह सब है, इनको जगाओ और फिर देखो संसार में।

अर्जुन ने देखा कि उसके अन्दर दिव्य शक्ति आते ही भगवान की देह में, भगवान श्री कृष्ण की देह में समस्त देवी देवताओं का रूप देखा, ऋषियों का रूप देखा, प्रत्यक्ष दर्शन किया। उसके बाद अर्जुन जो वर्णन करता है, जो स्तुति में शब्द कहता है वह सुनने योग्य हैं –

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं - त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥

– हे कृष्ण, मैंने अब अनुभव कर लिया *त्वमक्षरं* - तुम्हीं परम अक्षर हो, क्षर अर्थात् जो नष्ट हो जाए, जो सदा रहे वह अक्षर। तुम सदा रहने वाले स्वरूप हो *परमं वेदितव्यं* - तुम्ही परम हो, महान हो, *वेदितव्यं* - बड़ी महानता है लेकिन जाने जा सकते हो, मैं जान रहा हूँ *त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्* - यह जो समस्त विश्व है इस सबका आधार तुम्हीं हो, तुम पर सारा संसार ठहरा हुआ है। सारे संसार की सारी वस्तुऐं; तीर छोड़ा जाए तो तीर में अपनी ताकत कभी नहीं होती ऊपर जाने की; बाण छोड़ दिया जाए, बाण में अपनी ताकत कभी नहीं होती ऊपर जाने की, जिसने बाण को छोड़ा है उसकी ताकत काम करती है तभी तो वह आगे जाता है, जितनी ताकत से कोई उसे भेजता है उतनी ताकत से आगे जाता है। कहा कि इस सारे संसार में गति है। यह जो घूम रहे हैं नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह इनमें अपनी शक्ति कोई नहीं जिसने उनको घुमा के छोड़ा है शक्ति उसकी है और जो घुमाने वाला है वह मैंने देख लिया है और वह कोई और नहीं है आप ही तो हो। कहा कि मैंने आपको देख लिया है जिसने घुमाया है इस सब को, जो इन यन्त्रों को घुमा रहा है, इन चीज़ों को छोड़ रहा है, गेंद को फेंका आपने बहुत ताकत से आकाश में बढ़ती जा रही है गेंद, अपनी ताकत से नहीं जा रही है, फेंकने वाले की ताकत से जा रही है. फेंकने वाला कोई और नहीं है वह आप ही हैं।

अर्जुन ने कहा – मैंने देख लिया उस आधार को, जो सारे संसार का आधार, जिसके कारण गति हो रही है। हवाएं चलती सबने देखी हैं लेकिन किसने चलाई किसी ने नहीं देखी, बहती हुई नदियाँ सबने देखीं लेकिन किसने बहाई हैं किसी ने नहीं समझा, प्राण चलता हुआ सबने देखा है लेकिन किसने प्राण चलाए किसी ने नहीं देखा। अर्जुन ने कहा – मैंने समझ लिया है वह कोई और नहीं आप हो, आपके आधार को देख लिया है।

यहाँ आकर अर्जुन के उस भाव का पता लगता है वह कितना गदगद होकर बताता है – मैंने समझा है आपको। *त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता* – तुम अव्यय हो, अविनाशी हो, शाश्वत धर्म का स्वरूप हो, धर्म तुम्ही हो।

एक बात याद रखना आप। धर्म संरक्षण है, धर्म शक्ति है, धर्म शान्ति है, धर्म आधार है, धर्म जीवन है और धर्म कुछ और नहीं भगवान हैं। धर्म को आधार बनाओ अपना। न कभी हटो इससे और न कभी इसको छोड़ो।

अर्जुन ने कहा कि जो धर्म है वह आप ही हैं, मैंने इस धर्म का साक्षात्कार किया है। देखिए, जीवन में जब-जब कभी भी धर्म करते-करते धर्म के अन्तस्थ में चले जाओगे बहुत बार अनुभूतियाँ होंगी। परमात्मा अन्दर विराजमान है, एहसास करा रहा है, न जाने किस-किस रूप में एहसास करता है वह।

स्वामी आत्मानन्द थे हिमालय में। हिमालय में उन दिनों लोग, जो तवा बनाकर के रोटियाँ बनाते थे, तो एक तवा, विचित्र तवा पत्थर का; स्वामी आत्मानन्द जी ने कहा मुझे आश्चर्य हुआ कि रोटी बनती थी तो सारी पक जाती थी एक जगह कच्ची रहती थी, रोज़ ऐसा होता था। उन्होंने अपने संदर्भ में लिखा, क्योंकि योगियों की कथायें पढ़ने में भी, लामाओं की कथायें कभी पढ़ें आप या उन हिमालय में रहे हुए योगियों से मिलें तो स्वामी आत्मानन्द जी कहते हैं कि मेरे सामने बड़ा आश्चर्य हुआ। तीन दिन हो गए रोटी जब भी पकी हुई होती थी लेकिन रोटी को देखूँ सारी रोटी पकी हुई एक जगह कच्ची बनती थी वह। और जगह इतनी जैसे कि पुराने समय का वह बड़ा तांबे का सिक्का होता था। इतनी बड़ी जगह जो है रोटी की कच्ची रह जाती थी: मैंने उस आदमी को जो रोटी बनाता था, उससे कहा भाई यह तेरी रोटी कच्ची रहती है।

उसने कहा कि जो यह तवा लाए हैं न यह तवा ठीक नहीं है, एक जगह से ऊँचा उठा हुआ है।

स्वामी आत्मानन्द कहते हैं कि मैंने उससे कहा अच्छा ज़रा तोड़ इसको। अब तोड़ा तो देखा कि जिस जगह ऊँची उठी हुई थी, जैसे ही उसको तोड़ा तो देखते हैं उसमें थोड़ा-सा पानी भरा हुआ है और उसमें एक छोटा-सा कीड़ा वहाँ जीवित बैठा हुआ है, तीन दिन से लगातार आग में रखा रहा। आँच इधर भी जाए उधर भी जाए लेकिन बीच में नहीं जाए। अब उन्होंने कहा कि मैं हैरान हूँ लेकिन हैरानी से ज़्यादा तो यह बात थी उन्होंने कहा उस दिन मैंने खाना नहीं खाया, बस सिर झुकाकर ज़मीन पर लेटा रहा, घुटनों के बल बैठा हुआ था और सिर झुकाकर ज़मीन पर मैंने रखा हुआ और यह कहता रहा - कितनी देर सज्दा करूँ तुझे, कितनी देर प्रणाम करूँ। प्रणाम करते-करते सारी ज़िन्दगी बीत जाएगी, जीवन बीत जाएगा लेकिन तेरी महिमा के प्रति जो मैं कृतज्ञ हूँ धन्यवाद नहीं दे सकता।

अलग-अलग तरह की अनुभूतियाँ होती हैं। तो उन्होंने कहा कि मैंने यह महसूस किया कि धर्म का जीवन जीते-जीते परमात्मा अपनी तरह-तरह की अनुभूतियाँ कराता है, वह कैसे-कैसे अपना हाथ रख कर कैसे-कैसे रक्षा करता है, कैसे-कैसे संभालता है, कहाँ-कहाँ किस-किस का भोजन पहुँचाता है।

यह केवल समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को ही एहसास नहीं कराया था कि पत्थर में बैठे हुए कीड़े को दिखाया था, चट्टान तोड़ी गई, चट्टान के अन्दर एक गोला तोड़ा गया, गोले के अन्दर एक और छोटा गोला था उसको तोड़ा गया, उस गोले के अन्दर देखा गड्डा है, गड्डे के अन्दर चावल जैसी चीज़ लेकर कीड़ा खा रहा है और समर्थ गुरू रामदास ने फिर पूछा शिवा तेरा किला बन रहा है न। न जाने कितनों को रोज़ी-रोटी तू देता है लेकिन एक बात बता इस पत्थर चट्टान के अन्दर बैठे हुए इस कीड़े को यह जो चावल का दाना पहुँचा है यह तूने भेजा है क्या? यह भोजन तूने भेजा है क्या? यह किस की तरफ़ से भोजन आया है? शिवा, जो सबको भोजन दिया करता है उसी ने यहाँ पत्थर में भी भोजन भेजा है और वही इन सबका पेट पालता है। सब का पेट वही पालता है - तू किसी का पेट पालने वाला नहीं है तू किसी

को देने वाला नहीं दिलाने वाला वही है। और अगर तू यह कहे कि मैं हक छीन सकता हूँ, तू कुछ नहीं कर सकता। न हक दे सकता है और न छीन सकता है। व्यवस्थायें परमात्मा की काम करती हैं।

इसीलिए धर्म के नज़दीक रहते-रहते, धर्म को धारण करते-करते, धर्म का जीवन जीते-जीते एहसास होगा विचित्र एहसास होगा कि भगवान अपने स्वरूप को अलग-अलग रूपों में प्रकट करेगा इसीलिए उसको कहा तुम शाश्वत धर्म के स्वरूप हो।

सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे - तुम सनातन हो। अर्जुन कहते हैं - कृष्ण यह मेरा मत है, मेरा विचार है यह क्योंकि मैंने अनुभूति की है। जिस आदमी ने अनुभूतियाँ की हों जब वह उस बात को कहने लगता है न उसके सामने वह दृश्य आ जाता है। किसी ने समाधि का आनन्द लूटा हो? जब वह कहने बैठेगा, एकदम ऐसा रोमांच पैदा होता है कहने के लिए, शब्द नहीं मिल पाएंगे कैसे कहूँ, कैसे बताऊँ, किस तरह से कहूँ? हर चीज़ की कॉमैन्ट्री दी जा सकती है लेकिन उसका वर्णन नहीं किया जा सकता कि ऐसा घटा था, इस तरह से हुआ था, यह चले थे, ऐसे ध्यान किया था।

अर्जुन ने कहा कि मैंने पहचाना। तुम ही सनातन हो अर्थात् परमात्मा ही सनातन स्वरूप है, वही अक्षर है, वही परम तत्त्व है, वही संसार का आधार है, उस परम तत्त्व को, दिव्य चक्षु पाने के बाद ही देखा जा सकता है, अन्तस में अनुभूतियाँ की जा सकती हैं।

अर्जुन ने आगे फिर कहा *अनादिमध्यान्तनन्तम्* - तुम्ही अनादि हो, मध्य हो, तुम्ही अन्त हो।

अन्तमनन्ततीर्यमनन्तुबाहुं शशिसूर्यनेत्रम।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रंस्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥

– आदि, मध्य, अन्त, अनन्त, शक्ति-युक्त, मैंने तुम्हारे स्वरूप को देखा, अनेक भुजाओं को देखा, अनेक चन्द्रमा देखे, अनेक सूर्य देखे, अनेक नेत्रों को देखा अर्थात् तुम्हारी आँखों में सूर्य, चन्द्रमा अनन्त रूप लेकर के बैठ गए, तुम्हारे अनन्त हाथ मैंने देखे, अनन्त शक्ति आपकी मैंने देखी और तेज अग्नि देखी जिसमें सारा विश्व झुलस रहा है, सब उसी में प्रवेश कर रहे हैं

थोड़ा समझिए इसको भी। एक ऐसा रूप इधर से अग्नि में कोई प्रवेश कर रहा है, जल रहा है दूसरी तरफ़ से कोई बाहर निकल रहा है। बुढ़ापा प्रवेश कर रहा है, बचपन प्रकट हो रहा है, बड़ा विचित्र रूप है यह। बच्चा, किशोर, जवान, वार्धक्य और फिर मृत्यु, गल गया और फिर वहीं से नया जीवन पाकर के खड़ा हो गया।

अर्जुन ने कहा कि मैंने ऐसा रूप देखा है। आपके अन्दर आपके स्वरूप में सब समाहित होता जा रहा है। आग में सब जल रहा है और आग से प्रकट होते हुए भी देखा है। अर्थात् परमात्मा में ही यह सब चीजें आकर समाहित हो रही हैं, भगवान से ही यह सब चीजें प्रकट हो रही हैं, अनन्त शक्ति वाला है भगवान का रूप, अनन्त हाथ हैं उसके, उसकी आँखों में ही यह सूर्य और चन्द्र आदि हैं। यह सब उसका ही तेज है।

ऐसे महसूस कीजिए - मनुष्य के दो हाथ हैं वह दो हाथों की ताकत को भी कितनी बड़ी ताकत महसूस करता है। इन दो हाथों से वह सोचता है कि न जाने मैं क्या कर सकता हूँ। लेकिन जिसके असंख्य हाथ हों और असंख्य हाथ रखने के बाद भी प्रकट नहीं करता अपनी ताकत को, डराता नहीं है, प्यार करता है, आपको अपना दुलार देता है; कभी-कभी जब ऐसा रूप प्रकट होता है न, अपना स्वरूप वह प्रकट करता है तब बड़ा डर पैदा हो जाता है।

आन्ध्र में कृष्णा जिले में जब चक्रवात आया था, समुद्री तूफान, बहुत दूर तक बहुत सारे गांव जिनका पता ही नहीं पाया सौ दो सौ फुट ऊँची दीवार पानी की चलती हुई आई और पानी की लहर बढ़ती आ रही है सब कुछ मिटता जा रहा है।

एक आदमी जिसने दृश्य देखा उसने कहा - रात के बारह बजे बहुत ऊँची-सी टीले पर, बहुत ऊँचा ताड़ का पेड़ कि टीले पर एक तरफ़ मैं खड़ा हुआ हूँ, ताड़ का पेड़ एकदम झुककर नीचे आया और मैं उसको पकड़कर लटक गया, कि मैंने अपने सामने से पानी की लहर को जाते हुए गाँव की गाँव देखा। एक साथ सब तबाह हो गया। चीखने चिल्लाने की तो बात ही नहीं बची। ऐसा जैसे घरौंदे बनाकर बच्चों ने रखे हुए हों समुद्र के किनारे तेज़ लहर देखते-देखते आई हो और लहर के साथ ही घरौंदे भी मिट गए और यह

ऐसा एहसास हुआ कि अभी थे और अभी नहीं थे। उसने कहा कि कुछ समय की ही बात है, कुछ समय में ही सब कुछ नष्ट हो गया। न जाने कैसे वह उतरकर नीचे आया और उसने पत्रकारों के सामने कहा बड़ा भयंकर रूप पानी का मैंने देखा। बड़ा डरा हुआ, सहमा हुआ वह।

उसने कहा कि यह तो परमात्मा का जो अग्नि, जल, वायु, आकाश, पृथ्वी· यह जो पाँच भूत है न इनमें से एक का ही भयंकर रूप था। अगर पाँचों ही अपना-अपना भयंकर रूप लेकर खड़े हो जाएं इन्सान कहाँ टिकता है, है क्या इन्सान? अनन्त हाथ हैं उसके, इन्सान कुछ भी नहीं है सामने और अनन्त शक्ति है। इन्सान की ताकत तो कुछ भी नहीं, उसकी शक्ति तो बहुत बड़ी है। भगवान का एक नाम 'रुद्र' है। कहते हैं वह रुलाता भी है। शिव नाम है उसका लेकिन शिव नाम होने के साथ में रुद्र भी है, जब रुलाने पर आता है तो रुलाता भी ऐसे ही है कि फिर आँख में आँसू ही रह जाते हैं, सूख नहीं पाते फिर।

अर्जुन ने परमात्मा के उस रूप का वर्णन भी किया जो बड़ा प्यारा है लेकिन उस रूप के बारे में भी बता दिया कि डरना, बड़ा ताकतवाला है, बड़ा ज़बरदस्त है, मज़ाक नहीं करना हर समय उसके साथ, मित्रों जैसी बातें करते हो लेकिन यह सोच लेना बड़ा ताकत वाला है वह, दबायेगा, कुछ नहीं बच पायेगा। उसने कहा - *स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्* - अपने तेज से ही सारे विश्व को जलता हुआ; मैंने आपके तेज से जलते हुए विश्व को देखा। आपकी अनन्त भुजाओं को देखा, अनन्त शक्तियों को देखा। मैं यह कह सकता हूँ तुम्हीं अनादि हो, तुम्हीं अनन्त हो, तुम्हीं इस संसार के मध्य हो, तुम्ही इसके आधार हो, तुम्हीं परम शक्ति हो, यह सब कुछ तुम्हारा ही खेल है, मैंने यह सब अनुभव किया। मैं आशा करूँगा जितना जो कुछ कहा गया आप लोग उस पर विचार करेंगे।

****

गीता के ग्यारहवें अध्याय के कुछ श्लोकों का चिन्तन मनन हम लोगों ने किया। जिस क्रम से हम लोग चल रहे थे उसी क्रम में और आगे बढ़ते हुए-

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीराविशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥

जिस प्रकार से नदियाँ वेग के साथ दौड़ती हुई समुद्र में मिलती हैं और बहती रहती हैं, अर्जुन ने कहा कि मैं देख रहा हूँ आपके अन्तर में यह सब *नरलोकवीराविशन्ति* अनेक मनुष्य और अनेक लोक आपके मुख में प्रवेश करते जा रहे हैं। भगवान के प्रति अर्जुन ने यह वर्णन किया कि जो दृश्य मैंने देखा उसमें यह एहसास करता हूँ कि यदि आपसे सारा संसार निर्मित हो रहा है तो मुझे यह भी दिखाई देता है कि सब आपमें ही समाहित हो रहा है, आपके मुख में ही सब प्रवेश कर रहे हैं - मनुष्य भी, सब लोक-लोकान्तर भी और सभी मुख में प्रवेश करते-करते नष्ट होते जा रहे हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गाविशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥

– जिस तरह से अग्नि की शिखा जल रही हो और अनेक पतंगे आकर के उसमें ज़लते चले जाते हैं इसी प्रकार से आपके मुख में, आपकी प्रदीप्त अग्नि में विनिष्ट होने के लिए सभी लोक लोकान्तरों को मैं आते हुए, जाते हुए देख रहा हूँ।

भगवान के उस स्वरूप का वर्णन किया जहाँ सारी चीज़ें विलीन होती हैं, नष्ट होती हैं। परमात्मा के स्वरूप का एक दृश्य यह भी है कि अगर उसमें से सब प्रकट हुआ तो सब उसी में समाहित भी हो जाता है जैसे मकड़ी अपने अन्दर से ही जाले को बुनती है और फिर जाले को अपने अन्दर समेट भी लेती है कि आपने अपने अन्दर से ही सब प्रकट किया लेकिन इस समय मैं यह महसूस करता हूँ कि जैसे पतंगे आकर अग्नि में जलते हुए नष्ट होते चले जाते हैं ऐसे ही यह विशाल ब्रह्माण्ड लोक-लोकान्तर सब आपके मुख में आकर नष्ट हो रहे हैं।

तब भगवान कृष्ण ने कहा –

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृतः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु याधाः ॥

– कहा है कि मैं ही काल हूँ, समस्त लोकों को नष्ट करने के लिए प्रकट होता हूँ। सभी लोक-लोकान्तर फिर मेरे अन्दर समाहित हो जाते हैं और

यह समस्त योद्धा लोग भी, जो अभी दिखाई देते हैं, यह भी आगे नष्ट होने वाले हैं, यह भी टिकने वाले नहीं हैं। आइये, इस समस्त पर थोड़ा अब विचार करें।

परमात्मा की एक व्यवस्था ऐसी है जिस व्यवस्था में जीव शरीर को छोड़कर जन्म के क्रम में फिर से शामिल होते हैं। संसार में रोज़ हम देखते हैं नए-नए अंकुर निकले होते हैं ज़मीन के अन्दर, उनको बढ़ता हुआ देखते हैं। एक समय आता है कि फिर वह क्षय की स्थिति में आने लगते हैं, विनाश की स्थिति में आने लगते हैं। हमें सुन्दर लगता है संसार में किसी का आना लेकिन जाना किसी को अच्छा नहीं लगता। आने पर ही खुशियाँ मनाई जाती हैं भले ही आने वाला संसार में रोता हुआ आए। लेकिन आने पर ही खुशियाँ मनाई जाएगी। जन्मदिन को ही मनाया जाएगा, जयन्ति मनाई जाएगीं क्योंकि उसमें आगमन है। लेकिन जाने को हमने कभी उत्सव नहीं बनाया। जाने की स्थिति को हमने कभी महत्त्व नहीं दिया। जबकि जितना आना महत्त्वपूर्ण है उतना ही जाना भी महत्त्वपूर्ण है।

अगर पुराने, पीले पत्ते झड़ेंगे नहीं तो नई कोपलें और नई कोपलों की बहार वन के अन्दर आएगी कैसे? उद्यान सजेगा कैसे? दुनिया में अगर यही क्रम रहे कि लोग आते ही रहें और जाना न हो तो यह संसार रहने के योग्य नहीं रह जाएगा।

घर में या किसी संस्थान में अगर सुव्यवस्था होती है तो उसके लिए एक द्वार आने का भी रखते हैं एक जाने का भी रखते हैं; मार्गों में व्यवस्था रहती है एक तरफ़ जाने का मार्ग है, दूसरी तरफ़ आने का मार्ग है, उससे पता चलता है कि व्यवस्था सही है। अगर रोड छोटी भी है तो भी व्यवस्था ऐसी की गई है कि एक तरफ़ से जा रहे हैं दूसरी तरफ़ से आ रहे हैं। यह जीवन का क्रम है लेकिन हमने आने को अच्छा मान लिया, जाने को अच्छा नहीं माना। हमने दिन को अच्छा मान लिया लेकिन रात को अच्छा नहीं माना, सुख को अच्छा मान लिया लेकिन दु:ख को कभी अच्छा नहीं माना क्योंकि हमें एक चीज़ ही अच्छी लग रही है।

लेकिन याद रखना दिन अच्छा इसीलिए है क्योंकि उसके सामने रात है, सुख अच्छा इसीलिए है क्योंकि उसके सामने दु:ख है। सर्दी की सुन्दर हवाएँ

अच्छी लगेंगी तब जब सामने गर्मी का मौसम जा रहा हो। इस संसार का सौन्दर्य इसीलिए है - आना और जाना दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। उतना ही महत्त्वपूर्ण जितना की फूल खिलते हैं, उतना ही महत्त्वपूर्ण है पुराने, पीले पत्ते झड़ कर नीचे गिर जाएं। किसी बच्चे का जन्म महत्त्वपूर्ण होगा लेकिन किसी बुजुर्ग की जरजरित काया जिसे वह संभाल नहीं पाता था, जिसे वह ढो नहीं पाता था, उसका जाना उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इसको संसार का सौन्दर्य कहिये आप, विधाता का सुन्दर रूप कहिए।

अगर प्रणाम करते हो परमात्मा को तो केवल उसके दिए हुए फूलों और फलों को लेकर के ही नहीं, सुन्दर व्यवस्था बनाने के लिए वह जो संसार में भेजता है और फिर वापिस बुलाता है,इसे भी प्रणाम करना चाहिए। इन्सान इस चीज़ को केवल जाने ही नहीं महसूस करे। इन्सान को आना याद रह गया, जाना याद नहीं रहा। इस चीज़ का एहसास करे। भ्रमण करने के लिए आए हैं, यात्रा पूरी होने वाली है, जाना भी पड़ेगा। जिसने भेजा है उसने बुलाया है वापिस आना है। वापसी की बात याद रही तो जिसके पास जाना है उससे सम्बन्ध जुड़ा रहेगा, वहाँ पहुँचना है तो वहाँ से सम्बन्ध जुड़ा रहेगा।

कमाल तो यह है कि यहाँ से सम्बन्ध जोड़ने के बाद उसको कभी याद ही नहीं करते, जाना याद नहीं करते इसीलिए उसकी याद भी पूरी नहीं आती। आती हुई श्वास ईशारा करती है संसार की तरफ़ लेकिन जाती हुई श्वास करतार की तरफ़ ही ईशारा करती है कि वापिस भी जाना है। हो सकता है कि जाती हुई श्वास बाहर की बाहर ही रह जाए, वापिस आ ही न पाए। ऐसे लोग भी देखे,उनके बारे में भी सुना गया जिन्होंने जीवन के सम्बन्ध में यह बात बड़ी गहराई से कही लेकिन जब उनके मोह पर चोट पड़ी तो वह भी बिलबिला गए।

कहा जाता है छज्जु भक्त एक बार इतने मस्त हो गए भक्ति में, परमात्मा के सब रूपों की तारीफ़ उन्होंने की, इस रूप की भी तारीफ़ की कि एक अन्तिम सत्य जीवन का यह भी है कि शरीर छूटेगा और वह आखिरी उत्सव होगा जीवन का, जब विदाई की घड़ी आएगी, विदा करने वाले लोग साथ-साथ चलेंगे। तो किसी की अगर कभी कोई अर्थी चलती थी तो सुना जाता है कि छज्जु भक्त पीछे-पीछे अर्थी के गीत गाते हुए चलते थे, हाथ में

खड़कान लेकर कहते थे - 'ओ रोने वाले लोगों, एक व्यक्ति अपनी जिन्दगी का उत्सव पूरा करके जा रहा है, आज उसको विदाई देने का समय है। भले ही तुम्हारी आँखें नम हों लेकिन उसके जाते समय के गीत गाओ ज़रूर, एक उत्सव के साथ भेजो उसे। अर्थी के पीछे गीत गाता था और कहता था - 'बहुत सुन्दर ढंग से इस व्यक्ति ने अपने दिमाग के हिसाब से कार्य किए संसार में, अब विदाई की घड़ी आई है, विदाई दो इसे गाकर, हँसकर, मुस्कुरा कर भले ही आँखों में आँसू रखो इस बात के लिए कि हमें इन्तज़ार रहेगा कि तुम फिर आना, हमें इन्तज़ार रहेगा इस बात के लिए कि फिर मिलेंगे कहीं न कहीं इन्तज़ार रहेगा कि इस संसार में फिर हम लोग नये चोले के रूप में एक दूसरे के साथ बैठेंगे।'

छज्जु भक्त गीत गाते थे और लोगों से कहते थे - 'जीवन का यह वास्तविक उत्सव है, असली उत्सव यही है।' पर आदमी बड़ी बातें कह तो सकता है, बड़ी बातों के बीच जीना बड़ा मुश्किल है।

कहा जाता है परिवार के ही किसी बहुत निकट के व्यक्ति को छज्जु भक्त ने जब मरते हुए देखा फिर उत्सव भूल गए वह; तब स्थिति ऐसी हो गयी उनका गाना खत्म हो गया। अर्थी के पीछे बिखलते हुए, रोते हुए, गिरते हुए जा रहे थे। लोगों ने कहा - सन्त जी, आज उत्सव नहीं मना। उन्होंने कहा कि दूसरों के घरों में लगी हुई आग को तो मैंने बहुत बार देखा, उस समय बड़ी-बड़ी बातें कह देना बड़ा आसान है, आज अपने घर में आग लगी है आज पता लगा इसका दर्द क्या होता है।

किसी ने समझाया तब कि ज्ञान की अब ज़रूरत है। अब कहना हृदय से - तूने जिस प्यार से दिया था उस प्यार से वापिस ले लिया पर मैं भी तेरे दिए हुए को तुझे अर्पण करने में संकोच नहीं करूँगा, तेरी मर्ज़ी है तू अगर वापिस बुला रहा है तो बुला, शिकायत नहीं करूँगा और जाने वाले के प्रति गीत गा कि तेरी सारी अच्छाईयाँ बहुत प्यार से हम याद रखेंगे; मिलेंगे फिर नई कहानियाँ फिर चलेंगी, नए कर्म फिर से होंगे।

कहते हैं छज्जु भक्त ने तब यह कहा था कि ज्ञान जीभ तक ठहरा था अन्दर उतरा नहीं था, अब थोड़ा एहसास होने लगा है। अन्दर तक अगर यह ज्ञान आ जाए फिर न किसी के आने से इतनी खुशी होगी न किसी के जाने

से गमी होगी और अगर खुशी होगी तो हर पल में होगी, हर स्थिति में खुशी रहेगी।

अर्जुन ने कहा - नदियों को समुद्र में प्रवेश करते हुए जैसे देखा हो, जैसे पतंगों को अग्नि में जलते हुए देखा हो ऐसे ही मैंने लोकों को आपके अन्दर प्रवेश करते हुए देखा है।

इसको देखकर इन्सान डर सकता है, डरावना रूप है यह। लेकिन यह भी आवश्यक है, यह रूप भी आवश्यक है। अगर संसार में आना बना रहे जाना न हो, दुनिया का कोई काम ठीक से चल ही नहीं पाएगा। आपकी हर चीज़ में अन्दर-बाहर वाली एक व्यवस्था चलती है न, यहाँ भी ऐसा ही है। परमात्मा की व्यवस्था में ऐसा ही है, एक तरफ़ से आना दूसरी तरफ़ से जाना, इसे स्वीकार कर लेना चाहिए, धीरज से स्वीकार करो, प्यार से स्वीकार करो, इसका एहसास करो। यह जीवन की एक सच्चाई है।

तब भगवान ने कहा - 'अर्जुन, मैं ही काल हूँ।' परमात्मा के इस रूप को भी याद रखना चाहिए और काल हूँ इसीलिए की लोकों को नष्ट करने के लिए संसार में प्रकट होता हूँ। मतलब संसार में मैं एक रूप अपना यह भी रखता हूँ हर चीज़ बनती भी है तो बिगड़ भी रही होती है। एक ही समय में कोई चीज़ बन रही है, कोई चीज़ बिगड़ रही है। एक के लिए मैं सृजन करता हूँ और दूसरी तरफ़ मैं संघार कर रहा हूँ। एक तरफ विष्णु का रूप हूँ तो दूसरी तरफ शिव का रूप हूँ दोनों ही चीज़ें साथ चल रही हैं - एक तरफ़ पालन भी हो रहा है - यहाँ विष्णु रूप है, जहाँ पालन हो रहा है वहाँ मैं विष्णु रूप हूँ, जहाँ संघार हो रहा है वहाँ शंकर के रूप में हूँ और जहाँ व्यवस्थायें बन रही हैं, निर्माण हो रहा है, सृजन चल रहा है, ब्रह्मा का रूप लेकर मैं ही खड़ा हुआ हूँ अर्थात् मैं ही, एक ही रूप है अलग-अलग रूपों में जो प्रकट हो रहा है।

भगवान का यही एक रूप है, वह परमसत्ता अलग-अलग व्यवस्थायें संसार में कायम करती है। संसार की चीज़ों का बनना, व्यवस्थित होना, धीरे-धीरे क्षरण होना, फिर नष्ट हो जाना। लेकिन यहाँ एक बात और बड़ी महत्त्वपूर्ण है। कोई भी चीज़ खत्म नहीं होती, रूप परिवर्तन होता है, फिर से चीज़ें सामने बन बनकर आती हैं, वही सब चीज़ें हैं। यही मिट्टी-पृथ्वी का

भाग, यही जल का भाग, वायु, अग्नि, आकाश यह सारे तत्त्व मिलेंगे और इन्हीं का फिर विखण्डन होगा। जब यह विखण्डन होने लग जाता है तब उसे आप कहेंगे - मृत्यु। इसीलिए शब्द है 'देहान्त' - देह का अन्त; शब्द है 'चल बसा' - यहाँ से चला कहीं बसा। इसीलिए यह जो व्यवस्थायें हैं इन व्यवस्थाओं को समझिए।

एक बात हमेशा ही ध्यान में रखना - परमात्मा ने यह जो हमें अमरता नहीं दी यह बड़ी कृपा है उसकी। अगर वह हमें सबको अमर कर दे, इसी देह के हिसाब से, संसार का सौन्दर्य बिगड़ जाएगा, आप भी नहीं जी पाएंगे ढंग से।

लोक-कथाऐं प्रचलित रही हैं संसार भर में, जगह-जगह, जिस-जिस रूप में प्रचलित रही हैं उसी रूप में अगर उनका चिन्तन किया जाए तो बहुत कुछ समझ में आता है। ग्रीक कथाओं में भी, बल्कि कहना चाहिए भारत में भी ग्रीक कथाओं का प्रभाव रहा और यहाँ की लोक कथायें बन गईं वह।

कहा जाता है कि सिकन्दर जिस समय अनेक-अनेक देशों का समृद्धिशील राजा बन गया तो उसके मन में यह विचार उठा कि इतना सारा धन है, इतनी ज़मीन-जायदाद; अगर मेरा जीवन लम्बा हो, मौत आए न कभी, तो मुझे इस संसार का समय भोगने का आनन्द मिलेगा क्योंकि ज़्यादातर हम लोग यही करते हैं व्यवस्था बनाने में जीवन का बहुत सारा भाग बिता देते हैं। जब तक चीज़ें इकट्ठी करते हैं, जब तक चीज़ें जोड़ते हैं, उनको सँभालते हैं, तब तक जाने की बारी आती है, शरीर खराब हो जाता है, संसार की चीज़ों का भोग नहीं भोग पाते, तो मन में बड़ी पीड़ा रह जाती है। मतलब एक अतृप्ति रहती है, प्यास मन में रह जाती है - 'अब तो चीज़ों का सुख मिला था, शरीर ही साथ नहीं दे रहा,' 'अब तो साधन बने थे अब तो उम्र ही साथ नहीं दे रही है,' - व्यक्ति इस स्थिति में आ जाता है।

सिकन्दर ने भी मन में एक विचार किया - रोगों की दवाईयाँ हैं दुनिया में। बुढ़ापे को दूर करने के भी कुछ न कुछ प्रयोग किए जा रहे हैं। क्या मौत ही न आए, ऐसी भी कोई दवाई होगी? और कहा जाता है उसने एक फ़कीर से पूछा कि मैं अमर होना चाहता हूँ, कोई ऐसी चीज़ है संसार में।

फ़कीर ने कहा - जितने तुम्हारे आदमी हैं सबको लगाओ, वह सारी दुनिया में ढूँढेंगे, हो सकता है कहीं कोई फल मिल जाए, कोई जल मिल जाए, कोई वस्तु मिल जाए जिसे खाने के बाद आपकी मौत ही न हो।

सारी दुनिया भर में सब जगह कुछ न कुछ खोजबीन चलती रही लेकिन कहीं पर भी ऐसा फल नहीं मिला और इस देश की लोक-कथाओं में बड़ी अनोखी कथा है यह। हज़ारों सालों से इसी तरह से कही गई और प्यार से सुनी गई लेकिन हर बार सुनते-सुनते इन्सान ने इस में से कोई शिक्षा ली है। कहा जाता है जब सब थक गए और कहीं कोई ऐसा फल नहीं मिला, कोई ऐसा जल नहीं मिला तो एक ऐसा साधु मिल गया जो शहर के बाहर बैठा हुआ था; उसने कहा कि मैं तुम्हारे राजा को ऐसा अमृत दे सकता हूँ जिसे पीने के बाद राजा की मौत नहीं होगी। उसे मेरे पास भेजो।

सेवकों ने जाकर सूचना दी - शहर के बाहर एक साधु बैठा हुआ है, राजा साहब आप जाईये। वह आपको ही बताएगा अमृत कहाँ है जिसे पीने के बाद आपको मौत नहीं होगी।

सिकन्दर गया, जाते ही उस फ़कीर के सामने, साधु के सामने हाथ जोड़कर बोला - आप बताईये कौन-सा वह जल है? कौन-सा वह अमृत है जिसको पीने के बाद मौत कभी नहीं होगी?

साधु ने कहा - बस तुम्हें इस बारे में जानकारी लेनी थी तो तुम्हें ही मैं बता रहा हूँ और किसी को नहीं बता रहा हूँ, तुम जाकर जल्दी से पी लेना और अमर हो जाना। ज़्यादा कोई दूर नहीं जाना, अपने जंगलों को पार करो, एक पहाड़ी आएगी उसे पार करना, आगे दूसरी पहाड़ी दिखाई देगी उसके नीचे एक सरोवर बना हुआ है। वहाँ जाकर के जल पी लेना और तुम अमर हो जाओगे, मरोगे नहीं। एक ध्यान रखना कि वहाँ आसपास पक्षी नज़र नहीं आऐंगे, पंछी उस जल को पीना नहीं चाहते, कोई जीव नज़र नहीं आएगा, पशु-पक्षी कोई भी नज़र नहीं आएगा, कोई पीना ही नहीं चाहता उस जल को। सिर्फ़ तुम ही पीने के लिए भाग रहे हो इसीलिए तुम पी लेना जाकर।

सिकन्दर ने पूछा - आपने पिया है जल?

बोले - जब जानवर भी पीना नहीं चाहते तो फिर मैं क्यों पीऊँ?

सिकन्दर ने पूछा जल वास्तव में खरा है, पीने से आदमी अमर हो जाता है, यही शरीर रहेगा, मौत नहीं कभी आएगी? बोले - बिल्कुल सही है। आपको मालूम है आप किसी को बताते नहीं? बोले - मुझे मालूम है लेकिन मैं किसी को बताता नहीं क्योंकि इससे ज्यादा मूर्खता दुनिया में है भी कोई नहीं।

सिकन्दर ने सोचा मूर्ख होगा यह फ़कीर। जानकारी है इसको और इतना अमृतमय जल पीने को तैयार नहीं है। इसने फिर भी कह दिया एक बार ज़रा प्रयास करेंगे, ट्राय करेंगे एक बार, ज़रा जाने दीजिए, आप बताईये रास्ता कौन-सा है?

साधु ने एकदम रास्ता भी ऐसा बताया कि जिससे जल्दी से जल्दी पहुँच जाए और यह पहुँच गया। इसने देखा पेड़ों पर कहीं कोई पंछी ही नहीं है, जीव-जन्तु कोई नहीं दिखाई देता। इसे लगा विष वाली जगह होती है ऐसी जगह तो जीव जन्तु भी नहीं आते, फिर भी उसकी समझ में आया कि कोई बात नहीं, जल पीते हैं। अंजलि भरी, पानी हाथ में लेकर पीने ही लगा था, आवाज़ आ गई। जैसे कोई मिट्टी का ढेर हो, उसमें दो आँखें चमक रही थीं वहाँ से आवाज़ आई - 'पानी पीने वाले भाई, पानी पीना, यह अमृत सरोवर है। इस पानी को पीने के बाद आदमी अमर हो जाता है, मरता कभी नहीं लेकिन एक बात है। पहले ज़रा हमारी अवस्था देख लेना हमने भी जल पीया था यह।

सिकन्दर गया उसके करीब, देखता है एक मगरमच्छ पड़ा हुआ है। शरीर अजीब तरह का हो गया उसका, आँखें चमक रही हैं, हिलता-डुलता नहीं। पास में जाकर सिकन्दर के कहा - तुमने जल कब पिया था? बोले - हजारों साल हो गए।

तुम्हारे परिवार के लोग कहाँ हैं?

बोले परिवार वरिवार का कोई पता नहीं है, हम दुनिया में अकेले यहाँ बैठे हुए हैं, कोई पास नहीं आता, मौत आती नहीं है। अकेले बैठे हैं, दुःखी हो रहे हैं और देखो वह जो तुम्हारी दुनिया है न उधर वाली, वह दुनिया बहुत अच्छी है।

सिकन्दर ने कहा - उपदेश नहीं देना, पानी पीना है मैंने। मरना नहीं चाहता, जीना चाहता हूँ। तुम्हारे पास साधन नहीं थे मेरे पास साधन हैं, मेरे पास अक्ल है, मेरे पास धन है, मेरे पास ताकत है, मेरे पास राजमहल है, मेरे पास सैना है। मैं तुम्हारे उपदेश से बहकना नहीं चाहता, पानी पीऊँगा और चाहूँगा तो दुनिया को बहुत अच्छे ढंग से भोगूँगा।

मगरमच्छ ने कहा - एक बात सुन लेना। अक्ल तो मेरे पास भी थी इसीलिए पानी पीया था मैंने तेरी तरह से। लेकिन यह जो शरीर ऐसा रह गया, बूढ़ा शरीर, झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं, शरीर गला हुआ है, मौत आती नहीं है, चलना फिरना पड़ेगा संसार में चला नहीं जाता। ऐसा शरीर बर्दाशत करोगे?

उसने कहा - मैं तो अपनी फौज में जवान लोगों को रखता ही हूँ लेकिन जो बूढ़ा होने लग जाता है उसको भगा देता हूँ, बूढ़ों को अपने सामने आने ही नहीं देता और गले हुए आदमी को देखना ही नहीं चाहता और मैं खुद चाहूँगा कि ऐसी अवस्था मेरी न हो।

मगरमच्छ ने कहा - तो फिर पानी नहीं पीना। अगर कोशिश करना है तो ऐसी कोशिश कर कि शरीर भी जवान रहे, मौत भी न आए।

इसने कहा - यह बात बिल्कुल सही है। दोबारा फकीर के पास जाता हूँ। वापिस आया, आकर के बोला - फकीर बादशाह, बड़ी कृपा है आपकी, जल बिल्कुल खरा था, बड़ा सही था लेकिन मैंने पीया नहीं। फकीर बोले.......................

❊❊❊❊❊❊❊❊❊❊❊❊

मगरमच्छ ने कहा तो फिर पानी नहीं पीना; अगर कोशिश करना है तो ऐसी कोशिश कर कि शरीर भी जवान रहे और मौत भी न आये। इसने कहा - यह बात बिल्कुल सही है, दोबारा फ़क़ीर के पास जाता हूँ। वापिस आया, आकर के बोला - फ़क़ीर बादशाह बड़ी कृपा है आपकी, जल बिल्कुल खरा था, बड़ा सही था लेकिन मैंने पिया नहीं।

फ़क़ीर बोले - मुझे पता था कि तुम पियोगे नहीं और अब तुम जो आये हो, जवान बनने का विचार जो लेकर आये हो और ऐसा विचार लेकर के आये हो कि मैंने मरना भी नहीं और सदा जवान रहना है।

अब यह बोला – अर्न्तयामी हो क्या, पहले ही जान लेते हो सब?

बादशाह की बात सुनकर फ़क़ीर ने कहा इस रास्ते से जो भी जाता है ऐसे ही वापिस आता है। हाँ, तुम्हारी इच्छा है कि तुम मरो भी नहीं, जवान रहो, शरीर ऊर्जा से भरपूर हो, मैं तुम्हें मौक़ा दूँगा। उस सरोवर को पार करना, आगे जाना, पहाड़ी फिर पार करना। फिर छोटा-सा बगीचा आयेगा, सेब जैसे फल लगे होंगे, वहाँ एक को तोड़ के खाना। खाते ही जवान रहोगे, मरोगे कभी नहीं।

इसने कहा – यह पहले बता देते आप, बड़ा समय ख़राब हो गया मेरा।

फ़क़ीर ने कहा – ठीक है, मैंने अब बता दिया। अब तुम जाओ और जाकर फल खा लो।

यह दौड़ता हुआ गया और जाकर इसने जहाँ सुंदर बगीचा था और बड़े सुंदर फल लगे हुए थे तोड़ लिया एक फल। तोड़कर खा रहा था कि यह देखता है कहीं लड़ने की आवाज़ें आ रही हैं। फल हाथ में लेकर आगे गया, देखता है बहुत-बहुत जवान लोग हाथ में तलवारें लेकर लड़ रहे हैं, मार रहे हैं, काट रहे हैं, खून बह रहा है और वह सारे एक दम चिल्लाकर बोले – भाई, फल नहीं खाना, पहले हमारी दुर्गती देखो।

अब इसने कहा – तुम हो कौन?

बोले – एक ही परिवार के सदस्य हैं – कोई दादा जी है, कोई नाना जी है, कोई चाचा जी है, कोई ताऊ जी है, सारे जवान हैं, सब एक ही उम्र वाले हैं। सभी यह कोशिश कर रहे हैं धरती पर राज मेरा हो, सभी कहते हैं संसार के भोग हम भोगेंगे। और तो और यहाँ मर्यादा ही नहीं रह गयी। एक उम्र के सब लोग हैं रिश्ते बहुत पुराने-पुराने हैं, हज़ारों साल तक के पुराने रिश्ते हैं लेकिन मर्यादा नहीं रह गई है। तेरी दुनिया बहुत अच्छी है, जिस दुनिया से तू आया है मुसाफ़िर वहाँ एक पिता जब अपने बेटे को जवान होता हुआ देखता है बड़ा खुश होता है, उसे लगता है कि अब मैं ही जवान हो रहा हूँ, मेरे रूप में मेरा बच्चा जवान हो रहा है। अपने बच्चे को खुशी देकर के उसे लगता है मुझे खुशी मिल रही है, प्रसन्नता मिल रही है, उसे महसूस होता है अपने बच्चे को सुखी कर दूँ। मेरा तजुर्बा, उसका जोश, दोनों का सामंजस्य बैठे, मेरी आने वाली पीढ़ियाँ और खुश हो जायें, और सुखी हो जायें। वह तेरा वाला संसार

बहुत अच्छा है, यह मेरा वाला संसार अच्छा नहीं है। यह फल मत खाना तू, नहीं तो यहाँ जोश ही जोश रहेगा, होश बिल्कुल नहीं रह जायेगा। एक बात और सुन ले - यह ऊर्जा पाकर के और अमरता का जीवन पा करके संसार को भोगने की इच्छा तो ज़रूर होगी लेकिन तृप्ति नहीं होगी। तृप्ति का एक अवसर आता है। शरीर शिथिल होने लग जाये, मन शान्त होने लग जाये, अगर अमृत वाली बात चखना चाहते हो तो अमृत तो भगवान के दरबार में है, शरीर में कभी नहीं मिला करता, मिला करता है तो आत्मा में मिलता है, हृदय में मिला करता है। अपनी दुनिया में लौट जाओ। ऐसा लड़ने वाला, पागलों वाला संसार जहां होश नहीं है अच्छा संसार नहीं है।

फल छूट गया इसके हाथ से। सोचने लगा खड़ा-खड़ा - संसार में ऐसा होता है माता-पिता अपना सुंदर भवन बनाया हुआ अपने बच्चों को दे देते हैं और अपने आप एक पुराना-सा कमरा लेकर वहाँ बैठ जाते हैं कहते हैं बहु-बेटा दोनों यहाँ रहें, खुश रहें। बाद में जब उनके बच्चे होते हैं उनकी उँगलियाँ पकड़ कर खेल रहे होते हैं, खुश हो रहे होते हैं। एक साथ वह अपने आपको अपने बेटे के रूप में जवान भी देखते हैं और एक साथ अपने पोते को देखकर अपना बचपन भी याद करते हैं और एक साथ अपने बुढ़ापे को ध्यान में रखकर, अपने करतार को भी याद रखते हैं, वह कैसा संसार है? वह संसार अच्छा है क्योंकि उसमें जाना और आना दोनों हैं।

फेंक दिया सिकन्दर ने फल और सोचा उस फ़क़ीर से मिलना ही नहीं है क्योंकि अबकी बार कुछ और न बता दे, दोनों बार ही गड़बड़ हुई, इस बार उधर से जाना ही नहीं। वह किसी और रास्ते से चल पड़ा, शहर में जाने वाले एक और रास्ते से चल पड़ा। जैसे ही शहर में प्रवेश करने लगा देखता है साधू वहीं बैठा हुआ है। अब साधु ने उसको जो देखा, सिकन्दर कहता है कि मैं तो बच कर भाग रहा था। बोले - जब बचकर भागता है न इंसान फिर इधर वाले रास्ते पर आता है इसीलिए मैं पहले ही यहाँ बैठा हुआ था।

सिकन्दर ने कहा लगता है इस बार फिर बहकाओगे। उसने कहा अबकी बार सही सुनाऊँगा, असलियत सुनाऊँगा तुम्हें, असली ढंग में तुम्हें अमृतमय जीवन जीने का रास्ता बताऊँगा। उस प्रभु की व्यवस्था समझो जिसने दुनिया में आना-जाना बनाया है, जिसने भेजा है लोगों को दुनिया में, फिर वापिस बुला

लेता है, उसकी व्यवस्था को समझो। उसने अपने मिलने का रास्ता हृदय के मंदिर में रखा है यहाँ तुम अगर उसे पुकारो तो वहाँ वह एक अमृत दिया करता है। उस अमृत को पाने के बाद इंसान अंदर-अंदर आनंद तो लेता ही है लेकिन अपने कर्म संसार में ऐसे कर देता है कि लोगों के हृदय में सदा जीवित रहता है, उसका शरीर छूटता है लेकिन उसकी कीर्ति नष्ट नहीं होती, वह दुनिया में अमर हो जाया करता है, लोग उसे याद रखते हैं इसीलिए आज से अपने कर्मों से अमर हो। आज से अपना कर्म ऐसा कर कि तू अमर हो सके, अमृत हो सके। शरीर अगली बार और अच्छा, उसके बाद और अच्छा मिल सके या फिर शरीर के चक्कर में नहीं पड़ें, परमात्मा के आनन्द में ही जाकर बैठ जाये।

परमात्मा का यह रूप भी बड़ा सुंदर है जिसे देखकर के कभी, जिसे समझ कर के कभी कवियों ने कहा था *जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द, मर कर के ही पाइये पूर्ण परमानन्द।* परमानन्द को पाने का रास्ता शरीर छोड़ करके ही तो मिलेगा। इसी द्वार से तो भगवान की तरफ़ जायेंगे। भगवान ने कहा मैं ही काल हूँ और संसार के समस्त पदार्थों को, लोक-लोकान्तरों को नष्ट करने के लिए अपने स्वरूप को प्रकट करता हूँ। यह जो भी तुम्हें दिखाई देते हैं अर्जुन यह सब नष्ट होंगे। इनका काल सामने है इसीलिए -

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व

जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।

इसीलिए तुम उठो अर्जुन, अपना कर्त्तव्य पूरा करो। संसार का जो राज्य तुम्हारे सामने है उसकी समृद्धि को बढ़ाओ और संसार का आनन्द लेने का प्रयास करो। मतलब संसार के भोग भोगकर और फिर उस स्थिति में आ जाओ शरीर छूटे और परमब्रह्म तक पहुँचने की व्यवस्था बनाओ। उठो और यश प्राप्त करो, उठो और समृद्धि को प्राप्त करो, उठो संसार के भोगों को भी भोगो, उठो इसीलिए भी कि सब त्याग कर के भी फिर मेरी तरफ़ पहुँच सको। यह रूप है संसार का, क्रम है, चक्र है। घूम कर भगवान तक ही पहुँचना होता है; भगवान के पास पहुँचने के बाद फिर नदी समुद्र में मिल गई और समुद्र हो गयी। इस क्रम में हम सब शामिल हैं क्योंकि जितने भी लोग आज यहाँ बैठे हुए हैं, तो यह याद रख लेना चाहिए शरीर ज़रूर बदले हैं लेकिन आत्माएं वही हैं। पहले भी मिले थे, आज भी हैं, आगे भी मिलेंगे। क्या शक्ले होंगी, क्या

रिश्ते होंगे, क्या संबंध बनेंगे; उन संबंधों के साथ मित्रता रहेगी या शत्रुता रहेगी यह तो नहीं कहा जा सकता; ज्ञानी होंगे या अज्ञानी होंगे यह तो कुछ नहीं कहा जा सकता। कर्म न जाने क्या रूप लेकर के आये लेकिन आयेंगे। यह भी एक बात है कि अभी भी थोड़ा-थोड़ा एहसास तो होता है।

दर्शनकारों ने कहा है कि मौत का भय लगता है क्योंकि मौत का तर्जुबा पहले कर चुके हो। जो तर्जुबा पहले करके आये हो न उसका भय लगता है। किसी-किसी को आग का भंयकर रूप देख कर इतना डर लगता है कि बेहोश हो जाते हैं क्योंकि आग से जलकर कभी शरीर छूटा था। किसी-किसी व्यक्ति को ऐसा महसूस होता है कि बहुत-बहुत पानी बह रहा हो, चक्कर खा जाते हैं, कभी डूब कर के मौत हुई थी वह तजुर्बा है, आत्मा याद कराती है। किसी को बहुत ऊँचाई देखकर स्थिति ख़राब हो जाती है, घबरा जाता है उस समय, ऊँचाई पर जा ही नहीं सकता, ऊँचाई से कभी गिरा था। किसी आदमी की हालत होती है, खून बहता किसी का भी देख ले, एकदम बेहोश हो जाता है, उसी रूप में मौत हुई थी कभी ।

तो इतनी याद तो है, मौत का अनुभव किया था इसीलिए आज मौत का समाचार, विचार, कहानी कुछ भी पता लग जाए, मरने से डर भी लगता है, घबराहट भी होती है। जिनके साथ कुछ निकटता थी वह अंजाने लोग भी पास से गुज़र जायें तो भी यह एहसास होगा कि जानकारी थी, लगता है कोई पहचाना हुआ ही इंसान है। किसी को देखकर एकदम ही ऐसा महसूस होगा इस आदमी के साथ न बात करनी, न इसके पास बैठना, न कोई लेन-देन करना, न कोई संबंध रखना। मतलब, पिछली शत्रुता आज भी याद करा रही है कि इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखना और कभी-कभी तो यह भी होगा कि घर में वह रिश्ता लेकर जन्म चुका, बेटा बनकर आ गया, मित्र बनकर के या कोई भी रिश्ता लेकर के आपके सामने है - पुत्र बना है, पुत्री बनी है, पत्नी बना है, कुछ भी रूप लेकर के आया लेकिन एक विचित्र बात होगी - संसार में संबंध भी तो भगवान कैसे भी दे दे, लेकिन पुरानापन भी तो कुछ होता है। सात तरह के रिश्ते हैं, एक ही रिश्ते में सात तरह के रूप हैं, कैसा विचित्र रूप है यह! कोई बेटा है; आपका बेटा, किसी जन्म में आप मित्र थे आज वह बेटा बन गया है लेकिन वह आज भी मित्रता निभा रहा है। बाप-बेटे दोनों

दोस्तों की तरह बर्ताव करते हैं, ऐसे बैठते हैं, ऐसी बातचीत करते हैं, सलाह करके चलते हैं दोनों, हैं बाप-बेटे लेकिन संबंध पिछला मित्रता का था, इसीलिए मित्रता वाला हो रहा है। लेकिन किसी के साथ शत्रुता का था आज बेटा बन गया है। अब दोनों की नहीं बनती चाहे कुछ भी हो जाये। कुछ भी कोई मनाये, कोई बैठाये, माँ समझाती रहेगी, बेटा पिता के प्रति समर्पित नहीं होगा। लोग समझायेंगे बेटे के साथ सहयोग रखो लेकिन है कुछ पिछला ही लेन-देन, उनकी दोनों की नहीं बनेगी। एक पूरब चलेगा दूसरा पश्चिम। बाप ने अगर कहा यह करना वह उल्टा करके आयेगा, उसमें उसको खुशी मिलती है। एक ही रिश्ता बेटे का लेकिन दो तरह के संबंध दिखाई देंगे।

एक तीसरी तरह का बेटे में ही आप रिश्ता देखिये, पिछला। एक वह होता है जो पिछले जन्म में कोई क़र्ज़ा छोड़ गया था। अब कर्ज़ा वापिस लेना है उसने, मतलब सेवा की होगी, इस बार सेवा कराने के लिए आ गया। बीमार रहता है बेटा, सारी ज़िन्दगी हो गयी उसको दवाईयाँ खिलाते-खिलाते, कंधे पर लेकर माँ-बाप रोज़ लेकर जाते हैं दवाईयाँ पिलवाने के लिए। सारी-सारी रात लेकर बैठे रहते हैं, घर का एक ही चिराग़ है, कुलदीपक है उसकी सेवा करें - 'ठीक हो जाये। भगवान इसे ठीक कर दे', सेवा करते रहेंगे।

कई ऐसे होते हैं क़र्ज़ा चढ़ाने के लिए आ गये। बेटे ने सब तबाह कर दिया। माँ बाप उतार रहे हैं कर्ज़ा उसका।

एक बेटा वह भी जो सेवा करने आया, क़र्ज़ा उतारने आया। माँ-बाप ने तो कुछ दिया नहीं लेकिन बेटा माँ-बाप के सारे क़र्ज़े चुकाता जा रहा है। सेवा करेगा दस बातें सह लेगा। लेकिन आगे से बोलेगा कुछ नहीं, सेवा करता जायेगा। माँ-बाप बीमार हैं उस हालत में बैठकर उनकी सेवा करेगा। तो यह भी एक रिश्ता है न, है तो पुत्र का ही।

एक वह उपेक्षा वाल रिश्ता। उपेक्षा वाला रिश्ता ऐसा जो पिछला कुछ था हिसाब-किताब आ तो गया, अब वह क्या कहता है, माता पिता दोनों से कहता है - देखिए आप अपनी जगह मस्त रहिये, हम अपनी जगह मस्त रहेंगे। आप हमारे काम में टाँग नहीं अड़ाना, हम आपके काम में नहीं अड़ाऐंगे। हम अपना मकान अलग बनाकर रहेंगे या ऊपर रह जायेंगे या नीचे रह जायेंगे या फ्लैट लेकर के रह जायेंगे। आप अपनी जगह खुश, हम अपनी जगह खुश लेकिन

दख़लअंदाज़ी नहीं होनी चाहिए बिल्कुल भी, अपने अपने में मस्त हैं; कौन सुखी, कौन दु:खी लेना-देना ही नहीं है। यह भी तो एक रिश्ता है। पाँच हो गये, पुत्र में पाँच रिश्ते देख लिये आपने।

लेकिन छठा सातवाँ रिश्ता भी है। कई पुत्र वे हैं पुण्य आत्मा - जन्म-जन्मान्तर के पुण्य करके इस संसार में पुण्य आत्मा आये और समझना आपके भी कुछ पुण्य थे, जिन पुण्यों के कारण वह आत्माऐं आपके साथ जुड़ी हुई हैं। उनके आने का मतलब ही क्या हुआ? बड़े ग़रीब थे, बड़ी दुखी थे, बड़े परेशान थे लेकिन पुण्य आत्मा ने जन्म लिया। आते ही अमीरी आनी शुरू हो गयी, नाम बढ़ना शुरू हो गया, माँ-बाप की कोई इज़्ज़त नहीं थी अब पगड़ी वाले हो गये - कि यह फ़लाने का पिता जा रहा है, इसका बेटा यह है, वह है - इस तरह से बेटे के कारण बाप का नाम चल रहा है। बड़े गर्व के साथ कहता है - इसने कहा कि मैं जज हूँ तो वह क्या कहता है - मैं जज का बाप हूँ। घमण्ड करता है न, बच्चा लायक़ है। एक स्थिति यह - पुण्यात्मा आ गया, आते ही उसने सारे घर की स्थिति बदल दी। रिश्तेदारों में मान बढ़ गया, मित्रों में मान बढ़ गया, माँ बाप की पगड़ी ऊँची हो गयी, घर परिवार समृद्धिशाली हो गया, माँ बाप को कहता है बेटा - 'जितना मर्ज़ी आये हाथों से दान करो, पुण्य करो, सेवा करो, बाँटते चले जाओ, आप खुश रहो, हमें तो आपकी खुशी देखनी है।' यह छठा रिश्ता लेकर आया।

एक सातवें रिश्ते वाला भी होता है। कोई दुष्ट आत्मा आये, बड़े पाप करके और फिर जन्म ले। पुण्यात्मा ने जन्म लिया माँ बीमार रहती थी, उसके जन्म के साथ ही माँ ठीक हो गयी; दुष्ट आत्मा ने जन्म लिया, माँ स्वस्थ रहती थी; उसके पैदा होते ही सदा के लिए बीमार हो गयी, घर परिवार की हालत ख़राब हो गयी, जो कुछ था सब नष्ट हो गया, क़र्ज़दार हो गये, और उसके बाद भी चैन से नहीं बैठा; कर्म ऐसे करता जाता है रात-दिन कलह क्लेश, माँ-बाप दुनिया के ताने सुन-सुन के, लोगों की बातें सुन के रात-दिन रोते रहते हैं और क्या कहते हैं - 'भगवान किसी की संतान होकर मर जाये, आदमी एक बार रो लेगा लेकिन जिसकी संतान बिगड़ जाये और ख़राब हो जाये रात-दिन का रोना होता है, यह कब का बदला ले रहे हो भगवान? इससे

अच्छा तो न देता तू' - तो एक ही बेटा कितने रिश्ते लेकर के आता है; यह संबंध पिछले हैं न।

मैंने केवल एक बेटे के आधार पर आपको, पिछले संबंधों की बात करी। अगर आप दूसरे सारे रिश्तों को लेकर के सोचें आपको यह सात तरह का ही रूप दिखाई देगा। इसीलिए इस संसार को समझना आसान बात नहीं है, दुनिया को समझना आसान बात नहीं है। सिर्फ़ इतना ही समझने की कोशिश करो, जिसके इर्द-गिर्द यह सब जाला बुनता है, अर्थात् जो समस्त की रचना करता है, निर्माण करने के बाद सबका पोषण करता है और फिर सबको अपने अंदर समेट लेता है उसके प्रति श्रद्धा से माथा झुकाना सीख जाओ, उसको धन्यवाद करना सीख जाओ और उसके हर स्वरूप को सुन्दर स्वरूप मानो - इसमें भी कोई भला है, इसमें भी कोई अच्छाई है, तेरे तरीक़े तरह-तरह के हैं तू समझाना चाहता है, अक्ल देना चाहता है, आगे बढ़ाना चाहता है, मेरा भला करना चाहता है, यह सब कुछ मानना और फिर कहना - 'हे प्रभु ऐसी बुद्धि कभी न मिले, संसार में अपयश का भागी बनूँ, सताने वाला बनूँ, किसी का हक़ छीनने वाला बनूँ, किसी से सेवा कराने वाला बनूँ, ऐसी स्थिति कभी न आये भगवान। बाँटने वाला बन जाऊँ, देने वाला बन जाऊँ, कर्म करने वाला बन जाऊँ, शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा मेरा साथ निभाते रहें, जब तक रहूँ दुनिया में कर्मशील बना रहूँ।'

तो संसार में यश प्राप्त करना, शत्रुओं को जीतना अर्थात् अपनी कमज़ोरियों को जीतना, अपने कर्मों का भोग भोगना और अपने परमात्मा को प्राप्त कर लेना यह जीवन का सुंदर स्वरूप है। भगवान ने कहा इसीलिए तू उठ, यश प्राप्त कर, शत्रुओं को जीत, संसार में भलाई फैला, फिर मुझ तक आ और कहा कि मैंने इन सब के ऊपर काल का चक्र चला दिया है। अपने-अपने कर्मों से सब अधोगति को प्राप्त होंगे, इसीलिए तू किसी को मारने वाला नहीं बन पायेगा, माध्यम बनेगा।

अर्जुन को सब समझ में आया और उसके बाद भाव विभोर हो गया और भाव विभोर होकर उसने भगवान की स्तुति में कुछ शब्द कहे। वह शब्द भी बहुत प्यारे शब्द हैं। जब भगवान की स्तुति करते हुए अर्जुन ने महिमा कहना शुरू की -

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

– हे प्रभु, आप ही आदि देव हो; पुरूषः पुराण – अर्थात् तुम ही समस्त संसार में, इस पुरी में, जगत में, शयन करने वाले पुरूष पुराण हो, सदा रहने वाले हो; अनादि हो, अनंत हो, परमपुरूष हो, पुराणपुरूष हो। सबसे पुराने सदा से हो, सदा आप रहोगे। परिवर्तन जहाँ आ रहा है वह सब नश्वर है, जिसमें परिवर्तन नहीं आता वह अनश्वर है, वह आप हो त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् –और आप ही हो इस संसार के परम आधार, जिस पर संसार टिकता है, जो संसार का केन्द्र बिन्दु बना हुआ है, जो शक्ति है; वेत्तासि वेद्यं – तुम ही जानने वाले हो, तुम ही जानते हो, तुम ही जाने जा सकते हो, तुम ही हो परम धाम। बड़ा प्यारा शब्द है यह।

परम धाम वह है, बड़ा घर; छोटे–छोटे घर आप दुनिया में कहीं भी बना सकते हो, थोड़ी–थोड़ी देर के लिए रह करके आ जाना, लेकिन जो आपका अपना परम धाम है जहाँ आप बसे, जहाँ आप पले, जहाँ आप रहते हो। कुछ दिनों के लिए कहीं भी चले गये, थोड़े दिनों के लिए धर्मशाला ठिकाना, होटल ठिकाना बना, किसी का घर किराये पर ले लिया, किसी शहर में थोड़े दिन के लिए चले गये लेकिन चैन कब पाओगे? अपने घर में आकर।

अर्जुन ने कहा मैंने जान लिया आप परमधाम हो, आप ही वह ठिकाना हो जहाँ आकर परम शान्ति मिलेगी, आप में ही आकर चैन मिलेगा *विश्वमनन्तरूप* – तुम ही सम्पूर्ण रूप, अनन्त रूप हो, इस विश्व के।

अलग–अलग रूप संसार में जो भी कुछ दिखाई देते हैं, हर चीज़ में परमात्मा की महिमा नज़र आती है। किसी सुंदर खिले हुए फूल को ज़रा देखना, उसकी सुंदरता में परमात्मा का वास है, उसकी सुगंध में परमात्मा का वास है, उसकी कोमलता में परमात्मा का वास है, परमात्मा अपनी कृपा लेकर खिल रहे हैं। इसीलिए जो दर्शन शास्त्र से सम्बन्धित हो गया, दार्शनिक पृष्ठभूमि जिसकी बन गयी अगर एक फूल को भी देखने बैठ जायेगा उसी में ही खो जायेगा कि तेरे सारे ब्रह्माण्ड को देखने की आवश्यकता नहीं, इस तेरे फूल को देखते ही तेरा रूघ समझ में आ जाता है कि तू कितना सुंदर है, तू कितना कोमल है, तू कितना सुंगधपूर्ण है, कितना पवित्र है, कितना ताज़ा है,

ताज़गी भरा हुआ है, तेरे सान्निध्य में जाने से ताज़गी आती है। अनन्त रूप हैं प्रभु तेरे, अनन्त रूपों को संसार में अनन्त-अनन्त रूप में देख रहा हूँ, महसूस करता हूँ। अर्जुन ने आगे फिर कहा –

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाटः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

– यह वह स्थिति है जहाँ व्यक्ति गद्-गद् भाव से नमन करने लगता है। अर्जुन ने कहा – आप ही वायु हो, यम हो, अग्नि हो, वरुण हो, शशांक हो, चन्द्रमा आप ही हो, तुम ही प्रजापति हो, प्रजा का पालन पोषण करने वाले; च पिता महश्च् – जैसे कहते हैं न दादाओं के दादा – कि तुम ही हो सबके आदि जिनसे वंश परम्परा चल रही है।

रिश्ते को कहाँ से शुरू करें कि जहाँ से शुरू होगा वहीं समझ में आ जायेगा। सृष्टि बनी आपसे जन्म हुआ तो तब से लेकर पिता कहो, दादा जी कहो रिश्ता वहीं से शुरू हो गया और आगे क्योंकि हमारी गिनती रिश्तों की पाँच-सात पीढ़ियों तक जाती है; ब्याह-शादी में दो-तीन गोत्र से लेकर सात गोत्र तक याद कर लिये जाते है, उन सबको प्रणाम कर लिया जाता है; अपनी परम्परा है, पुरानों को याद करेंगे और याद करते-करते पहले भगवान को याद करते हैं, फिर वंश परम्परा में इन सबको याद करेंगे। आख़िर में यह एहसास करते हैं कि आदि तो आप ही हैं, परमात्मा आप ही हो, आप ही पालन-पोषण करने वाले हो, सगे-संबंधी आप हो, इसीलिए जिससे सदा का रिश्ता है उससे बात की जाये। रोज़-रोज़ मिलकर बिछड़ने वालों से क्या रिश्ता रखा जाये। सबसे बड़ा रिश्ता तो परमात्मा का है।

अर्जुन कहते हैं कि आपके स्वरूप को मैंने समझा। नमो नमस्तेऽस्तु – इसीलिए तुम्हें बार-बार नमन करता हूँ प्रभु, नमन स्वीकार कीजिए।

आगे श्लोक आया है, जिसमें अर्जुन ने कहा कि इतना गद्-गद् हो गया हूँ, दण्डवत लेटकर आपको प्रणाम करता हूँ। महिमा समझ में आ जाये न फिर प्रणाम करके बार-बार सिर झुकाने को मन करता है, उसके सज्दे का आनन्द ही बढ़ जाता है, फिर उसको प्रणाम-सलाम करने का आनन्द बढ़ जायेगा। बहुत प्रेम है उससे, बहुत आदर है उससे।

अर्जुन ने कहा आप ही वायुदेव हो। संतों की भाषा में कहें - हवायें जब बह कर चलें शरीर का स्पर्श करें, सिर पर आयें या मुख पर, अहसास होना चाहिए मेरे परमात्मा ने सिर पर हाथ रखा है, चेहरे पर प्यार किया है, पीठ पर हाथ रखा है। उसी का हाथ तो हवा बनकर मेरे ऊपर बह रहा है।

चन्द्रमा की किरणें शरीर पर पड़ें, जैसे कोई माँ अपने बच्चे को दूध से नहलाती हो और कहती हो कि मेरा बेटा कभी धरती पर पाँव न रखे, इसके पाँव न मैले हो जायें, इतना सुंदर रूप बनाना चाहती है। इतना ही प्यार लेकर परमात्मा आपके ऊपर अपने चन्द्रमा की किरणें बरसाता है। अर्जुन ने कहा - चन्द्र भी आप ही हो।

जिस अग्नि के माध्यम से शरीर चल रहा है, जिसमें भोजन पकता है, जो आकाश में कड़कती है बिजली अग्नि बनकर, जो सूरज में आग, प्रकाश बन कर धरती पर आती है, वह अग्नि जिसमें चिता जलती है, सब रूपों में अग्नि जो तत्त्व है आपके विविध रूप हैं। अग्नि को हमारे देश में, हम हिन्दू लोग, सनातन धर्म को मानने वाले लोग, शाश्वत परम्परा को मानने वाले लोग, एक चीज़ हमेशा जानते हैं हमारे यहाँ अग्नि को जला कर पूजन किया जाता है। अग्नि को साक्षी मानकर पति-पत्नी एक दूसरे के बँधन में बँधते है, अग्नि को साक्षी मानकर शिष्य गुरू के कुल में प्रवेश करता है, अग्नि को माध्यम बनाकर सारी परम्परायें निभायी जाती है, अग्नि को माध्यम बनाकर आख़िर में यह शरीर की आहुति आग में डाल दी जाती है। अग्नि को सम्मुख रखा जाता है इसीलिए कि अग्नि हमेशा ऊपर उठती है, सूरज की तरफ़ जाती है, जिसका मतलब है कि ज़िन्दगी को हमेशा ऊँचाई की तरफ़ ले जाना है, ऊपर ही उठते जाना, नीचे नहीं गिरने देना है, अपने आप को ऊँचा उठाओ, और ऊँचा उठाओ, और ऊँचा उठाओ, इसीलिए हम लोग अग्नि को सम्मुख रखते हैं।

अर्जुन ने कहा - आप ही वायु हैं, अग्नि हैं, यम हैं, यम अर्थात् यमन करना। यमन का मतलब होता है किसी चीज़ को फिर से संभाल कर वापिस अपनी स्थिति में रख लेना। यम तो इंचार्ज है। आख़िरी में जो चार्ज लिया जाता है वह तो यमदेवता ही तो लेते हैं। भगवान की तरफ़ से जो-जो भी कुछ चीज़ें आपको दी गयी थीं, सब का चार्ज लिया जाता है आख़िर में। स्टोर रूम का इंचार्ज होता है न कोई। वह आकर पूछेगा - रजिस्टर में आपके नाम जो ऐन्ट्री

हुई है, वह इतने कपड़े हैं, उसमें जूते हैं, इतने मकान हैं, इतनी दुकानें हैं, इतने रूपये पैसे थे, इतनी कीलें थी, इतनी सुईयाँ थीं, इतने सिक्के थे, इतने संसार के फटे हुए चीथड़े थे, इतनी ठीकरे थीं - सब हिसाब रखा जायेगा, सारी चीजें छुड़ा दी जायेंगी। और तो और, जैसे चोरों ने, लुटेरो ने जंगल में किसी को लूट लिया हो, कपड़े भी छीन लिये हों, मौत ऐसा ही काम करती है - सब छीन लिये जाते हैं; परिवार वाले बस इतना करते हैं एक खुला कपड़ा ऊपर से रख देते हैं - ले बस भाई हमारी तरफ़ से इतना। बाक़ी सब लूट लिया जाता है। मौत ने सब हिसाब ले लिया; जैसे आया था वैसी हालत में छोड़ दिया। संसार ने ऐसा कर ही देना है। मौत इंचार्ज है, चार्ज लेती है आख़िर में। सारा चार्ज लेकर और उसके बाद कहती है सारी चीजें छोड़ो, आओ। और आप लोग जानते हैं सब कोई सब कुछ छोड़कर और यह बताकर - भाई कुछ ले नहीं जा रहे हैं, नहीं ले जा रहे हैं, नहीं ले जा रहे हैं - ऐसा बोलते-बोलते हाथ भी खुले छोड़ देता है। 'नहीं ले जा रहे हैं'। हाथ देखो, कुछ भी नहीं ले जा रहे है। सबके हाथ खुले रह जाते हैं। कितनी बार बोलता होगा भाई नहीं कुछ ले जा रहे हैं - आप देख लो हाथ खुले हुए हैं, तलाशी ले ली न, नहीं ले जा रहे हैं' और सच बात है - नहीं ले जा सकोगे। जायेगा तो पुण्य ही जायेगा, जायेगा तो परमात्मा का नाम ही साथ जायेगा, वही कृपा करेगा, वही कल्याण करेगा और कुछ जाने वाला नहीं।

अर्जुन ने कहा - इसीलिए प्रणाम करता हूँ आपको, आपके स्वरूप को प्रणाम करता हूँ। आपका रूप सुंदर है, हर रूप में सुंदर हैं आप। कितने रूप में आपको देखूँ? अर्जुन ने कहा - आपको बार बार प्रणाम करता हूँ। *पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्त* हे कृष्ण! हे गोविंद! एक बार नहीं, अनेक बार प्रणाम, अनेक-अनेक बार प्रणाम। हज़ारों लाखों करोड़ों प्रणाम मेरे स्वीकार करो। कितने प्रणाम करूँ।

एक स्थिति जीवन की वह बनाओ, मैं तो कहूँगा कि हर रोज़ जब-जब भी अपने ध्यान प्रकोष्ठ में प्रवेश करते हो, उस समय की स्थिति ऐसी बनाओ परमात्मा की महिमा को सोच-सोच कर, उसका आनन्द लेते-लेते इतना आनन्द झुक जाये कि अन्दर आनन्द उभरने लग जाये, बार-बार प्रणाम करने के लिए मन करे। ऐसी स्थिति आनी चाहिए जैसे शेख़ फ़रीद की स्थिति आई।

आख़िरी दिनों में जब शरीर छूटने लगा तो शेख़ फ़रीद बार-बार सज्दा करते थे और सज्दा करते-करते बेहोश हो जाते थे। उनके चेलों ने कहा कि अब यह ठीक नहीं लगता, शरीर कमज़ोर है, जैसे ही आप सिर झुकाते हो तो आपको बेहोशी हो जाती है। उन्होंने कहा जब उसकी बारगाह में, उसकी दरगाह में सिर झुका दिया फिर सिर झुकाना हराम है। रख दिया सर तो उसका हो गया। फिर क्यों उठाऊँ? न जाने कितना प्यार रहा होगा, कितना आदर रहा होगा अपने रब के प्रति, अपने मालिक के प्रति, अपने ख़ुदा के प्रति कितना मान रहा होगा कि सिर झुका के कह दिया कि अब उठाना हराम है और ऐसी स्थिति में शरीर छूटा। बहुत प्यार जागे अपने परमात्मा के प्रति, मस्त हो जायें, धन्यवाद देने लग जायें।

अर्जुन ने कहा – 'बार-बार प्रणाम करता हूँ, हज़ारों बार, लाखों करोड़ों बार प्रणाम करता हूँ,' फिर प्रणाम करता हूँ। यह जो इस प्रकार की नमन वाली स्थिति है, यह भक्ति में अभिभूत होना, द्रवित होना, आनन्दित होना, यह एक ऐसा लक्षण होता है कि यह अगर जाग्रत हो जाये तो उस दिन का रस ही कुछ और होगा, उस दिन का आनन्द ही कुछ और होता है। इस स्थिति को अपने अंदर प्रकट करो, इस स्थिति को अपने अंदर जगाओ, कभी इसे मिटने मत दो। प्रणाम पर प्रणाम करते जाओ, आनंद में डूबते जाओ, अपनी होश न रहे, अपनी 'मैं' का ख़्याल न रहे। प्रणाम में हमेशा ही ऐसा होता है, अपनी 'मैं' तो रहती ही नहीं है। अर्जुन ने कहा –

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि

प्रमादात्-प्रमाद से – न जाने कितनी बार ऐसा हुआ होगा, असावधानी में, *अजानता और अज्ञान में, महिमानं मैं आपकी महिमा को समझ नहीं पाया।* कई बार तो मैंने सखा कहकर, मित्र कह कर बोल दिया, कई बार हँसी में आपकी महिमा नहीं समझ पाया तो ऐसे शब्द बोल गया जो नहीं कहने थे। कभी मैंने सीधा-सीधा 'हे कृष्ण' कह कर बोला, और तो और मैंने 'यादव' कह कर भी बोला। हे कृष्ण, हे यादव, मैंने तो कृष्ण कह कर भी बोल दिया, कभी-कभी सीधे-सीधे ही हे सखेती! हे मित्र! जैसे कोई कहे दोस्त, यार कहकर जैसे कोई बोले। मैंने तो यह भी न जाने कितनी बार प्रमाद में, असावधानी में, न जाने

आख़िरी दिनों में जब शरीर छूटने लगा तो शेख़ फ़रीद बार-बार सज्दा करते थे और सज्दा करते-करते बेहोश हो जाते थे। उनके चेलों ने कहा कि अब यह ठीक नहीं लगता, शरीर कमज़ोर है, जैसे ही आप सिर झुकाते हो तो आपको बेहोशी हो जाती है। उन्होंने कहा जब उसकी बारगाह में, उसकी दरगाह में सिर झुका दिया फिर सिर झुकाना हराम है। रख दिया सर तो उसका हो गया। फिर क्यों उठाऊँ? न जाने कितना प्यार रहा होगा, कितना आदर रहा होगा अपने रब के प्रति, अपने मालिक के प्रति, अपने ख़ुदा के प्रति कितना मान रहा होगा कि सिर झुका के कह दिया कि अब उठाना हराम है और ऐसी स्थिति में शरीर छूटा। बहुत प्यार जागे अपने परमात्मा के प्रति, मस्त हो जायें, धन्यवाद देने लग जायें।

अर्जुन ने कहा - 'बार-बार प्रणाम करता हूँ, हज़ारों बार, लाखों करोड़ों बार प्रणाम करता हूँ,' फिर प्रणाम करता हूँ। यह जो इस प्रकार की नमन वाली स्थिति है, यह भक्ति में अभिभूत होना, द्रवित होना, आनन्दित होना, यह एक ऐसा लक्षण होता है कि यह अगर जाग्रत हो जाये तो उस दिन का रस ही कुछ और होगा, उस दिन का आनन्द ही कुछ और होता है। इस स्थिति को अपने अंदर प्रकट करो, इस स्थिति को अपने अंदर जगाओ, कभी इसे मिटने मत दो। प्रणाम पर प्रणाम करते जाओ, आनंद में डूबते जाओ, अपनी होश न रहे, अपनी 'मैं' का ख़्याल न रहे। प्रणाम में हमेशा ही ऐसा होता है, अपनी 'मैं' तो रहती ही नहीं है। अर्जुन ने कहा -

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि

प्रमादात्-प्रमाद से - न जाने कितनी बार ऐसा हुआ होगा, असावधानी में, अजानता और अज्ञान में, *महिमान* मैं आपकी महिमा को समझ नहीं पाया। कई बार तो मैंने सखा कहकर, मित्र कह कर बोल दिया, कई बार हँसी में आपकी महिमा नहीं समझ पाया तो ऐसे शब्द बोल गया जो नहीं कहने थे। कभी मैंने सीधा-सीधा 'हे कृष्ण' कह कर बोला, और तो और मैंने 'यादव' कह कर भी बोला। हे कृष्ण, हे यादव, मैंने तो कृष्ण कह कर भी बोल दिया, कभी-कभी सीधे-सीधे ही हे सखेती! हे मित्र! जैसे कोई कहे दोस्त, यार कहकर जैसे कोई बोले। मैंने तो यह भी न जाने कितनी बार प्रमाद में, असावधानी में, न जाने

देना उन विशेषण की कोई क़ीमत नहीं है, एक 'माँ' शब्द में सब कुछ छिपा है।

कैसे भी पुकारना, परमात्मा तो आपके पुकारने पर अपना प्यार देने को तैयार खड़े हैं। लेकिन एक चीज़ है - जब आप बहुत गद्-गद् हो जायेंगे तब आप कई बार कहोगे कि भले ही मैंने जैसे भी पुकारा, अपने प्यार से पुकारा; जैसे भी व्यवहार किया, अपने प्यार से व्यवहार किया, अपना था न, अपना माना था न, इसीलिए ऐसा बोल दिया। कभी लड़कर के भी बोला, कभी रोककर के भी बोला, चिल्लाकर के भी बोला, जैसे भी बोला होगा अपनापन महसूस करके ही तो बोला है न क्योंकि तुम मेरे हो। किससे कहूँ और जाकर? अपनापन उजागर करने का यह भी तो तरीक़ा है। यह सारी चीज़ें ठीक हैं लेकिन फिर भी गद्-गद् होगा इंसान और गद्-गद् होने के बाद कहेगा, आपकी महिमा समझी है न, आपके स्वरूप को समझा है न, इसीलिए स्वरूप को समझने के बाद अब महसूस होता है ग़लती हुई है। सीधा कृष्ण कहकर, यादव कहकर भी मैंने पुकारा इसीलिए सारी भूलों को क्षमा करना और मेरे प्रणाम स्वीकार करना। बार-बार प्रणाम करता हूँ। आपकी महिमा को प्रणाम करता हूँ और अर्जुन के इस गद्-गद् भाव को आप देखिए कहाँ तक पहुँच गया वह-

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

- इसीलिए माफ़ करना, क्षमा कर देना। अपने आपको तेरे चरणों में दण्डवत करके प्रणाम करने लगा हूँ। मेरी ग़लतियों को क्षमा करना। इसी तरह से **पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः** - जैसे पिता पुत्र के अपराध क्षमा कर देता है, कैसे-कैसे बोला होगा बेटा लेकिन बाप क्षमा कर देता है।

एक इटली की कथा कभी पढ़ने को मिली। पिता के रूप का बड़े सुंदर ढंग से उसमें वर्णन किया है। चर्च में रोज़ जाता है बच्चा। बड़ा हो जाऊँ, अच्छी पढ़ाई-लिखाई करूँ, माँ-बाप के सपने पूरे करूँ। जिस दिन पढ़-लिख गया, पढ़ाई पूरी हो गयी, नौकरी पर जाने लगा, उस दिन प्रणाम करने गया, धन्यवाद देने गया कि एक पड़ाव तक पहुँच गया हूँ। जिस दिन शादी हो गयी उस दिन भी प्रणाम करने गया और जिस दिन इसके घर में बेटे ने जन्म लिया, उस दिन बहुत सारे पैसे लेकर ग़रीबों में पैसा, कपड़ा, न जाने क्या-क्या बाँटा।

कैसे-कैसे बोल गया होऊँगा। अर्जुन ने कहा इसीलिए आप इन सबको क्षमा करना जो मैंने अज्ञानता में बोला। मेरा प्रणाम स्वीकार करना।

बहुत आदर, प्यार, मान हृदय में भरकर, परमात्मा के प्रति सिर झुकाना और फिर कहना - मेरे पुकारने में न जाने कितनी बार ग़लतियाँ हुईं, कभी शिकायतें थीं, मैं तेरी महिमा को नहीं समझा। कभी कैसे भी बोला, कभी कैसे भी बोला। उन सब भूलों को माफ़ करके मेरे प्रणामों को स्वीकार करो *नमो नमस्तेसु* - तुम्हें नमन हो, बार-बार प्रणाम हो क्योंकि मैंने आपके स्वरूप को समझा, तुम्हीं आदिदेव हो; पुरूषापुराण- तुम्हीं पुराण पुरूष हो। *त्वमस्य विश्वस्य परंनिधानम्* - तुम ही इस सारे संसार के परम निधान हो। मैंने न जाने कितनी-कितनी बार किस-किस तरह से आपको संबोधन दे दिया। यह जो संबोधन है न जब बहुत सगापन होता है तो व्यक्ति कैसे भी बोल लेता है। 'माँ' बोलना पहले व्यक्ति शुरू करता है; संसार में जब बोलता है तो माँ का नाम पहले बोलता है और माँ उसके पहले शब्द पर न जाने क्या-क्या कुर्बान करने को तैयार हो जाती है - मेरे बच्चे ने पहली बार बोलना शुरू किया, आज उसने 'माँ' कहना शुरू कर दिया; माँ बहुत खुश होती है मेरा नाम बोला है इसने। अब वह सिखाती है पिता का नाम भी बोल और फिर बच्चे को लेकर जायेगी पिता के सामने नाम बुलवायेगी - आपका नाम बोला है इसने; उसको भी बहुत अच्छा लगता है। लेकिन जब बच्चा माँ के प्रति 'माँ' कहकर बोलता हो, 'माता जी' कहेगा, 'मम्मी जी' कहेगा, जो भी शब्द बोलेगा। वैसे अपनी परम्परा के यह शब्द मम्मी जी वग़ैरह तो नहीं हैं, अपना लिये गये हैं। नहीं तो आप लोग वह परामिड और इजिप्त के पिरामिड, और उसमें जो ममी-वमी जो देखते हैं या सुनते हैं। लेकिन फिर भी कोई ऐसी बात मैं नहीं कहूँगा, शब्द सब अपनी गरिमा रखते हैं। शब्दों की बात उतनी नहीं होती, जितनी उसके पीछे छिपी हुई भावनाएं होती हैं। नहीं तो लोगों ने तो शब्दों में 'पिता' कहते-कहते 'डैडी-डैडी' कहते-कहते 'डैड' बोलना शुरू कर दिया है लेकिन उन सारे शब्दों की तरफ़ न जाते हुए बच्चा अपने माँ को कितना भी जी लगाकर बोले लेकिन जब वह कहता है न सीधा 'माँ', 'ओ माँ सुन!' दुःख में चिल्लायेगा 'माँ।' अब यह जो 'माँ' है, यह जो शब्द है इसमें जो कुछ है कितने भी आगे विशेषणों लगा

सैर करने आये थे। यहाँ आकर खड़े हुए। उन लोगों ने मुझे तो घर में रखा नहीं था, घर से बाहर निकाल दिया था, मैं तो अलग कहीं रहता था लेकिन मैं उन दोनों को खुश देखकर खुश होता रहता था। आज जब वह लोग इधर, सात दिन पहले यहाँ आये थे, झील के किनारे तो मैंने उनको ईशारा किया था। जिस नौका में वह बैठे मैंने कहा यह टूटी हुई नौका है, इसमें नहीं बैठो दूसरी नौका ले लो। मेरी पुत्रवधू ने मुझे डांट कर कहा कि आप अपना काम कीजिए और मेरे बेटे की तरफ़ ईशारा करके कहा - 'यह बूढ़ा यहाँ भी हमको जीने नहीं देगा। यहाँ हम घूमने के लिए आये हैं, यहाँ भी ईशारा करता है। कहता है यहाँ बैठो और वहाँ नहीं बैठो। क्या इसकी आज्ञा में ही हम चलते रहेंगे?'

पादरी लिख रहा है कि मैंने उस बूढ़े को बहुत रोते हुए देखा, वह कह रहा था - 'क्या बताऊँ, इस झील के किनारे खड़े होकर मैंने अपने बेटे और बहु को डूबते देखा है। लेकिन पिता हूँ न इसीलिए अपना सब कुछ बेचकर के आज उनकी आत्मा को शांति देने के लिए रूपये लेकर के आया हूँ कि कहीं भी दान कर देना मेरे बच्चों को शांति मिल जाये, मुझे और कुछ नहीं चाहिए। अपना पेट कैसे भी भरूँगा, लेकिन परलोक में भी चाहता हूँ वह सुखी रहें, शान्त रहें, उन्हें खुशी मिले, उनको शांति मिल जाये, उनकी आत्मा को शान्ति मिल जाये। पिता का दिल बड़ा ऊँचा दिल होता है।

अर्जुन ने कहा कि जैसे एक पिता अपने पुत्र के लिए सब कुछ अर्पण करता है, उसकी ग़लतियाँ भी क्षमा कर देता है, तुम पिता और पुत्र वाला संबंध समझना, क्षमा करना। जैसे मित्र मित्र के लिए उसकी सारी ग़लतियों को क्षमा कर देता है ऐसे ही हे कृष्ण मेरी ग़लतियों को क्षमा करना। प्रियः प्रियाया - पति जैसे अपनी प्रिया पत्नी के लिए उसके सारे अपराधों को क्षमा कर देता है *अर्हसि देव साहुम्* - ऐसे ही आप मुझे सह जाओ, मेरी गलतियों को सह जाना, मेरी ग़लतियों को क्षमा कर देना।

आप सोचिये, यहाँ आकर जो अर्जुन ने भाव व्यक्त किया है गीता का यह प्रकरण बड़ा ही मार्मिक प्रकरण है कि मेरी सारी ग़लतियों को क्षमा करना, अपराधों को क्षमा करना।

❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋

उस दिन हाथ जोड़ कर कहा – विवाह को दस साल हो गये थे। कितनी-कितनी बार तेरे आगे हाथ जोड़े, अब मेरे घर में संतान आयी। अब बेटे के धन्यवाद देने के लिए कि तूने मुझे संतान दी, मैं आया हूँ धन्यवाद करने, मेरा धन्यवाद स्वीकार करो, यह मेरा बच्चा लायक़ बन जाये, मेरे पास सपने बस यही हैं।

एक दिन रोता हुआ आया यह। इसने आकर कहा मेरी पत्नी नहीं रही, अब बेटा ही बेटा है, हम दोनों का घर में मन नहीं लगता। अब मेरा सपना यही है मेरा बच्चा लायक़ बन जाये, इसको आशीर्वाद देना।

लिखने वाला जो लेखक है वह किसी चर्च का पादरी है, वह लिखता है कि मैं रोज़ देखता हूँ इस आदमी को आते हुए। आज मैं बूढ़ा हो गया हूँ, बूढ़ी आँखों से इस आदमी को देख रहा हूँ यह रोज़ आता है। कभी कुछ कहता है, कभी कुछ कहता है। आज यह फिर आया है। कहता है मेरे बेटे की नौकरी लग गयी। धन्यवाद। मेरे पास आकर के पैसे रखकर के गया। पादरी कहता है, लिख रहा है अपनी कहानी। पैसे रख गया मेरे पास 'ग़रीबों में बाँट देना, जहाँ भी ठीक समझो वहाँ लगा देना। मेरे बेटे की नौकरी लग गयी है।' कहते हैं आज फिर आया, थोड़ा उदास भी है लेकिन थोड़ा खुश भी है। मैं उससे पूछता हूँ – बाबा, आज फिर क्या बात है? जो भी संबोधन रहा होगा, उसी हिसाब से कहा कि आज क्या बात है? थोड़ा खुश भी हो, रो भी रहे हो? कहता है मेरे बच्चे ने अपनी मर्ज़ी से शादी कर ली। जहाँ मैं चाहता था, जिस तरह से मैं चाहता था, जिस तरह के परिवार में चाहता था वहाँ नहीं गया। मना भी किया कि यहाँ शादी ठीक नहीं रहेगी। अपनी पसंद का चुनाव उसने कर तो लिया लेकिन मेरे हिसाब से चुनाव में ग़लती है। फिर भी वह खुश रहे इसीलिए फिर पैसे लेकर आया हूँ, दान करने के लिए आया हूँ।

कहता है फिर एक दिन मैंने उसको देखा, वह बहुत रोया आकर। अबकी बार पैसों का ढेर है उसके पास और मेरे पास लाकर कहता है यह सब पैसे संभालो, लाखों रूपये उसके पास हैं, कपड़े फटे हुए उसके, बहुत बुरी तरह रो रहा था। मैं पूछता हूँ कि कई साल के बाद तू यहाँ आया, बहुत सारा पैसा लेकर के आया है, आज क्या बात है? कहता है कि आज मेरे साथ बहुत बुरा घट गया है। अभी कुछ दिन पहले बेटा बहु दोनों के दोनों यहाँ झील के किनारे

गीता के ग्यारहवें अध्याय का अन्तिम पुष्प, अर्थात् शिखर पर खिला हुआ फूल; आखिरी श्लोक के साथ इस अध्याय को हम सम्पन्न करेंगे। अर्जुन की स्तुति के बाद भगवान ने उपदेश दिया - हे अर्जुन, ऐसा व्यक्ति मेरा अपना है, मेरा प्रिय है -

मत्कर्मकृत्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

- *मत्कर्मकृत्* - मेरे लिए जो कर्म करता हो, मुझे आधार मानकर जो संसार में कर्त्तव्य कर्म पूरे करे, *मत्परमो* और मेरे पारायण हो जाये *मद्भक्तः* - मेरा भजन करने वाला, *सङ्गवर्जितः* - संसार की आसक्ति से जो ऊपर उठ जाये, किसी भी प्रकार की आसक्ति संसार के प्रति जिसकी न हो, *निर्वैरः सर्वभूतेषु* - प्राणीमात्र के प्रति, मनुष्य ही नहीं प्राणीमात्र कोई भी ऐसा न हो जिसके प्रति वैर रखता हो, मेरा भक्त वह है जो *निर्वैर* है, वैर से रहित है। ऐसी कसौटी, ऐसी विशेषताएं जिसकी है, *यः स मामेति पाण्डवः* - हे अर्जुन! ऐसा जो भी कोई संसार में है, वह मेरा अपना है, मेरा प्यारा है।

अर्जुन ने जैसी स्तुति की, भगवान श्रीकृष्ण को कहा - *त्वमस्य विश्वस्य परमं निधानम्* - हे कृष्ण, तुम ही इस संसार के परम निधान हो, परम आश्रय हो, सब संसार आप में ही टिका हुआ है। अर्जुन ने कहा कि मैं दण्डवत होकर आपको प्रणाम करता हूँ, बार-बार प्रणाम करता हूँ, न जाने कितनी बार मुझसे किस-किस प्रकार की भूलें हुईं। यह भी कहा - मैंने जो भी कुछ आपको हँसकर या प्रमाद से, या असावधानी से, जो भी सम्बोधन दिये, आपकी महिमा को क्योंकि समझ गया हूँ इसीलिए उन सब को क्षमा करना - उसी प्रकार जैसे कोई मित्र अपने मित्र के अपराधों को क्षमा करता है, उसी प्रकार से मुझे सह लीजिए जैसे पिता अपने पुत्र के अपराधों को सह लेता है, उसी तरह से मुझे सहना जैसे पति अपनी प्रिय पत्नी के अनेक बार बोले गये कटु या मर्यादा विहीन शब्दों को पति सह लेता है। इसी प्रकार से, हे कृष्ण, आप मुझे सह लेना।

फिर अर्जुन ने कहा कि मैं आपको प्रणाम करता हूँ, बार-बार प्रणाम करता हूँ। शायद यह एहसास दिलाया कि मैंने अपना माना है न, अपना समझा है न,

इसीलिए मैं ऐसा कर गया। अब भगवान ने समझाया कि मेरा अपना कौन है? मेरा प्यारा हो इसकी पहचान क्या है? अर्जुन ने यह एहसास दिलाया कि यह सब कुछ जो भी हुआ, अपनेपन के कारण हुआ न, बहुत ज़्यादा लगाव था।

अब भगवान ने कहा - मेरा अपना कौन है? इसकी पहचान बताता हूँ। *मत्कर्मकृत्* - मेरे लिये जो कर्म करे; जीवन जीये तो मेरे लिये, कर्म करे तो मेरे लिये, अपनी कोई भावना हो ही नहीं मेरा कृष्ण, मेरा गोविंद, मेरा प्रभु प्रसन्न होगा, उसकी नौकरी में हूँ, उसकी सेवा में हूँ, उसके बताये हुए निर्देशन में जीवन जी रहा हूँ, इसीलिए जो उसकी आज्ञा, जो उसका हुक्म, जो उसे अच्छा लगे, वही कर रहा हूँ। मेरी अपनी मर्ज़ी नहीं, उधर से आदेश होता है कर्म कहता हूँ जो ऐसा महसूस करे, जो अन्तः प्रेरणा से चलता है, हृदय में उठती हुई आवाज़ के अनुवार चलता है, जिसने जीवन का सारा भार मेरे ऊपर सौंप दिया है, जिसने पूरी डोरी मेरे ऊपर सौंप दी है, मेरे लिए जो कर्म कर रहा है, मेरा होकर कर्म कर रहा है, पूर्ण रूप से मेरे ऊपर निर्भर होकर कर्म कर रहा है, वह मेरा है।
कर रहा है, वह मेरा है।

महिलायें भोजन बनायें, भगवान का नाम जपते हुए; लेकिन एक बात ज़रा सोचिए कि अगर विदेश में बैठा हुआ बेटा बरसों के बाद घर पर आये, माँ जब भोजन बनाने के लिए बैठेगी, उस समय कितना ध्यान उसका रहेगा - मेरा बेटा आयेगा, भोजन खायेगा, किसी और को पहले नहीं खाने दूँगी, पहले उसको खिलाऊँगी; भोजन खिलाऊं, बहुत सारी चीजें बनाऊं, पता नहीं यह पसंद आये, या यह पसंद आये - इतना प्यार, इतना भाव, भले ही मसाले वही हों, भोजन की सामग्री वही हो जो रोज़ थी लेकिन उस दिन का स्वाद ही कुछ और होगा।

निश्चित बात है कि यदि आप बहुत प्यार से अपने परमात्मा को आमंत्रित करके और फिर उसके लिए भोजन बनायें या कर्म करें - उसको अर्पण करने के लिए - तो उस भोजन का स्वाद ही और होगा। किसी के निमित्त जब कोई कार्य आप करते हैं बहुत प्यार से करते हैं, उस कार्य का रस और हो जाता है और अगर मजबूरी समझकर, किसी कार्य को करते हैं तो फिर वह मजबूरी वह ढोने वाला कार्य, उसमें रस नहीं रह जाता।

कहा है कि जो मुझे अपना मानकर या मेरे लिए कर्म करता है वह मेरा है और सच बात तो यह है कि परमात्मा उसके अंदर रस पैदा कर देते हैं, उसके कृत्य में रस आ जाता है, उसके कार्यों में आनंद आ जाता है।

कोई भी ज़िम्मेदारी संसार की पूरी करो लेकिन प्रभु को सम्मुख रख कर - भोजन बनायें या भोजन कमायें - रोज़ी-रोटी कमाओ, या पकाओ, या खिलाओ, सब में अपने परमात्मा का ध्यान रखना और तब देखना एक छोटा-सा कृत्य भी आपका, आपको अपने परमात्मा की ओर ले जाने वाला बन जायेगा।

इसीलिए तो कभी रामकृष्ण परमहंस ने कहा था कि संसार की सारी चीज़ें - चाहे कोई गुणी हो, ज्ञानी हो, धनी हो, रूपवान हो, विद्यावान हो - इन सारे गुणों को उन्होंने कहा कि मैं ज़ीरो मानता हूँ और ज़ीरो को जोड़ते चले जाओ तो रिज़ल्ट भी ज़ीरो, शून्य, शून्य इकट्ठे करते चले जाओ एक जगह योग करो तो वह जो योग है वह भी शून्य ही बनता है लेकिन उन्होंने कहा कि जिसने 'एक' पहले लगा दिया, एक नाम परमात्मा का है, उसके आगे जितने ज़ीरो रखते चले जाओगे उन ज़ीरो की भी कीमत हो जायेगी। कितने गुणा बढ़ जाओगे तुम? तीन ज़ीरो, चार ज़ीरो, पाँच ज़ीरो, इकाई से लेकर लाख तक पहुँच जाओगे; गुणवान होना, बलवान होना, बुद्धिमान होना सारी चीज़ें विशिष्ट हो जायेंगी अगर एक नाम पहले जुड़ गया, परमात्मा का नाम अर्थात् इस संसार में, हर रूप में, अगर एक को जोड़कर चलो तो तुम्हारे जीवन में एक अलग तरह की विशेषता होगी, गुण भरते चले जायेंगे।

धन संसार में व्यक्ति को भटका देता है लेकिन अगर परमात्मा से धन को जोड़ दिया वही परमात्मा के निमित्त किया गया ख़र्च, वह धन, परमात्मा के दरबार में लेकर जायेगा।

विद्या बड़ा भारी गुण है लेकिन बड़े विवाद पैदा करा दिये, बड़ी अकड़ आती है विद्या की लेकिन जैसे ही परमात्मा की ओर उन्मुख हो गये यही विद्या परमात्मा की ओर ले चलेगी और न जाने कितने लोगों को परमात्मा की ओर मोड़ देगी क्योंकि विद्वान लगातार संसार में जब विद्या को बांटता चला जायेगा, परमात्मा को ध्यान में रखकर, तो विद्या स्वयं को भी भगवान की तरफ़ लेकर जायेगी और संसार को भी उधर मोड़ देगी क्योंकि जुड़ गया न साथ।

बलवान होना गुण है लेकिन बलि हो जाने के बाद बड़ी भारी मुसीबत है - दूसरों को सताने लग जाता है इंसान लेकिन भगवान की तरफ़ अपने बल को मोड़ कर, उसे प्रसन्न करने के लिए अपने बल को मोड़ दे; जिनके ऊपर अन्याय हो रहा है, अत्याचार हो रहा है उनकी सुरक्षा करने के लिए, रक्षा करने के लिए अपने बल का प्रयोग करें और अपने बल से किसी को सताये नहीं, तो इंसान अपने बल के माध्यम से भगवान तक पहुँच जायेगा। मन को माध्यम रखा परमात्मा के अर्पण किया, वह बल भी भगवान की तरफ़ लेकर जायेगा। जो भी हमारे पास है उस सबको अर्पण करके, परमात्मा की तरफ़ और फिर चलकर के देखें वही वस्तु आपको परमात्मा के निकट ले जाने में सहायक सिद्ध हो जायेगी इसमें कोई संदेह नहीं है लेकिन चलने की कोशिश तो करें। उसकी राह में जो भी आपके पास है उसे अर्पण करते हुए चलिए, जो गुण आपके पास हैं उस गुण को परमात्मा की ओर अर्पित कर दीजिए। कोई चित्र बनाना जानता है, चित्रों में परमात्मा की महिमा का व्याख्यान शुरू हो जाये, गाना जानता है तो गाये उसकी महिमा को।

तुकाराम, भगवान के गीत गाने के लिऐ बैठे। भजन गाने बैठे और गाते-गाते जिस समय निढाल हो गये, तो जैसी हालत उनकी वैसी हालत सुनने वालों की। किसी व्यक्ति ने, जो बहुत अच्छा संगीत जानता था, तुकाराम से आकर निवेदन किया - महाराज, अगर आप इजाज़त दें, आज्ञा दें, अनुमति हो, तो मैं आपके सामने संगीत सुनाना चाहता हूँ, क्योंकि आपने तो संगीत सीखा ही नहीं, मैं सुनाऊँगा। आप गाने में सुरों का ध्यान नहीं रख पाते।

तुकाराम ने कहा - ठीक है, आज हम भी सीख लेंगे, न भी सीख पाये तो समझ तो लेंगे कि ऐसे गाया जा सकता है।

उसने बैठ कर गाना शुरू किया। न जाने क्या हुआ कोई सुनना ही नहीं चाहा, कोई बैठ ही नहीं पाया, लोग उठकर के चले गये।

जब लोग उठकर चले गये, संगीतकार ने तुकाराम से पूछ ही लिया आपने जो गाया उसमें तो कोई ख़ास बात ही नहीं, मैंने जो गाया वह तो विधि-विधान से गाया क्योंकि मैं तो जानकारी रखता हूँ संगीत की उसके बाद भी लोग उठकर चले गये, बात क्या है?

तुकाराम ने कहा - तुमने गले से गाया, गले की कसरत की और मैंने दिल से गाया, अपने परमात्मा को बैठाकर। तुमने संसार का मनोरंजन किया, मैंने अपने प्रभु को रिझाया; तूने संसार की वाह-वाह लूटने के लिए स्वरों को जोड़ा, मैंने प्रार्थना करने के लिए उसके सामने अपने स्वरों को फैलाया; तूने संसार से कला देकर कुछ माँगना चाहा, पैसा लेने का ऑर्ट, कला प्रयोग की, मैंने इसको परमात्मा का होने के लिए उसको कुछ सुनाया, इसीलिए इस हृदय की जो हिलोर थी वह इन सब हृदयों तक पहुँच रही है और यह जानते हैं कि अगर इस हृदय को कुछ मिल रहा है तो यह पास आने को तैयार और अगर कोई माँगने वाला आकर खड़ा हो गया, जो इनसे कुछ छीनना चाहता है, तो यह दूर भागने को तैयार खड़े हुए हैं इसीलिए गाओ' - तो हृदय से। संसार का मनोरंजन नहीं, स्वयं की तृप्ति के लिए गाओ, स्वयं का आनंद लेने के लिए गाओ' तो अगर संगीत है और उसमें परमात्मा को बैठा लिया तो वह संगीत भी परमात्मा की ओर ले चलेगा। कुछ भी स्थिति हो वहीं अपने आपको डुबाओ।

भगवान ने कहा - जो मेरे लिए कर्म करे *मत्पर्मा* - मेरे पारायण हो करके चले, मेरे अपने की, मेरे प्यारे की पहचान यही है मेरे पारायण हो जाये।

शब्द बड़ा गहरा है। केन्द्र में परमात्मा को बसाये और परिधि में अपने को रखे। जैसे आप केन्द्र में धन को रखते हैं, परिधि में स्वयं को रखते हैं, इसीलिए चक्कर लगाते हैं, दुनिया भर में दौड़ते-भागते हैं किस लिये ? धन कमाने के लिए। अगर मकान बनाना है तो केन्द्र में मकान रखेंगे और स्वयं को परिधि में रखेंगे; तो मकान बनाना है बस चक्कर उसी के काटते रहेंगे। सारा दिन ध्यान आयेगा - कहीं चलोगे-फिरोगे, रोड पर जा रहे हैं तो किसी का मकान देखकर सोचोगे - 'डिज़ाईन तो यह भी अच्छा है, ऐसा भी बनाया जा सकता है।' आर्किटैक्ट ने अगर कोई और नक़्शा आपको दिया हो, डिज़ाईन कुछ भी दिया हो लेकिन आप किसी का गेट सुंदर मानकर गेट लगाने लग जाते हैं - 'गेट ऐसा ही बनाऊँगा भले ही आर्किटेक्ट ने कैसा भी रखा हो;' बाहर का आंगन फ़लाने व्यक्ति के मकान का अच्छा लगा इसीलिए आंगन ऐसा ही होना चाहिए; किसी की खिड़कियाँ पसंद आ जायेंगी आपको और आर्किटैक्ट

के लिए मुसीबत - मैंने तो नक्शा बनाया कुछ अलग ढंग से, डिज़ाईन रखा था अलग ढंग से और इसने दस जगह की चीज़ें जोड़कर, लाकर रख दीं और कहता है ऐसा बनाओ और आप सोचते हैं ज़्यादा सुंदर हो जाये मेरा मकान। तो सारा दिन दिमाग़ में क्या है - मकान, सपने में क्या आयेगा - मकान। हर चीज़ में मकान बैठ गया क्योंकि केन्द्र में मकान है। आपके हृदय में मकान बैठा हुआ है इसीलिए परिक्रमा मकान की कर रहे हैं आप, भवन की कर रहे हैं।

एक व्यक्ति को मोक्ष के संबंध में कोई जानकारी देने लगे हम - इतने समय तक मोक्ष का आनंद रहता है; वह आदमी थोड़े समय बाद बोला - एक बात बताईये, वह मोक्ष जो बड़े आनंद की चीज़ है, वहाँ मकान-वकान भी होते हैं या नहीं होते हैं? - क्योंकि उसको मकान में ही मोक्ष दिखाई दे रहा है। तो अगर केन्द्र में मकान है, अपने को दूरी पर खड़ा कर लिया, परिधि में खड़ा कर लिया, दूरी, केन्द्र, मकान बन गया तो क्या होगा? परिक्रमा आप मकान की करते रहेंगे।

किसी समय बेटी की शादी करनी है, यह केन्द्र में बात बैठा ली तो सारा दिन परिक्रमा वहीं करोगे, कहीं भी जाओगे, किसी का भी जवान बेटा देखा - 'यहाँ रिश्ता हो सकता है, काम अच्छा चल रहा है इनका, बात की जा सकती है' - क्योंकि केन्द्र में एक भाव बैठ गया इसीलिए उसी की परिक्रमा कर रहे हैं आप।

किसी के केन्द्र में कुर्सी है, सत्ता है, इसीलिए अगर वह कहीं सत्संग में भी आयेगा तो यही ध्यान रखकर के - यहाँ इतना सारा वोट बैंक है, यहाँ जाना चाहिए, मिलना चाहिए, दान भी देना चाहिए, यहाँ के मंत्री प्रधान के साथ संबंध बनाना चाहिए। सत्ता ध्यान में है; और कमाल की बात यह है मति होते हुए भी हम मति हीन लोग मतिहीनों को गद्दी पर बैठा देते हैं और बाद में अपनी मति को कोसते हैं कि हमने क्या कर दिया? बड़ी पीढ़ा होती है मन में, एक मतिहीन इंसान को, हम मति रखते हुए, अक्ल रखते हुए, गद्दी पर बैठा रहे हैं, कितना मतिहीन वाला कार्य हमने कर दिया। बाद में अपनी मति को कोसते हैं - ऐसा क्यों किया हमने? और यह स्थिति बाद तक पीढ़ा देती

है और उनको जिनको हमने मतिहीन माना, मूर्ख मानते रहे, उनके सामने तो सत्ता ही केन्द्र में रही इसीलिए परिक्रमा करते हुए, रिझाते हुए सत्ता तक पहुँचे। पर मैंने आपसे कहा कि किसी के केन्द्र में धन है तो किसी के केन्द्र में मकान, किसी के केन्द्र में रिश्ता, किसी के केन्द्र में कुर्सी, किसी के केन्द्र में कोई और पदार्थ, तो सारी परिक्रमा उसी के लिए करेगा वह।

भगवान ने कहा - अगर तुम मुझे केन्द्र में बैठाओ और फिर मेरी परिक्रमा करने वाले बन जाओ तो फिर तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा, इसमें कोई संदेह नहीं। मेरे पारायण हो जाओ।

छोटा-सा बच्चा घर में बैठा हुआ है, चलना सीख गया अब, गिरता है फिर चलने लग जाता है, अब माँ भोजन बनायेगी तो ध्यान रहेगा बच्चे में, चलेगी-फिरेगी, काम करेगी, घर के अंदर जाये या बाहर जाये, ध्यान बच्चे में है अगर हल्की-सी भी आवाज़ कहीं खट की भी आती है दौड़ के जाती है - मेरा बच्चा बैठा हुआ है उसके ऊपर कोई चीज़ न गिर गयी हो - घर के सारे काम निबटायेंगे लेकिन सारे कार्य निबटाते-निबटाते माँ का ध्यान बच्चे में लगा रहता है क्योंकि केन्द्र में बच्चा बैठा हुआ, माँ उसकी परिक्रमा कर रही है। उसको नींद भी अगर लेनी हो, अपनी सुध नहीं रहती, अपने बच्चे में ध्यान लगा कर के सोती है - गिर न जाये, चोट न खा जाये, नींद ठीक तो आ रही है, कपड़ा उसके ऊपर ठीक तो है, सर्दी ज़्यादा है, ठंड न लग जाये - बच्चे में कितना ध्यान केन्द्रित कर दिया, नींद भी उसके ऊपर अर्पित कर दी है, अपना सुख भी उसके ऊपर अर्पित कर दिया, अब उसी की परिक्रमा करती है। इसे बोलते हैं पारायण हो जाना।

ऐसे ही चलो, फिरो, खाओ, पियो, उठो, बैठो, संसार के कार्य करो, संसार का व्यवहार निभाओ लेकिन अपने कृष्ण में, अपने गोविंद में, भगवान में, जिस भी ईष्ट देव को मानते हो उसी में अपना ध्यान टिकाकर संसार के कार्य करना शुरू कर दो तो हर कार्य में परमात्मा बस जायेगा और हर रूप में आपको परमात्मा का एहसास होगा और उस समय जब तुम कर्म करोगे तो यह एहसास होगा कि मैं और मेरा भगवान दूर नहीं है, निकटता अनुभव होगी, अंतर में बैठा हुआ अनुभव में आयेगा।

अर्जुन से कहा - ऐसी कोई स्थिति जो कोई अपनाये, अर्जुन वह मेरा अपना है। भगवान को यह कहना कि भगवान तुम मेरे हो, इस कह देने से बात नहीं बनेगी, एहसास दिलाने से भी नहीं, एहसास अंदर करने से बात बनेगी, क्योंकि प्रत्येक कर्म में जब परमात्मा बस गया तो फिर पूरा ध्यान उधर ही रहेगा जैसे माँ का ध्यान बच्चे में है। या विवाह हो जाने के बाद कुछ समय के लिये मायके गयी पत्नी; अब वहाँ वह भोजन करती है तो भोजन करते भी क्या ध्यान है उसका - अभी भोजन खा लिया होगा, आठ बजे भोजन करते हैं, अभी तो साढ़े आठ बजे गये हैं, पौने नौ बजे हैं, ज़रूर भोजन कर लिया होगा, उनके भोजन के समय के बाद ही भोजन करूँगी, इस समय बैठे होंगे, इस समय खा रहे होंगे, इस समय यह कार्य कर रह होंगे - पूरा ध्यान ही उधर है, चाहे कितनी भी दूर क्यों न हो।

इस दुनिया में चाहे देश में रहो, परदेस में रहो, अपनों में रहो, बेगानों में रहो लेकिन सबमें अपने परमात्मा का ध्यान करना और सर्वत्र उसी का ध्यान रहे कि मेरा परमात्मा मुझसे प्रसन्न रहे, कोई ऐसा कार्य न हो कि वह रूठ जाये।

एक बात और ध्यान रख लेना - भगवान इतना जल्दी रूठता भी नहीं जितना हम लोग मान लेते हैं - ऐसे पूजा नहीं की, आज ऐसे ग़लती हो गयी, आज दिया जलाने में ग़लती हो गयी, आज आसन लगाने में ग़लती हो गयी, भोग लगाने में ग़लती हो गयी, आज माला ठीक ढंग से नहीं पकड़ी, आज हड़बड़ाहट में आये थे, ज़रूर भगवान नाराज़ हो गया होगा - आप यह याद रखना कि इतना जल्दी नाराज़ नहीं होता वह। हाँ, अगर भूलों पर भूलें करते चले गये और नाराज़ कर दिया तो फिर मनना भी आसान नहीं है उसका, फिर तो बहुत मुश्किल हो जायेगी। सावधान रहना तो बहुत ज़रूरी है, उसे मनाने के लिये कार्य करना तो बहुत ज़रूरी है पर देखा जाये तो परमात्मा रूठने और मनने वाली स्थिति में है भी नहीं, वह तो आनंद रस है लेकिन जब यह भाग्य कठोर होकर सज़ा देने के लिए खड़ा होता है न, तब लगता है कि रूठ गया वह, तब रूद्र बनता है, तब रूलाता है और जब रूलाने पर आता है बड़ा कठोर हो जाता है। जिसे वह रूलाना चाहे उसे सारे दुनिया हँसाने की कोशिश करे

नहीं हँस सकता और जिसे वह हँसाना चाहे सारी दुनिया रूलाये लेकिन वह कभी रो नहीं सकता यह बात निश्चित है। जिस पर वह कृपा करता है हर हाल में हँसेगा, प्रसन्न रहेगा, मस्त रहेगा वह। इसीलिए पूरा ध्यान उसी पर रखना।

भगवान ने कहा - *मत्कर्मकृत्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः* - मेरा भक्त वह है जो मेरा भजन करता है।

आप जिसको केन्द्र में मानकर बैठे हैं रात-दिन चर्चा भी तो उसी की करोगे न। पैसा कमाने की भावना हो;, तो रात-दिन बातचीत पैसे की, कुर्सी के लिये ध्यान है तो बातचीत भी कुर्सी की होगी। कहा कि अगर तुम मेरे भक्त हो तो फिर चर्चा मेरी ही हो, मेरा भजन-पूजन, मेरा ही जप, मेरी ही बात और फिर ऐसे ही लोगों की संगति, जिनकी संगति में बैठने से भक्ति जागती है; जिनकी संगति में बैठने से भक्ति छूटती हो, भाव दूर होता हो, उनका तो संग भी नहीं किया जाये। जो तुम्हारी संगति में बैठकर तुम्हारे साथ परमात्मा की महिमा का वर्णन करे, उनकी संगति खोजो। बैठे हैं, चर्चा करें और चर्चा करते-करते इतना आनंद में आ जायें वहीं भजन शुरू हो जाये, सेवा करने की योजनाएं बनने लग जायें। तो जो मेरे पारायण है, मेरे लिए कर्म करता है, मेरे लिए भजन करता है, मेरी ही सेवा करता है।

सङ्गवर्जितः - यह शब्द भी एक शर्त है, यह सारी चीज़ें होनी चाहिएं लेकिन उसके बाद भी कहीं आसक्ति न हो, संसार में, किसी पदार्थ में, किसी व्यक्ति में, किसी स्थान में, किसी भवन में - कहीं पर भी आसक्ति न हो, तब वह मेरा हो सकता है, नहीं तो क्या होगा? अगर पदार्थ में आसक्ति है तो पदार्थ के मिलने से और बिछड़ने से भक्ति छूट जायेगी।

एक व्यक्ति को हम देखते थे, सबसे आगे आकर बैठते थे सत्संगों में और यह कहते थे कि जहाँ जाओगे वहीं साथ-साथ जायेंगे, मिलिटरी के रिटायर्ड व्यक्ति थे। बोले - आप बस बता देना कि अब कहाँ सत्संग होने वाला है, वहीं पहुँच जाऊँगा और एक दिन कहने लगे - आप कहते हैं आसक्ति छोड़ो, हमें तो आसक्ति हो गयी सत्संग से हो गयी, हम तो कहीं जाने वाले नहीं इधर-उधर। मैंने कहा - आसक्ति नहीं, सत्संग के प्रति लगाव और प्रेम रखो, लगन बनी रहे, नहीं तो फिर क्या होगा - एक आसक्ति के बाद अगर और

बड़ी आसक्ति सामने आ गयी तो उसे छोड़ दूसरी तरफ़ चले जाओगे। सत्संग में कुछ दिनों के बाद देखा जब वह सज्जन नहीं आ रहे थे तो पूछा - वह जो आगे बैठते थे वह सज्जन कहाँ हैं? वह बोले - वह ब्रिगेडिर साहब, उनकी तो नई गाड़ी आ गयी है, अब वह आजकल सवेरे से लेकर शाम तक हाथ में पाईप लेकर उसे धोते रहते हैं और रगड़ते रहते हैं, आजकल यही कार्य है। रिटायर्ड आदमी मिलिटरी के, पहले तो कहते थे - बस अब एक ही ध्यान है - सत्संग, अब और कहीं नहीं जाना; अब क्योंकि गाड़ी नयी आई और गाड़ी में आसक्ति बहुत है, बहुत देर के बाद नंबर लगा होगा, पसंद की गाड़ी आ गई, अब लेकर बैठे हैं पाईप, धो रहे हैं, पोंछ रहे हैं, रगड़ रहे हैं।

अब ज़रा विचार कीजिए अगर पदार्थ में, या वस्तु में, या संसार में कहीं भी आसक्ति है तो फिर क्या करोगे आप? उससे आगे कोई और पदार्थ की आसक्ति आ गयी उसे छोड़ोगे, फिर वहाँ चल पड़ोगे।

भगवान ने कहा - संसार में आसक्ति नहीं, असंग हो जाओ और अपना समस्त प्यार मेरे प्रति अर्पित कर दो तो यह बात निश्चित है कि फिर तुम मेरे ही रहोगे, फिर किसी के नहीं रहोगे, संसार के नहीं और संसार के अगर हो गये तो संसार में जो प्यार बाँटोगे, उस प्यार के माध्यम से मेरे क़रीब आओगे क्योंकि वहाँ कुछ पाओगे नहीं, लेने की कामना नहीं रखोगे, बाँटने की इच्छा रहेगी।

यह बात ज़रा समझने की है। प्रेम का विस्तार हो तो परमात्मा के क़रीब है इंसान और अगर दायरे बांध दिये तो फिर पानी सड़ेगा। कैसे? बच्चा पहले अपनी मैं को ही ध्यान में रखता था - मुझे यह चीज़ चाहिए, मुझे वह चीज़ चाहिए, मुझे यह दो, मुझे वह दो, अब माँ ने उसको सिखाया अपने भाई के लिए भी थोड़ा कुछ दो, अपने से ही प्यार करते थे न, अपने भाई से भी करो - थोड़ा बंट गया। अब वह दोस्तों के बीच जाता है, स्कूल में जाता है तो अब भाई का भी ध्यान रखता है, दोस्तों का भी ध्यान रखता है - प्रेम का विस्तार हुआ। जब विवाह हो गया उसका, तो अब भाई, परिवार और मित्र लोग उनका भी ध्यान है, माता-पिता का भी ध्यान है, बच्चों का भी ध्यान है और क्योंकि विवाह हो गया तो रिश्तेदारों का भी ध्यान है। प्रेम का विस्तार हुआ। अब और

आगे बढ़ा, अपने मोहल्ले में कुछ सुधार के कार्य करने लगा, सेवा के कार्य करने लगा तो अब प्रेम को वहाँ तक ले गया। थोड़ा और आगे बढ़ा, शहर भर की ज़िम्मेदारी हाथ में ले ली, पूरे शहर से प्यार करता है।

अब यह जो इसका विस्तार हो रहा है, हमारे शास्त्रकार समझाते हैं इसका विस्तार इतना बड़ा करो कि इसे अपने प्रदेश तक, प्रदेश से देश तक और देश से विश्व तक लेकर जाओ, सब आपके हो जायें और सबके आप हो जाओगे और अगर इसको संकुचित करते चले गये तो आख़िर में यह अपने तक ही आता है - मैं और मेरा - बस इससे आगे कहीं जायेगा ही नहीं और अगर इसका विस्तार कर दिया तो फिर तू और तेरा; मैं और मेरा ख़त्म। प्रभु तू है और सब तेरा है, यह भी तेरा और वह भी तेरा। इसीलिए तेरा भाव मन में आ जाये, विस्तार कर दो अपने प्रेम को।

भगवान ने कहा - इस विस्तार का एक परिणाम होगा - *निर्वैरः सर्वभूतेषू* - फिर समस्त प्राणीमात्र के प्रति कहीं भी, किसी के प्रति भी वैर नहीं रह जायेगा।

कमाल यह है कि भगवान श्रीकृष्ण ने सबसे ज़्यादा जिस शब्द का प्रयोग किया, गीता में जिसे बार-बार दोहराया 'वैर' शब्द, 'द्वेष' शब्द इस सबको बार-बार दोहराया। उन्हें प्यारा तो है योग और दूर करने के लिए जिस कमी के बारे में बार-बार ईशारा किया वह बार-बार दोहराये जाने वाला शब्द 'द्वेष' है और इसका एक संदर्भ भी था - संदर्भ था कि यह जो गीता जिस वातावरण में दी गयी वह वैर, विरोध वाली ज़मीन, युद्ध की भूमि जिसमें वैर के कारण युद्ध उपजा, उस जगह भगवान कृष्ण उपदेश देने लगे कि यह जो आज लड़ाई होने लगी वैर के कारण, ईर्ष्या के कारण, यहाँ तक जो आज हम पहुँचे हैं खून ख़राबा करने के लिए, मान-मार्यादाएं नष्ट होने लगी हैं, किस कारण? वैर के कारण। भगवान ने कहा कि यह मेरे से दूर हटने का कार्य है। मेरे क़रीब होना चाहता है तो फिर किसी से वैर नहीं हो और ऐसे में भगवान ने शब्द का प्रयोग किया - *निर्वैरः* - वैर रहित हो जाये। इतना कहने से ही काफ़ी नहीं है, उन्होंने कहा - समस्त प्राणीमात्र के प्रति वैर भाव न हो।

कोई आदमी किसी महान् पुरूष के नज़दीक ज्ञान लेने के लिए पहुँचा। हाथ में दो बैग पकड़े हुए हैं उसने, गेट के पास आते ही दोनों बैग ऐसे फेंके, जूते जो पहन रखे थे उनको भी हड़बड़ाहट में फेंका, एक इधर फेंका, एक उधर फेंका और उसके बाद अंदर आया - प्रणाम महाराज, मैं ज्ञान की चर्चा करने के लिए आया हूँ। थोड़ा जल्दी में हूँ, ज़रा कृपा कर सकें तो थोड़ा जल्दी में ही बता देना और बताना ऐसे कि सार में बताना, व्याख्या की ज़रूरत भी नहीं पड़े और बस कल्याण हो जाये और चलो अगर यह भी नहीं बताना चाहते हैं तो जीवन में शांति कैसे आये इसका रास्ता ही बता दो, पर बताना ज़रा जल्दी। महात्मा ने कहा - वैर नहीं रखना किसी से, क्षमा भाव रखना सबसे, जहाँ भी गलती करते हो, रोश व्यक्त करते हो, क्षमा माँग कर आना; मन में शांति आ जाये फिर कार्य में लगना।

उसने कहा - हमने तो सबसे ही क्षमा माँगी है और हम लोग तो किसी पर गुस्सा करते ही नहीं।

महात्मा ने कहा - अभी बात पूरी होने दो। शुरूआत यहीं से करना, यह जो बाहर थैला फेंककर के आये हो और जूते फेंक कर के आये हो पहले इन्हीं से माफ़ी माँगना।

उस आदमी ने कहा - महात्मा जी, थैले से भी माफ़ी मांगी जा सकती है? जूतों से भी क्या माफ़ी मांगी जा सकती है?

महात्मा ने कहा - जब उन पर गुस्सा उतारा जा सकता है तो फिर माफ़ी क्यों नहीं माँगी जा सकती? तुम कहते हो कि थैले को मैं कुछ मानता ही नहीं, जूतों को कुछ मानता ही नहीं फिर जिस पर गुस्सा उतारा है उसको गुस्से के लायक़ तो माना है फिर उससे माफ़ी भी होनी चाहिए। नहीं तो उन्हें वहीं रखकर प्यार से अंदर आते। तुम जहाँ-जहाँ भी गुस्सा उतार रहे हो, जिस पर भी उतार रहे हो, यह तो मार्ग ही ऐसा अनोखा है यहाँ अगर निर्वैर नहीं रहोगे, ऐन्टरी होती ही नहीं, यहाँ प्रविष्टी होती ही नहीं, खड़े रह जायेगा बाहर।

विश्वमित्र ने पूरी ताक़त लगाई, तपस्या करने में, कर्म करने में उसकी कमी नहीं लेकिन ब्रह्मऋषि नहीं हो पाया, प्रवेश नहीं हो पाया, वशिष्ठ से वैर रखता रहा, मारने तक के लिए पहुँच गया, लेकिन एकांत में बैठकर जब चर्चा

सुनी वशिष्ठ की, तब विश्वामित्र की समझ में आया - मैं कितना छोटा और यह कितना ऊँचा; जिसे मैं मारना चाहता हूँ, वह पीछे बैठकर भी मेरे लिए रात-दिन मंगल कामना करता है - भगवान इसका भला करना, वह ठीक रहे, उसमें क्रोध न रहे तो वह कितना ऊँचा हो सकता है। विश्वामित्र जैसा दुनिया में कोई नहीं, पर उसकी वैर भावना जो है वह उसे नीचे गिराती है। बस इस बात को वशिष्ठ के मुख से सुन लिया विश्वामित्र ने। सोचने लगा - अपने शिष्यों के बीच में इतनी प्रशंसा कोई आदमी मेरी कर रहा हो और मेरे लिए मंगल कामना करता हो उससे बढ़कर कोई नहीं होगा दुनिया में। जाकर रोया, रोकर बोला - मैं तो ऋषि बनने लायक़ भी नहीं हूँ, ब्रह्मऋषि तो क्या बनूँगा? वशिष्ठ ने कहा - बस, आँख से जो तेरे आँसू बह गये हैं, प्रायश्चित जो तूने कर लिया है, ज़िन्दगी को बदलने की जो भावना तेरे अंदर आ गयी, बस, आज से अभी से, तेरा प्रवेश अनायास हो गया है, तू अपने परमात्मा के क़रीब है, आज से तू ऋषि नहीं ब्रह्मऋषि हो गया, आज से तेरा स्थान ऊँचा हो गया।

इसीलिए भगवान ने स्थान-स्थान पर कहा, आगे जब हम अगला अध्याय बोलेंगे न - वहाँ भगवान ने अपने प्यारों की पहचान बताते समय यही शब्द कहा-

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च -

बारहवें अध्याय में यही है, यहाँ कहा - वैर न रखे, किससे न रखे? इंसान से नहीं रखे। भगवान ने कहा - प्राणी मात्र के प्रति, कोई भी संसार में ऐसी वस्तु न हो जिसके प्रति व्यक्ति वैर रखता हो। जो ऐसा करके आये कि मेरा अपना है, वह मेरे क़रीब होगा। भगवान ने कहा - जो प्राणीमात्र के प्रति वैर नहीं रखता, *य सहः मामेति पाण्डव* - हे पाण्डु पुत्र अर्जुन ! ऐसा जो भी कोई है, वह मेरा अपना है, वह मुझसे अलग नहीं है, मैं उससे दूर नहीं हूँ, वह मेरी निकटता प्राप्त कर लेगा।

तो अगर सार में हम कहें, इस अध्याय का यह सुंदर पुष्प है यह श्लोक, जहाँ भगवान ने यह समझाया - मेरे लिए कर्म करने वाले बन जाओ, मेरे पारायण हो जाओ, मेरा भजन और सेवा करते हुए मेरे प्रति अनुरक्ति हो, पर संसार के प्रति विरक्ति हो, मेरे भक्तों का संग करे लेकिन आसक्ति नहीं। संसार

से निष्काम कर्म करते हुए ऊपर उठता चला जाये, प्राणीमात्र के प्रति वैर का परित्याग कर दे। ऐसी जो स्थिति अपने मन में बनाता है भगवान ने कहा - वह मेरा अपना है, मुझसे दूर नहीं है।

इस स्थिति में हम यह कह सकते हैं कि भगवान ने जो हमें यह शर्तें दी हैं या यह व्यवस्थाऐं बताई हैं कि इनको पूरा करें तो भगवान हमारे। कोशिश कीजिए की आज से ही हम शुरू हो जाएं। ज़िन्दगी दाव पर लगानी है एक बार लगाकर तो देखें, बूँद आसमान से गिरने लगी है, सोचती है, कहाँ गिरूँगी? अँगारे पर? रेत पर? किसी सर्प के मुख में, या सीप में या सागर में? और आख़िर में और बूँदों ने तो अपने आपको रोक लिया लेकिन इस बूँद ने कहा कि अगर तपते हुए रेगिस्तान में गिरी, भले ही मैं एक थी, लेकिन थोड़ी देर के लिये ही सही किसी की ठंडक तो बनूँगी, किसी की आग को तो मिटाऊँगी, किसी को शांति तो दूँगी और अगर तपते अँगारे पर गिरी, भले ही जल जाऊँ पर थोड़ी देर के लिए ही सही उसके क्रोध को शांत तो करूँगी, और अगर सर्प के मुख में चली गयी, हो सकता है मेरा वहाँ जाना ज़हर को बढ़ाने वाला हो लेकिन कम से कम उसके काम तो आ जाऊँगी, वह अपनी रक्षा के लिए मेरा कहीं प्रयोग तो कर लेगा और अगर कहीं सागर में ही गिर गयी जहाँ से आयी थी, तो भी इतनी बात तो बनेगी कि सागर बन जाऊँ और आख़िर में उसने कहा कि अगर गिरने ही लगी हूँ, मजबूरी में नहीं गिर रही हूँ, गिर रही हूँ क्योंकि मैंने अपने को अर्पण करना है। तो मुझे संभालने वाले मेरे भगवान इतनी कृपा करना की सीप में ही गिरूँ, मोती बनूँ और किसी के माथे की शोभा बन जाऊँ किसी का श्रृंगार बन जाऊँ। कहते हैं कि बूँद गिरी, वह बूँद किस शक्ल में आयी? मोती की शक्ल में। बूँदें मोती ही बनकर गिरती हैं, अलग-अलग रूप धारण कर लेती हैं।

तो ऐसा समर्पण कर दें कि इस संसार में हम मोती बन जायें, हीरे-मोती बन जाना, चमक अपने अंदर ले आना, यह जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। मैं आशा करता हूँ जो कहा गया उस पर आप लोग विचार करेंगे।

बहुत-बहुत शुभकामनाएं

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥

तुमने आत्मा के सम्बन्ध में करुणा करके जो मुझे यह परम रहस्य समझाया है, उसके कारण मेरा मोह समाप्त हो गया है।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

हे कमललोचन (कृष्ण), मैंने तुझसे वस्तुओं के जन्म और विनाश के सम्बन्ध में और साथ ही तेरे अनश्वर गौरव के सम्बन्ध में विस्तार से सब कुछ सुना है।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥

हे परमेश्वर, यदि यह सब ऐसा ही है, जैसा कि तूने बताया है, तो हे पुरुषोत्तम, मैं तेरे ईश्वरीय दिव्य रूप को देखना चाहता हूँ।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

हे प्रभु, यदि तू समझता है कि वह रूप मुझे दिखाई पड़ सकता है, तो हे योगेश्वर (कृष्ण) तू अपना वह अनश्वर रूप मुझे दिखा।

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

हे पार्थ (अर्जुन), तूने मेरे सैंकड़ों- हजारों, नाना प्रकार के दिव्य, विविध रंगों और आकृतियों वाले रूपों को देख।

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥

हे भारत (अर्जुन), तूने आदित्यों को, वसुओं को, रूद्रों को, दो अश्विनों को और मरुतों को देख। और भी अनेक आश्चर्यों को देख, जिन्हें कि तूने पहले कभी नहीं देखा।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

हे गुडाकेश (अर्जुन), यहाँ आज तू सारे जगत् को, सब चराचरों को देख और जो कुछ तू देखना चाहता है, उस सबको मेरे शरीर में एकत्र हुआ देख।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

परन्तु तू मुझे अपनी इन (मानवीय) आंखों से नहीं देख पाएगा; मैं तुझे दिव्य दृष्टि देता हूँ। तू मेरी दिव्य शक्ति को देख।

अर्जुन उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

महाराज, इस प्रकार कहकर महान् योगेश्वर हरि (कृष्ण) ने अर्जुन के सम्मुख अपना सर्वोच्च और दिव्य रूप प्रकट किया।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

वह रूप अनेक मुखों और आंखों वाला था, उसमें अनेक आश्यर्चजनक दृश्य थे। उसने अनेक दिव्य आभूषण धारण किए हुए थे और उसने अनेक दिव्य शस्त्र उठाए हुए थे।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

उसने दिव्य मालाएं और वस्त्र धारण किए हुए थे। उसने दिव्य गन्ध (इत्र) और लेप लगाए हुए थे। सब कुछ आश्चर्यमय, तेजमय, असीम तथा सर्वव्याप्त था।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

यदि आकाश में एक हज़ार सूर्यों की चमक एक साथ दमक उठे, तो वह उस महान् आत्मा के तेज के समान हो सकती है।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

वहाँ पाण्डव (अर्जुन) ने उस देवों के भी देव के शरीर में अनेक रूपों में बंटे हुए सारे संसार को एक ही जगह स्थित देखा।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

तब धनंजय (अर्जुन) आश्चर्य से अभिभूत हो गया। उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसने सिर झुकाकर, हाथ जोड़ कर भगवान् को प्रणाम किया और कहा :

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ -
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

हे भगवान्, मैं तुम्हारे शरीर में सब देवतओं और विविध प्रकार के प्राणियों के समूहों को देख रहा हूँ। मैं कमल के आसन पर बैठे हुए विधाता ब्रह्मा को तथा अन्य सब ऋषियों को और दिव्य नागों को देख रहा हूँ।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

वहाँ पाण्डव (अर्जुन) ने उस देवों के भी देव के शरीर में अनेक रूपों में बंटे हुए सारे संसार को एक ही जगह स्थित देखा।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

तब धनंजय (अर्जुन) आश्चर्य से अभिभूत हो गया। उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसने सिर झुकाकर, हाथ जोड़ कर भगवान् को प्रणाम किया और कहा :

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ -
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

हे भगवान्, मैं तुम्हारे शरीर में सब देवतओं और विविध प्रकार के प्राणियों के समूहों को देख रहा हूँ। मैं कमल के आसन पर बैठे हुए विधाता ब्रह्मा को तथा अन्य सब ऋषियों को और दिव्य नागों को देख रहा हूँ।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥१६॥

मैं तुझे सब ओर अनन्त रूपों में देख रहा हूँ। तेरी अनेक भुजाएं हैं; अनेक पेट हैं; अनेक मुख हैं और अनेक नेत्र हैं; परन्तु हे विश्व के स्वामी, हे विश्वरूप, मुझे कहीं तेरा अन्त, मध्य या आदि दिखाई नहीं पड़ रहा है।

किरीटिनं गदिंन चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता -
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

मैं तुझे मुकुट, गदा और चक्र धारण किए हुए, सब ओर दमकते हुए तेजपुंज के रूप में देख रहा हूँ, जिसे देख पाना भी कठिन है (चौंधियाने वाला), जो सब ओर से धधकती हुई आग और सूर्य के समान देदीप्यमान है और जो अनुपम है।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

तू अनश्वर भगवान है, जिसका ज्ञान प्राप्त किया जाना चाहिए। तू संसार का परम विश्राम का स्थान है; तू शाश्वत (सनातन) धर्म का अमर रक्षक है। मुझे तो लगता है कि तू ही सनातन पुरुष है।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥१९॥

मैं तुझे देख रहा हूँ, जिसका न कोई आदि है, न मध्य और न कोइ अन्त है; जिसकी शक्ति अनन्त है; जिसकी असंख्य भुजाएं हैं; सूर्य और चंद्र जिसके नेत्र हैं; जिसका मुख धधकती हुई आग की भांति है और जो अपने तेज से सारे संसार को तपा रहा है।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूममुग्रं तवेदं ।
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥२०॥

आकाश और पृथ्वी के बीच का यह सारा स्थान और सारी दिशाएं केवल तुझ अकेले से ही व्याप्त हैं; हे महान् आत्मावाले, जब तेरा यह आश्चर्यजनक भयंकर रूप दिखाई पड़ता है, तब तीनों लोक कांप उठते हैं।

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥

उधर वे देवताओं के समूह तेरे अन्दर प्रवेश कर रहे हैं और उनमें से कुछ हाथ जोड़े तेरी स्तुति कर रहे हैं। महर्षियों और सिद्धों के समूह 'स्वस्ति' (कल्याण हो) कहकर अत्यन्त प्रशंसायुक्त मंत्रों से तेरी स्तुति कर रहे हैं।

रूद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

रूद्रगण, आदित्यगण, वसुगण और साध्यगण, विश्वेदेवगुण और दो अश्विनीकुमार, मरुत्, और पितर तथा गन्धर्वों, यक्षों, असुरों और सिद्धों के समूह, सब तेरी ओर देख रहे हैं और देखकर सब चकित हो रहे हैं।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

हे महाबाहु, तेरे इस अनेक मुखों और आँखों वाले, अनेक भुजाओं, जांघों और पैरों वाले, अनेक पेटवाले, अनेक बड़े बड़े, दांतों के कारण भयानक दीख पड़ने वाले विशाल रूप को देखकर सारे लोक कांप रहे हैं और उसी प्रकार मैं कांप रहा हूँ।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥

तेरे इस आकाश को छूने वाले, अनेक रंगों में दमकते हुए, खूब चौड़ा मुंह खोले हुए और बड़ी-बड़ी चमकती आँखों वाले, इस रूप को देख कर मेरी आन्तरिकतम आत्मा भय से कांप रही है और हे विष्णु, मुझे न धीरज बंध रहा है और न शान्ति मिल रही है।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

जब मैं बड़े बड़े दांतों के कारण डरावने और काल की सर्वग्रासी लपटों के समान तेरे मुखों को देखता हूँ, तो मुझे दिशाएं तक सूझनी बन्द हो जाती हैं और किसी प्रकार चैन नहीं पड़ती। हे देवताओं के स्वामी, हे संसार के आश्रय, तू करूणा कर।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

उधर सब राजाओं के समूहों के साथ वे धृतराष्ट्र के पुत्र और भीष्म, द्रोण और कर्ण, हमारे पक्ष के प्रमुख योद्धाओं के साथ-साथ ही,

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥२७॥

तेरे उन डरावने मुखों में घुसे जा रहे हैं, जो बड़े-बड़े दांतों के कारण बहुत भयंकर हो उठे हैं। कुछ उन दांतों के बीच में फंसे दिखाई पड़ रहे हैं; उनके सिर पिसकर चूर-चूर हो गए हैं।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥

जिस प्रकार नदियों की अनेक वेगवती धाराएं समुद्र की ओर दौड़ती चली जाती हैं, उसी प्रकार ये नरलोक के वीर योद्धा तेरे लपटें उगलते हुए मुखों में घुसे जा रहे हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

जिस प्रकार पतंगे ज़ोर से जलती हुई आग पर अपने विनाश के लिए तेज़ी से झपटते हुए आते हैं, उसी प्रकार ये लोग अपने विनाश के लिए झपटते हुए तेरे मुखों में घुस रहे हैं।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता -
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥३०॥

अपने जलते हुए मुखों से सब ओर के लोकों को निगलता हुआ तू उन्हें चाट रहा है। हे विष्णु, तेरी अग्निमय किरणें इस सारे संसार को भर रही हैं और इसे अपने प्रचण्ड तेज से झुलसा रही हैं।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

मुझे बता कि इतने भयानक रूपवाला तू कौन है? देवताओं में श्रेष्ठ, तुझको प्रणाम है। दया कर, मैं जानना चाहता हूँ कि तू आदिदेव कौन है, क्योंकि मैं तेरे कार्यकलाप को नहीं जानता।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥

मैं लोकों का विनाश करने वाला काल हूँ, जो अब बड़ा हो गया हूँ और यहाँ इन लोकों का दमन करने में लगा हुआ हूँ। ये परस्पर-विरोधी सेनाओं में पंक्तिबद्ध खड़े हुए योद्धा तेरे (तेरे कर्म के) बिना भी शेष नहीं रहेंगे।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥३३॥

इसीलिए तू उठ, खड़ा हो और यश प्राप्त कर। अपने शत्रुओं को जीतकर तू इस समृद्धिपूर्ण राज्य का उपभोग कर। वे सब तो पहले ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। हे सव्यसाची (अर्जुन), तू अब इसका कारण-भर बन जा।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

तू द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्य वीर योद्धाओं को मार डाल, जो मेरे द्वारा पहले ही मार डाले गए हैं। डर मत। युद्ध कर। तू युद्ध में शत्रुओं को अवश्य जीत लेगा।

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

केशव (कृष्ण) के इन वचनों को सुनकर कांपते हुए किरीटी (अर्जुन) ने हाथ जोड़कर कृष्ण को नमस्कार किया और फिर भय से कांपते हुए प्रणाम करके रुंधी हुई वाणी में कृष्ण से कहा;

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥३६॥

हे हृषीकेश (कृष्ण), संसार जो तेरे यश के गीत गाने में आनन्द और प्रसन्नता का अनुभव करता है, वह ठीक ही करता है। राक्षस डर कर सब दिशाओं में भाग रहे हैं और सिद्ध (पूर्णता को प्राप्त हुए) लोगों के समूह तुझे (आदर से) नमस्कार कर रहे हैं।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

और हे महान् आत्मावाले, तू तुझे प्रणाम क्यों न करे, तू जो कि आदिस्रष्टा ब्रह्मा से भी महान् है? हे अनन्त, देवताओं के स्वामी, संसार के स्वामी, संसार के आश्रय, तू अनश्वर है, तू अस्तित्वमान् और अनस्तित्वमान् है; और उससे भी परे जो कुछ है, वह तू है।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

तू देवताओं में सर्वप्रथम है; तू आद्यपुरुष है; तू इस संसार का परम विश्राम-स्थान है। तू ही ज्ञाता है और तू ही ज्ञेय है और तू ही सर्वोच्च लक्ष्य है। और हे अनन्त रूपों वाले, तूने ही इस संसार को व्याप्त किया हुआ है।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥

तू वायु है; तू यम (विनाश करने वाला) है; तू अग्नि है; तू वरुण (समुद्र का देवता) है; और शशांक (चन्द्रमा) है और प्रजापति, (सबका) पितामह है। तुझे हजार बार नमस्कार है; तुझे बारम्बार नमस्कार है।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

तुझे सामने से नमस्कार है; तुझे पीछे की ओर से नमस्कार है; हे सब कुछ, तुझे सब ओर से नमस्कार है। तेरी शक्ति असीम है और तेरा बल अमाप है; तू सबमें रमा हुआ है, इसीलिए तू सब कुछ है।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

तेरी इस महिमा के तथ्य को न जानते हुए और यह समझकर कि तू मेरा साथी है, मैंने अपनी लापरवाही से या प्रेम के कारण अविवेकपूर्वक तुझे जो 'हे कृष्ण, हे यादव, हे मित्र' आदि कहा है ;

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

और कभी खेल में, बिस्तर पर लेटे हुए या बैठे हुए या भोजन के समय अकेले में या अन्य लोगों के सामने हंसी मज़ाक में मैंने जो तेरे प्रति असम्मान प्रकट किया है, उसके लिए हे अच्युत (अपने स्थान से विचलित न होने वाले), और हे अप्रमेय (अमाप), मैं तुझसे क्षमा की प्रार्थना करता हूँ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥४३॥

तू इस सारे चराचर जगत् का पिता है। तू इस संसार का पूजनीय है और आदरणीय गुरू है। हे अनुपम महिमावाले, तीनों लोकों में कोई तेरे समान ही नहीं, तो फिर कोई तुझसे अधिक तो हो ही किस प्रकार सकता है।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।।४४।।

इसीलिए प्रणाम करके और अपने शरीर को तेरे सम्मुख साष्टांग झुकाकर मैं तुझ आराधनीय प्रभु को प्रसन्न करना चाहता हूँ। हे देव, तू मेरे व्यवहार को उसी प्रकार क्षमा कर, जैसे पिता पुत्र के, या मित्र-मित्र के या प्रेमी अपने प्रिय के व्यवहार को सहन करता है।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।४५।।

मैंने वह रूप देखा है, जिसे पहले किसी ने कभी नहीं देखा और मैं इसे देखकर आनन्दित हुआ हूँ, परन्तु मेरा हृदय भय से कांप रहा है। हे प्रभु, मुझे अपना दूसरा (पहला) रूप दिखा और हे देवताओं के देवता, हे संसार के आश्रय, तू मुझ पर प्रसन्न हो।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ।।४६।।

मैं तुझे फिर पहले की भांति ही किरीट धारण किए, गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूँ। हे सहस्र बाहुओं वाले और विश्वरूप, तू फिर अपना चतुर्भुज रूप धारण कर ले।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ।।४७।।

हे अर्जुन, मैंने प्रसन्न होकर अपने दिव्य शक्ति के द्वारा तुझे यह परम रूप दिखाया है, जो तेजोमय, सार्वभौम, असीम और आद्य (सबसे पहले का) है, जिसे तेरे सिवाय और तुझसे पहले और किसी ने नहीं देखा।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न
च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ।।४८।।

हे कुरुओं में श्रेष्ठ (अर्जुन), इस मनुष्यलोक में तेरे सिवाय अन्य किसी भी व्यक्ति द्वारा मैं न तो वेदों के द्वारा, न यज्ञों द्वारा, न दान द्वारा, न कर्मकांड की क्रियाओं द्वारा और न कठोर तपस्या द्वारा ही इस रूप में देखा जा सकता हूँ।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ।।४९।।

मेरे इस भयानक रूप को देखकर तू घबरा मत और किंकर्तव्यविमूढ़ भी मत हो। भय को त्यागकर प्रसन्न मन से अब तू फिर मेरे दूसरे (पहले) रूप को देख।

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

वासुदेव (कृष्ण) ने अर्जुन से यह कह कर उसे फिर अपना स्वरूप दिखाया। उस महान् आत्मावाले कृष्ण ने अपना सौम्य रूप धारण करके डरे हुए अर्जुन को सान्त्वना दी।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

हे जनार्दन (कृष्ण), तेरे इस सौम्य मानवीय रूप को देखकर मेरे होशहवास ठीक हो गए हैं और मैं फिर अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ गया हूँ।

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥५२॥

तूने मेरे उस रूप को देखा है, जिसे देख पाना बहुत ही कठिन है। देवता भी इस रूप को देखने के लिए सदा लालायित रहते हैं।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥

तूने मुझको अभी जिस रूप में देखा है, उस रूप में मुझे वेदों द्वारा, तपस्या द्वारा, दान द्वारा, या यज्ञों द्वारा भी नहीं देखा जा सकता।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥५४॥

परन्तु हे अर्जुन, अनन्य भक्ति द्वारा मुझको इस रूप में जाना जा सकता है और सचमुच देखा जा सकता है और हे शत्रुओं को सताने वाले (अर्जुन), मुझमें प्रवेश भी किया जा सकता है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

हे पाण्डव (अर्जुन), जो व्यक्ति मेरे लिए काम करता है, जो मुझे अपना लक्ष्य मानता है, जो मेरी पूजा करता है, जो आसक्ति से रहित है, जो सब प्राणियों के प्रति निर्वैर (शत्रुता से रहित) है, वह मुझ तक पहुँच जाता है।

बारहवां अध्याय

भक्तियोग

ता का यह बारहवां अध्याय आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। बारहवें अध्याय में अर्जुन का प्रश्न है कि संसार में दो तरह के भक्त हैं - एक साकार स्वरूप की पूजा करने वाले लोग, एक निराकार शक्ति को मानने वाले लोग। दोनों में से कौन से श्रेष्ठ हैं? किस प्रकार आपको प्राप्त किया जा सकता है? श्रेष्ठ भक्त कौन से भक्त हैं? यह प्रश्न अपने आपे में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है और ऐसा महसूस होता है कि परमात्मा के प्रति जो ज्ञानमार्गी लोग हैं वह सदैव भक्ति जब भी करते हैं तो वह, ज्ञानमार्ग वाले लोग, निराकार वाले स्वरूप को पूजने में ज़्यादा अच्छा मानते हैं, उनको यह लगता है कि ज्ञान के माध्यम से सारे संसार में सर्वत्र व्याप्त परब्रह्म परमेश्वर को हम पूजन करें, महसूस करें कि सर्वत्र वही सत्ता है।

दूसरा मार्ग वह है जहाँ मूर्त से अमूर्त की यात्रा करता है व्यक्ति। यह सारा संसार परमात्मा का मूर्त स्वरूप है। साकारवादी व्यक्ति प्रेम को मन में रखकर श्रद्धा भाव के साथ सारे संसार के समस्त पदार्थों में उसको बसा हुआ महसूस करते हुए उसकी अनुभूति हृदय में करता है; यह महसूस होता है कि सृष्टि के प्रत्येक कण-कण में बसने वाला मेरा परमात्मा फूलों में हँसता है, नदियों में बहता है, हवाओं में वही स्पर्श करता है, वही है जो चन्द्रमा की चाँदनी के माध्यम से हमारी शरीर को सुंदरता प्रदान करता है, फलों में रस देता है, सूरज में धूप है तो उसी की - मानो परमात्मा धूप के माध्यम से भी अपने प्रेम की गर्मी हमें दे रहा है। यह एक तरह का अतिशय प्रेम है परमात्मा के प्रति।

आश्चर्यजनक बात यह है कि गीता के इस बारहवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने साकारवाद को अधिक महत्त्व दिया, निराकार स्वरूप को नहीं। साकार पर अधिक बल देते हुए भगवान ने कहा -

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥

– जो मुझमें अपने मन को आवेशित करके नित्य प्रति मेरी उपासना करते हैं, जिनकी अत्यंत श्रद्धा है, *ते युक्त तमा मता:* – उन्हें मैं अपने से जुड़ा हुआ सबसे अधिक मानता हूँ, वह श्रेष्ठ हैं। प्रश्न है कि जिसने मेरे अंदर अपने आपको अर्पित कर दिया, जिसका मन मेरा हो गया, *नित्य युक्ता उपासते:* – जिनकी उपासना में कभी कोई भंग नहीं है, क्रम टूटता नहीं, नियम टूटता नहीं, जिनकी आस्था सदैव दृढ़ है, श्रद्धा में परिपूर्ण, जिनकी श्रद्धा भी अनोखी श्रद्धा है, जिस श्रद्धा में कभी कमी नहीं आये भगवान कहते हैं वही मेरा श्रेष्ठ भक्त है। मन को मुझमें अर्पित कर दिया, अपने आपे को मुझमें अर्पित कर दिया, नियम निरंतर चल रहा है, भजन में कभी बाधा नहीं पड़ती; सारी दुनिया के साथ किसी भी प्रकार से आसक्ति क्यों न हो, लेकिन मेरी आसक्ति से बढ़कर दुनिया में जो कुछ भी नहीं माने, जो मुझसे बढ़कर संसार में किसी भी वस्तु को महत्त्वपूर्ण न माने, जिसकी श्रद्धा अतिशय श्रद्धा है वही श्रेष्ठ भक्त है। तर्क, युक्ति और प्रमाण देने के बाद जो श्रद्धा बनाई गयी हो फिर अनेक तर्क, युक्ति, प्रमाण देकर श्रद्धा को तोड़ा भी जा सकता है।

आश्चर्यजनक बात यह है संसार में कि हर तर्क के बाद एक उससे भी भारी तर्क दिया जा सकता है। कितने भी प्रमाण देना, कितनी भी युक्तियाँ देना श्रद्धा बनेगी और उससे बढ़कर के फिर और तर्क प्रमाण किसी ने दे दिये तो टूट जायेगी। इस श्रद्धा को अतिशय श्रद्धा नहीं कहा गया। अतिशय श्रद्धा वह है जो कि जिसको कोई हिला न पाये, जिसको कोई डुला न पाये। वहाँ रूप ही अलग होता है।

अगर मीरा ने अपने गोविन्द के प्रति, प्रभु के प्रति, श्रद्धा और प्रेम मन में बसाया तो फिर कुछ भी दाव पर लगाना पड़ा, कुछ भी छोड़ना पड़ा. मीरा पीछे नहीं हटी। और जैसे उसने गाना शुरू किया – *राणा जी मैं गोविन्द के गुण गाना। राणा रूठे* – राणा से मतलब राजा। *राणा रूठे नगरी ले ले हरि रूठे कहाँ जाणा* – कि अगर राजा रूठ जाये अपनी नगरी से बाहर निकाल सकता है पर मेरा भगवान रूठ गया तो मैं कहाँ जाऊँगी? मैं तो गोविन्द के ही गुण गाने के लिए तत्पर हूँ। मीरा गाती हुई कहने लगी कि राणा जी ने नाग भेजा, अब काले नाग को देखती हूँ तो मुझे तो अपना

ठाकुर नज़र आया, सालीग्राम नज़र आया। उसे परमात्मा के सिवाये कुछ नहीं दिखाई दिया।

क्या कोई तर्क़, कोई प्रमाण, कोई युक्तियाँ मीरा को हटाने के लिए नहीं दी गयी होंगी? आश्चर्यजनक बात यह है कि हर व्यक्ति परमात्मा के संबंध में जब भी यह कहेगा कि मेरा मत सही है, ऐसे ही विश्वास के साथ कहता है कि जैसे शायद अभी भगवान से पूछ कर ही आया है। लेकिन यह आश्चर्यजनक बात है - श्रद्धा अत्यन्त हो, अगाध हो और दृढ़ विश्वास हो, तो फिर वह पहुँचेगा; भगवान कहते हैं वह श्रेष्ठ है मेरे लिये। या तो कोई ज्ञान में निराकार को मानता हुआ अपने आपको और अपने अहम को गला दे, खो दे अपने आप को। उसी ज़ीरो पौइन्ट पर पहुँच जाये कि व्यक्ति को यह एहसास हो जाये कि और कुछ भी नहीं है परमात्मा के सिवाये, और तो सब संसार में परिवर्तन है, होते रहेंगे परिवर्तन। सब तो वही है - मेरा परमात्मा। उस सर्वशक्तिमान को सम्पूर्ण रूप से मान लें, या फिर वह स्थिति हो कि जहाँ श्रद्धा रखे, हिले-डुले नहीं। दृढ़ होकर भावना के साथ उसमें अपने आपको खपा दे।

अजीब चीज़ है कि यह युग बुद्धि के विकास का और बुद्धि की चरम सीमा छूने का युग है। यह युग बुद्धि के विकास को करते हुए, ज्ञान के उच्च शिखर पर पहुँचने की भावना रखने वाला युग, यह इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है और यही इस युग की सबसे बड़ी विडम्बना भी है कि बहुत ज़्यादा बुद्धिवादी होने के बाद इतने तर्क़ में उलझे चले गये; प्याज़ के छिलके छीलते-छीलते, छीलते-छीलते हम वहाँ जाकर खड़े हो गये जहाँ कुछ भी नहीं केवल बदबू के सिवाय। माना तो कुछ भी नहीं - कभी सोचते रहे जानना ज़्यादा श्रेष्ठ है, मानने से जानना श्रेष्ठ है और कभी हम कहते रहे कि जानो भी तो क्या संसार में? आप कितना देख पाओगे? आपकी बुद्धि कितना देख पायेगी? आप ज़रा सोचिए कि अगर मैं यह फूल हाथ में लेता हूँ और अपनी आँखों से देखने की कोशिश करता हूँ आप में से कोई भी देखे इस फूल को सम्पूर्ण नहीं देख सकता। एक ही भाग देखेगा, जो सामने आँखों के होगा, जो इधर वाला भाग होगा न वह नहीं दिखाई देगा। यह कागज़ अगर मेरे हाथ में है, इस कागज़ का इधर

वाला भाग मैं देख रहा हूँ, उधर वाला नहीं। संसार की कोई भी वस्तु हाथ में ले लेना उसको आप सम्पूर्ण रूप में कभी नहीं देख सकते। तो किस आधार पर आप कहेंगे कि मैं जानता हूँ? एक बार इधर से देखोगे, एक बार उधर से देखोगे, दोनों को जोड़-जोड़ के हिसाब बनाओगे, ऐसा होगा, ऐसा है, ऐसा है। इसीलिए यह संसार विचित्र है और जब हम बुद्धि का विकास करते-करते और हृदय की संवेदनाओं को मार देते हैं, हमारी प्रगति वहीं रूक जाती है।

बहुत बुद्धिवादी बनने का परिणाम हुआ बहुत तनावग्रस्त हो गये। इसीलिए जहाँ बुद्धि दी है परमात्मा ने वहीं हृदय भी दिया है। हृदय में भावनाएं हैं, बुद्धि में विचार है। अब दोनों का तालमेल अगर बन सकता है तो जीवन सही है।

बुद्धि पिता है, हृदय माँ है, इंसान को दोनों की छाया की आवश्यकता है। ज्ञान बुद्धि वाली स्थिति है, भक्ति हृदय वाली स्थिति है - दोनों का तालमेल बनेगा तो प्रगति होगी नहीं तो प्रगति नहीं होगी।

इसीलिए मैं फिर कहूँगा आपसे हृदय में उद्वेग उठेंगे तो अपने आपको अर्पित करने के लिए तैयार रहो और अगर हृदय में उद्वेग नहीं उठेंगे तो आप कभी भी सम्पूर्ण समर्पण नहीं कर सकते। इसीलिए ज़्यादातर यह कोशिश हो रही है कि मनुष्य की बुद्धि को सुला दिया जाये। कुछ लोग नशों के माध्यम से सुला रहे हैं। खोना चाहता है इंसान थोड़ी देर नशा लेकर के; यह जो दिमाग़ काम कर रहा है इसे आदमी बंद करना चाहता है क्योंकि चिंताएं आती हैं अंदर से। कुछ लोग यह कर रहे हैं कि किसी संगीत में डूबकर मनोरंजन करते हुए थोड़ी देर के लिए अपने आपको भुला देना चाहते हैं, यह दिमाग़ जो काम कर रहा है इसको रोकना चाहते हैं। कुछ लोग किसी ख़ास तरह के जुआ में या किसी तरह के ऐसे व्यसन में पड़कर के बहुत देर तक अपने को खोना चाहते हैं कि शायद इस दिमाग़ को आराम मिल जाये क्योंकि बुद्धि खोने में व्यक्ति को आनन्द लगता है और पशु और मनुष्य में अंतर ही बुद्धि का है।

लेकिन एक मज़े की बात और है - परमात्मा ने जो बुद्धि की संवेदनाएं दीं, बुद्धि के अंदर जो विचार करने की शक्ति दी, इसके साथ हृदय की

भावनाओं की संवेदना अगर न हो तो व्यक्ति बुद्धिवादी केवल नीरस होकर रह जायेगा और हृदय की भावनाएं आ जायें तो इतनी सरसता पैदा होती है। लेकिन फिर भी आँख की ज़रूरत पड़ती है।

संसार एक तो वह है जहाँ बुद्धि की पहुँच है, संसार का एक भाग वह है जहाँ बुद्धि नहीं काम करती वहाँ दिल काम करता है। अगर हम कई बार विचार करके देखें तो यह बात समझ में आती है कि माँ-बाप ने अगर बच्चे को पाला-पोसा है तो फ़र्ज़ मानकर के पाला-पोसा है क्या? अगर किसी माँ ने अपने बच्चे को पाला-पोसा है अपने हृदय का हिस्सा माना अपने बच्चे को, अपने प्राण को उसमें आवेशित कर दिया, अपना मन उसके अंदर आवेशित किया; दिल-दिमाग़, सारा वैभव, वह सब कुछ उसी में देखती है। उसे खिला कर के खुश होती है, बच्चे को देकर के प्रसन्न होती है, सुंदर वस्त्र पहनाकर के खुश होती है अपने वस्त्र अच्छे हैं या नहीं हैं। समस्त अपने आपे को वहाँ सौंप दिया और देखिए अगर इस दुनिया में कोई भी पला और बढ़ा है तो माँ की ममता से ही पला-बढ़ा है। अगर हम भी प्रगति कर सकते हैं - आध्यात्मिक प्रगति - तो यह कार्य हमें पहले करना पड़ेगा - वह ममता, वह श्रद्धा, वह प्रेम जिसे मिलाकर के एक रूप दिया गया - श्रद्धा। अगर यह श्रद्धा नहीं है नहीं बढ़ पायेंगे हम और कई बार ऐसा होगा कि आपकी श्रद्धा माता-पिता के प्रति है, गुरू के प्रति है। आप समझ भी नहीं पायेंगे कि माता-पिता आपके लिए अच्छा कर रहे हैं या नहीं कर रहे हैं, आपको तो गुस्सा भी आयेगा।

संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान हुए जिनका नाम था कवि माघ - बड़े ही योग्य पिता के पुत्र थे। माघ कवि ने जितने भी ग्रन्थ लिखे बहुत सुन्दर और प्यारे ग्रन्थ हैं। 'शिशुपालवदम्' शिशुपाल वध कथा लिखी। भगवान की महिमा का जितने सुंदर ढंग से चित्रण किया और संस्कृत का उनका काव्य देखने योग्य है। तो शिशुपालवध लिखने वाला यह महान कवि - माघ - छोटी आयु में इतनी ज़्यादा विशेषता प्राप्त कर ली कि पूरी नगरी में उस व्यक्ति की प्रशंसा होती थी। लेकिन पिता ने कभी तारीफ़ नहीं की, एक बार भी मुँह से तारीफ नहीं की। जब भी मौक़ा लगता डाँटते, फटकारते। यहाँ तक कह दिया कि इससे कोई उम्मीद नहीं की जा सकती यह कुछ बन जाये।

अब पिता के हृदय में कोई प्यार था या नहीं था इसका वह अंदाज़ा नहीं लगा सकता। माघ ने कभी अंदाज़ नहीं लगाया कि मेरे पिता के हृदय में मेरे प्रति कोई लगाव है भी या नहीं और एक समय तो ऐसा आ गया कि माघ की श्रद्धा पिता के प्रति हट गयी। श्रद्धा हटी तो वह प्रेम भी गया, प्रेम हटा तो फिर पिता के प्रति आदर व्यक्त करने में भी भावनाएं नहीं रहीं।

एक दिन तो यहाँ तक हुआ कि राजदरबार में माघ को बड़ा सम्मान मिला। सम्मान पाने के बाद जब घर में आया, पिता ने उसको देखा और देखकर के कहा कि ऐसे ही अंहकार करते रहेगा कुछ भी नहीं बन पायेगा। अभी तूने कुछ किया नहीं है, एक़-दो पाँव रख लेने से कोई आदमी बहुत ऊँचाई पर नहीं पहुँच जाता। अगर कुछ करना चाहता है तो लगन से बैठ आलसी मत बन, बेकार की चीज़ों में समय मत लगा और कई सारे लोगों के बीच में ही टिप्पणी कर दी, डांट दिया।

अब माघ के मन में आया कि मेरा पिता ही मेरी उन्नति में बाधक है, सबके बीच में मेरी बेइज्जती की है। अब तक तो आदर नहीं था कोई बात नहीं, अब गुस्सा आ गया - अगर मेरा पिता मुझे शाबाशी देता, मेरे लिए सहयोग करता, मैं कहीं का कहीं पहुँच जाता। यही मेरे लिए बाधक है।

कुल्हाड़ा लिया उसने और कुल्हाड़ा लेकर छिप कर बैठ गया कि रात में सोते हुए को ख़त्म करूँगा, अपने पिता को मारूँगा। कहाँ प्रेम, कहाँ आदर था, कहाँ श्रद्धा थी, कहाँ स्थिति यह हो गयी कि कुल्हाड़ा लेकर बैठ गया।

अब रात में पिता सो रहे हैं और माघ की माँ अपने पति के पाँव के पास बैठी हुई पाँव दबा रही थी। बोली – न जाने आज कहाँ चला गया माघ। सुबह से आया ही नहीं, भोजन भी नहीं किया और आप उसको इतना मत डाँटा करें। हमारा बेटा बड़ा हो गया है, दुनिया-दुनिया का मान उसे मिल रहा है, उसके कार्य में, विशेषता में कोई कमी नहीं है। आप बहुत डाँटते हैं उसे। पिता ने कहा - मेरा समस्त, सब कुछ, मेरा बेटा ही है। मैंने अपने प्राण उसमें बसा रखे हैं। मुझमें जो कमी रही गयी थी शाबाशी सुनने के बाद जो गुण इस बेटे में हैं न वही मुझमें भी थे। मैंने

भी ऐसे ही विद्यार्जन किया, लोगों की वाहवाही सुननी शुरू की, उसके बाद मैं रूक कर के बैठ गया, कभी विकास नहीं किया। जो समय मेरी मेहनत करने का था वह मेहनत करने से पहले चूक गया। अपने पिता की देन पर खुश होता था, खुद मैंने कुछ किया ही नहीं। जो कमी मुझमें रह गयी मैं नहीं चाहता मेरे बेटे में रह जाये। और तू नहीं जानती राजदरबार में जिस दिन उसे सम्मान मिला था न, मैंने अपने भगवान के सामने जाकर आँसू भी प्रकट किये, खुशियाँ भी प्रकट कीं। मैंने कहा - आज यह सम्मान मेरे बेटे का नहीं मेरा सम्मान है। अपने बेटे को जवान होता हुआ, मान पाता हुआ देखता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं फिर से जवान होकर के खड़ा हो गया हूँ और मान ले रहा हूँ, यह मेरे बच्चे के माध्यम से मुझे ही मान मिल रहा है। लेकिन मैं चाहता हूँ कि इस कुल की और पितरों की पगड़ी ऊँची रहे, इसमें और कोई कमी न रह जाये इसीलिए डाँटता हूँ और अगर डाँटूगा नहीं दुनिया-दुनिया का मान तो इसे मिल रहा है, संभालना तो मैंने ही है न। मैं नहीं संभालूँगा तो कौन संभालेगा इसे? और हम लोग बैठे कितनी देर हैं? न जाने कब हम लोगों के शरीर छूट जायें, बाद में तो इसने स्वतंत्र ढंग से ही ज़िन्दगी जीनी है। हम लोग जब तक हैं तब तक थोड़ा उबारते भी रहेंगे, प्यार भी करते रहेंगे, डाँट भी करते रहेंगे और मेरा बच्चा बहुत लायक़ है, तू उसकी फ़िक्र मत कर। देर से आ रहा है, देर आयेगा, दुरूस्त आयेगा, ठीक आयेगा।'

अब यह कुल्हाड़ा लिये हुए बाहर खड़ा हुआ है। बहुत रोया - क्या हो गया मेरे प्रेम को, मेरी श्रद्धा को, मेरे आदर को, मेरे मान को। मेरे पिता के प्यार में तो कमी नहीं, मैं थोड़ा-सा मान लेने के लिए, थोड़ा-से स्वार्थ के लिए इतना नीचे गिर गया। रोता हुआ अंदर गया और जाकर पिता के पास खड़ा होकर बोला- 'एक बात पूछना चाहता हूँ। शास्त्र आपने भी पढ़े हैं। कोई आदमी अगर अपने पिता के प्रति अपराध करे और इस तरह का अपराध करे तो फिर क्या होना चाहिए, उसको क्या सज़ा मिलनी चाहिए? शास्त्र में क्या लिखा है?'

अब पिता ने तो समझा नहीं था कि बेटे में ऐसी भी कोई विचारधारा आ सकती है। उन्होंने कहा शास्त्र में तो सीधा-सा लिखा है कि अग्नि

धीमी जलाकर, उसमें जाकर उसे खड़ा हो जाना चाहिए, जल के अपने को ख़त्म कर लेना चाहिए क्योंकि अगर ऐसी परम्परायें चलती रहीं तो एक गंदे समाज का निर्माण हो जायेगा, बड़ों का सम्मान ही ख़त्म हो जायेगा, इसीलिए ऋषियों ने ऐस प्रायश्चित लिखा है।

माघ ने कहा - तो फिर पिताजी मुझे आज्ञा दीजिए, मैं लकड़ी जलाऊँ और उसमें जा करके कूदूँ।

अब बाप समझाये और बेटा माने नहीं। उसने कहा अपराध हुआ है, मैंने आपको समझा ही नहीं, मेरी मूर्खता में कमी नहीं है और आपके प्यार में कमी नहीं है।

आख़िर में पिता ने बैठ कर समझाया कि - देख बेटा! आग से जलायेगा तो शरीर ही जलायेगा, इससे कोई चमत्कार घटने वाला नहीं। प्रायश्चित की अग्नि में अपने मन को जला दे और अपनी आत्मा को निखार और जहाँ तक मैं तुझे ऊँचा देखना चाहता हूँ, वहाँ तक ऊँचा होकर के दिख़ा। बस इतने में मुझे भी शान्ति मिल जायेगी और तेरे पितरों को भी शान्ति मिल जायेगी।

इसीलिए पुराने लोगों ने कहा कि बड़ों के आगे बोलना नहीं, बड़ों का मान करना, बड़ों के प्रति समर्पित रहना, तो उसका मतलब क्या था? कि तुम अंदाज़ नहीं लगा सकते उनके प्यार का, महसूस करो, पर अंदाज़ा नहीं लगा पाओगे वह कितनी गहराई तक पहुँचे हुए हैं; तुम्हारे कल्याण के लिए ही तो सोचते हैं।

तो आप सोचिए कि बुद्धि ने तो विचलित कर दिया पर अगर अंदर की लगन और समर्पण पूरा हो, विचलित नहीं होगा। यहाँ सीधी-सी बात यह है कि ज्ञानवादी कई बार विचलित होता हुआ दिखाई देता है - पता नहीं प्राप्त होगा या नहीं होगा? प्रेम वाला और श्रद्धा वाला, वह तो जायेगा और जाकर के कहेगा भले ही कुछ भी है पर जो मेरे सामने है मैं इसी के सामने बैठकर रोऊँगा, इसी को फूल चढ़ाऊँगा, इसी के आगे प्रसाद रखूँगा. इसी से कहूँगा - ओ सर्वशक्तिमान, तू मेरा उद्धार कर;' उसी स्वरूप का ध्यान करते-करते अपने शरीर को छोड़ना चाहेगा।

मनुष्य ने कोई न कोई प्रतीक अपने सामने रख लिया, इसके बिना उसका काम नहीं चलता। आख़िर में क्या करेगा, और कुछ नहीं तो प्रकाश रख लेगा सामने और प्रकाश भी जड़ चीज़ है। मज़े की बात तो यही है। अग्नि जलाकर के भी अगर व्यक्ति बैठेगा, दिया जलाये, हवनकुण्ड में अग्नि जलाये, कुछ भी जलायेगा, दीपक रखेगा सामने - वह भी तो एक जड़ चीज़ है। क्या करे आख़िर में। प्रकाश स्वरूप कहेगा तो किस चीज़ का ध्यान करेगा? अंदर ज्योति जल रही है, प्रकाश जल रहा है, वह प्रकाश भी क्या है? जड़ चीज़ ही तो है। जाये कहाँ आदमी? क्योंकि इस मूर्त संसार में रहता है, इस मूर्त को ही देखता है, मूर्त संसार की ही कल्पनायें मन में बैठी हुई हैं। आख़िर में यही कुछ मान लेगा।

मज़े की बात यह है कि हर आदमी दूसरे की विधि को ग़लत ठहराने में तुला हुआ है और प्राप्ति का आनन्द यह है कि जिस भावना से आप पूजते रहे - अगर परमात्मा प्रकाश स्वरूप है, वह प्रकाश उसी कल्पना में ढ़लेगा आख़िर में जो आपकी धारणा बन गई है, जो चित्त पर ध्यान बन गया, जो भी कुछ आप ध्यान करते रहे उसी रूप में सामने आयेगा। लेकिन दृढ़ता ख़री होनी चाहिए।

दुःख इस बात का ही है कि हमारी दृढ़ता में कमी है, श्रद्धा और विश्वास में कमी है। कुछ भी मानिए आख़िर में एक और भी आश्चर्यजनक चीज़ बचती है कि व्यक्ति कुछ भी कर रहा हो वह यह सोचता है शायद मैं सही हूँ, शायद मैं ग़लत हूँ, पता नहीं ऐसे बात बनेगी कि नहीं बनेगी? दूसरों को समझाने में पूरी ताक़त लगायेगा कि मैं जो चल रहा हूँ, ठीक चल रहा हूँ। लेकिन अंदर यह शंका बनी रहती है। इसका मतलब यह कि समर्पण में कहीं कमी है और जिनके समर्पण में विशेषता थी उन्होंने तो हर जगह, हर रूप में अनुभूतियाँ कीं।

हम शंका में ही बने रहते हैं, डोलते रहते हैं, स्थिरता नहीं होती, किसी ने सूर्य को सामने रखा, उसकी उपासना में लग गया। कई लोग नदियों को सामने रखकर के खड़े रहे हैं और सब यह मानते हैं कि सब जगह परमात्मा, हर वस्तु में परमात्मा है। पर एक-दूसरे की श्रद्धा को हिलाने -डुलाने में सारा संसार लगा हुआ है, चमत्कारों के पीछे दौड़ रहे हैं। चमत्कार तो रात-दिन परमात्मा के हो रही रहे हैं।

इसीलिए भगवान ने कहा - मेरे प्रति जो अपने मन को अर्पित कर दे; और अगला प्यारा शब्द - *नित्य युक्ता: उपासते* - जिसकी श्रद्धा-भावना, पूजा-पाठ नित्य प्रति चल रहा है जिसमें कभी बाधा नहीं आती, कम ज़्यादा भी नहीं होता, रोज़ बैठता है, रोज़ पुकारता है - उसकी यह दृढ़ता उसे प्राप्ति करायेगी। वही श्रेष्ठ भक्त है।

आनन्द की बात यह है कि मन अगर उसका हो गया तो नित्यप्रति उसकी उपासना होगी और अगर मन में ही कमी रह गयी, उपासना नित्यप्रति की नहीं होगी, जिस व्यक्ति को बहुत प्यास लगी है, उसे कहीं से भी पानी मिले वह पानी की तलाश में दौड़ेगा और जिस आदमी को प्यास ही नहीं उसको तो शर्बत भी लाकर के आप पिलाओ, ठंडा शर्बत, वह कहेगा बेकार की चीज़ है मेरे लिये। मुझे प्यास ही नहीं, क्या करूँगा पीकर?

भूखे आदमी के लिए सूखी रोटी में भी स्वाद है, और जिसका पेट भरा हुआ है उसके लिए छप्पन प्रकार के व्यंजन भी बेकार हैं। भूख जिसकी अंदर से जाग्रत है - भक्ति की भूख, मिलने की भूख, परमात्मा को पाने की भूख - नित्यप्रति बैठेगा। पहले तो भूख जगाओ, पिपासा जगाओ कि हम उस ज्ञान को या उस अमृत को पीने के लिए तत्पर हैं, परमात्मा से मिलने के लिए तत्पर हैं। आगे फिर एक शब्द है -

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मता:

- श्रद्धा से जो परिपूर्ण है; कभी आपने देखा होगा बच्चे जब पढ़ने के लिए बैठते हैं तो वह कहते हैं एकाग्रता में कमी आ रही है। पुस्तक पढ़ने बैठते हैं, ध्यान इधर-उधर चला जाता है। यहाँ एक बात याद रखने योग्य है - बच्चे से पूछो कि तुम्हारी रुचि किस चीज़ में है? अगर वह कहे खेल में, तो पूछना कि खेल खेलते समय ध्यान इधर-उधर जाता है क्या? वह कहेगा एक मिनट के लिए भी इधर-उधर नहीं जाता क्योंकि खेल से प्यार है। अगर पूरी तरह से किसी वस्तु के प्रति लगाव है तो ध्यान वहाँ से हटने वाला है ही नहीं। अगर परमात्मा के प्रति लगाव है तो फिर ध्यान इधर-उधर जाने वाला है ही नहीं, परमात्मा में ही जायेगा - यह बात निश्चित है। इसीलिए रुचि पैदा करो पहले। लगातार जाग्रत रहने वाला, सुलगने वाली अग्नि जो भड़क रही है, बढ़ती चली जा रही है, उस अग्नि

की तरह से अपनी लग्न को, अपने प्रेम को बढ़ायें तो बात बनती है और अगर इसमें कमी है तो ध्यान बँटता ही रहेगा।

प्रोफेसर चक्रवर्ती जिसने भारतीय रेलवे का टाईम-टेबल पहली बार बनाया, गणित का बहुत बड़ा विद्वान था। गणित के संबंध में जितनी बढ़िया खोजें उस व्यक्ति ने कीं एक अनोखी चीज़ थी। प्रोफे़सर चक्रवर्ती को अगर कोई कहे कि गणित का सवाल हल करने बैठो, तो उस समय, हल करते समय न भोजन का ध्यान, न किसी धन की प्राप्ति का, न किसी से मिलने की चाह, भूखा प्यासा उसी में लगा रहता था। आम आदमी को आप गणित पकड़ाईये - जिसको रुचि नहीं उसके लिए तो सिरदर्द है। शास्त्रीय संगीत सुनते हैं न आप लोग। तो जिनको शास्त्रीय संगीत में रुचि है, पक्के राग सुनने की रुचि है उनको तो लगेगा कि इससे बढ़कर सुंदर राग दुनिया में नहीं हो सकता; एक-एक शब्द पर ही वाह-वाह करेगा और अगर जिसको रूचि नहीं है उसको सुनाने के लिए बैठा दीजिए आप - वह यह कहेगा कि अगर आप एक लाख रूपये भी ऊपर से रखकर के दो और बैठाओ तो भी हम बैठने वाले नहीं हैं, आप दया करें, इसे बंद कीजिए।

प्रोफे़सर चक्रवर्ती के जीवन का एक बड़ा प्यारा उदाहरण है। उनकी पीठ में बहुत भयंकर फोड़ा हो गया और उसका ऑपरेशन करना ज़रूरी था। वह गये डॉक्टर के पास। डॉक्टर ने कहा क्रि थोड़ा ऑपरेशन करना पड़ेगा और क्लोरोफार्म सुँघानी पड़ेगी। तो वह कुछ भक्त टाईप के व्यक्ति थे; उन्होंने कहा कि क्लोरोफार्म का मतलब है नशा और मस्तिष्क को आज तक कोई नशा मैंने दिया नहीं गणित के सिवाये। इसीलिए आप वाला नशा तो करूँगा नहीं, हाँ, जितनी देर का ऑपरेशन है वह आप बता दीजिए। उन्होंने कहा बीस मिनट का ऑपरेशन है। इन्होंने कहा तो ठीक है आधे घंटे के लिए मैं अपने आपको एकाग्र कर लेता हूँ, आपके हिसाब से बेहोश कर लेता हूँ। उन्होंने अपने घर से पुस्तकें मँगाई और जो कठिन से कठिन सवाल उनके सामने थे, जिनको वह सोचते थे कि आधा घंटा तो कम से कम लग ही जायेगा, तो उसमें वह डूब कर बैठे गये और उन्होंने कहा कि डॉक्टर साहब जब आप मुझे अच्छी तरह से देख लो कि मैं

उसमें डूब गया हूँ तो सुई चुभाकर देख लेना कि बात बन गई है या नहीं। उसके बाद शुरू हो जाना और आश्चर्यजनक बात है कि उनका ऑपरेशन हुआ बीस मिनट तक; न हिले, न डुले।

आपने भी तो कई बार देखा होगा बच्चे जब खेल में मस्त होते हैं, तो चोट लग जाती है, चोट लग जाती है तो उनका ध्यान भी नहीं जाता, खेलते ही रहते हैं और अगर अचानक खून बहता हुआ देख लें तब उनको ध्यान में आता है पिटाई लगेगी क्योंकि खून बह रहा है। तब वह रोना शुरू करते हैं, उससे पहले रोना भी नहीं शुरू करते। तब जायेंगे माँ के पास रोते हुए - देखो चोट लग गयी। रोयेंगे भी इसीलिए रोयेंगे कि जिससे माँ की तरफ से डाँट न पड़े। तो माँ उसे रोता देखकर और प्यार करने लग जाती है। लेकिन खेल खेलते समय तो पता ही नहीं लगता क्योंकि एकाग्रता बनी हुई है। चोट लगी हुई थी, कोई दर्द भी नहीं है।

अगर एकाग्रता पूरी बन जाये तो फिर तो आप कहीं विचलित होंगे ही नहीं, परमात्मा में अगर एकाग्रता बनी हुई है, तो ध्यान किसी और का आयेगा ही नहीं, और परमात्मा की एकाग्रता का आनन्द ही इतना है कि फिर न कोई चिन्ता, न कोई दुःख आपको सतायेगा, फिर तो आप आनन्द में ही डूबे रहेंगे। अनेक लोग ऐसे रहे हैं।

आइन्स्टीन, डॉ॰ राम मनोहर लोहिया से मिलने के लिये गये। लेकिन वह उस समय अपने बाथरूम में थे, और वहाँ अपना कोई फ़ार्मूला और अपना हिसाब-किताब बनाने में लगे हुए थे। ऐसे डूब गये उसमें, बाहर ही नहीं निकले। ऐसे मस्त होकर वह फार्मूले सिद्ध करते रहे। न भूख, न प्यास, कोई ध्यान ही नहीं। कोई घुटन भी महसूस हुई होगी। जब बाहर आये, आते ही इतने खुश हुए कि जैसे न जाने कितना बड़ा क़िला फ़तह करके आये हों।

अब मैं आपको यह बताना चाहूँगा कि अगर आपका ध्यान पूर्ण रूप से अपने परमात्मा में लगा हुआ है तो उसके बाद संसार का ध्यान आयेगा ही नहीं। यह रुचि पैदा कीजिए, प्रेम पैदा कीजिए और प्रेम अगर परमात्मा के प्रति बन गया, तो ध्यान फिर परमात्मा का ही रहेगा, संसार का ध्यान बिल्कुल नहीं रहेगा। इस स्थिति का नाम ही श्रद्धा है, बहुत अधिक लगाव. बहुत अधिक प्रेम, बहुत अधिक समर्पण अपने परमात्मा के प्रति।

भगवान कहते हैं कि जो मेरे प्रति इस तरह समर्पित हो जाये वही श्रेष्ठ भक्त है। इस तरह से जो भक्ति करने वाला है वही मुझे प्राप्त कर सकता है, उसे प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

यहाँ एक बात और ध्यान रखना - संसार में जो भी लोग सफल हुए हैं अगर उन्हें अपने काम के प्रति प्यार रहा तो सफलता मिलेगी। अपने काम के प्रति श्रद्धा है तो सफलता मिलेगी। आप काम कुछ कर रहे हो और श्रद्धा आपकी किसी और काम में है, लगाव आपका किसी और कार्य के प्रति है तो कभी भी आपको सफलता नहीं मिलने वाली। उसे महत्त्वपूर्ण मानो जिसे कर रहे हो, दूसरी तरफ नहीं और अगर दूसरे के प्रति, किसी और कार्य के प्रति मन में आकर्षण, लगाव और श्रद्धा है तो फिर पहले वाले को छोड़कर उसमें डूब जाना। अधूरा हिसाब नहीं।

वॉलटेयर हुए, जिन्हें वॉलटेयर महान के नाम से भी जाना गया। पिता चाहते थे वकील बन जाये, बेटा चाहता था लेखक बनूँ। पिता ने कहा कि लेखक बनने के बाद भूखा मरने के सिवाये और कोई काम होगा ही नहीं ज़िन्दगी में, भूखे मरते रहना सारी ज़िन्दगी। लानत और मिलेगी तुम्हें, इस काम में कोई फ़ायदा होने वाला नहीं; वकील बन गया दुनिया भर का सम्मान मिलेगा।

बेटे ने बात नहीं मानी। उसने कहा - मेरा जहाँ लगाव है, पूर्ण श्रद्धा है, जो चीज़ मैं करना चाहता हूँ उसी में डूबना चाहता हूँ, उसे पूरा करना चाहता हूँ।

पिता ने भी हाथ पीछे खींच लिया। इस व्यक्ति ने लिखना शुरू किया। लिखता चला गया, लिखता चला गया। जो भी समाज में कुरीतियाँ थीं उनके प्रति लिखा, समाज के कल्याण के लिए कार्य करना शुरू किया। उससे भी ज़्यादा बड़ी चीज़ थी - आत्मविश्वास और सौ के लगभग इसने विशेष निबन्ध लिखे, जिनको लोगों ने बहुत पसंद किया और तीन सौ शोध निबन्ध भी लिखे क्योंकि रिसर्च स्कॉलर था यह। रिसर्च स्कॉलर होने के साथ-साथ, खोज करने वाला व्यक्ति बनने के साथ-साथ इसकी लगन में कभी कोई कमी नहीं आयी।

एक समय ऐसा आया कि इसके निबंधों से ऐसी क्रांति मची कि लोग ढूँढ-ढूँढ कर पढ़ने लगे और प्रशासन को खलबली मच गयी। फ्रांस का जो प्रशासन था उन लोगों ने इस व्यक्ति को कहा कि तुम्हें देश निकाला दिया जाता है और अगर इससे भी ज़्यादा अगर तुमने कोई हरकत की तो हो सकता है तुम्हें मृत्युदंड दिया जाये। इसके सारे लेखों पर प्रतिबंध लगा दिया गया, सारा साहित्य उठाकर जलवा दिया गया। लेकिन रूका नहीं यह व्यक्ति। अपनी लगन से अपना काम करता रहा। अब जिसके ख़िलाफ़ उसके पिता भी, प्रशासन भी, मित्र लोग भी, साथ देने वाला कोई भी नहीं; बाप चाहते थे कुछ और बन जाये, बन कुछ और रहा है।

स्थिति यह आ गई कि यह व्यक्ति सबकी बात सुनने के बाद भी जिस कार्य से प्यार करता था उसमें लगन लगाकर के बैठ गया - लिखता रहा, लिखता रहा। लेकिन एक चीज़ घटी इसके जीवन में - सारा संसार विरोध में खड़ा रहा - मतलब, प्रशासन भी, रिश्तेनाते वाले भी और ऐसी हालत में इस व्यक्ति का प्राणान्त हो गया।

जब यह मर गया तो इसका संस्कार करने के लिए भी सरकार की तरफ़ से पूरा दबाव था - इस आदमी के पास जो भी कोई गया तो उसे भी गिरफ़्तार किया जा सकता है। जैसे-तैसे बिना किसी पादरी को बुलाये संस्कार हुआ, मिट्टी में गाड़ दिया गया और लोग कहते रहे अजीब आदमी था - किसी की बात मानी नहीं, अपने ढंग से जीता रहा, उसी तरह से मर भी गया। मरते समय भी उसको कोई पीढ़ा नहीं थी, घबराहट नहीं थी, किसी तरह का डरा हुआ भी नहीं था। व्यक्ति क्या था यह? साहित्य सारा जला दिया गया था उसका।

लेकिन आश्चर्यजनक बात यह रही कि उसका साहित्य गुपचुप छपता रहा। अंदर-अंदर लोग पढ़ते रहे, आपस में चर्चा करते रहे - यह वाला निबंध पढ़ा तुमने? यह वाली चीज़ पढ़ी? अंदर-अंदर सब लोग उसका साहित्य पढ़ते रहे और कुछ सालों के बाद फ्रांस में क्रांति हुई। तीन लाख लोग एक जगह इकट्ठे हुए और उन लोगों ने कहा कि अब पूरी तरह से फ्रांस की स्थिति बदल दी जायेगी, पूरे देश में क्रांति हो गई और उसके बाद वह लोग, क्रांतिकारी लोग, जहाँ पर इस व्यक्ति की क़ब्र थी वहाँ

इकट्ठे हुए और उन्होंने कहा इस व्यक्ति का स्मारक बनना चाहिए क्योंकि यह व्यक्ति मरा नहीं है, यह आग बनकर के हर किसी के दिल में जागा है और हमारे देश का उत्थान करने वाला व्यक्ति यह था। यह पहली नींव थी हमारी जिसके ऊपर फ्रांस का भवन बनेगा। यह वह दिया था जो अँधेरे के खिलाफ़ अकेला ही लड़ता रहा और उन लोगों ने उसकी अस्थियाँ वहाँ से लीं। तीन लाख लोगों ने जुलूस निकाले और बाद में एक जगह पर जाकर उसका स्मारक बनाया। तीन लाख लोगों ने एक साथ सेल्यूट किया, आँख में आँसू लेकर के प्रणाम किया और उस समय नित्सय ने उसके संबंध में श्रद्धांजली देते हुए कहा था - एक हँसता हुआ, गरजता हुआ शेर, जो मरा नहीं आज भी ज़िन्दा है और वह हर किसी को शेर बनाने पर तुला हुआ है। मरे हुए मुर्दे लोगों के अंदर सिंह गर्जना कर रहा है कि जागो और सारे संसार को जगा दो।'

ज़रा सोच कर के देखिए अगर उस व्यक्ति की लगन मिट जाती और वह व्यक्ति कुछ भी न कर पाता, लोगों की बात सुनकर के घबरा के रह जाता, संसार में अपना कोई स्थान न बना पाता। ऐसे लोग जो अपनी श्रद्धा और अपनी लगन से अपना काम किया करते हैं समय की धारा पर अपना नाम लिखकर जाते हैं, उनका शरीर धारण करना अपने आप में एक सफलता है।

इसीलिए मैं यह प्रार्थना करना चाहूँगा आप लोगों से कि अपनी श्रद्धा को गहरा करो और समर्पण सम्पूर्ण तो यह शरीर धारण करना सफल होगा। नहीं तो जीवन तो न जाने कितने कीड़े-मकोड़े भी धारण करते हैं, वह ज़िन्दगी ज़िन्दगी नहीं है। महान् पुरूषों का सान्निध्य मिलने का ही मतलब है कि एक अग्नि हमारे अंदर जागृत हो जाए।

भगवान ने कहा श्रेष्ठ भक्त वही है जिसकी श्रद्धा अगाध है, जिसका मन प्रभु के प्रति अर्पित है और जो नित्य नियम अपनी साधना, अपनी लगन को टूटने नहीं देता। यहाँ से गीता का यह बारहवां अध्याय प्रारम्भ हुआ है।

❊❊❊❊❊❊❊❊❊❊❊❊

गीता के बारहवें अध्याय में, जिसे 'भक्तियोग' कहा गया है, इस पर हम लोग विचार कर रहे हैं। भगवान श्रीकृष्ण अव्यक्त शक्ति, निराकार की आराधना और जो व्यक्त स्वरूप में सारे संसार में अपनी प्रतिथि करा रहे हैं, उस परब्रह्म की उपासना के संबंध में बहुत ही सुंदर निर्देशन दे रहे हैं-

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यम् - जो अक्षर अर्थात् नष्ट नहीं होता, सदा रहने वाला तत्त्व अर्थात् परम पिता परमात्मा का वह स्वरूप *निर्देश्यम्* जिसके प्रति निर्देश किया जा सकता है अर्थात् ईशारा किया जा सकता है लेकिन जिसको बताया नहीं जा सकता कि यह तत्त्व परमात्मा है *अव्यक्तम्* जो अव्यक्त है, प्रकट नहीं है *सर्वत्रगमचिन्त्यं च* -जो सर्वत्र है, सब जगह पहुँचा हुआ है *अचिन्त्यम् च* - और किसी के चिन्तन में, विचार में नहीं आ सकता *कूटस्थमचलं ध्रुवम* - जो अपरिवर्तनशील है *अचलम्* स्थिर, अर्थात् जो चलता नहीं, गति में नहीं आता *ध्रुवम* - सदा है, दृढ़ है, *पर्युपासते* - ऐसे स्वरूप की जो उपासना करते हैं *सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः* - अपनी इन्द्रियों को नियंत्रण में रखकर सबके प्रति समबुद्धि बनाकर जो लोग इस स्वरूप की उपासना करते हैं, भगवान कहते हैं - *ते प्राप्नुवन्ति मामेव* - ऐसी निराकार की उपासना करने वाले लोग भी मुझे ही प्राप्त करते हैं, मुझे ही प्राप्त होते हैं। यहाँ एक शब्द और बड़ा प्यारा दिया - *सर्वभूतहिते रताः* - समस्त प्राणीमात्र के प्रति जो हित की कामना से लगे हुए हैं वह मुझे ही प्राप्त करते हैं।

आईये, थोड़ा चिन्तन करें। सर्वप्रथम परमात्मा के उस स्वरूप का वर्णन किया गया है जो परमात्मा का व्यापक, निराकार रूप है। परमेश्वर को कहा वह अक्षरम् - नष्ट नहीं होता, अर्थात् सदा रहता है। परमात्मा का यह संसार सदा नहीं रहता, संसार के बनाये हुए पदार्थ सदा नहीं रहते। पदार्थों में परिवर्तन हैं; पदार्थों को जोड़ने वाला, निर्माण करने वाला, परिवर्तन में नहीं आता है। संसार के समस्त पदार्थ नष्ट होते हैं लेकिन जो बनाता है वह नष्ट नहीं होता

है। उसे कहा गया है अनिर्देश्यम् - उसे किसी प्रकार से जाकर बताया नहीं जा सकता कि यह है। लेकिन शास्त्रों में जैसे कहा गया कि परमात्मा अनिर्वचनीय है - वचनों में नहीं आता वह, हमारे शब्दों की पकड़ में नहीं आता। कितनी भी कोई कोशिश करे कि स्वरूप को बताये कि ऐसा है, शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि जिस जैसी दूसरी वस्तु हो उसे देखकर तो आप कल्पना करके कह सकते हैं कि ऐसा कुछ और लेकिन जिस जैसी दूसरी वस्तु है ही नहीं उसके विषय में आप क्या कहेंगे?

तो परमात्मा के संबंध में अगर आप कुछ कहना भी चाहें तो वचनों में, हमारी पकड़ में, मन की कल्पना में, वह शक्ति नहीं आ सकती। इसीलिए अनेक स्थानों में शास्त्रों में एक शब्द प्रयोग किया गया तत् शब्द का। *तत्सवितुवरेण्यम्* - इस मंत्र में भी तत् शब्द का प्रयोग, किया *हरि ओ३म तत् सत्*। तत् शब्द का यहाँ भी प्रयोग किया गया और इसका सीधा-सा मतलब है- वह सत्ता जिसके लिए हम ईशारा कर सकते हैं लेकिन मुख से बता नहीं सकते, जहाँ हम यह कहें कि वह ऐसा है लेकिन मुँह से जिसे कहा न जा सके। कोई वस्तु आपके सामने है तो उसे आप सीधे ढंग से एक दम कहेंगे कि 'यह'। लेकिन जो आपसे दूर, और आप उसे समझते हैं लेकिन ईशारा करते हैं कि 'वह' जैसे 'दिस' और 'दैट' का प्रयोग आप लोग करते हैं। तो जब आप 'वह' कहते हैं तो 'वह' का मतलब है कि वह जिसके प्रति ईशारा किया जा सकता हैं, उंगली उठा सकते हैं लेकिन आप सामने बता नहीं सकते। इसीलिए ज़्यादातर प्रेम और आदर में महिलायें पति के लिए नाम न लेकर 'वह' कह कर ईशारा करती हैं - 'वह आयेंगे भोजन करेंगे, अब आने का टाईम है।' अब यहाँ नाम न लेने में कोई कठिनाई नहीं है लेकिन प्रेम और आदर में ईशारा किया जाता है - 'उनके आने का समय हो गया,' 'वह ऐसा कहते हैं', 'उन्होंने ऐसा कहा था,' 'वह अभी यह बोल के गये हैं,' 'अब आने वाले हैं यह फिर बोलेंगे' - तो यह जो शब्दों का प्रयोग किया जाता है, बात-बात में 'वह' कहा जा रहा है तो यहाँ प्रेम है, आदर है; सामने है तो फिर तो 'यह', सामने नहीं है तो ईशारा किया जा रहा है। तो समझिये कि परमात्मा को सामने रखकर कोई नहीं कह सकता लेकिन यह ज़रूर कहेगा कि वह स्वरूप ऐसा है। अब जहाँ वह स्वरूप ऐसा है तो इसको संस्कृत में कहने के

लिए केवल एक शब्द का प्रयोग किया गया - तत् और तत् का अर्थ है तो 'वह' लेकिन समझाने के लिए कह दिया गया कि वह जो शब्दों में न आ सके, जिसे अनिर्वचनीय कहा गया है, वचनों की पकड़ में जो नहीं आता। तो *अनिर्देश्यम्* का अर्थ हुआ जिसके प्रति ईशारा नहीं किया जा सकता, बताया नहीं जा सकता, लेकिन फिर भी हम संकेत करते हैं। *अव्यक्तम्* - उसका संसार तो व्यक्त है, लेकिन वह व्यक्त नहीं है। चित्रकार के चित्र दिखाई देते हैं, लेकिन चित्रकार नहीं; उसकी व्यवस्था दिखाई देती है लेकिन व्यवस्थापक नहीं है; उसके नियम संसार में दिखाई देते हैं, लेकिन नियामक कहाँ बैठा हुआ है यह नहीं दिखाई देता; उस दाता की देन दिखाई देती है, लेकिन देकर कहाँ छिप गया है यह नहीं पता लगता कभी भी। वह परमात्मा बरस कर चला जाता है, लेकिन कहाँ जलधारा छिपा कर रखता है और कैसे छिपा कर रखता है, आकाश में कहाँ जल की बूँदें इकट्ठी हैं, कैसे अपनी मुट्ठी में या किस बर्तन में कैसे संभाले हुए है और संभालने वाला कौन तत्त्व है यह नहीं दिखाई देता। सूरज और चन्द्रमा में प्रकाश उसका है, लेकिन वह स्वयं अपने प्रकाश को प्रकट करता है स्वयं को नहीं। इसीलिए उस परमात्मा को कहा गया है *अव्यक्तम्* - अव्यक्त है वह।

दूसरे शब्दो में कहें - सारे संसार को बनाकर जो मिटाता भी है लेकिन स्वयं रहता है - सदा से था, सदा है, सदा रहेगा - इस स्वरूप का जो ध्यान करते हैं, जो उस स्वरूप का ध्यान करते हैं कि जिसके बारे में बताते-बताते ऋषि-मुनि, संतजन सब हार गये लेकिन फिर भी सम्पूर्ण स्वरूप को या उसके स्वरूप को बता नहीं पाये, जो अव्यक्त है लेकिन जिसका संसार व्यक्त है, जो संसार में अपनी अनुभूति कराता है लेकिन स्वयं प्रकट नहीं होता, जो सर्वत्र गया हुआ है, पहुँचा हुआ है, सर्वव्यापक है, जहाँ भी हम जाना चाहें, जहाँ तक हम कल्पना ले जाना चाहें, पहले से विराजमान है। हमारा सोचना, हमारा चिंतन करना, सब किसी सीमा में है, उससे ज़्यादा आगे जा नहीं सकते लेकिन परमात्मा असीम है, उसको कहीं सीमा-रेखा में बाँधा नहीं जा सकता, उसके लिए सीमाऐं निर्धारित नहीं की जा सकतीं। मनुष्य अपनी एक लिमिट में है. लेकिन उसकी कोई लिमिट नहीं है, वह समस्त सीमाओं से पार है। हम लोगों का सोचना बहुत छोटा है लेकिन कितनी भी बड़ी शक्ति, मन में कल्पना

रखकर के हम विचार करें हमारी कल्पना में भी नहीं आता वह। इसीलिए उसे कहा *अचिन्तयम्* हमारे चिन्तन में नहीं आ सकता, कितनी भी कोशिश करें। क्या स्वरूप होगा? कैसा होगा? किस तरह का होगा? भगवान कृष्ण कहते हैं कि उस अचिन्तय रूप का चिन्तन नहीं हो सकता।

इसीलिए उपनिषदों ने ऐसा कहा कि यह मन नहीं उसे जानेगा, न बुद्धि, यह सब उसके महल के द्वार से बाहर ही खड़े रह जायेंगे, इनकी पहुँच वहाँ नहीं है; नहीं तो सारे बुद्धिमान लोग भगवान को अपनी पकड़ में रख लेते। जो बुद्धिहीन, साधारण, मूर्ख कहलाने वाले लोग हैं उनको तो प्राप्ति होती ही नहीं और मज़े की बात यह है कि जो बहुत बुद्धिमान हैं वह बाहर खड़े रह जाते हैं और जिसने अपनी बुद्धि को हटाया, उसका हो गया, उसे प्राप्त हो जाता है वह।

इससे भी ज़्यादा और आनन्द की बात - जहाँ बुद्धि वाला इंसान है, मनन करने वाला इंसान है, वहाँ कहीं न कहीं तर्क़-वितर्क़, और अहंकार, संशय, मन में रहेगा और जहाँ सारे संशय मिट जायें, वह कोई भी व्यक्ति हो जिसके सारे संशय मिट गये, अहंकार हटा, वहाँ बात बन जाती है। इसीलिए जो व्यक्ति अव्यक्त स्वरूप का ध्यान करने वाला है, निराकार शक्ति का ध्यान करने वाला है, उसे निरंतर ज्ञान से युक्त होना चाहिए और ज्ञान को किसी सीमा पर जाकर शून्यता प्राप्त करनी चाहिए। जैसे न्यूटन ने कहा कि लोग कहते हैं कि मैं बहुत जानता हूँ, लेकिन रेत के कण बराबर ही मेरा ज्ञान है और जिसको जानना था वह इतना जितना समुद्र के किनारे बिखरी हुई रेत।

अनेक महापुरूषों का कहना है कि जब हम कुछ नहीं जानते थे तब तो ऐसा लगता था कि हमसे बढ़कर ज्ञानी कोई नहीं है, अब कुछ जाना तो यह महसूस होता है कि हम तो कुछ जानते ही नहीं हैं। मूर्ख आदमी अपने आपको ज्ञानी कहने में कभी भी देर नहीं लगायेगा और जो ज्ञानी है उसे अपनी मूर्खता पर हर समय ध्यान आयेगा। उसको ध्यान आयेगा कि मूर्खता बहुत सारी बाकी है उसे अपनी मूर्खता पर ध्यान जायेगा और जो मूर्ख है उसका ध्यान अपनी मूर्खता पर कभी जाता ही नहीं, वह तो हमेशा ही अपने आपको मानता है कि मुझसे बढ़कर ज्ञानी है ही नहीं कोई।

इसीलिए जब ज्ञान चरम पर पहुँचता है तो इंसान की स्थिति अत्यन्त वैराग्य वाली हो जाती है और उस समय व्यक्ति अपने आपको यह मानता है कि मैं कुछ हूँ ही नहीं, मैं कुछ जानता ही नहीं। यद्यपि अनेक महान पुरूष ऐसे भी हुए कि जब उनसे पूछा गया कि ज्ञानी हो या अज्ञानी? तो उन्होंने कहा कि जिन चीज़ों को जानते हैं उन्हीं के बारे में कह सकते हैं कि ज्ञानी हैं, जिन चीज़ों को नहीं जानते उनके संबंध में तो निरंतर अज्ञानी ही हैं, इसीलिए न यह कहा जा सकता है कि ज्ञानी हैं, न यह कहा जा सकता है कि अज्ञानी हैं, ऐसा लगता है कुछ हैं ही नहीं। इसीलिए यह स्थिति ऐसी है कि हम कितनी भी कोशिश करें परमात्मा हमारी बुद्धि की पकड़ में नहीं आता।

बुद्धिमान लोगों का ही प्रवेश वहाँ हो, ऐसी बात नहीं है, बुद्धिमान भी अपनी बुद्धि को लेकर बाहर खड़े रह जायेंगे। बल्कि एक विचित्र चीज़ है - न्यूटन की बात चल रही थी तो न्यूटन ने एक थ्योरी दी, ग्रेवीटेशन की थ्योरी: कोई भी चीज़ जो भारी है धरती के द्वारा नीचे खींच ली जाती है। यह एक नियम है जो निरतंर घटता है - कोई भी भारी चीज़ होगी धरती उसे नीचे खींचती है।

लेकिन एक और भी नियम दर्शाया गया। उस थ्योरी को कहा गया वह लेविटेशन की थ्योरी है। एक ग्रेवीटेशन है तो एक लेविटेशन। जो भी चीज़ हल्की होगी तो वह ऊपर की तरफ़ उठ जायेगी। पानी नीचे की तरफ़ बहेगा लेकिन अगर उसे आग पर तपा दिया गया तो फिर नीचे नहीं जायेगा, जैसे ही भाप बना, ऊपर उठ जायेगा। हल्का होते ही ऊपर उठ जाता है, भारी है तो नीचे की तरफ़ चला जाता है।

यहाँ एक बात याद रखना, बहुत आनन्द की बात है - जब भी आप अपने अहंकार से हल्के हुए, अहंकार हटा, जैसे पानी भाप बना, हल्का हुआ तो ऊपर की तरफ़ सूरज उसे अपनी तरफ खींच लेता है। जैसे ही आप अपने अहंकार से हटे, तो परमात्मा आपको अपनी तरफ़, ऊपर की तरफ़ खींच लेता है। हल्के होने में ही आपका स्वरूप ऊपर खींच लिया जाता है, भारी होने में ही आप प्रकृति की तरफ़ खींच लिये जाते हो, माया अपनी तरफ खींच लेती है। यह विचित्र नियम है, इसीलिए ज्ञानी को कहा जायेगा कि अहंकार से शून्य होना पड़ेगा। प्रेम और भक्ति वाले व्यक्ति को कहा जायेगा कि तू साकार की

तरफ़ चल रहा है तो तुझे फिर पूर्ण होना पड़ेगा। भक्ति में, अपने प्रेम में पूरा हो, और ज्ञान में है तो फिर इतना हल्का हो कि अहंकार हटे, तो दोनों स्थितियों में प्राप्ति हो सकती है, मार्ग में कमी नहीं है। मार्ग दोनों ही अपने आपे में अनोखे हैं, दोनों ही पूर्ण हैं, दोनों ही मार्ग ले जायेंगे वहाँ तक लेकिन अपने ज्ञान को वहाँ तक पहुँचा करके व्यक्ति अहंकार शून्य हो जाये और यह महसूस कर ले कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, तू ही सब कुछ है, या फिर सम्पूर्णता का अनुभव करे, साकार का ध्यान करते-करते अपने प्रेम में इतना परिपूर्ण हो जाये कि फिर अपनी होश न रह जाये, ध्यान रहे तो अपने परब्रह्म का तो प्राप्ति हो जायेगी। *या तो फिर दीवाने हो जाओ* संसार में व्यक्त स्वरूप का ध्यान करते हुए, मूर्त स्वरूप का ध्यान करते हुए *या फिर ऐसी स्थिति कि खो जाओ* हल्के होगे तो ऊपर उठा लिये जाओगे।

सिमोनवैल नाम की एक महिला ने अपने चिंतन में इस लेविटेशन की थ्यौरी को एक और नाम दिया - ग्रेस - जिसे कहा जायेगा प्रभु का प्रसाद। यह कृपा हो जाती है उसकी कि जैसे ही तुम हल्के हुए तो वह अपनी तरफ़ खींच लेगा। तब उसकी कृपा अपने आप, उसका प्रसाद अपने आप आपको प्राप्त हो जायेगा। इसीलिए यह ध्यान रखना कि परमेश्वर को कहा कि वह सर्वत्र है लेकिन *अचिन्त्यम्* चिन्तन में नहीं आयेगा *कूटस्थम्* - कूटस्थ है परिवर्तनशील नहीं है, उसका परिवर्तन नहीं होता है, उसमें कोई बदलाव नहीं होता है।

यह जो हमारा संसार है प्रतिक्षण बदल रहा है। हर क्षण इसमें कुछ न कुछ बदलाव है। जैसे जल बह रहा है - पहला आगे बह गया, नया जल आ रहा है; जैसे आप घड़ी की सुई, ख़ासतौर से जो सैकिण्ड वाली सुई है उस पर ध्यान टिकायें तो आपको पता लग रहा है कि समय की गति कैसी है - सैकिण्ड की सुई बता रही है और अगर इससे भी ज़्यादा बारीकी से समझना हो तो सैकिण्ड के भी जो लाखों हिस्से करके आज के समय की आणविक घड़ियाँ उस समय को दर्शा रही हैं, एक लाखवां हिस्सा भी एक सैकिण्ड का होता है, कल्पना में आना ही मुश्किल हो जाते हैं। तो अगर आपका ध्यान वहाँ जाये तो आप कहेंगे कि कितने तेज़ी के साथ संसार गतिशील है, समय चल रहा है, संसार बदल रहा, एक क्षण पहले क्या, और अब क्या?

पहले समय में जो नापने वाले समय की धारायें थी, तो एक पलक जब झपकती थी पलक झपकने में जो समय लगता है, आँख बंद हुई, खुली, मतलब अगर आँख को बंद करके खोलें, यह एक पल है और हम यही कहते थे कि पल-पल ज़िन्दगी बीत रही है। पलक और पल - नापने के लिए क्योंकि यंत्रों का माध्यम नहीं, परमात्मा के बनाये हुए यंत्रों का माध्यम लेकर ही नापते थे। एक पल भर पलक झपकने में कितनी देर लगती है, आँख बंद करके खोलने में, वह एक पल है - कि पल भर का भी जीवन निश्चित नहीं है। न जाने कब क्या हो जाये? लेकिन अगर और बारीकी से आप नापें तो घड़ी की सुई जो सैकिण्ड वाली है, उसके भी लाखवें हिस्से की कल्पना करके देखें इतनी तेजी के साथ यह जगत परिवर्तित हो रहा है।

जो परिवर्तन कर रहा है वह स्थिर है। रथ का पहिया धूरी में घूम रहा है, लेकिन धूरी नहीं घूम रही है, पहिया ही घूम रहा है। परिवर्तन संसार में हो रहा है लेकिन जो परिवर्तन जिस पर टिका है उस दूरी में कोई परिवर्तन नहीं है। रथ का पहिया घूम रहा है लेकिन जिस कीली में रथ का पहिया है वह घूमती नहीं है, वह स्थिर है - तो परमात्मा कीली है, संसार उसका चक्र है; चक्र चल रहा है लेकिन चलाने वाला नहीं चलता, उसे कूटस्थ कहा गया है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं है, परिवर्तन केवल मात्र प्रकृति में है।

यह हमारा जो शरीर है न यह परिवर्तनशील है। हर क्षण इसमें कुछ न कुछ बदलाव आ रहा है और ऐसा कहा जाता है कि सात साल में शरीर का पूरा रूप बदल जाता है, शरीर की सारी धारायें बदल जाती हैं। यह भी कमाल देखिए परमात्मा का - विज्ञान कहता है कि सात साल में शरीर की सारी चीज़ें बदल जाती हैं। आप अगर सत्तर साल के हैं तो दस बार आप पूरी तरह से बदलेंगे। लेकिन दस बार पूरी तरह बदलने के बाद भी आपकी पहचान नहीं बदलती। बच्चे से लेकर बूढ़े तक आपकी पहचान कभी नहीं बदलती। उस चित्रकार ने अपने चित्र को रोज़ बदला है, रोज़ बदला है, लेकिन उसके बाद भी चित्र की पहचान नहीं बदली - यह उसका चमत्कार है, परमात्मा का सबसे बड़ा चमत्कार है। बदलते हुए संसार में भी वह पहचान बनाये हुए है। लेकिन उस परमप्रभु में, उसके माध्यम से परिवर्तन होते हैं पर उसमें परिवर्तन नहीं होते इसीलिए उसे कूटस्थ कहा गया। *अचलम् ध्रुवम* - वह अचल है, वह नहीं चलता, *ध्रुवम्* और दृढ़ है।

सोच कर देखिए कि हम लोग कितनी दृढ़ता अपनाते हैं, कहीं न कहीं कम्पित हो ही जाते हैं। यहाँ तक देखा है कि जो लोग बहुत-बहुत आदर्श की बात कर रहे होते हैं उनको हिलाने के लिए थोड़ा लालच अधिक रख दिया जाये तो उनके अंदर भी प्रकम्पन दिखाई देता है। बड़े सिद्धान्तवादी, बड़े ज्ञानवादी, बिना सिला वस्त्र पहनते हैं। देखने में लगता है कि गंगा के तट पर जाकर बैठ गये, साधना कर रहे हैं और किसी आदमी ने जाकर के लालच दिया'- सारे सिद्धान्त छोड़ कर खड़ा हो गया। कोई नियम नहीं, कोई सिद्धान्त नहीं, कोई आस्था नहीं, एक सैकिण्ड में गयी। कहाँ तो देखकर उनको लोग सोचते थे कि इनसे स्थिरता मिलती है, और कहाँ देखने में मिला कि वही व्यक्ति स्थिरता तोड़ कर के हिल गया। तो कितना भी कोई साधक दिखाई देता हो लेकिन कहीं न कहीं व्यक्ति के अंदर प्रकम्पन है, हिल जाता है। लेकिन परमात्मा को कहा गया है कि इसे कोई हिला नहीं सकता, जो सदैव अचल है, जिसमें कोई प्रकम्पन नहीं, जो सदैव ध्रुव है, दृढ़ है, वहाँ कही किसी प्रकार का परिवर्तन है ही नहीं। भगवान श्री कृष्ण आगे समझाते हैं -

सन्नयम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्रप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

- इस तरह से जो लोग परमात्मा का चिंतन करते हैं, अपनी इन्द्रियों को नियंत्रण में रखते हैं, सब में समान दृष्टि रखते हैं - न किसी के प्रति लगाव, न वैर, जो *सर्वभूतेहितेरताः* - समस्त प्राणी मात्र के हित में लग गए हैं ऐसी जो अपनी साधना ज्ञान के माध्यम से करते हैं, वह मुझे ही प्राप्त करते हैं, मैं उन्हीं को प्राप्त होता हूँ। यह हुई अव्यक्त की बात। भगवान कृष्ण ने यहाँ तक बताते-बताते एक कठिनाई इस संबंध में कही है -

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

- यहाँ शब्द ध्यान देने वाला है, जो देह धारी लोग हैं संसार में, जो मनुष्य हैं, उन लोगों को प्राप्ति तो होती है लेकिन *क्लेशोऽधिकतरस्तेषम्* - बड़े कष्ट सहने पड़ेंगे, बड़ी कठिनाईयों के बाद उनको प्राप्ति होगी। कौन से लोग? *अव्यक्तासक्त चेतसाम्* जो निराकार, अव्यक्त स्वरूप की साधना में लगे हुए हैं - कि उनका मार्ग ज़्यादा कठिन है।

यहाँ बात थोड़ी समझने योग्य है। पहली बात तो यह है कि ज्ञानी होना आसान बात नहीं है, सब ज्ञानी हो भी नहीं सकते। बुद्धि का मार्ग अपनाने वाले लोग, ज़्यादा नहीं कम हैं। वैसे तो समस्त सृष्टि में जितने भी प्राणी हैं उन सबमें बुद्धिमान है - मनुष्य। मनुष्यों में भी ज़्यादा बुद्धिमान कितने लोग हैं -. इसे भी आप कहेंगे मध्यम वर्गीय लोग भी सौ में से दस प्रतिशत। उनमें से भी आप जाने तो एक प्रतिशत की स्थिति बनती है जो मेधावी हैं। अब उन मेधावी में भी कोई प्रज्ञावान हो, तो यह तो और भी ज़्यादा समस्या आती है और फिर वह प्रज्ञावान व्यक्ति परमात्मा की तरफ़ लगे यह और भी कठिनाई वाली बात है। लेकिन जो लग जाये वह पूरे अहंकार का परित्याग करके, वैरागी होकर के चले - यह और भी कठिनाई वाली बात है और फिर जो इस तरफ़ चलते-चलते ऐसी शून्यता आख़िर में ले आये कि उसे सारे संसार में सर्वत्र या तो सृष्टि के कण-कण में रमे हुए परमात्मा की प्रतीति हो या उसके अव्यक्त स्वरूप का ध्यान अंदर में आने लग जाए - ऐसी स्थिति तक पहुँचना आसान नहीं, यह बड़ा कठिनाई वाला मार्ग है।

लेकिन एक बात ध्यान रखना - ज्ञान की दिशा में चलने वाला व्यक्ति यह साधारण व्यक्ति नहीं होता क्योंकि वह आँख वाला व्यक्ति है। अंधे व्यक्ति को तो भरोसा रखना पड़ेगा, उसका हाथ लेकर टिका दिया और कह दिया यह है। उसे तो मानना पड़ेगा, भरोसा करना पड़ेगा, जो कुछ जैसा, सामने रख दिया। आँख वाले को आसानी से नहीं बताया जा सकता, उसे अपने हिसाब से अपना रास्ता ढूँढना पड़ता है। लेकिन ढूँढते- ढूँढते उसके लिए एक स्थिति ज़रूर आती है - वह इन सब अंधे लोगों के लिए रक्षक होता है। इसीलिए ज़्यादातर ज्ञानियों के लिए यह कहा गया है कि जितनी ज्ञान की दृष्टि से ऊँचाई पर चलो, उतना ही ज़्यादा इस बात का भी ध्यान रखना है कि ज्ञान के साथ कर्म ज़रूरी है, साधना ज़रूरी है।

आगे चलते-चलते यह भी बताया गया है कि फिर कर्म करते-करते ध्यान रखना कि कर्म भी निष्काम होना चाहिए। पाँव में काँटा लग जाए, अब काँटा निकालना है तो एक काँटा और ले लीजिए। काँटे से काँटे को निकालो और फिर दोनों ही काँटे फेंक कर के आगे निकल जाओ। कर्म से बँध गये वह संसार में, दूसरा कर्म करते हुए कर्म के बँधन को काटो, फिर दोनों को

ही छोड़ो और ऊपर उठ जाओ - वह जो स्थिति है यह ज्ञानी की स्थिति है। ज्ञानी व्यक्ति कर्म करता हुआ संसार से ऊपर उठता जाता है। मार्ग ज्ञान का साधारण नहीं है। इसीलिए जो यह कहा गया है कि - ज्ञान से पवित्र संसार में कोई वस्तु नहीं है, ज्ञान मनुष्य को एकदम पवित्र करता है और यदि हम अष्टावक्र के माध्यम से समझें तो अष्टावक्र ने तो ज्ञान वाले व्यक्तियों के संबंध में बड़ी प्यारी बात कही है। उन्होंने कहा कि सब लोग कर्म में उलझे हुए हैं, संसार में रम कर बिखर जायेंगे, ऊपर उठने की संभावना उनमें बहुत कम होगी और ज्ञानी व्यक्ति के लिए बिल्कुल ऐसा है जैसे अँधेरी गुफ़ा में अँधेरा दूर करने के लिए किसी ने एक चिराग़ जला दिया हो और जो चीज़ें वहाँ अप्रकट थीं एक सैकेण्ड में प्रकट हो गयीं, एक पल में प्रकट हो गयीं। ज्ञानी के लिए सारे संसार में कुछ अलग ही दृश्य प्रकट हो जाते हैं, अज्ञानी के लिए सब छिपा हुआ है। ज्ञानी व्यक्ति को सिर्फ़ दिया जलाने की ज़रूरत है और उसके सामने संसार की सारी चीज़ें प्रकट हुई। आविष्कारक जितने भी लोग हैं, संसार में जो भी आविष्कार करते हैं उन्होंने अपनी बुद्धि से दिया जलाया है, उसका परिणाम यह हुआ कि सारी चीज़ें खोज ली गयीं। अब चीज़ें तो पहले से थीं, दिया जलाने वाला नहीं था। संसार भर में सारे आविष्कार जो आज हुए हैं वह पहले से विराजमान थे, दिया जलाने वाला नहीं था; दिया जला, चीज़ें प्रकट हुई।

अष्टावक्र कहते हैं कि सिर्फ़ इतनी ही कोशिश करनी है, अपना दिया जला लो, परमात्मा की प्राप्ति में देर नहीं लगेगी। अब दिया जलाने में जितनी देर लगनी है वही देर है। भगवान कृष्ण भी यह कहते हैं कि यह दिया जलना भी इतना आसान नहीं है, इसमें कठिनाई बहुत है। दोनों ही बातें बड़ी आनन्द की हैं। एक वर्ग वह है जो ज्ञानवादी वर्ग है वहाँ दिया जलाने वाला कार्य है, वह ज्ञानी वादी लोग जो हैं उन्हें तो कोशिश करनी चाहिए - वह अगर भक्ति और प्रेम की तरफ़ आना चाहेंगे, भजन और कीर्तन की तरफ़ आना चाहेंगे तो संभव नहीं है। उन्हें कितनी भी कोशिश करना आप उनके लिए लोग यही कहेंगे - यह झाँझ मंजीरे वाले लोग हैं, इनको कुछ और नहीं आता। जब देखो तभी बैठ गये ढोल लेकर, ढोल पीटने लग गये। उन लोगों के संबंध में ज्ञानी व्यक्ति हमेशा ही विनोद करता हुआ, मज़ाक करता हुआ कहेगा - जहाँ देखो

झाँझ मंजीरे वाले लोग पहुँच गये हैं, तोते की तरह रट रहे हैं बैठे हुए, एक ही शब्द पर लगे हुए हैं, भगवान भी दु:खी हो जाता होगा। अब ज्ञानी व्यक्ति इस तरह से मज़ाक़ उड़ा रहा है बैठा हुआ और जो दूसरे प्रेम वाले लोग हैं उनकी स्थिति दूसरी है। वह यह कहते हैं कि इस संसार में अपने परमात्मा के लिए हर पल उत्सव मनाओ, गाओ, झूमते रहो, नाचते रहो, उसका नाम रटते रहो, इतना प्यार हो जाये उससे कि बस वही प्रकट हो जीभ से और कुछ नाम आना ही नहीं चाहिए - मेरे तन में, मेरे मन में, मेरे रोम-रोम में उसका नाम रम जाये।

दुनिया का एक बहुत बड़ा चिन्तक, जिसके चिन्तन के सामने बड़े-से बड़े लोग सिर झुका जाते थे, उसे आदिवासियों के बीच में जाने का मौक़ा मिला, उन्हें नाचता हुआ देखा उसने। अब नाचता हुआ देखने के बाद उसने यह कहा - आज कोई मेरी सारी बुद्धिमत्ता छीन ले, मेरा ज्ञान चला जाये कहीं और मेरी जो पहचान बनी हुई है वह ख़त्म हो जाये, आज कोई ऐसा मौक़ा आये कि मैं भी आदिवासियों जैसा रूप धारण करूँ, इनके बीच में पहुँच जाऊँ। ऐसे ही नाचूँ, इसी तरह से इसको मनाने के लिए, अपने परमात्मा को - जैसे यह लोग मस्त होकर बैठे हुए हैं, नाच रहे हैं, गा रहे हैं, जैसे आदिवासी लोग अपना रूप भूलकर, अपना रोम-रोम प्रकम्पित कर रहे हैं उत्सव में निमगन हो गये हैं, डूब गये हैं - कि कोई ऐसी स्थिति आ जाये मेरे जीवन में - सब कुछ भूल जाऊँ, और मैं भी इनके जैसा हो जाऊँ। मैं चाहता हूँ कि ऐसी कोई घड़ी हो, ऐसी कोई स्थिति हो।

लेकिन, आगे चल के उसने एक बड़ी अजीब बात लिखी। वह कहता है कि मेरी बुद्धि में ज्ञान लदा हुआ है। मेरे लिये यह बड़ा कठिन है कि मैं यहाँ तक पहुँच जाऊँ - मन चाहता है, दिल चाहता है, दिल की संवेदनाएं यह चाहती हैं कि मैं इनके बीच पहुँच जाऊँ, ऐसे ही नाचूँ, क्योंकि ऐसे में एक अलग आनन्द है। यह बुद्धि में ज्ञान का भार बाँध कर के मैं बैठा हुआ हूँ अपनी मस्ती भूल गया हूँ। लेकिन मेरे ऊपर जो पहचान लाद दी गयी है, ज्ञान जो लाद दिया गया है अब मेरे लिये यह करना बहुत असंभव है। कठिन नहीं है, वह कहता है असंभव है कि मैं अपना ज्ञान छोड़कर के इन लोगों के बीच में नाचने लग जाऊँ।

तो ज्ञानी व्यक्ति ढोल मंजीरे वालों के बीच में नहीं बैठ सकता और ढोल मंजीरे वाले उनके बीच में नहीं बैठ सकते। यह विचित्र चीज़ है।

एक तीसरा आदमी है - वह यह कहता है दोनों ही बेकार हैं, इनमें कुछ नहीं रखा है कर्म करो जाकर, सेवा करो, सेवा में सब कुछ रखा हुआ है। अपने हाथ से कुछ अच्छा कर दो, किसी का कुछ बुरा करो नहीं, किसी का हक़ लेना नहीं, सेवा करना या अपने से किसी का सहयोग कर देना, बाक़ी अपने कर्म में मस्त रहना यही ज़्यादा आनन्द है।

अब आप कहेंगे किसके लिए रास्ता बतायेंगे आप? जो कर्म वाले लोग हैं वह कहते हैं कि बिल्कुल बेकार की चीज़ है, न तो किताबों में माथा फ़ोड़ने की ज़रूरत है, मग़ज़ पच्ची करने की कोई ज़रूरत नहीं है और कहते हैं यह निठल्ले बैठे हुए हैं जो ढोल मंजीरे बजा रहे हैं। कुछ कर्म करो जाकर, काम करो, कुछ कमाओ, कुछ सहयोग करो किसी का, बेकार की चीज़ों में पड़ने से कुछ लाभ नहीं। अब उनके लिए आप क्या रास्ता बतायेंगे? कर्म बिगड़ सकता है अगर भावनाऐं ठीक नहीं हों, बिना कर्म किए तो संसार में एक क्षण के लिए भी व्यक्ति नहीं बैठ सकता। लेकिन याद रखना कि कर्म आता कहाँ से है? अंदर से आयेगा। अंदर से पहले विचार उठते हैं। विचारों से कर्म परिणत होता है और इन विचारों में अगर भावनाएं बहुत अच्छी हों तो किसी कर्म के करने का आनन्द बढ़ जाता है। कुल मिला करके फिर बात वहीं आ जाती है - हृदय की संवेदनाएं, मस्तिष्क की बुद्धिमत्ता, और हाथों का कर्म, इन सबका तालमेल है और अगर हम सार में कहें तो हर व्यक्ति की अनुकूलता अलग-अलग है। जो ज्ञानवादी लोग हैं, जो दार्शनिक दृष्टि लेकर चल रहे हैं उनके लिए अव्यक्त स्वरूप, निराकार परब्रह्म की उपासना श्रेष्ठ है। जो हृदय वाले, भावना वाले लोग हैं, वह भजन पूजन के माध्यम से अपने आपको अपने परमात्मा के प्रति अर्पित करते हुए चलें तो वह इस माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए कहा गया -

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥

-अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्म उपासते - इस शब्द को ध्यान देना कि यहाँ भगवान यह समझाना चाहते हैं कि जो लोग समस्त कर्मों को मेरे प्रति

त्याग कर के मेरे परायण होकर, अनन्य भाव से जो मेरी भक्ति करते हैं अर्थात् व्यक्त स्वरूप का ध्यान करते हैं, मूर्त स्वरूप का ध्यान करते हैं, ऐसे लोगों का -

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥

- कहा कि हे पार्थ! हे अर्जुन! उनके लिए *भवामि न चिरात्पार्थ* उनके लिए मैं ज़्यादा देर नहीं होने देता। अर्थात् जो मेरे प्रति समस्त कर्मों को छोड़कर, मेरे पारायण होकर, मेरे व्यक्त स्वरूप का, मूर्त स्वरूप का ध्यान करते हैं और अनन्य भाव से मेरा भजन करते हैं ऐसे लोगों का मैं उद्धार करने वाला बनता हूँ, संसार के सागर से उन्हें पार लेकर जाता हूँ और उनका कल्याण करने में देरी नहीं करता।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के इस श्लोक में जो कुछ कहा उसे हम चिन्तन करें तो बात समझ में आयेगी। जो भजन,कीर्तन, ढोल मंजीरे के माध्यम से पूजन कर रहे हैं, या मूर्त स्वरूप का पूजन करते हैं उन लोगों के लिए कुछ शर्तें हैं - समस्त कर्मों को त्याग कर परमात्मा के पारायण हो जायें, मतलब सभी कर्मों को करते हुए, संसार के जितने भी कर्म हैं उनको निष्काम भाव से करते हुए परमात्मा के प्रति अर्पण करने वाले बनें। स्वार्थ के जंजाल में न फंस कर संसार के कर्मों को करने वाले बनें क्योंकि जहाँ स्वार्थ वाला संसार है, वहाँ क़ब्ज़े की भावना है। कोई भी चीज़ जिसके प्रति आपका लगाव है तो वहाँ आपकी कोशिश रहती है कि यह वस्तु मेरे पास ही रहनी चाहिए और मेरे से इसे कोई ले न जाये, कोई छीन न ले, जहाँ छीनने की भावना आती है वहाँ गुस्सा आता है, फिर हिंसा, प्रतिशोध, न जाने कितनी कुछ चीज़ें खड़ी हो जाती हैं। फिर भगवान का ध्यान नहीं रहता, फिर तो संसार में व्यक्ति उलझ जाता है। निष्काम भाव से किया गया कर्म वह है कि जहाँ कामना नहीं है, हित की कामना से व्यक्ति कर्म करता है और कर्म के बंधन में नहीं आता।

जब किसी चीज़ की आसक्ति होती है - आपने कोई पदार्थ खाया, पहली बार कोई फल खाया, फल बहुत स्वादिष्ट लगा। फल स्वादिष्ट लगा तो आप उसके स्वाद को मन में बसा कर बैठ गये। दोबारा उस फल को खाने की इच्छा आपके मन में जागी। दोबारा फल खाने की इच्छा जागेगी तो फिर

उसकी प्राप्ति के लिए कर्म करना शुरू करेंगे। कर्म करना शुरू करेंगे तो उसमें कोई बाधक बनेगा, तो उसके प्रति गुस्सा आयेगा। जिसके प्रति गुस्सा आयेगा तो फिर यहाँ यह हो सकता कि वह व्यक्ति जो बाधक बन रहा है वहाँ लड़ाई शुरू हो सकती है। सवाल यह है कि जब पहली बार फल को ग्रहण किया तो उसका स्वाद ले लिया लेकिन स्वाद की स्मृति और उसका लगाव मन में बसाओ नहीं। आसक्ति और लगाव से ऊपर उठ जाओ, नहीं तो उस संसार में रमोगे ज़रूर।

मज़े की बात यह है कि यह बंधन सब किसी को बांधता है। उन्हीं पदार्थों की चाह में हम रात दिन लगे हुए हैं जिनका आकर्षण मन में है और जो बाधक बनते हैं उनके लिए लड़ाई और अगर प्यार भी व्यक्ति दिखायेगा किसी के प्रति, वैर है लेकिन बाद में प्यार दिखा रहा है उसमें भी कोई चाल होती है उसकी। यह एक कुटिलता व्यक्ति की सारे संसार में बँध जाती है, यहाँ फिर भक्ति नहीं रहती।

जिस आदमी का मन संसार में लगातार उलझा हुआ, लड़ाई-झगड़े में फँसा हुआ है, उस व्यक्ति को आप बैठाईये भक्ति करने के लिए उसका ध्यान संसार में ही रमा रहेगा, भक्ति में कभी नहीं लग सकता। हालत फिर यही होती है कि मकान मालिक ने किरायेदार को रखा। रखा है थोड़े समय के लिए कि यह किराया देता रहे, मालिक मैं हूँ। लेकिन किरायेदार थोड़े दिनों के बाद मालिक बनने की कोशिश करता है, अब वह किराया नहीं देता। अब ख़ाली कराने के लिए क्योंकि दोनों मालिक होने की कोशिश में हैं, अब झगड़ा शुरू और फिर मज़ाक़ वह भी होती है - नागपंचमी के दिन मकान मालिक दूध लेकर किरायेदार के पास पहुँच गया - दूध लाया हूँ पीजिए। अब किरायेदार गुस्से में आकर कहता है कि रोज़ तो गालियाँ देते हो आज दूध लेकर आये हो बात क्या है? बोले आज के दिन दूध पिलाना बड़ा शुभ होता है। आज क्या है? बोले आज नागपंचमी है; आज के दिन हमारे देश में सर्प को भी, नाग को भी दूध पिलाया जाता है, सांपों को भी दूध पिलाया जाता है। बड़ा शुभ है आज का दिन।

अब यहाँ कोई प्यार नहीं है, प्यार का नाटक ज़रूर है। विरोध में उलझे हुए लगातार उलझे रहिये, एक दूसरे को नीचे गिराने में लगे रहोगे। एक व्यक्ति

मालिक नहीं है, मालिक होने के चक्कर में लग गया है। दूसरा व्यक्ति अपना हक़ वापिस लाने की कोशिश में लगा हुआ है। रात दिन संसार में व्यक्ति उलझता चला जाता है।

एक स्थिति और होती है व्यक्ति के पास है - अब उसका त्याग करने वाला बन गया है, जो कुछ है उसको त्याग रहा है। मतलब जैसे अपने देश में एक परम्परा थी कि जैसे ही वानप्रस्थ में जाने लग जाओ, वानप्रस्थ में जाते-जाते संन्यस्थ होने की स्थिति आ जाये, घर-परिवार की चीजें जिसको जो-जो देना है दे दो, अब बाँटने का समय है। तो उस यज्ञ का नाम होता था सर्वजित यज्ञ, उसको विश्वजित यज्ञ भी बोलते थे। विश्व को, सम्पूर्ण को जीतने का रास्ता यही है कि सबसे पहले मोह का परित्याग किया जाये, जिन चीज़ों में लगाव है उन चीज़ों का परित्याग किया जाये। व्यक्ति क्या करता था बच्चों को जो अधिकार देना था दिया, जो सम्पत्ति बाँटनी थी वह भी बाँटी, अपने पास कुछ भी नहीं रखा। अपने पास इतना ही जितने से शरीर का कार्य चलता रहे। बाकी मन जिनमें उलझा हुआ था वह सब त्याग दिया। अब किसने किससे क्या लेना-देना है कोई संबंध नहीं है, अब हानि लाभ की कोई बात नहीं। पूरी मस्ती लेने के लिए तो आपको सब कुछ छोड़ना ही पड़ेगा।

जितना-जितना ज्यादा संग्रह, उतनी-उतनी ज़्यादा आसक्ति, जितनी ज़्यादा आसक्ति उतनी उसको संभालने की मुसीबत, और जितनी ज्यादा संभालने की मुसीबत है, उतनी ही ज्यादा चिंता है, जितनी ज़्यादा चिंता है उतने ही ज़्यादा भयभीत हो और जितने ज्यादा भयभीत हो उतने ही ज्यादा दुःखी भी हो; एक पल भी चैन नहीं मिलेगा और आप देखिए कि सब लोग इसी मुसीबत में उलझे हुए हैं रात-दिन, इससे बाहर निकलने वाली स्थिति किसी की दिखाई नहीं देती। ज्यादातर साधक लोग यही कहते हैं कि भक्ति की यात्रा में चलना हो तो सब त्याग कर के चलो।

भगवान यह कह रहे हैं कि समस्त कर्मों को करने वाले बनो, लेकिन उन कर्मों में उलझो नहीं। यहाँ यह मतलब नहीं कि सारे पदार्थ छोड़ के, ग़रीब बनकर के आप रहें। समस्त पदार्थों को रखो लेकिन पदार्थों के ऊपर ऐसे रहो कि जैसे राजा जनक महल के अंदर रह कर भी महल से ऊपर थे।

इस बात को थोड़ा समझना। धन को पकड़ना बुरी बात नहीं, बुरी बात यह है कि धन हमें न पकड़ ले, जब हम छोड़ना चाहें तो छोड़ सकें। फिर ऐसी स्थिति नहीं होनी चाहिए कि अब नहीं छूटता।

अगर आपसे आज कहा जाये कि सब छोड़कर के निकलो। तो क्या इस तैयारी में आप हैं कि एक सैंकण्ड में सब छोड़ के जाने को तैयार हों?

जिस समय राजकुमार सिद्धार्थ, जो बाद में महात्मा बुद्ध बने, अपने महलों को छोड़कर जा रहा था तो उसके सारथी ने रात के अंधेरे में जब अपने महल को छोड़कर यह गया और रथ में ले जाकर सारथी ने उसको शहर से बाहर उतार दिया, तो बाहर उतारते ही उसने एक प्रश्न किया - कि राजकुमार महलों का मिलना साधारण बात नहीं है। यह बड़ा सौभाग्य होता है मनुष्य का जब उसको महल मिलते हैं। आपने राजा के घर में जन्म लिया यह बड़ा सौभाग्य है आपका और फिर इतनी सुख सुविधाएं मिलीं तो यह बहुत बड़ा सौभाग्य है। यहाँ से मुड़ कर देखो आपके महल कितने सुंदर लग रहे हैं - स्वर्णिम कलश हैं और उनमें चमकते हुए दिये और उनका उठता हुआ प्रकाश। सारी बस्ती में जैसे अँधेरा और उजाले से भरपूर है यह महल। इनका आकर्षण इतना है कि सारी दुनिया की कोशिश होती है इन महलों की तरफ़ जाने की और आप इनको छोड़कर भाग रहे हो?

उस समय सिद्धार्थ ने यह कहा था कि तुम्हारे हिसाब से इसमें आकर्षण दिखाई दे रहा है मुझे तो यह लगता है कि यहाँ आग लगी हुई है। बूढ़े सारथी की तरफ़ देखकर उन्होंने एक बात कही कि सारथी मुझे एक बात बताओ - किसी के घर में आग लग जाए, वह आदमी उस समय उस महल से लगाव रखकर उस मकान से लगाव रखकर के, उसी मकान की जलती हुई आग के साथ बैठ जायेगा क्या?

सारथी ने कहा - नहीं बैठ सकता, वह तो छोड़कर भागेगा। सिद्धार्थ बोले - उन्हें तो मैं वही छोड़ कर भाग रहा हूँ, यहाँ आग लगी हुई है। विषयों की आग है यहाँ, ईर्ष्या, द्वेष की आग है। संसार में फँस करके मर जाने की आग वहाँ है। वह तुम्हें नहीं दिखाई देती मुझे दिखाई दे रही है। मेरे जीवन में वह आँख आयी कि मुझे आग दिखाई दे रही है। जो आँखों से हीन है, संवेदनाशून्य है, वह उस महल की आग के बीच में बैठकर के भी - आँखें

देख नहीं रही हैं, संवेदना है नहीं। वह जलने के लिए बैठे हैं लेकिन मैं जलना नहीं चाहता भाग जाना चाहता हूँ। मज़े की चीज़ यही है कि कुछ को दिखाई देती है आग और कुछ को दिखाई देता है कि इससे बढ़कर आकर्षण कुछ नहीं। तो जिनको यह समझ आ जाये भक्ति करते-करते कि आग में जलना नहीं, ऊपर उठना है; भगवान कहते हैं कि जो अनन्य भाव से मेरा होकर मेरा ध्यान करता है बस उसका उद्धार करने के लिए मैं वचन देता हूँ कि तू मेरा हो गया, अब तेरा मृत्यु का सागर से पार करने के लिए, उद्धार करने का कार्य मेरा है, तो फिर मैं उनका कल्याण किया करता हूँ।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि फिर उन्हें मैं पार लगाया करता हूँ जो व्यक्त रूप से साधना करते-करते, मेरा भजन-पूजन नित्य नियम करते हैं, और जो अनन्य भाव से मुझे भजते हैं, जिनका संसार के पदार्थों में लगाव नहीं, संसार में अपना कर्त्तव्य कर्म पूरा करते हैं, जो भी कर्त्तव्य शेष हैं उन्हें पूरा करते हैं क्योंकि पीछे बताया गया था कि -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

- कर्म करने का ही अधिकार है, फल की तरफ़ जिनका ध्यान नहीं है। कर्म करते है तो निष्काम भाव से, सब कुछ छोड़ के अनन्य भाव से संसार के कर्मों का फल त्यागकर के अनन्य भाव से जो मेरी भक्ति में लीन हैं, भजन-पूजन पूरा करते हैं, नित्य नियम पूरा करते हैं और जो मेरे हो गये हैं - नित्य ध्यान करते हैं और उपासना करते हैं, भगवान कहते हैं उनको मृत्यु के सागर से पार लगाने का कार्य मैं करता हूँ। लेकिन एक शब्द आगे फिर समझाया -

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

- तुम मेरे में ही अपने मन को लगाने वाले बनो। *मयि बुद्धिम् निवेश्यः* - अपनी बुद्धि को मुझमें अर्पित करो फिर मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है, यहाँ विचारणीय बात है कि मुझमें अपना मन लगाओ - मुझमें अपना मन और बुद्धि लगाने वाले बनो। मन को मेरे प्रति अर्पित करो, बुद्धि को मुझमें अर्पित कर दो, तब मैं तुम्हें ऊपर उठाने में, अपनी तरफ़ लगाने में अर्थात् तुम्हारा उद्धार करने में देर नहीं लगाऊँगा. इसमें कोई संशय नहीं है।

जिसको अपना मन अर्पित कर दिया, उसको चिंतन हर समय मन में रहेगा। जिसके लिए बुद्धि अर्पित हो गयी चिंतन में वही बस जायेगा फिर, उसकी प्राप्ति में ज़्यादा देर लगेगी नहीं। शर्त यही है कि मन परमात्मा का हो जाये, बुद्धि परमात्मा की हो जाये, तो फिर प्राप्ति में कोई कठिनाई नहीं है, कोई दिक़्क़त नहीं है, प्राप्ति हो सकेगी।

मैं यही आशा करूँगा इस चीज़ को ध्यान में रखकर हम चिंतन करें कि अपने परमात्मा के प्रति अपनी बुद्धि और अपने मन को अर्पण करने वाले बन जायें।

****

गीता के बारहवें अध्याय पर चिंतन करते हुए, इस विचार बिन्दु तक हम पहुँचे हैं - भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा - मेरे प्रति मन और बुद्धि को अर्पित करने वाले बनो, अपना मन मुझे समर्पित करो, अपनी बुद्धि को मेरे प्रति अर्पित करो।

मन कल्पनाओं को निरंतर करता है, संकल्प और विकल्प का रूप है मन। बुद्धि निश्चय करती है, लेकिन बुद्धि विचार भी करती है। बुद्धि अहं से मिल जाये तो विवाद का कारण बनती है, नम्रता से जुड़ जाये तो फिर कल्याणकारी कार्य करती है। बुद्धि धर्म से जुड़ जाये तो सेवा और सहयोग का कार्य करती है। बुद्धि पाप से, अधर्म से जुड़ जाये रात दिन बुरे विचार, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध, दूसरों को नीचा दिखाना, इसी कार्य को करते करते, अपनी समस्त ऊर्जा शक्ति का दुरूपयोग करती है। मन यदि उत्तम चिंतन से युक्त है तो आशंकाऐं नहीं पालेगा, बीते हुए को छोड़ेगा, आने वाले कल के लिए सत् प्रयास करेगा। मन अगर सुमन है, शिव संकल्प वाला है, तो यह मन कल्याणकारी होगा, मन में उठने वाले विचार और कल्पनाएं हमेशा अच्छी ही होंगी।

यह संसार हमें जैसा भी दिखाई देता है इसके पीछे कहीं हमारा मन भी है। मन में जो कुछ हमारे बसा हुआ है वही कुछ दिखाई देने लगता है। कोई व्यक्ति केवल धन का आकांक्षी है, उसे हर जगह अपना व्यापार दिखाई देगा। कोई सत्ता का भूखा है तो वह मन के द्वारा जब भी कुछ

विचार करेगा तो उसे केवल यही दिखाई देगा कि कहाँ पर कितने वोट हो सकते हैं। कोई व्यक्ति मकान संबंधी कार्य करने में रूचि रखता हो तो सड़क पर जायेगा ज़रूर, संसार देखेगा ज़रूर लेकिन मकान के सिवाये उसे कुछ भी पंसद नहीं आयेगा। मोची यदि सड़क पर बैठकर जूते ठीक कर रहा हो उसे आते हुए जाते हुए लोग ज़रूर दिखाई देते हैं लेकिन लोगों के आने-जाने के साथ-साथ जूते भी दिखाई देते हैं जिनकी मरम्मत वह करना चाहता है, व्यक्ति से ज़्यादा उसके जूतों पर ध्यान जाता है। नाई का ध्यान व्यक्ति के बालों पर ज़्यादा जायेगा। तो संसार तो वही है लेकिन मन में क्या बसा हुआ है उस आधार पर वही कुछ हम देखने लगते हैं, वही हमारी चिंतन धारा बन जाती है।

भगवान ने कहा कि मुझे अपने मन में बसाओ, इसीलिए तुम्हारी कल्पनाऐं मुझको लेकर हों। अगर तुम्हारी कल्पनाएं संसार को लेकर हुई वह कल्याणकारी नहीं होंगी। संसार में भी देखते-देखते फिर जैसा तुमने मन के *अंदर अकुँरण* कर लिया है वही सोचने लग जाओगे। इसीलिए कहा कि जिसके प्रति मन जुड़ा हुआ है, ध्यान उसी का आयेगा। चाहे वस्तु है, पदार्थ है, व्यक्ति है, या संबंध हैं, रिश्ते-नाते हैं - जहाँ भी हमने अपना मन बसा लिया है रात-दिन ध्यान वही आयेगा। बुद्धि उन्हीं चीज़ों की परिक्रमा करने लगती है जहाँ हमारा मन, हमारा ध्यान, हमारी आसक्ति होती है।

भगवान कहते हैं कि मेरे प्रति मन को अर्पित करो, मेरे लिए ही अपने बुद्धि का समस्त कार्यकलाप करो तो तुम्हारी चिंतन धारा भी मुझसे जुड़ जायेगी। ध्यान रखिये कि अगर मन परमात्मा को दिया तो फिर मन में कोई और विचार न आये। बुद्धि अगर परमात्मा की हो गयी, फिर और विचार नहीं आने दीजिए। संसार से जुड़ने से तनाव आता है, करतार से जुड़ने से शांति आती है। संसार के मालिक से जितना जुड़ते जाओगे उतनी ही शांति आयेगी।

यदि आपके जीवन में बहुत अधिक तनाव है तो कुछ प्रयोग करने चाहिएं। वैसे तो यह समस्त चीजें ध्यान-साधना के अवसर पर बतायी जाती हैं, यह उस समय हम बताते हैं, लेकिन इस समय भी कुछ साधारण प्रयोग आपको बता रहा हूँ।

अगर आप ज़्यादा तनावग्रस्त रहते हैं तो पहला कार्य तो यह कीजिए कि जहाँ भी आप बैठे हैं वहीं खिड़कियों को खोलकर थोड़ी ताज़ी हवा आने दीजिए और गहरे साँस लीजिए। गहरा श्वास लें और आराम से छोड़ें। माथे को ढीला छोड़ें, मुस्कुराने की कोशिश करें और भगवान पर भरोसा रखें। मन की आदत है पिसे हुए को पीसने की; बार-बार उसी चक्की को, उसी चक्कर को मन घुमाता रहता है। आप इस क्रम को तोड़िये। बार-बार अपने को समझाईये कि आख़िर हो क्या गया? क्यों परेशान होते हो? क्या लेकर के आये हो यहाँ जो तुम्हारा छीन लिया गया? यहीं सब मिलता है, यहीं सारी चीज़ें बिछड़ती हैं, संयोग-वियोग का संसार है। किस लिए चिंता में डूब गये हो कि तुम्हारा कुछ छीन लिया जोयगा? फिर यह भी सोचना कि तू अपना भाग्य लेकर आया है, दुनिया में किसी की शक्ति इतनी नहीं है कि तेरे भाग्य को कोई छीन सके। जो तुझे प्राप्त होना होगा, फिर अपने भाग्य के अनुरूप अपना पुरूषार्थ कर। दुनिया को मनाने का ख़्याल मन में नहीं रखना। दुनिया मने तो भी, पूरी तरह से मन नहीं पाती हैं, फिर रूठ जाती है दुनिया। लेकिन मनाओ अपने परमात्मा को जो मन गया तो फिर रूठा नहीं करता, नाराज़ नहीं होता, इसीलिए उसी का ध्यान करो – ऐसा मन पर विचार करते हुए गहरे लंबे साँस लो।

दूसरा प्रयोग – अगर घर में हैं, कहीं ऐसे स्थान पर हैं जहाँ आप लेट सकते हैं, तो इस तरह से लेट जाईये जैसे मुर्दा शरीर पड़ा हुआ होता है, एकदम शिथिल। तब मन को भी मुर्दा करना तन के साथ में। तन भी मुर्दा, मन भी मुर्दा, जैसे मृत हो गये हैं, शरीर छूट गया है। थोड़ा-सा यह भी एक बार मन पर चोट लगाना कि अगर अभी संसार छूट जाये तब भी तो मेरे पीछे काम होंगे। मैं ही क्या सबका आधार हूँ? जितना मुझसे बनता है मुझे कर लेना चाहिए। ताँगे में जुड़े हुए घोड़े की तरह रात-दिन दौड़ने से भी कोई लाभ नहीं। अपनी ड्यूटी, अपना कर्त्तव्य, अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभानी हैं, शान्त रहना है और ऐसा सोचते-सोचते बस एकदम विचार रहित हो जाओ – 'मैं शांत हूँ, शांत हूँ, शांत हूँ, शांत हो रहा हूँ।' फ़िर अशान्त हो मन तो कहना कि परमात्मा शांतिमय है, सारी शांति मेरे अंदर प्रवेश कर

रही है, शांत हो रहा हूँ। इस तरह से लेट जाओ और थोड़ी देर यह योग निद्रा अपनाने का परिणाम होगा आपके अंदर शांति आयेगी।

तीसरा प्रयोग - जब मन अशांत हो पानी पीना और अपने परमात्मा का नाम मन-मन में नहीं जपना, होंठ हिलाकर के भी नहीं, थोड़ा बोलकर जपना लेकिन जल्दबाज़ी में नहीं। जैसे आप भगवान शंकर का ध्यान करते हैं तो बोले औ३म् नमः शिवाय, ओ३म् नमः शिवाय, ओ३म् नमः शिवाय; बोल रहे हैं लेकिन ऐसे जैसे श्वास से, गहराई से, नाभि से लेकर हृदय तक आप उच्चारण करते जा रहे हैं। कोई भी जप 'ओ३म् नमोः भवगते वासुदेवायः, ओ३म् नमोः भगंवते वासुदेवायः, ओ३म् नमोः भगवते वासुदेवायः', या फिर राम रामायः नमः, राम रामायः नमः, राम रामायः नमः या केवल छोटा सा अक्षर श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम, या हरि ओ३म्, हरि ओ३म्, हरि ओ३म् या फिर सिर्फ़ ओ३म्, ओ३म्, ओ३म्। थोड़ा-सा गैप देकर के। अब यह जो उच्चारण आप करेंगे, उच्चारण किया और फिर - 'तू ही है मेरा सर्वस्व, तू ही सब कुछ है, तू ही सब कुछ है, ओ३म् हरि ओ३म्, ओ३म् हरि ओ३म्।' फिर बीच में रोकना - 'हे प्रभु, हे दीनानाथ, हे दयालु, ओ३म् हरि ओ३म् हरि ओ३म्। तेरा ही सहारा है प्रभु, तेरा ही सहारा है। तू ही शक्ति है, तू ही मेरी शक्ति है। तू ही मेरा बल है ओ३म् हरि ओ३म्, हरि ओ३म्।' आप उच्चारण कीजिए और आप देखना ज़्यादा देर नहीं लगेगी शांति आने में। और उस समय एक दो मिनट के लिए प्रार्थना कर लेना। - 'तेरे ऊपर छोड़ दिया प्रभु, तू ही संभाल। मेरा वैर, विरोध, ईर्ष्या, निंदा सब छोड़ दी मैंने। किसी ने भी मेरे प्रति अच्छा किया या बुरा सब तेरे न्याय पर, तेरे इंसाफ़ पर छोड़ दिया।' माता-पिता को बता देना काफ़ी है, बड़े बैठे हैं न। जब बड़े बैठे हैं तो बच्चों का काम इतना है कि माँ-बाप को जाकर बता दें। माँ-बाप से मतलब पिता परमात्मा। उसको कह दो - 'अच्छा किया या बुरा किया, या जिसने मेरे साथ अच्छा किया या बुरा किया तू देखता है न प्रभु। मैं न उसके लिए अच्छा कहता न बुरा कहता। तू जान।'

अगर आपका हृदय सांत्वना से भरा हुआ है तब अपने परमात्मा का प्यार पाने के लिए, क्योंकि देख तो भगवान भी रहा है, तब यह कह देना – हे प्रभु! जैसे जीसस ने कहा था; जब उनको सूली पर चढ़ाया गया तो उन्होंने यह कहा – 'हे प्रभु इनको माफ़ करना, यह नहीं जानते कि या यह क्या कर रहे हैं, और यह विचित्र चीज़ है कि सूली पर चढ़ाने वाले लोग भी बहुत थे, हँसने वाले लोग भी थे लेकिन ज़िन्दा क्राइस्ट के साथ, जीसस के साथ चलने वाले लोग थोड़े थे और जब नहीं रहे, जीसस नहीं रहा, तो आधी दुनिया ईसाई बन गयी, ईसामसी के साथ जुड़ गयी। विचित्र संसार है मुर्दे के साथ रहने को तैयार, जीवित का तिरस्कार। यद्यपि जीसस है; शरीर ही तो हटा है न बीच में से क्योंकि जीसस को आप यह थोड़ी ही न कह सकते हैं कि वह शरीर से रहित हो गये तो नहीं हैं वह; अपने विचारों से है, अपने भक्तों के बीच हैं, अपने भक्तों के हृदय में हैं।

लेकिन ऊँचाई जीवन की यही है कि अपराध करने वालों के प्रति, अगर आप मंगल कामना कर दें और आप यह कहें – तू जान मेरे प्रभु! मुझे किसी से बदला नहीं लेना, किसी के लिए कुछ भी नहीं कहना, सब तेरे ऊपर छोड़ा' – तब मानना कि आपने मन, बुद्धि अपने प्रभु के सामने अर्पित कर दी। संसार आपके मन के तराजू को हिलाने में बड़ा कार्य करता है – 'अच्छा तुम्हें ऐसा कहा किसी ने और तुमने सुन लिया?' अब उस व्यक्ति ने ऐसा एक पम्प में ही आपका गुब्बारा फुला दिया – 'कमाल हो गया तुमने कोई जवाब ही नहीं दिया?' मतलब वह अब आपको लड़ाने के लिए। जैसे किसी समय में लड़ाईयाँ होती थीं न दो तरफ़ के मेंढें बुलाकर के उनको उकसाते थे या कुछ लोग मुर्गे उड़ाते हैं – 'शाबाश लड़, पीछे नहीं हटना।' अब जो लड़ रहा है चोट तो उसे लगनी है, घायल तो वह होंगे, तमाशा संसार देखेगा। जानवरों के साथ लोग खेल खेल देते हैं; अब लोगों ने जानवर छोड़ दिये हैं, ज़रा ज़्यादा बुद्धिमान हो गये हैं। उनको क्योंकि लोग जानवर के रूप में मिल जाते हैं – 'शाबाश पीछे नहीं हटना शेर। थोड़ा पीछे हट के ज़ोर से वार करना इस बार' लोग मूर्ख हैं। अपने आपको खेल बना लेते हैं, लोग तमाशा देखने के लिए तैयार खड़े हैं।

संसार को मन, बुद्धि नहीं देना। देना अपने परमात्मा को तब फिर परमात्मा को जो खेल है वह आपके अंदर चलेगा। परमात्मा का खेल है - आनन्द और प्रसन्नता, वह आपके अंदर आयेगी। संसार का खेल बन जाओगे अशांति आयेगी, दु:ख आयेगा। मज़े की बात है सब बुद्धिमान, सब बहुत शक्तिशाली। लेकिन फिर भी इतने खिलौने, कोई भी हिलाये, कोई भी डुलाये, कोई भी चलाये, कोई भी नचाये, हम नाच रहे हैं। कोई भी आपके हृदय में ऐसे प्रवेश करेगा आपका बनकर और फिर कैसी चोट मारेगा। पता भी नहीं लगेगा कितना जल्दी वह आपका बना था और कितना जल्दी वह आपको चोट भी दे गया। एक ही ध्यान रखना - परमात्मा है और उससे समर्थ दुनिया में कोई नहीं। उसकी शक्ति के आगे किसी की शक्ति नहीं चलती। उसका भरोसा रखें। भगवान कहते हैं यदि तू ऐसा भी नहीं कर सकता -

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तु धनंजय ॥

- अर्जुन अगर तुम यह विधि भी नहीं कर सकते तो फिर एक और विधि करो - *अभ्यास योगेन ततो मामिच्छ* - अभ्यास योग से तुम मेरी इच्छा करो, मुझे प्राप्त करने की इच्छा करो। बड़ा प्यारा शब्द है यह।

परमात्मा की ओर जाने के लिए निरंतर मन का अभ्यास करो, भजन का अभ्यास करो। योग से जुड़ने की कोशिश करो। जहाँ से बिछड़ रहे हो, टूट रहे हो, जिसके वियोग में तुम संसार में ठोकरें खा रहे हो, उससे जुड़ने के लिए योग करो, लगातार का अभ्यास। चाहे तो पूजा-पाठ के माध्यम से, साधना में बैठकर भजन के माध्यम से, कीर्तन के माध्यम से, चिंतन के माध्यम से, अपना अभ्यास करते हुए जुड़ो उससे। इस विधि को निरंतर अपनाओ।

याद रखना - अभ्यास थोड़ा नहीं बहुत गहरा अभ्यास चाहिए। अगर मूल्यवान वस्तु प्राप्त करनी है तो ज़्यादा अभ्यास करना पड़ेगा। आम के फल पाने हैं तो किसान को एक बार पौधा लगाने के बाद उसकी सुरक्षा भी करनी है और बरसों तक उसे सींचना भी है। केवल पानी से ही नहीं सींचना, अपनी पसीने से भी सींचना है और अपने प्यार से भी सींचना है,

अपनी बलिष्ठ भुजाओं से उसकी रक्षा की व्यवस्था भी बनानी है, तब जाकर कहीं वह आपको छाया भी देगा और फल भी देगा। अभ्यास थोड़ा नहीं, बहुत गहरा चाहिए, लगातार का परिश्रम हो।

लाखों मन पत्थर काटने के बाद हीरे की कनी मिला करती है, थोड़े बहुत पत्थर काटने से हीरा नहीं मिलता। लाखों मन पत्थर काटते जाईये, काटते जाईये, मज़दूर थक गया, मालिक भी थका हुआ है। लेकिन मालिक फिर हिम्मत बढ़ाता है - 'और काट, और काट,' और जैसे ही हीरा निकल आया अब मालिक की भी ख़ुशी का ठिकाना नहीं और मज़दूर भी कहता है कि अब सदा की मज़दूरी ख़त्म क्योंकि अब हीरा मिला तो मालिक मुझे भी सफ़लता का लाभ देगा। तो बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा अगर मूल्यवान हीरा चाहिए। विद्यार्थी को पास होने के लिए, एक दिन में पास नहीं होगा वह, पूरा साल पढ़ना पढ़ेगा। एक दिन के अभ्यास से तो सफलता नहीं मिलती न, एक दिन की पढ़ाई से तो सफल नहीं होता, उसे एक साल भी बैठना पड़ेगा। हो सकता है बहुत बड़े कम्पीटीशन में बैठा हुआ है। लाखों लोग उसके साथ बैठे हुए हैं। तो फिर उसे सोचना चाहिए उसे लगभग दो साल तक भी मेहनत करनी पड़ सकती है। दो साल लगातार बैठकर पढ़ा है, बारह घंटे नहीं अट्ठारह घंटे तक बैठकर पढ़ा है, तब जाकर के कहीं सफलता मिली, अब सारी ज़िन्दगी का आराम हो गया।

भगवान ने कहा - अगर तुम मेरे प्रति मन, बुद्धि अर्पित नहीं कर सकते तो फिर अभ्यास करना, अभ्यास और योग के माध्यम से मुझे पाना। थोड़े दिन का अभ्यास नहीं चाहिए। बीच-बीच में मन भटकायेगा। बीच-बीच में पत्थर तोड़ते हुए यह स्थितियाँ आयेंगी - बेकार में पत्थर तोड़ रहा हूँ, जो पत्थर तोड़ दिया वह बेकार गया। पता नहीं लाभ होगा भी या नहीं होगा, हीरा मिलेगा भी या नहीं मिलेगा।' लेकिन अगर कोई ऐसे बैठ जाये तो दुनिया में कभी भी हीरा किसी की अँगूठी में नहीं सजा मिलेगा और हीरा कहीं किसी के आभूषण में सजा नहीं मिलेगा। मन को निराश तो होने ही नहीं देना चाहिए।

कुआँ खोदने के लिए दस स्थानों पर किया गया परिश्रम तो काम नहीं आता लेकिन एक जगह का परिश्रम, लगातार का परिश्रम हो, सफलता

मिलेगी। कई बार ऐसा भी होता है कि आधा खोदने के बाद पता लगता है बहुत बड़ा पत्थर और चट्टान आ गई है। अब रूकावट, परिश्रम बेकार। लेकिन इसका मतलब है कि थोड़ा दस-बीस फुट, पचास फुट और थोड़ी-सी दूरी बनाकर फिर खोदना शुरू कर दो और उसी लगन से वहीं बैठकर के फिर शुरू करो काम और फिर देखोगे कि एक जगह तो पहाड़ आ गया था लेकिन दूसरी जगह पानी भी आ गया और सदा के लिए आनन्द बन जायेगा जीवन।

इसीलिए निवेदन करना चाहता हूँ अभ्यास थोड़ा बहुत नहीं गहन अभ्यास चाहिए। लगन थोड़ी-सी नहीं, बहुत बड़ी लगन चाहिए। थककर नहीं बैठना, निराश भी नहीं होना। निराशा आती बहुत है, 'थोड़ी बहुत नहीं गहरी निराशा आती है - 'पता नहीं बात बनेगी नहीं बनेगी? कृपा होगी भी सही?' मन में कई बार शंकाएं जागती हैं - 'क्या होगा?' शंकाओं को निर्मूल करके जो लगातार अभ्यास करता है, उसको निरंतर ही सफलता मिलती है। इसीलिए मन को टूटने नहीं देना चाहिए। भगवान शब्द बोलते हैं -

अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय

- धन-सम्पत्ति को जीतने वाले, धन-सम्पत्ति के अक्षर भंडार को प्राप्त करने वाले धनञ्जय अर्जुन, अभ्यास योग के माध्यम से तुम मुझे प्राप्त करने की इच्छा रखो। इच्छा शब्द से मतलब है पाने की आकांक्षा, तीव्र आकांक्षा। अंदर चाह होगी तो - जहाँ चाह वहाँ राह। रास्ता वहीं बनता है जहाँ चाह होती है। इच्छा है प्राप्ति की तो रास्ता बनेगा। इच्छा नहीं है तो कोई रास्ता नहीं बन सकता। भगवान ने फिर कहा -

अभ्यासेऽ प्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥

- यदि अभ्यास करने में भी तुम समर्थ नहीं हो तो फिर एक और रास्ता है। मन, बुद्धि को एकदम अर्पित करने वाले लोग होते तो हैं लेकिन सब समर्पण करने वाले लोग बहुत कम। लेकिन यदि ऐसा भी संभव नहीं तो भगवान ने कहा तो फिर - अभ्यास और योग, योगाभ्यास के माध्यम से योग युक्त हो जाओ, निरंतर का अभ्यास करो। यदि ऐसा भी संभव नहीं है तो भगवान ने कहा -

मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ।

– मेरे लिए कर्म करते हुए सिद्धि प्राप्त कर सकते हो। मतलब मनुष्य जो कर्मों में, संसार में उलझा हुआ है, अपने जगतड्वाल से बाहर निकलता ही नहीं है, संसार के कार्यकलाप में इतना उलझा हुआ है उसे ध्यान, अभ्यास, मन, बुद्धि भगवान को अर्पण करने की फुर्सत ही नहीं है, उसका ध्यान ही संसार में है, कर्म करता रहता है। तो भगवान ने कहा कि अगर ऐसी स्थिति है तो फिर तुम्हें एक रास्ता और बताते हैं। तब रास्ता यह है कि समस्त कर्मों को मेरे लिये करो। तब स्थिति यह हो सकती है कि तुलाधार, वैश्य, तोलते-तोलते प्राप्ति कर सकता है; धन्ना जाट खेती करते-करते प्राप्ति कर सकता है; तिरुवल्लुवर साड़ी बुनते-बुनते प्राप्ति कर सकते हैं; कबीर साहब ताना-बाना बुनते-बुनते भगवान की भक्ति कर सकते हैं तो फिर क्या हम नहीं सकते हैं? हम भी कर सकते हैं। तो कर्मों को करते हुए ही भगवान की भक्ति करो। प्रत्येक कर्म को भगवान के साथ जोड़ने की कोशिश करो – अपने प्रभु के लिए कर रहा हूँ। सारे कर्म भगवान के लिए अर्पित कर दो। या ऐसे समझिए कि भगवान के लिए कर्म करने वाले बनें। या ऐसे समझिये कि अपने आपको यंत्र बनाओ और भगवान की मर्जी के आधार पर कर्म करने लग जाओ; अंदर की आत्मा जो भी कुछ आवाज देती है उस आवाज़ के आधार पर कर्म करने वाले बनो। अन्तस चेतना से जाग्रत हुए विचार, उनके आधार पर किए गए कर्म, जो भगवान के प्रति अर्पित हैं वह कर्म आपकी भक्ति और साधना बन जायेंगे।

गुजरात के रवि शंकर महाराज – ऐसे व्यक्ति रहे हैं कि जो गाँधी और विनोबा से बहुत प्रभावित रहे हैं और उनकी सेवा के कारण ही रविशंकर को लोगों ने 'महाराज' की उपाधि से सम्मानित किया। एक अभियान विनोबा ने चलाया – 'भूदान यज्ञ' कि बहुत सारे यज्ञ होते हैं, एक यज्ञ यह कि जिनके पास अधिक भूमि है वह लोग, जो भूमिहीन लोग हैं उनके लिए थोड़ी-सी ज़मीन दान कर दें तो बहुत लोगों के परिवारों का गुज़ारा हो सकता है; उनको आप भीख नहीं दे रहे हैं बल्कि रोज़ी-रोटी कमाने का साधन दे रहे हैं।

जैसे कुछ लोग अपने धर्म स्थल के लिए यह सोचा करते हैं कि अन्न दान देना, अन्न क्षेत्र चलाना, भंडारे में सहयोग देना भी एक कार्य है लेकिन उससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि हम कोई जमीन लेकर के दें। जो लोग ऐसा नहीं कर पाते वह सोचते हैं - चलिए, पचास गज़ सही, दस गज़ ज़मीन के सही, हम पैसे दे रहे हैं तो यह समझिये कि इस भूमि में, जिस भूमि पर हमारा हाथ लगा, उस भूमि पर अगर कोई स्थान बन रहा है तो हम अपने पूर्वजों को तड़पन देने वाले बन गये हैं और अपने आने वाली पीढ़ियों का कल्याण करने वाले बन गये हैं तो व्यक्ति भूमिदान करता है, वस्त्र दान करता है, अन्न दान करता है और अगर किसी ग़रीब के लिए ऐसे कार्य किये जायें तो बहुत अच्छा कार्य होता है। जिनके पास कुछ नहीं है उनके लिए कुछ देना; ज़रूरतमंद व्यक्ति के लिए अगर आप सही समय पर दो बूँद पानी भी देते हैं तो वह किसी धन से, लाखों गुणा धन से भी ज्यादा कीमती होते हैं। किसी परेशान व्यक्ति का मन टूटा हुआ हो और आपने उसके मन को संभाल दिया और सही मार्ग पर लगा दिया तो यह साधारण कार्य नहीं है।

स्वामी विवेकानंद के जीवन में आता है कि वह एक बार जंगल में जा रहे थे और चारों तरफ़ से बंदरों से घिर गये। थोड़ा भागने लगे और बंदर उनके पीछे भागने लगे और बंदर जब घुड़की देता है, बंदर की घुड़की साधारण नहीं होती, बड़े से बड़ा आदमी घबरा जाता है उसकी घुड़की सुनकर के। और वह होती कुछ भी नहीं। जानने वाला आदमी हो तो फिर वह समझता है कि कुछ भी नहीं; सीधा हाथ आपका किसी ईंट पर, पत्थर पर उठ गया, और वह दुम दबाकर भागा। तो चारों तरफ से बहुत सारे बंदर और सब बहुत ज़ोर से घुड़की दे रहे हैं। विवेकानंद थोड़े से भागे तो बंदर और उनके पीछे और उनके कच्चे-बच्चे जो इधर-उधर थे वह भी सब आ गये पूरी बिरादरी इकट्ठी है। कमजोर को देखकर तो छोटे बच्चे भी दबाने आते हैं न। अब किसी ने पीछे से आवाज दी कि भागो नहीं, ठहरो, सामना करो। बस इतना ही कहना था, विवेकानंद ठहर गये और ठहरे, भागे नहीं। सामना करने के लिए जैसे ही हाथ उनका नीचे की तरफ़ गया अब बंदरों की दूरी बननी शुरू हो गयी, पीछे हटते

जा रहे हैं और जैसे ही उन्होंने हाथ नीचे की तरफ़ लेकर के गये, चीज़ कोई हाथ में पकड़ी, वह तो दौड़ कर सब पेड़ों पर बैठ गये।

स्वामी विवेकानंद ने कभी कहा था कि अगर किसी भी समस्या से आप भाग रहे हो, समस्या नहीं भागती, वह बंदरों की तरह सामने आकर बंदरों की तरह घुड़की देगी और अगर तुम सामने स्थिर हो गये हो, तो डटना और स्थिरता अपनाना, तो यह साधारण काम नहीं था उस आदमी का, जिस किसी ने दूर से आवाज़ दी न - 'घबराना नहीं, भागना नहीं, ठहरो।' इतने शब्द साधारण नहीं थे, पूरी ज़िन्दगी बचाने वाले होते हैं इतने शब्द। तो चाहे विचारों का दान है, विद्या का दान है, ज्ञान का दान है, भूमि का दान है, वस्त्र का दान है, पानी का दान है, कुछ भी दान है।

कभी-कभी तो आपको मौक़ा मिलता है कि कहीं, किसी के घर में, व्यवस्था सही है पानी की और किसी के घर में पाईप लाईन की गड़बड़ी से पानी नहीं आ रहा है। वही तो एक मौक़ा है आपका अपने भाईयों की सेवा करने का और देखने में आया कि उस समय आदमी अपनी मोटर पर ताला लगाने की कोशिश करता है - 'मेरी मोटर ख़राब हो जायेगी तो?' ऐसे काम के लिए अगर दस बार भी मोटर ख़राब होती है, तो ख़राब होने देना, लेकिन कभी-कभी तो सेवा का मौक़ा मिलता है। तभी तो असलियत पता लगती है कि आप हैं कैसे व्यक्ति। जब कुछ देने की बारी आये तब पीछे हट गए। किसी के संकट में आप और संकट बन कर खड़े हो रहे हैं तब तो आप मनुष्यता से नीचे गिर गये हैं और अगर संकट में साथ आकर खड़े हुए हो सोचना मनुष्यता की ऊँचाई है और अगर अपना सुख भी उठाकर के दूसरे के कल्याण में लगा दिया तो सोच लेना कि अब देवत्व की तरफ़ आ गये। भगवान ने कहा - *मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि* - मेरे लिए कर्म करते हुए तुम सिद्धि को प्राप्त कर सकते हो। मुझे ध्यान में रखकर कर्म करना।

रविशंकर महाराज ऐसा ही सोच कर कि ध्यान, साधना, भक्ति, भजन वह सब तो बात अलग हो गयी, कर्मों के माध्यम से ही भक्ति करना चाहेंगे, तो भूदान यज्ञ में दान देने के लिए निकले और गुजरात के एक स्थान सामरकांठा में जाकर वहाँ के एक गाँव में ठहरे। गाँव में जहाँ गये तो वहाँ जाकर उन्होंने लोगों को इकट्ठा किया और उनके बीच में प्रवचन दिया। प्रवचन भी कोई ऐसे

नहीं, किसी गीता को या किसी उपनिषद् को या किसी वेद को उठाकर बोलना, उन्होंने सीधे मानवता को ध्यान में रखकर कहा कि चलिए और कुछ नहीं कह सकते तो यह तो बता ही सकते हैं, उन्होंने कहा कि तुम लोग परमात्मा की असीम अनुकम्पा है कि इतना सुख से रहे हो। कुछ थोड़ी बहुत समस्यायें तो हर एक के पास होती हैं। लेकिन तुम्हारा हाथ लगने से अगर किसी के घर का दुःख दूर हो सकता है तो यह पुनीत कार्य करने के लिए आगे आओ। उन्होंने कहा कि यह भी सोचना कि जिन्दगी कितने दिनों की है, कब छूट जाये लेकिन जो लोग तुम्हारे सामने बिलख रहे हैं अगर भगवान ने तुम्हें इतना समर्थ बनाया है कि तुम उनके आँसू छीन सको तो यह कार्य करो। अगर तुम्हारे पास आवश्यकता से अधिक है और तुम्हारे पास में ही दूसरा एक व्यक्ति है जिसके पास इतना भी नहीं कि पेट भर सके, तब तुम उनको देखकर अगर चुप रह गये तो यह अधिकार तुम्हें दोबारा मिलने वाला नहीं। पिता परमात्मा ने जो तुम्हें इस बार सम्पत्ति दी, हो सकता है अगले जन्म में इस अधि कार से वंचित हो जाओ, हो सकता है तुम उसी स्थिति में आ जाओ जो बराबर में व्यक्ति तड़प रहा है।

इस प्रवचन का प्रभाव यह हुआ कि एक बूढ़ी माँ चलकर के आयी और उसने कहा कि वैसे तो कंजूसी के लिए हम बड़े प्रसिद्ध हैं लेकिन ज़िन्दगी का कोई भरोसा तो है नहीं, इसीलिए हम यह चाहते हैं कि हमारे द्वारा कुछ भला हो जाये।

रविशंकर महाराज ने कहा कि तुम्हारे पास देने लायक़ चीज़ क्या है?

बोली - अब शरीर मेरा इतना चलता नहीं, मेरे पास दस बकरियाँ हैं। मैं सोचती हूँ कि किसी ग़रीब के काम आ जायें।

रविशंकर महाराज ने कहा तो फिर यही बात मन में आयी है तो खुद ही विचार करो कि गाँव में सबसे ग़रीब और दुःखी इंसान कौन-सा है?

बूढ़ी माँ ने कहा एक ग़रीब लड़का है उसे मैं जानती हूँ, उसको अगर बकरियाँ मिल जायें तो उसका भला हो सकता है।

शंकर महाराज ने कहा तो फिर ख़बर भेजो, बुलाओ उसे और तुरंत दान करो।

दस बकरियाँ उस बच्चे को मिलीं। उसे बुलाकर के कहा – देख बेटा, यह दान नहीं है, माँ का सहयोग है। इसीलिए कि ज़िन्दगी भर तुझे किसी से माँगना न पड़ जाये। इसीलिए सहयोग है कि अगर तू कभी इतना समर्थ हो जाये, दूसरे की सहायता कर सके तो बेटा इन बकरियों को ले जा, इन्हें बड़ा, कारोबार बड़ा, काम अपना बड़ा और कभी तेरे सामने भी कोई लाचार हो उसका सहारा बनना। बच्चा चला गया। लेकिन जाते समय अगर थोड़ी खुशी थी तो आँख में आँसू भी थे।

उसने कहा – मेरे माँ-बाप तो रहे नहीं लेकिन न जाने उनकी आत्मा इस बूढ़ी माँ के अंदर कहाँ से आ गयीं।

रविशंकर महाराज ने शाम को फिर उपदेश दिया – ओ मनुष्य, जितना तेरे कमाने में आनन्द है उससे ज़्यादा आनन्द तू ख़र्च करने में लिया करता है। लेकिन जब तू अपने लिए नहीं अपने भगवान के लिए ख़र्च किया करता है, तब उसका आनन्द इतना बढ़ जाता है कि वह तेरे हृदय में समा भी नहीं पाता। तू कभी -कभी यह भी कार्य किया कर।

बूढ़ी माँ सुनती रही और फिर अगले दिन आयी – रविशंकर महाराज, मेरे पास जो मकान हैं न वह दो हैं। दो मकानों में भी दो परिवार रह सकते हैं लेकिन एक मैं अपने लिए रखती हूँ। एक मकान में भी दो परिवार रह लेंगे। तो एक रहबारी नाम वाला व्यक्ति है, रहबारी का काम चल सकता है, उसके घर में जब वर्षा होती है तो बच्चे तड़पते हैं, सर्दी हो तो परेशान, गर्मी में भी वह लोग गुज़ारा नहीं कर पाते, छोटे-छोटे बच्चे हैं। अगर यह मकान उनके लिए दिया जाये तो कितना अच्छा हो।

रविशंकर महाराज ने उस व्यक्ति को बुलाया। बुलाकर के कहा कि यह मकान तुम्हें दिया जा रहा है, इस शर्त पर कि इस बूढ़ी माँ को अपनी माँ समझोगे और इसकी सेवा करोगे। बराबर वाला मकान लो, यहाँ रहो, यह मान कर चलो बूढ़ी माँ तुम्हारी रिश्तेदार है, माँ ही है। सेवा करना।

इतना सुनना था वह बूढ़ी माँ बोली – नहीं महाराज, आपके उपदेश को सुना तब तो भगवान बोल रहे थे। यह तो यहाँ संसार का व्यवहार बोलने लगा है। मेरा जो भगवान है न वह कभी किसी को अगर कुछ देता है तो शर्त लगा कर बिल्कुल नहीं दिया करता। मैं भी अगर दे रही हूँ तो फिर शर्त लगाकर

नहीं दे रही हूँ। क्यों शर्त लगाऊँ? एक आशीर्वाद देते जाना अर्शीवाद यह देना कि यह शरीर चलता रहे, अपना काम करती रहूँ और मुझे किसी की सेवा का बदला नहीं चाहिए। शरीर चलते-चलते, भजन करते हुए, सहयोग करते-करते यह जीवन पूरा हो जाये - यह आशीर्वाद दीजिए।

तब रविशंकर महाराज ने नीचे बैठकर उस माँ को प्रणाम किया कि माँ अब तेरे कर्म में तेरा भगवान आकर बैठ गया है।

तो यह है परमात्मा के लिए कर्म करना। भगवान ने कहा कि या तो फिर तुम अभ्यास और योग के माध्यम से मुझे प्राप्त करो अन्यथा रास्ता यह भी है कि समस्त कर्म मेरे लिए करने वाले बन जाओ, कर्मों को मेरे लिए करो। भगवान आगे फिर कहते हैं -

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥

- एक मार्ग और बताया कि अगर यह भी संभव नहीं है तो समस्त कर्मों का परित्याग मेरे लिए करके और फिर तुम मेरे हो जाओ।

यह एक अलग तरह का प्रयोग है। समस्त कर्मों का परित्याग करके परमात्मा का हो जाना - मतलब संसार के झंझटों से बिल्कुल मुक्त होकर परमात्मा का होना या फिर कर्मों के फल का परित्याग करना, निष्काम भाव से कर्म करना।

इसे थोड़ा समझिये। परमात्मा के लिए कर्म करने वाले बनना एक बात है। कर्मफल ही त्याग दिया। ऐसा कर्म कौन-सा होता है जहाँ व्यक्ति फल त्याग कर बैठता है? आपने कोई यज्ञ किया, हवन में सुगन्ध उठी। अब आप जो यज्ञ कर रहे हैं तो आपके घर में तो सुगंध आ ही रही है लेकिन पड़ोस में दुश्मन भी हैं। तो उस हवा को आप रोक नहीं सकते, उस सुगंध को आप रोक नहीं सकते कि दुश्मन के घर भी जा रही है।

जैसे यज्ञ की सुगंध सब जगह जाती है, आपने यज्ञ किया लेकिन उसकी सुगंध, उसके द्वारा उठाई गयी सुहास, आस-पास भी फैल गयी और आप न चाहते थे तो भी फैल गयी। तो आप अपने लिए न चाहकर के कोई भी ऐसा कर्म पुण्य का करना कि जिसके द्वारा सबको लाभ हो जाये और चाहे कोई लाभ लेना चाहे, न लेना चाहे, आप सबके लिए उस लाभ को पहुँचाने की

कोशिश करो और काम करने के बाद उसमें फल की आकांक्षा बिल्कुल नहीं रखना।

परोपकार करते ही तुरंत वहाँ से ओझल हो जाना बड़ी बात है और ध न्यवाद सुनने तक के लिए रूकना फल की आकांक्षा है। उससे भी ज्यादा फल की आकांक्षा तब होती है, जब हम यह देखना चाहते हैं कि मैंने इसके लिए इतना सब कुछ किया तो इसका सिर मेरे सामने झुका रहता है या नहीं, मुझे प्रणाम करता है या नहीं, मेरी इतनी देन पाने के बाद भी इसका सिर मेरे प्रति झुका हुआ है या नहीं। यहाँ हम और ज़्यादा फल के आकांक्षी हो गये और यदि आप यह मानकर चलते हैं कि एक भाई ने दूसरे भाई की सेवा कर दी, या, हुक्म था मेरे परमात्मा का, उसकी आज्ञा हुई तो मैंने कार्य किया; परोपकारी कार्य करने के बाद भी परोपकारी कार्यों की फल आकांक्षा का जो परित्याग कर दे, भगवान कहते हैं यह भी मेरी प्राप्ति का सुंदर साधन है।

यह जो गुप्त दान लोग देते थे न यह भावना यहीं से शुरू हुई। अब इस गुप्त दान में भी व्यक्ति इस तरह से देता है वह दिखाई देता है कि फलाँ व्यक्ति, इनका नाम नहीं लेना लेकिन इन्होंने दान दिया, गुप्त दान दिया है। अब उनकी शक्ल भी दिखाई दी है, ईशारा भी हो गया है, अब लोग भी बड़े प्यार से देख रहे हैं, आदर से देख रहे हैं - कमाल का आदमी है, यही वाला व्यक्ति है जो गुप्त दान देता है - अब वह गुप्त दान नहीं रहा क्योंकि व्यक्तियों को पता लगा है। वह दान गुप्त है, गुप्त हाथों से पहुँचा, अर्न्तयामी परमात्मा ने देखा, संसार ने केवल फल देखा है, व्यक्ति नहीं, देने वाले हाथ नहीं देखे, लेकिन देन देखी है तो यह कार्य बिल्कुल भगवान जैसा है। परमात्मा के हाथ नहीं दिखाई देते लेकिन उसकी देन दिखाई देती है। ऐसा जो कार्य है, कहते हैं, वह परमात्मा को पाने का, उसकी कृपा पाने का रास्ता है। बड़ा सुंदर कार्य है। चुपचाप जाकर सहयोग कर आये। इस कोशिश में लगे हुए हैं पता न लगे।

ऐसा कोई भी कार्य जहाँ आप सहयोगी बन गये - किसी एक बच्चे को किसी और के माध्यम से आप पूरी ज़िन्दगी पढ़ाते रहे, खुद का अपना नाम आगे आने नहीं दिया, कोई अज्ञात सहयोगी बन गया, साधारण कार्य नहीं। यहाँ फल की आकांक्षा नहीं, फिर गिनती भी नहीं गिनना मैंने कितना दिया? परमात्मा ने कभी कोई हिसाब नहीं रखा कि कितना उसने हमें दिया। आप भी

अपने बच्चे को जब पालते-पोसते हैं आप भी कोई हिसाब नहीं लगाते, बेहिसाब आप अपने बच्चे को देते हैं, जो आपसे बना, जितना सामर्थ्य बना अपने बच्चे के पालन-पोषण में आपने लगाया, आप हिसाब नहीं रखते। ऐसे ही उन लोगों से जो असहाय हैं, दीन हैं, उनके लिए सहयोग करते हुए हिसाब नहीं लगाना, बेहिसाब का कार्य करना। इसीलिए बहुत बार लोग यह करते हैं - किसी धर्म स्थल में गये सारी जेबें ख़ाली करके आ गये वहाँ से। कई लोगों को देखा पैदल चलते हुए जा रहे हैं, सवारी के लिए भी पैसे नहीं रखे। सब उठाया डाल कर आ गये, जेब ख़ाली करके। कोई पूछे जेब कटी है क्या ? व्यक्ति कहता है कि अगर मेरे परमात्मा के लिए कभी-कभी यह जेब ख़ाली भी हो जाये, तो यह ख़ाली नहीं होती, न जाने कितना-कितना भंडारा भरपूर होता है क्योंकि उसके लिए अपने को ख़ाली करके आया हूँ। कुछ बचाया नहीं, कुछ बचाने की आकांक्षा नहीं कि मेरे पास क्या बचा है, एक बार तो सर्वस्व देकर आया ही हूँ। तन भी तेरा, मन भी तेरा, यह धन भी तेरा - पूरी तरह से सब चढ़ाया है मैंने।

तो जब भी आप कोई भी ऐसा प्रयोग किसी के लिए भी कुछ करके आते हैं, जैसे ईश्वरचन्द विद्यासागर ने किया - भिक्षा माँगते हुए एक बच्चे को देखा, पूछा - बेटा भीख माँगते हो? उसने कहा - अगर एक रूपया मुझे मिल जाये तो मैं अपना आज का कार्य तो चला सकता हूँ।

उन्होंने पूछा - दो रूपये मिलें तो?

बोला - फिर मेरा एक हफ़्ते का काम हो जायेगा, दो रूपये में पूरा राशन लेकर के रख लूँगा, पूरा काम चल जायेगा।

उन्होंने कहा कि अगर तुम्हें दस रूपये दिये जायें तब क्या करोगा?

उसने कहा - साहब जी देना तो है नहीं मज़ाक़ कर रहे हो अगर दस दोगे तो एक काम हो सकता है - फल झोली में लटका कर के इधर-उधर बेचने के लिए जा सकता हूँ।

उन्होंने कहा कि अगर बीस दे दिये जायें तो कहीं फलों की दुकान या कोई रेहड़ी लगाने में समर्थ हो?

उसने कहा कि ऐसे भाग कहाँ? अगर ऐसी बात हो जाये तो भीख की तो बात क्या है भीख माँगने वालों की भी भीख छुड़वा दूँगा।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने कहा - फिर लो बीस रूपये, आज से अपनी भी भीख छुड़वाओ और तेरे मित्र जो मिलें उनकी भी भीख छुड़वाओ।

उस बच्चे ने पूछा - आप हैं कौन?

बोले - तुझे क्या मतलब इससे?

कहाँ रहते हैं?

बोले - बीस रूपये तुम्हें घर जाकर नहीं दे रहा हूँ, यहीं दे रहा हूँ। दोबारा दूँगा नहीं इसीलिए घर का पता भी नहीं बताऊँगा।

बीस रूपये दिये, काम खुलवाया और उसके बाद उस सड़क से गुज़रे ही नहीं - कि अब यह बात होनी ही नहीं चाहिए कि वह आदमी मिले और मिलते ही फिर वह कहे - साहब जी, प्रणाम करता हूँ, आपने तो मेरी ज़िन्दगी बना दी। अब इतना ही सुनने के बाद आ गया न अहंकार फिर, स्थिति बदली। लेकिन ऐसा भाव नहीं रखा उन्होंने।

बरसों के बाद कभी वह मिला और देखा कि सच में ही उस आदमी की बहुत अच्छी दुकान, उसने औरों को भी काम खुलवा दिया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने कहा - तसल्ली हुई कि वह दिन और वह सहयोग निरर्थक नहीं गया, बेकार नहीं गया, ठीक काम आ गया। अब यहाँ क्या है कि कर्म फल का परित्याग है, खुद चाह नहीं है; उसके नाम किया और भूल गये।

नेकी कर दरिया में डाल। कड़वे शब्द सुनो, बुराई सह जाओ, याद नहीं रखो।

लुक़मान ने कहा था न, दो ही तो चीज़े हैं याद न रखने की - किसी के प्रति क़िया गया उपकार, जो आपने किसी की भलाई की, सदा के लिए भूलना और किसी ने आपका अपकार किया, बुरा किया, नहीं याद रखना। अन्यथा भविष्य बेकार होगा, ज़िन्दगी डावां डोल होगी। हर समय ही मन में यह आयेगा - इसने इतना मेरे लिए बुरा किया, कैसे बदला लूँ? किसी का भला किया और वह व्यक्ति नहीं झुकता, नहीं मानता, कृतज्ञता नहीं व्यक्त करता, बड़ी मन में पीढ़ा है। सबको तोड़ना है। भगवान ने कहा तो फिर कर्म का फल त्याग करना।

भगवान फिर कहते हैं -

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

– भगवान ने कहा अभ्यास से भी ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी कर्म फल का त्याग श्रेष्ठ है। त्याग से भी शांति में डूबे रहना श्रेष्ठ है, त्याग से ही शांति आयेगी। वह शांति जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है।

ऐसे समझिए – भगवान कहते हैं कि इस समस्त प्रकार के अभ्यासों से भी ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान, ज्ञानपूर्वक चलने से भी जीवन में ध्यानस्थ हो जाना महत्त्वपूर्ण है। ध्यान टिकाना, ध्यान में डूबना, ध्यान में उतरना, ध्यान को जीवन का आधार बनाना यह ज्ञान से भी श्रेष्ठ है और ध्यान से भी श्रेष्ठ है कर्मों का फल त्याग कर देना। इस त्याग से ही शांति की प्राप्ति होती है। यह एक सुंदर फार्मूला है। इस पर भी विचार कीजिए।

ज्ञान महत्त्वपूर्ण चीज़ है। ज्ञान को जीवन का लक्ष्य बनाओ। लेकिन ज्ञान से भी महत्त्वपूर्ण है ध्यान। ज्ञानी तो हैं दुनिया में, लेकिन ध्यानी बहुत कम हैं। जिनका ध्यान सफल हो गया, जिनका ध्यान टिक गया, जो ध्यानस्थ हो गये, वह लोग प्राप्ति करते हैं। भारत का ध्यान और योग प्रसिद्ध है। मैडिटेशन में बैठना, एक तो है एकाग्रता धारण करना, एक है पूरी तरह से उसमें डूब जाना। वह ध्यान, ध्यान के बाद में भी समाधि, समाधि के भी दो मुख्य प्रकार। लेकिन यह विषय इस समय चिंतन का नहीं है। केवल इतना ही विचार करना कि ध्यान महत्त्वपूर्ण है। निर्विचार होकर बैठना, मन को टिकाना, मस्तिष्क को खो देना, अंदर की शांति से अपना संबंध जोड़ना, बाहर आँखें बंद कर लेना यह एक बात, लेकिन अंदर जो मन मनन करता रहता है, अंदर जो विचारों की भीड़ है उसे भी शांत कर देना। किसी एक ऐसे बिन्दु पर अपने को एकाग्र कर लेना कि अब कुछ भी नहीं, केवल शांति और आनन्द है, इसमें जब आप टिक जाते हैं तो यह एक बहुत बड़ा आनन्द होता है। लेकिन भगवान कहते हैं इससे भी ज़्यादा उचित होगा कर्मों का फल त्याग। परोपकारी, बड़े से बड़े महान कार्य करो, लेकिन सबका फल त्याग करके, स्वार्थ को छोड़ के, परार्थ के लिए किया गया जो भी कार्य है, वह सेवा है, सहयोग है, सद्भावना है, क्योंकि उसमें करुणा है और ऐसा कार्य परमात्मा स्वीकार करते हैं।

✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽

भगवान श्रीकृष्ण के उपदेशों में गीता का बारहवां अध्याय बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अध्याय है। इस अध्याय का यह श्लोक और भी ज़्यादा आनन्द देने वाला है जहाँ भगवान श्रीकृष्ण अपने प्यारे भक्त की पहचान बताते हैं, जब अर्जुन से यह कहते हैं कि हे अर्जुन, जिन्हें मैं प्यार करता हूँ, जो मेरे प्रिय हैं उनकी पहचान तुम्हें बताता हूँ। एक वह लोग हैं जो भगवान को प्यार करते हैं, एक तरह के लोग वह भी हैं जिनको परमात्मा का अद्‌भुत प्यार मिलता है, जिन्हें भगवान चाहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं उनकी पहचान बताता हूँ -

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

पहचान बताई - *अद्वेष्टा सर्वभूताना* प्राणीमात्र के प्रति जो वैर का परित्याग कर दे, न ईर्ष्या हो, न द्वेष, न जलन, न किसी से बदला लेने की चाह, न निंदा करने की इच्छा, न आलोचना में रूचि, और न किसी दुश्मन की निंदा सुनने के लिए उत्सुकता, क्योंकि मनुष्य की दुर्बलता है, मनुष्य अपनी प्रशंसा में खुश होता है और दुश्मन की निंदा कोई सुनाये तो उसमें भी बड़ा दिल को चैन मिलता है। कोई वैरी आदमी हो हमारा और कोई अपना मिलने वाला आ जाये और वैरी की बुराई करने के लिए बैठ जाये, तो ऐसा तो भागवत् रस में भी नहीं मिलता जितना आनन्द उसमें मिलता है, आदमी दस काम छोड़ के सुनता है उसे और निन्दा रस का सुख लेने के लिए कई महिलाओं की सब्जी घर में जल रही होती है लेकिन पड़ोस की महिला के साथ बात करना नहीं छोड़ती। लेकिन जिसे किसी से वैर ही नहीं, किसी से विरोध ही नहीं, किसी की निंदा करने की इच्छा नहीं, किसी की चुगली करता/करती नहीं, कोई पुरूष या महिला अपने जीवन में इस बात को अधिक महत्त्व देकर चल रहा हो कि किसी के प्रति भी वैर नहीं रखना, किसी के प्रति निंदा नहीं, आलोचना नहीं, न कोई डाह, वह परमात्मा का प्रिय है। आग से जले हुए व्यक्ति की चमड़ी में बहुत देर तक जलन होती है पर उसके लिए भी कोई न कोई ट्यूब, कोई न कोई

लेप लगाकर आप अपने आपको शान्त कर लेते हैं। और नहीं तो पानी में हाथ डालकर रख लेंगे तो भी शांति मिल जायेगी। पर ईर्ष्या से जले हुए आदमी के हृदय में कभी शान्ति नहीं आती। जितनी देर तक याद करेगा उतनी देर तक अंदर फफोले पड़ते चले जायेंगे, जलन होती चली जायेगी और वह जलन अंदर एक भाव पैदा करती है - कैसे बदला लिया जाये? कैसे किसी को नीचा दिखाया जाये? कैसे चोट पहुँचायें?

दु:ख की बात यह है कि सारा संसार इस ईर्ष्या की आग में जलता दिखाई देता है। इतनी भारी जलन एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को - दूसरे के सुख को, दूसरे के प्रभाव को, दूसरे की प्रसन्नता को, दूसरे के वैभव को, दूसरे की सम्पन्नता को - बर्दाश्त नहीं कर पाता। कोई क्यों आगे है? कोई इतना खुश क्यों है? किसी के घर में इतनी खुशी क्यों है? इस जलन के कारण सारे संसार भर में आग लगी हुई है। रात-दिन कलह-कलेश।

कोर्ट कचहरी में आप जाते हुए लोगों को देखें कुछ तो वह लोग हैं जो बदले की भावना से गुस्से में आकर हिंसा पर उतारू हो गये पर बहुत-बहुत लोग तो वह ही हैं जो ईर्ष्या में पड़े हुए हैं; कोई लालच का मारा हुआ है, तो कोई काम का मारा हुआ; कोई मोह में आकर के ग़लत कार्य कर बैठा, कोई अहंकार के कारण ग़लत क़दम उठा बैठा। मनुष्य के लिए यही शत्रु हैं जो उसके अंदर बैठकर उसको हिलाते हैं, डुलाते हैं, मारते हैं।

लेकिन भगवान श्रीकृष्ण ने कहा - अर्जुन, जो मेरा प्यारा है उसकी पहली पहचान यह है कि उसमें वैर नहीं होगा, ईर्ष्या नहीं होगी, जलन नहीं है; किसी व्यक्ति विशेष की बात नहीं, प्राणीमात्र के प्रति जिसके अंदर वैर नहीं है।

भगवान की भक्ति करने के लिए बैठे हैं या ध्यान करने के लिए बैठें, या सोने के लिए जाईये - तीनों स्थितियों में अगर किसी के प्रति वैर है तो वैरी की आँखें, वैरी की शक्ल आपके अंदर घूमती रहेगी। न ध्यान होगा, न भजन, और तो और नींद भी नहीं आयेगी, सोते समय उस आदमी की शक्ल ज़्यादा दिखाई देती है; जिसके साथ वैर होता है न वह पीछा नहीं छोड़ता और भक्ति का आनन्द तब मिलता है जब आप आसन पर

बैठते ही सबसे पहले मंगल कामना करना उसके लिए जो आपके प्रति वैर रखता है, या जिसके प्रति आपके मन में वैर है। एकदम ही कह देना कि – हे परमात्मा, तेरे न्याय पर छोड़ दिया, तू उनका भला कर।

महात्मा बुद्ध ने तो अपने एक शिष्य को आदेश दिया था – अगर तू मुझसे दीक्षित होना चाहता है तो अपने वैरी से जाकर भिक्षा माँग कर लेकर आ। अगर वैरी से भिक्षा लेकर आ सका और सारे गिले-शिकवे मिटाकर के आ गया तो फिर बैठना भक्ति में, तब तुझे दीक्षा दूँगा।

महात्मा बुद्ध को यह शर्त लगाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यह शर्त इसीलिए लगाई अगर वह व्यक्ति यह शर्त पूरी न करता, और आँखें बंद करके ध्यान करने बैठता तो फिर उसका ध्यान न लगता, वैरी की शक्ल अपने अंदर देख रहा होता।

सर्वप्रथम वैर और विरोध को मिटाकर के ही साधना हो सकती है, भक्ति तभी हो सकती है, परमात्मा की ओर चलने का रास्ता यही है – वैर का परित्याग करके और फिर इस क्षेत्र में आयें।

लेकिन ऐसे नहीं सोचना कि वैर तो मिटेगा नहीं तो भक्ति भी नहीं हो पायेगी। वास्तविकता तो यह है कि जैसे-जैसे भजन शुरू होगा और परमात्मा के प्यार का आनंद लेना शुरू करोगे अंदर इतना प्रेम भर जायेगा कि फिर किसी के लिए घृणा की जगह रह ही नहीं जायेगी और यहीं से कल्याण होना शुरू हो जायेगा। सर्वप्रथम यह कोशिश कीजिए कि हम किसी के प्रति वैर भावना लेकर नहीं जियेंगे। बहुत सारी चीज़ों को वहीं का वहीं छोड़ देना चाहिए।

कोई आदमी बुरा-भला कहकर आपको भड़काने की कोशिश करता है – मान लीजिए किसी ने गाली दी। अब वह चाहता है कि आपको उसी कीचड़ में लाकर खड़ा कर दे जहाँ वह खड़ा हुआ है। अगर आप भड़कावे में आ गये तो निश्चित बात है कि आप उसी कीचड़ में जाकर खड़े हो जाओगे, फिर आदान-प्रदान हो जायेगा शुरू।

एक बहुत अच्छे महात्मा हुए। उन्होंने एक बड़ा ही सुंदर और प्यारा उदाहरण दिया, उनके ही ढंग का उदाहरण। अब वह महात्मा हमारे बीच में नहीं है लेकिन वह कहते थे कि भगवान का एक भक्त, भगवान का नाम

जपते हुए, माला जपते हुए, चला जा रहा है और चलते-चलते उसका पाँव किसी धोबी के द्वारा बिछाये गए कपड़ों पर पड़ गया। अब धोबी गुस्से में आकर उसे मारने लगा। तो महात्मा जी सुनाते थे कि भगवान ने सोचा मेरा भक्त चोट खा रहा है, मैं उसकी रक्षा करूँ। हाथ बढ़ाया आगे अपनी कृपा का। अभी हाथ बढ़ाया ही था, देखा कि वह भक्त भी धोबी के साथ लड़ने लगा और दोनों ही एक दूसरे को पटकने लगे। भगवान ने हाथ पीछे खींच लिया। भगवान विष्णु से, नारायण से, लक्ष्मी माता ने पूछा - आपने अपनी कृपा का हाथ बढ़ाया भी और अब फिर पीछे खींच लिया, अपने भक्त पर कृपा नहीं की? भगवान ने कहा कि अब यह समझ में नहीं आ रहा कि -दोनों में से धोबी कौन है? दोनों एक ही जगह आकर खड़े हो गये, एक दूसरे को धोने में लग गये हैं, अब मेरी ज़रूरत नहीं रह गयी, अब तो यह अपने आप निपटारा कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाये कि अब यह दोनों ही मुझसे दूर हो गये हैं।

जो लड़ाई झगड़े में और विवाद और विषाद में पड़ गया है समझ लेना कि परमात्मा से दूर हो गया।

भगवान ने कहा - अर्जुन जो मुझसे प्यार करने वाला है - वैर में, विरोध में, निंदा, चुगली, आलोचना में नहीं लगेगा और अगर ऐसे लोग मिल भी जायें तो क्या करना चाहिए? क्योंकि जीवन में ऐसा होता है कि आप तो सबका भला चाह रहे हो लेकिन बहुत लोग ऐसे हैं जो आपका भला नहीं चाहते। आप भलाई करेंगे, वह बुरा कर देंगे। अपनी अर्न्तात्मा की आवाज़ पर अच्छा कार्य करते रहना, भगवान का नाम जप करके सन्मार्ग पर चलते रहना, उनके वैर-विरोध को उनके कार्य पर छोड़ देना।

रविन्द्रनाथ टैगोर की बात याद रखना - नोबल प्राइज़ मिल गया; टैगोर साहब से अख़बार वालों ने पूछा - आपका वैर-विरोध करने वाले लोग भी तो कभी रहे होंगे? उन्होंने कहा - बहुत रहे हैं। उनकी बारे में आप क्या कहना चाहेंगे? टैगोर साहब ने कहा उनके बारे में यही कहना चाहूँगा कि भाई लोगों आप लोग तो दस साल पहले भी वहीं खड़े थे, आज भी वहीं खड़े हुए हो, तुमने पूरी कोशिश की कि मैं भी तुम्हारे साथ उसी वैर विरोध में खड़ा हो जाऊँ लेकिन मेरे ऊपर मेरे परमात्मा की कृपा रही कि

मैं उसका सहारा लेकर अपना कार्य करता चला गया, मैं आज कोसों दूर आगे पहुँच गया हूँ और वह लोग आज भी कीचड़ में खड़े हुए दिखाई देते हैं। उनसे यही कहना चाहता हूँ कि भाई लोगों उस कीचड़ के संसार से ऊपर उठकर कुछ अच्छाई का मार्ग पकड़ लो जिससे तुम्हारा भला भी हो जायेगा नहीं तो उस वैर विरोध से क्या मिलेगा? तो अगर ग़लत लोग मिल भी जायें, उनके मिल जाने से घबराना नहीं। वह अपने काम करें, आप अपना काम करते चले जाईये।

यद्यपि इस संसार में ऐसा हुआ, किसी संदर्भ में मैंने सुनाया था कि ईसप जैसा महान लेखक, चिंतक, जिसने अपने देश को अपनी बुद्धिमत्ता से गुलाम होने से-बचाया था; ऐसा व्यक्ति चाटुकारों के द्वारा, ईर्ष्या- के कारण राजा को भड़का देने से उसे पहाड़ से गिराकर मारा गया और संसार के इतिहास में यह कहा जाता है कि दुनिया का इतना अनमोल क़ीमती हीरा, जिससे न जाने दुनिया का कितना भला हो सकता था, ईर्ष्यालु लोगों के कारण वह संसार से उठ गया।

लाखों सालों के बाद, अनेक ताप सहने के बाद कोई हीरा बना करता है। मनुष्य जाति का जब बहुत भला होता है, बड़े पुण्यों का फल होता है तो कोई महापुरूष का जन्म होता है। और जब कोई महान पुरूष जन्म लेता है उस समय उसे सुरक्षित रखना बहुत ज़रूरी कार्य होता है क्योंकि फूल जितने समय तक खिला रहेगा, उतने समय तक संसार में खुशबू फैलती रहेगी, सुंदरता बिखरती रहेगी और आप जानते हैं कि फूल की उम्र कोई ज़्यादा देर की नहीं होती। दुनिया के महापुरूष ज़्यादा देर तक दुनिया में कभी नहीं आते, बहुत थोड़ी देर के लिए आते हैं और फिर लौट जाते हैं उसी धाम में जो परमात्मा का धाम है। ईर्ष्यालु और ग़लत तरह के अज्ञानी लोगों के माध्यम से न जाने कितनी-कितनी बार ऐसे हीरे जवाहरात लुट जाते हैं। परमात्मा के प्यारे लोग तो वह हैं वैर विरोध करें ही नहीं और अगर कहीं कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई दे जिसके द्वारा संसार का भला हो रहा है, उसकी सुरक्षा के लिए जो सहयोगी बन जाये वह भी परमात्मा का प्यार भक्त होता है। कोशिश करनी चाहिए कि ऐसे लोगों को संभाला जाये।

ईसप ने छोटी-छोटी कथाएं लिखीं, छोटे-छोटे बच्चों के लिए। आपने बहुत बार बच्चों की वह कथाएं पढ़ी होंगी - लोमड़ी ने कहा अंगूर खट्टे हैं, पहुँच नहीं पा रही थी वहाँ तक; मधुमक्खियों को ब्रह्मा ने डंक दिया तो क्यों दिया - इस तरह की बड़ी सारी कथाएं उसकी हैं। फूल के साथ भगवान ने काँटे क्यों उगाये? यह तरह-तरह की शिक्षाएं देकर उस व्यक्ति ने बच्चों को शिक्षित किया लेकिन उस महान हीरे को दुनिया सुरक्षित नहीं रख पाई, वैर ने निगल लिया उसे। अच्छा हो कि वैर के नागफनी वाले काँटे न उगायें न उन्हें पलने दें।

हमारे शास्त्रों में एक और नियम भी माना गया कि हमारे मस्तिष्क में परमात्मा ने अद्भुत शक्तियाँ दी हैं। अगर आप अपने हृदय से, अपने मस्तिष्क से, प्रेम के संवाद सम्प्रेषित करते हैं तो उधर वाले व्यक्ति के मन में जो वैर है तो आपके प्रेम की तरंग कहीं न कहीं असर करती है जाकर। जैसे टैलीपैथी काम करती है न। तो टैलीपैथी से जहाँ व्यक्ति के साथ प्रेम भाव है तो वहाँ वह तो संवाद जाता ही है लेकिन यह भी बात जाती है कि किसी के प्रति कोई वैर की भावना इधर से पैदा कर रहा है तो उधर भी चिंगारियाँ जलनी शुरू होती हैं। दूसरा व्यक्ति अपनी आग बुझाये न बुझाये हमें तो अपनी बुझा लेनी चाहिए।

इस शब्द पर इसीलिए थोड़ा ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ क्योंकि भगवान कृष्ण ने गीता में वैर शब्द को, द्वेष को, अनेक बार दोहराया है और इतनी बार दोहराया जैसे शर्त रख दी हो कि वैर नहीं रखना! वैर नहीं रखना, और आप जानते हैं कि किसी चीज़ को जब बार-बार दोहराया जाता है तो उसका मतलब होता है कि उसको ज़्यादा ज़ोर दिया जा रहा है, उस पर ज़्यादा ध्यान दिलाया जा रहा है। भगवान कृष्ण ने वैर पर बड़ा ध्यान दिलाया है और इसका एक कारण यह भी था कि दुर्योधन एक ही ऐसा व्यक्ति था जो वैर ही पाले हुए था, शकुनि भी ईर्ष्या से ग्रस्त है, कर्ण के मन में भी एक ही भाव है कि द्रौपदी मुझे देखकर हँसी थी, मुझे बदला लेना चाहिए। उसके मन में भी ईर्ष्या है, वैर है, प्रतिशोध है और उसके कारण इतना बड़ा रक्तपात होने की स्थिति आ गई - एक तरफ़ ग्यारह अक्षोहिणी सेना सजी हुई है दूसरी तरफ़ सात अक्षोहिणी सेना और अजीब

चीज़ तो यह है कि यह वैर जब भी रूप लेकर खड़ा होता है - धर्म सिखाता है कि वैर नहीं रखना, किसी भी ढंग से कह लीजिए धार्मिक लोगों की बात कहिये, मज़हबी लोगों की बात कहिये, बात एक ही है। *मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना* - गीत गाये जाते हैं। लेकिन अजीब चीज़ है कि जब मत, मज़हब, सम्प्रदाय आपस में लड़ने लग जाते हैं फिर धर्म न जाने कहाँ चला जाता है? इंसानियत न जाने कहाँ चली जाती है? मज़हब का नाम लेकर के ही हमारे देश का बँटवारा हुआ। एक वर्ग के लोग दूसरी तरफ़ चले गये, एक वर्ग के लोग इधर रह गये। और आप देखिए कि इस बंटवारे में तीस लाख लोग एक साथ मारे गये। तीस लाख लोग मौत की तरफ़ चले गये और कितनी करोड़ों रूपये की हानि हुई और फिर कहीं न कहीं कोई न कोई राजनेता, कोई न कोई व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए फिर भड़कायेगा, फिर जोश दिलायेगा, फिर ईर्ष्यायें जागेंगी और जो सच्चा मज़हबी व्यक्ति है, चाहे सच्चा धार्मिक व्यक्ति है उसकी कोशिश यही रहेगी इंसानियत से बढ़कर धर्म कोई नहीं है, इंनासियत को अपना लिया जाये।

यह लकीरें ज़मीन पर खींची हुई हैं इंसान की - हवाओं को बाँटा है इंसान ने; परमात्मा की हवा, पानी, परमात्मा का सूरज तो सबके लिए है उसने कभी कुछ नहीं बाँटा, बाँटा है तो पागलों ने ही बाँटा है; लड़ाईयाँ लड़ी हैं तो पागलों ने।

भगवान कहते हैं जो वैर रखकर चलेगा वह मेरी तरफ़ नहीं आ सकता। जो वैर को हटाकर आये वह मेरा हो जायेगा।

पहली कसौटी *अद्वेष्टा सर्वभूतानां* - प्राणीमात्र के प्रति जिसके मन में प्यार है, द्वेष नहीं है *मैत्रः करुण एव च* - भगवान दूसरी बात कहते हैं, अर्जुन दूसरी पहचान बताता हूँ - जो वैर छोड़कर आये वह मेरा होता है और जिसके अंदर मित्रता है, स्नेह है, वह मेरा है।

मित्रता का मतलब यह मानना चाहिए शत्रुता का भाव अंदर से ख़त्म करके चलें। कहते हैं भक्त की पहचान है जो बच्चों जैसा सरल, सहज जीवन जिये, निष्कपट, निश्छल, गाँठ न हो अंदर और जल्दी बात भूल भी जाये। चोट किसी ने लगाई, किसी ने बुरा कहा फिर उसी के साथ जाकर खेलने लग जाता है बच्चा - यह कसौटी है।

मनुष्य के अंदर एक, आपने देखा होगा जानवर का रूप जागता है जब क्रोध आता है। पशु भी अपना क्रोध प्रकट करते हैं; पशुओं के क्रोध करने का ढंग है कि वह दांत निकालने लग जाते हैं उस समय - कुत्तों को आपने देखा होगा, भेड़िया, शेर, चीता - दांत निकाल के और गुर्राते हैं, दांत बाहर निकालते हैं। आदमी को गुस्सा आता है जानवर होता है वह भी दांत पीसने लगता है। भारतीय मनोविज्ञान इस बात पर बड़ी गहराई से सोचता है। भारत का जो प्राचीन मनोविज्ञान है वह कहता है कि जिस समय पशु के अंदर क्रोध आयेगा दांत पीसेगा, दांत निकालेगा बाहर, पंजे अपने निकाल लेगा हमला करने के लिए; जिनके पास सींग है वह सींग आगे करने लग जायेंगे और नथुने फुला लेंगे। तो इंसान ऐसा करता है कि उसके पास पंजे तो हैं नहीं, वह पंजों जैसी कोई छुरी-वुरी निकालने लगता है, दांत पीसता जायेगा और जैसे पशु अच्छा-बुरा नहीं सोचता, मनुष्य भी उस समय अच्छा-बुरा नहीं सोचता। वैर में पला हुआ है और क्रोध पल रहा हो हमला करना चाहेगा उस समय। लेकिन एक चीज़ हम सब जानते हैं कि जिस समय कोई जानवर अपने बच्चों को प्यार कर रहा हो उस समय उसका रूप देखने लायक़ होता है। कौआ कैसा भी क्यों न हो लेकिन जब वह अपने बच्चों को भोजन खिलाये, शेर अपने बच्चों के पास बैठा हो और शेरनी अपने बच्चों को दूध पिला रही हो कितना अच्छा रूप लगता है क्योंकि वह प्यार का रूप है।

भगवान कहते हैं कि तुम्हारा सबसे सुंदर रूप वही है जब तुम प्रेम में होते हो, तुम्हारे अंदर वैर नहीं होता है, ईर्ष्या नहीं होती है, तभी तुम मुझे भी प्यारे लगते हो। यही रूप लेकर तुम मेरे निकट आ सकते हो - हर तरह का वैर हटाकर, हर तरह का द्वेष हटाकर, बदला देने की भावना हटाकर।

तीसरी बात फिर देखिए। भगवान फिर कहते हैं - *करुण एव च* - वह मुझे प्यारा है जिसके अंदर दया है, करुणा है। भगवान बुद्ध करुणा को धर्म मानते हैं। उनकी दृष्टि में वही आदमी धार्मिक है जिस आदमी के अंदर करुणा पैदा हो क्योंकि जब दया पैदा हो तो आदमी सहानुभूति रखता-रखता दूसरे का सहयोग करने के लिए तत्पर होता है, तभी महसूस

होता है कि यह कोई जो सामने तड़प रहा है यह कोई और नहीं, मैं ही हूँ, यह कोई मेरे जैसा ही है। दया की भावनाएं मनुष्य के अंदर आ जायें तो उस समय मनुष्य परमात्मा का प्यारा हो जाता है, कहना चाहिए कि उस समय उसके अंदर देवताओं का रूप जाग जाता है क्योंकि -

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िए, जब तक घट में प्राण।।

दया ही धर्म है, धर्म ही दया है और धर्म की आधार शिला दया है। भक्ति आयेगी आपके हृदय में तो दयालुता दिखाई देगी। यहाँ तक होता है कि इंसान दूसरे के दु:ख में स्वयं रोने लग जाता है।

कहा जाता है कि रामकृष्ण परमहंस इतने करूणा से अभिभूत थे - कुछ दूरी पर एक किसी किसान ने अपने बैलों को हंटर से मारा तो उनके शरीर पर हंटर के निशान पड़े गये और वह तड़प उठे। शिष्य कहने लगे - क्या हो गया? उन्होंने कहा - किसी जानवर को सताया जा रहा है, मुझे महसूस होता है कि उस जानवर में भी मेरी आत्मा बसी हुई है, वह मेरा ही तो रूप है और आश्चर्य हुआ देखकर कि ऐसा भी हो सकता है क्या?

देखिए दुनिया में बहुत ज़्यादा गिरावट आयी है कि मनुष्य निर्दयी हो गया है। दूसरों को तड़पता देखकर, दूसरे का खून बहता देखकर किसी के मन में दया नहीं आती। ऐसा लगता है जैसे कि अंदर खून में, खून खून न होकर कोई पानी हो गया हो। कहाँ तो वह लोग थे - कहा जाता था कि हमारे देश में एक चींटी को भी मारना या वह हाथ से मर जाये या पैर से मर जाये तो बहुत बड़ा अपराध होता था, कहाँ इंसान इंसान के दर्द को नहीं समझ पा रहा। मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि थोड़ा-सा अपने हाथों से कोई ऐसा काम ज़रूर करो जाकर, भगवान ने अगर आपको सुख दिया है, तो आस-पास कोई दु:खी दिखाई दे तो उसको अपने सुख में थोड़ा हिस्सेदार बनाकर देखिए आप। आपको यह एहसास होगा कि आपके साथ आपका परमात्मा खड़ा हुआ है।

ऋषि रमण हुए दक्षिण भारत में। वह घोषणा किया करते थे कि आओ तुम्हें भगवान के दर्शन करायें। आस्ट्रेलिया से दो पादरी मिलकर के एक दिन उनके पास आये। उन्होंने कहा भगवान के दर्शन करा दो। ऋषि रमण

ने कहा मेरे साथ चलो। कोढ़ियों के बीच जाकर ऋषि रमण ने सेवा शुरू की। उन पादरियों से कहा की यहाँ सेवा करो और यहीं किसी दिन कुटिया में भगवान दर्शन देंगे।

एक दिन सेवा करते-करते जब एक कोढ़ी ठीक हो गया और उसकी आँख में आँसू बहने लगे और वह घुटनों के बल बैठकर ऋषि रमण से कहने लगा - सुना है भगवान रूप बदलकर धरती पर आते हैं, मैंने तो आपके रूप में भगवान को देखा है।

रमण ऋषि ने हाथ आसमान की तरफ़ उठाया और कहा कि वह प्रेरणा देता है न कि अपने किसी भाई के, अपने किसी सगे के काम आओ। तू ही तो मेरा सगा है। जो भावनाओं के रिश्ते हैं उससे बढ़कर रिश्ता और क्या होता है और तब उन्होंने भजन गाना शुरू किया। आस-पास के लोग मिलकर कीर्तन करने लगे, सबकी आँख में आँसू, सबकी आँखें बंद। वह दोनों पादरी भी आँखें बंद करके बैठ गये और उस समय जो उनको एक नूर अंदर दिखाई दिया, प्रकाश दिखाई दिया, महसूस होने लगा जैसे दिव्य आभा के साथ जुड़ गये हों। कीर्तन ख़त्म हुआ, सब बाहर निकले।

घुटनों के बल बैठे हुए वह पादरी उन्होंने कहा - न जाने कहाँ-कहाँ ढूँढने की कोशिश की उस प्रभु को, उस मालिक को लेकिन आज पता लगा कि जब दया करता हुआ इंसान प्यार बाँटता है, दूसरे के काम आता है और प्यार में आकर के जब हिलोर में उठकर के गाया करता है तब संसार का मालिक अपना किसी न किसी रूप में अहसास कराता है।

कहीं जाकर सेवा करो आप। कभी मौक़ा लगे तो आप किसी हॉस्पिटल में चले जाओ। वहाँ जाकर किसी को फल देकर आना; कभी रात में सोते-सोते नींद न आये तो एक काम करना - गाड़ी उठाकर जाना, अपना कोई शाल, अपना कोई कम्बल किसी ग़रीब फुटपाथ पर लेटे हुए व्यक्ति के ऊपर ओढ़ा कर वापिस आ जाना। अपने बच्चों के गरम कपड़े बनाते समय, किसी ग़रीब बच्चे का ख़्याल रख लेना अपने मन में कि कोई ग़रीब बच्चा, वह भगवान का ही बेटा है मैं उसको अपने वस्त्र भेंट करने जा रहा हूँ, जिससे मेरा भगवान मेरा दिया हुआ वस्त्र स्वीकार कर ले।

किसी ग़रीब बच्चे को देकर के आ जाना और आप यह देखना कि आपका वस्त्र भगवान स्वीकार करते हैं या नहीं ? अपना मकान बनाओ, मकान सुंदर बन रहा है। उस समय कोशिश करना कुछ पैसे - दस बीस हज़ार रूपये अलग से निकाल लो। किसी की टूटी हुई झुग्गी, किसी की झोंपड़ी, किसी का टूटा हुआ मकान, कोई विधवा बेसहारा महिला, यह सोचकर के उसके लिए मैं कहीं सहयोगी बन जाऊँ। अगर वहाँ आप कहीं सहयोग करके आ गये तो जो मकान आप बनाकर के रहोगे न उस मकान में सदा परमात्मा की शीतल छाया बनी रहेगी आप उस घर में सुख से रहेंगे क्योंकि वहाँ परमात्मा की कृपा काम करनी शुरू कर देगी। अपने बच्चों की शादी के अवसर पर भी कुछ पैसे निकालना। जिनकी शादियों में कोई पैसा लगाने वाला नहीं है - किसी की बेटी जवान है, शादी का अवसर है और उनके पास साधन नहीं हैं, उनके लिए कुछ पैसे निकाल कर के रखो आप। सहयोग करके आना, लेकिन जताना नहीं। यही कहना जाकर एक भाई का दूसरे भाई के लिए सहयोग है और जब अपने बच्चों की शादी करोगे न और दूसरे के यहाँ सहयोग करके आये हो आपके बच्चे सदा खुशहाल रहेंगे, घर में सुख शान्ति रहेगी, क्योंकि इधर दोगे उधर कृपा होती है।

पर यह सोचना भी नहीं कि मैं इसका बदला चाहूँ। सोचना तो बस एक ही बात कि मेरे मालिक तू मुझे इस लायक़ बना कर के रख कि मैं इन हाथों से दे सकूँ और मुझे कोई कमी न आये क्योंकि जब तू देता है और तेरे दिये हुऐ को आगे दिया जाता है तब यह महसूस होता है कि ख़ज़ाना और भंडारा भरपूर रहा करता है, कमी नहीं रहती। इसीलिए तू इस सामर्थ्य को मुझे देना कि मेरे हाथ देने के लिए उठते रहें, सहयोग करने के लिए उठते रहें। एक कहावत है कि *'देने वाले को कभी कमी नहीं रहती और माँगने वाले का कभी पेट नहीं भरता।'* जिसकी आदत पड़ गयी न माँगने की, उसको हमेशा कमी ही रहेगी और जिसको देने की आदत पड़ गयी उसको कभी कमी रह ही नहीं जायेगी, कमी होने ही नहीं देगा परमात्मा। तो जहाँ अवसर मिले दया, सहानुभूति, प्रेम, सौहार्द प्रकट करते जाना, संकोच नहीं करना।

कहते हैं जहाँ दया करने वाला इंसान खड़ा हुआ है उसकी दया में परमात्मा अनुभूति देगा। इसीलिए कुछ भी हो अपने अंदर दया को नहीं छोड़ना, निर्दयता अपनाना नहीं और दया को छोड़ना नहीं। यह तीसरी कसौटी है।

भगवान श्रीकृष्ण आगे फिर एक शब्द कहते है - *निर्ममो निरहंकार :* अर्जुन चौथी पहचान यह है जो मेरा हैं न *निर्ममा:* वह यह जानता है कि संसार में जो भी पदार्थ उसके पास है उस पर वह अपना ममत्व, स्वामित्व नहीं दर्शाता।

एक शब्द है ममता और एक शब्द है समता। ममता में आया हुआ इंसान जिसको मेरा कहता है उसी के लिए सहयोग करेगा और समता में आया हुआ इंसान सबके लिए सहयोग करने की कोशिश करेगा।

तीन शब्दों पर ध्यान देना - एक है संस्कृति, एक है विकृति, एक है प्रकृति। हमारा हाथ मुड़ कर हमारे मुँह की तरफ़ आता है, भोजन करने के लिए बैठें तो अँधेरे में भी अगर भोजन करेंगे तो हमारे हाथ का इतना अच्छा अभ्यास होता है कि हाथ मुँह की तरफ़ ही आता है - न नाक पर जाता है न आँखों पर जाता है - बहुत अच्छा अभ्यास होता है सबको और इससे भी ज़्यादा अभ्यास देखिए आप क्योंकि हाथ अपने तरफ़ ही जाता है न लोगों को मूँगफली खाते हुए देखा दूर से ऐसा निशान साधते हैं सीधा मुँह में जाता है, इधर-उधर जाता ही नहीं। अँधेरे में भी खायेगा तो भी सीधा निशाना वहीं जायेगा। अभ्यास इतना गहरा है। और दूसरे को खिलाना पड़ जाये तो चम्मच में रखी हुई खीर भी नीचे गिरती है। धूप में बैठ के खिलाईये आप क्योंकि अभ्यास नहीं है। दूसरे को खिलाने में तो मन भी काँपता है, हाथ भी काँपते हैं। तो खुद खाना हाथ मुड़कर अपने मुँह की तरफ़ आये इसको कहेंगे प्रकृति। दूसरे का छीन कर खुद खाना यह है विकृति और अपना भी हिस्सा दूसरे को दे देना इसका नाम है संस्कृति और यह हमारी संस्कृति है, भारत की संस्कृति है।

भगवान कहते हैं कि मेरा होने के लिए पहचान है अर्जुन जो मेरा है वह किसी पदार्थ के प्रति मोह और मेरे पन का भाव नहीं रखता। उसकी भावना होगी - *त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पय:* - परमात्मा तूने दिया

है तो तेरा तुझे अर्पण, तेरी राह में लगाने में मुझे कोई संकोच नहीं है। परमात्मा के दिये हुए को आगे अर्पण करने के लिए व्यक्ति तत्पर हो जाये और संसार के पदार्थों के प्रति आसक्ति न आने दे यह भक्तों की और भक्ति की सुंदर पहचान हैं इसे थोड़ा और समझिये।

आपने देखा होगा कि बहुत-बहुत लोगों की स्थिति ऐसी होती है जैसे कि आपने कभी बच्चों की वह कहानी सुनी होगी जिसका सार यह है कि किसी राक्षस के प्राण किसी तोते में बसे हुए थे। तोते को मारा गया तो राक्षस मर गया। ऐसी कहानियाँ बच्चों के लिए सुनाई जाती हैं। पर इसी कहानी के आधार पर ज़रा यह भी सोचना कि किसी राक्षस के प्राण किसी तोते में थे तो पिंजरा हिलाया राक्षस हिलने लग गया। पिंजरे को पकड़ा और जब खोलकर पंछी को हाथ लगाया तो जैसे-जैसे पंछी छटपटाता था वैसे-वैसे राक्षस छटपटाता था। जैसे ही तोते को मार दिया तो राक्षस मर गया क्योंकि राक्षस के प्राण तोते में थे। ऐसी कहानी बच्चों के लिए कही जाती है।

तो ज़रा सोच कर देखना कि बहुत-बहुत लोग ऐसे हैं जिनके प्राण उनके अंदर नहीं होते, उनकी वस्तुओं में होते हैं - किसी के कार में, किसी के मकान में, किसी के दुकान में, अगर दुकान को हिला दिया तो सेठ जी हिलने लग जाते हैं - लुट गया, पिट गया, बर्बाद हो गया। गाड़ी को थोड़ी-सी ठेस लगी चलते-चलते सड़क पर चलेगी अब कुछ न कुछ तो लगेगा ही। अब लोगों को देखा ऐसे मार पीट पर उतरने को तैयार हो जाते हैं और ट्रैफिक में तो स्थिति अलग होती है। कई जगह जब लोग नियम भूल कर के चलने लगते हैं न तब एक कहावत काम आती है कि जल्दी नहीं करना नहीं तो देर हो जायेगी। ट्रैफिक वाले हिसाब में अगर कोई जल्दबाज़ी कर रहा होगा न जितनी ज़्यादा जल्दी करेगा उतनी ज़्यादा देर होती जायेगी क्योंकि सब जल्दी वाले आ गये।

तो बहुत लोगों के प्राण किसी के गाड़ी में बसे हुए हैं, किसी के दुकान में बसे हुए हैं, किसी के धन में बसे हुए हैं। धन हटा उन्हें ऐसा ही लगता है कि जैसे उनकी ज़िन्दगी, उनके प्राण ही छीन लिये किसी ने। ज़िन्दगी भर यह चीज़ें दुःख देती हैं लेकिन उससे भी ज़्यादा दुःख तब देती

हैं जब इनको छोड़ के दुनिया से जाना पड़ता है। तब वह सारी चीज़ें याद आती हैं कि अभी तो मैं मकान बना भी नहीं पाया, पचास पचपन साल की उम्र हुई किसी की, किसी की साठ बासठ साल की उम्र हुई। ध्यान क्या रहता है कितने चाव से मकान बनाया था, मकान बनाया बीमार रहने लग गये। अब देखो क्या स्थिति आ गयी - कुछ खा नहीं सकते, पहन नहीं सकते, रह नहीं सकते। अब मकान छूट रहा है दु:ख होगा।

उससे भी ज़्यादा अजीब चीज़ देखी है कि कई-कई लोग सब त्याग करके आ जाते हैं, महात्मा लोग सब छोड़ के आ जायेंगे, साधु बन गये। लेकिन उसके बाद भी एक मुसीबत - त्याग किया है लेकिन त्याग की याद मन में बसी हुई है - मैंने पचास लाख को लात लगाई, कोई कहेगा मैं एक करोड़ की सम्पत्ति छोड़ करके तब साधु बना, कोई कहेगा बहुत बड़े साम्राज्य को, सम्पत्ति को, लात मारके आया हूँ तब साधु बना हूँ पर देखने में ऐसा लगता है कि लात ठीक से लग नहीं पाई। अगर लग जाती तो फिर याद न रहती। याद है तो इसका मतलब अभी छूटा नहीं ठीक ढंग से और कुछ लोगों के साथ तो जो चीजें होकर निकल भी जाती हैं उनका भूत साथ में लगा रहता है। कोई भूतपूर्व एम.पी., कोई एम.एल.ए., भूतपूर्व सांसद, एक व्यक्ति मिले मैंने कहा परिचय। बोले - हम भूतपूर्व नौजवान हैं। बूढ़े आदमी थे। बूढ़े आदमी थे तो उन्होंने अपना यही परिचय दिया कि भूतपूर्व नौजवान है। अब चाहे कोई भूतपूर्व नौजवान है, या अभूतपूर्व नौजवान है लेकिन भूत पीछा छोड़ता तो नहीं है न।

जिन चीज़ों को हमने छोड़ दिया, त्याग दिया, अगर उनकी याद मन में है तो इसका मतलब है कि हमने अभी छोड़ा नहीं है, अभी भी मन में कहीं न कहीं कोई भाव है और जिस चीज़ को आप मन में पकड़े बैठे हैं वह दु:ख देगी।

सीधे से ढंग से कहें कि भगवान यह समझाना चाहते हैं कि अगर मेरे पन का भाव संसार के पदार्थों में है, आसक्ति है, तो फिर वह व्यक्ति संसार में उलझा रह जायेगा, मेरी भक्ति नहीं कर पायेगा। आँखें बंद करके लोग बैठते हैं न भक्ति करने के लिए तो दुकान याद आ रही होती है, मकान याद आ रहा होता है, बिज़नैस याद आयेगा। आरती करते-करते भी

कई बार महिलायें माई को डांटने लग जाती हैं - बर्तन ठीक से साफ नहीं कर पा रही है - क्योंकि ध्यान वस्तुओं में है।

जो सब चीज़ों को छोड़कर परमात्मा में अपने प्राणों को बसाता है, परमात्मा को याद करता है, भगवान कहते हैं कि जो ऐसे अपनी समस्त ऊर्जा को लेकर आये, इस ऊर्जा को परमात्मा की तरफ़ ले जाने का नाम श्रद्धा है। ऐसे कह लीजिए कि अपनी पूरी ताक़त, पूरी शक्ति, पूरी ऊर्जा एक जगह संजोकर भगवान का होने के लिए छलांग लगाने को तैयार हो जाये, उस स्थिति का नाम श्रद्धा है और यह श्रद्धा लेकर जो भगवान की तरफ़ आता है तो फिर परमात्मा की तरफ़ आने का मतलब है कि थोड़ा-सा भी आगे बढ़ेगा तो भगवान आगे हाथ बढ़ाकर उसे अपनी तरफ़ ले लेते हैं, उसे संभाल लिया करते हैं। हम लोग तो आधे अधूरे लोग हैं - आधे इधर आधे उधर, सम्पूर्णता में किधर भी चलने को तैयार नहीं हैं।

जब पूरा ज़ोर लगाकर के आप उस तरफ़ आने की कोशिश करते हैं - पहले मैंने आपको सुनाया था कि फ़रीद से जब किसी ने पूछा भगवान को पाने का रास्ता क्या है? बहुत बार पूछा, दस बार पूछा। फरीद ने कहा कभी बता देंगे। अभी मैं स्नान के लिए जा रहा हूँ।

उस आदमी ने फिर कहा - नहीं आप ज़रा शॉर्टकट में कुछ बता दें, ज़रा जल्दी में कुछ बता दें, कोई ऐसे तरीक़े से बता दें मुझे याद रहे। उन्होंने कहा कभी स्नान करने जा रहा हूँ। उस व्यक्ति ने कहा मैं भी साथ चलता हूँ, वहीं जाकर समझा दीजिए आप। फ़रीद ने कहा ठीक है।

अब दोनों स्नान करने के लिए जैसे ही उतरे पानी के अंदर फ़रीद साहब ने गला पकड़कर उसका नीचे दबाया ज़ोर से, और बैठ गये ऊपर। अब वह आदमी इतनी ज़ोर से ताक़त लगाकर उसने धक्का दिया फ़रीद को और कहने लगा - महाराज ज्ञान लेने आये थे, जान देने थोड़ी ही आये थे। आप तो दबा के बैठ गये हो नीचे।

फ़रीद बोले एक बात बता - छूटने में तूने पूरी कसर रखी थी या थोड़ी ताक़त लगायी थी?

बोले जैसे आप बैठ गये थे; दबाने लग गये थे उस हिसाब से तो पूरी शक्ति लगानी थी न। महाराज ऐड़ी चोटी का ज़ोर लगाया तब बच पाया हूँ

नहीं तो कल्याण हो गया था आज। ज्ञान तो बाद में मिलता जान जाती आज।

शेख़ फ़रीद कहने लगे जैसे तूने मुझसे छूटने में पूरा ज़ोर लगा दिया और ज़िन्दगी बचाने में पूरा ज़ोर लगा दिया ऐसे ही अपने परमात्मा को पाने में पूरा ज़ोर लगा के दिखा बात बन जायेगी, कोई ज़्यादा मुश्किल नहीं है। ऐंड़ी चोटी का ज़ोर लगा मगर उधर चलने के लिए पूरी तैयारी तो कर, तेरी तैयारी तो ऐसी है ही नहीं।

तो मैं यही कहना चाहूँगा पदार्थों के प्रति लगाव होगा, आसक्ति होगी तो फिर पदार्थ छूट नहीं पायेंगे और परमात्मा पकड़ में नहीं आ पायेंगे।

भगवान आगे फिर कहते हैं *निरहंकार* - जो मेरा होना चाहता है वह अंहकार को त्याग कर के आये, तो फिर वह मेरा होगा। शब्द विचारणीय है। अहंकार बाधक है भगवान की भक्ति में, क्यों? अहंकारी व्यक्ति को अपनी 'मैं' दिखाई देती है। जब तक आदमी अपने को बचाये रखता है तब तक वह प्राप्ति नहीं होती। जैसी ही अपने को मिटाने को तैयार होता है - बिल्कुल स्थिति वही है; बूँद गिरी सागर में। जब तक उसने अपने आपको बचाया तब तक बूँद बूँद थी, सागर में गिरते ही बूँद तो ख़त्म हो गयी, लेकिन एक बात सच हो गयी कि बूँद सागर बन गयी। छोटी-सी बूँद पूरा सागर का रूप लेकर खड़ी हो गयी। अपने आपको जब तक बचाते रहे, अपनी 'मैं' को बचाते रहे, तब तक आप अकेले थे। जैसे ही आपने अपने परमात्मा में अपने आपको डाल दिया तो फिर आप परमात्मा के आनंद से जुड़ गये, फिर आपके अंदर आपका परमात्मा आ गया। फिर आप उस आनन्द से आनन्दित होने लगे। भगवान समझाते हैं कि अगर तुम अपनी 'मैं' को लेकर आओगे मेरे नहीं हो पाओगे। इसीलिए यह जो कहा जाता है न कि -

जब मैं था हरि नहीं, हरि है मैं नाहिं ।
प्रेम गति अति सांकरि यामे दोना समाहि।।

बात बिल्कुल स्पष्ट और सुंदर है। एक ही हो जाता है इंसान। कभी किसी चित्रकार को देखिए आप जो चित्र बनाने में डूब जाये। जो जितना डूबना जानता है उतना ही बढ़िया चित्र बनाने में सफल होता है।

मुझे वॉन गॉग की बात याद आती है। विनसेन्ट वॉनगॉग, जिस व्यक्ति की चित्रकारिता को आज करोड़ों की सम्पत्ति माना जाता है, उस आदमी का ढंग ही अलग था।

एक मित्र उससे कहने लगा चलो आज सांझ के समय सूर्यास्त होते देखें और सूर्यास्त देखने के लिए दोनों गये। अब जो लोग आधे-अधूरे होते हैं वह हर काम को करते-करते जैसे भोजन करते समय भी कई लोग बातचीत करते रहेंगे और काम भी करते रहते हैं। पढ़ते समय कोई रेडियो चला कर के बैठता है तो ऐसे लोग अपनी ऊर्जा शक्ति को एक तरफ़ पूरी तरह नहीं लगाते। वॉनगॉग ऐसा व्यक्ति था कि जब वह सूर्यास्त देखने लगा तो वह सारे रंग एक साथ देख रहा था,-फिर पीछे बैकग्राउंड क्या बनती जा रही है? पेड़ों के पीछे से वह कैसा लग रहा है? आसमान से नीचे आया तो कैसा लगता है? आसमान का रंग कैसा हो गया है? यह सब देख रहा है। फिर रंगों में किस तरह से धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ते हुए सूरज डूबते हुए कैसा लगता है - वह सब देखता जाता है। उसका मित्र उसको कोई बात पूछ रहा है और बातचीत करता जाता है। बहुत देर तक उसको पूछता रहा कुछ लेकिन जब वॉनगॉग ने जवाब नहीं दिया, सूरज छिप गया, मित्र कहता है - वॉनगॉग मेरे हाथ में बड़ा सुगंधित फूल था, मैंने तेरी नाक पर लगाया, तुझे सुगंध कैसे लगी? और मैं जो तुझसे पूछ रहा था तू ध्यान नहीं दे रहा था, बात क्या थी?

वॉनगॉग ने कहा कि मैं सूरज को ही सूँघ रहा था, उसी को चख रहा था, उसी को देख रहा था, सूरज को ही अपने अंदर पी रहा था और यह एहसास कर रहा था कि मेरे अंदर सूरज आ गया है और मैं सूरज के अंदर समा गया हूँ। मेरे अंदर पूरा सूरज ऐसा आ गया है कि अगर अब मैं उसका चित्र बनाने लग जाऊँ तो मेरे अंदर जो रूप आ गया है वह कागज़ पर ढल जायेगा।

अब वह व्यक्ति कहता है कि आप ऐसे भी देखते हो? बोले ऐसे देखता हूँ तो मैं हर चीज़ का आनन्द लेता हूँ और अगर तुम जैसा देखता होता तो फिर मैं हर जगह अधूरा ही अधूरा रहता, जैसे तुम हर जगह अधूरे हो। उसने कहा कि उस समय मैं होता ही नहीं जब किसी चीज़ को देख

रहा होता हूँ और जब कोई चित्र बना रहा हूँ तब भी मैं नहीं होता, फिर वह चित्र ही मैं बन जाता हूँ, तभी चित्र में यह विशेषता आती है।

और सच बात तो यह है कि जब कोई साधक भगवान में बैठता और उसका ध्यान करता है, फिर उसमें वह तो होता ही नहीं, फिर परमात्मा ही होता है और जब परमात्मा ही होता है तो फिर उसके दर्शन में कोई देर नहीं हुआ करती, इसीलिए नियम यही है। चाहता तो हूँ कि आज यह श्लोक और यह अध्याय सम्पन्न करूँ, बात वही है कि घड़ी कहती है कि समय नहीं।

****

गीता के बारहवें अध्याय पर, जिस अन्तिम कड़ी पर हम लोग विचार कर रहे हैं: भगवान श्रीकृष्ण अपने प्यारे भक्त का लक्षण बताते हैं -

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कार समदुःखसुखः क्षमी ॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

प्राणीमात्र के प्रति जो वैर नहीं रखता, जिसमें मित्रता की भावनाऐं हैं, जो करुणा से युक्त है, पदार्थों पर स्वामित्व का मोह नहीं, अहंकार से जो रहित है, सुख और दुःख में समता रखता है, संतुलन रखता है, जिसने क्षमा का गुण छोड़ा नहीं, सतत् सन्तुष्ट रहता है, अपने आपको मेरे प्रति अर्थात् प्रभु के प्रति जोड़े रखता है, जिसके संकल्प में और निश्चय में दृढ़ता है, जिसने अपने मन और बुद्धि को प्रभु की ओर जोड़ दिया है, भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं ऐसा जो मेरा भक्त है - *स मः प्रियः* - वही, मुझे प्यारा है। लक्षण बड़े सुंदर दिये हैं।

दूसरी दृष्टि से अगर देखा जाये तो अपने उत्थान को करने के लिए, आत्मउद्धार करने के लिए, जीवन को ऊँचा उठाने के लिए यह एक सीढ़ी है। आध्यात्मिक यात्रा तभी शुरू होगी जब हमारे जीवन का वैर भाव छूटेगा, मित्रता का दायरा बढ़ेगा और शत्रुता का दायरा घटेगा। जब हम दयालुता से युक्त होंगे, दयालुता सहानुभूति उत्पन्न करती है, सहानुभूति से सहयोग आता है, सहयोग से सेवाऐं शुरू होंती हैं और यह एक माध्यम है जिसके द्वारा प्रभु के प्यारे और अच्छे इंसान बनने का हमें अवसर मिलता है।

लेकिन एक बाधक वस्तु भी हमारे जीवन में है जो भगवान की तरफ़ नहीं चलने देती। बाधक वस्तु है कि जब हम पदार्थों के प्रति बहुत अधिक आसक्ति लेकर बैठ जाते हैं, पदार्थों में हमारे प्राण बसने लगते हैं। तो जहाँ हमारा प्राण बसा हुआ है, तो फिर उस चीज़ को छोड़ने में और उससे दूर होने में कष्ट होता है, चाहे दुकान में या मकान में, धन में या वैभव में, सम्पत्ति में या सत्ता में, कुर्सी हो या कोठी हो, जिस भी चीज़ के प्रति आपने मोह बसा लिया, आसक्ति बसा ली, उसको छोड़ते समय कष्ट होगा।

पुराने ग्रन्थों में दो तरह की प्रवृतियों का वर्णन है; एक है शुकदेव मुनि की वृत्ति - जिसे आप कहेंगे निवृत्ति पंथ, निवृत्त होकर संसार से और फिर जीवन जीना। एक रास्ता है प्रवृति पंथ, यह राजा जनक का पंथ है। वैभव के बीच में रहो, संसार के बीच में रहो, पलायनवादी संस्कृति को जन्म न दो, जंगल में भागने से कुछ बनने वाला नहीं।

दुकान से परेशान हो या मकान से, संसार से परेशान हो या किसी व्यक्ति से, परेशान होना एक बात है, भागना दूसरी बात है। भागने से बात नहीं बनेगी, जागने से बात बनेगी। वैर भाव कहीं है और आप वहाँ से हटकर के दूर भाग जाते हैं तो भी बात नहीं बनेगी, मन के अंदर से वैर का काँटा निकालने से बात बनेगी।

जनक ने यह समझाया कि संसार के वैभव के बीच में रहकर भक्ति हो सकती है लेकिन शुकदेव मुनि ऐसा कहते हैं कि कीचड़ में रहोगे तो फिसलोगे ज़रूर, आग के साथ बैठोगे तो जलोगे ज़रूर; लड़ाई-झगड़े वाले फसादी लोगों के बीच में बैठोगे तनाव आयेगा ज़रूर और धन कमाओगे तो फिर लोभ लालच भी बढ़ेगा ज़रूर; संसार के रिश्ते-नातों में पड़ोगे तो मोह भी अवश्य आयेगा। इससे अच्छा यही है कि तुम अपने लिए केवल वह स्थान चुनो जहाँ केवल परमात्मा की आवाज़ सुनाई दे, संसार की आवाज़ न सुनाई दे। वही जगह चुनो जहाँ बैठने के बाद लड़ाई-झगड़े, विवाद और फ़साद वाले लोगों के साथ मेल न हो, परमात्मा की अनुभूतियाँ सुनने का ही जहाँ अवसर मिलता हो।

शुकदेव मुनि कहते हैं कि जो भी संसार के कार्य, व्यवहार करोगे कुछ न कुछ तो बंधना ही पड़ेगा और बंधन तुम्हें दुःख देगा ही। अज्ञानी व्यक्ति को संसार के सारे पदार्थ मिल जायें तब भी वह दुःखी दिखाई देगा और ज्ञानी

व्यक्ति के पास कुछ भी नहीं हो तब भी वह खुश दिखाई देगा। ज्ञानी के पास संपदाऐं न भी हों, विपदाऐं हों तब भी उसका संतुलन क़ायम है और अज्ञानी के पास संपत्ति, सत्कार, वैभव सब कुछ हो लेकिन फिर भी समस्या बनी रहेगी क्योंकि अंदर काँटा है।

शुकदेव मुनि कहते हैं कि इस लिए अच्छा यही होगा कि सबसे विरक्ति पाकर के वह स्थान ढूँढो - ऐसा वेदों का आदेश है - पर्वतों की गुफा में, नदियों के किनारे, प्रकृति का कोई सुरम्य स्थान, गंगा का कोई सुंदर तट, ऐसा कोई स्थान ढूँढो जहाँ बैठकर के अपने प्यारे को मनाने का अवसर मिलता हो।

लेकिन अगर शुकदेव मुनि के हिसाब से चला जाये तो फिर संसार नहीं चल सकता, फिर तो सारा ही संसार जंगलों में जाकर बैठ जायेगा, फिर यात्राऐं कैसे चलेंगी संसार में।

शुकदेव मुनि कहते हैं तुम्हें यात्राओं की फ़िक्र नहीं होनी चाहिए, तुम्हें एक ही फ़िक्र हो कि बंधन में हो, जाल को तोड़कर बाहर निकलना है। बंधन थोड़े बहुत नहीं हैं, तीन बंधनों से तुम बंधे हुए हो; भय का बंधन तुम्हारे हृदय में है, भोग का बंधन तुम्हारी कमर में है, ब्रह्म का बंधन तुम्हारे गले में है, यह तुम्हें बाँधते हैं। ब्रह्म है अज्ञान जो हमारे मस्तिष्क को बाँधता है, भय जो है वह हृदय में लगा हुआ है, हर समय दिल धड़कता रहता है - यह न हो जाये, वह न हो जाये। कमर में बंधन भोगों का है जो वासनाओं की तरफ़ खींचता है। तीनों ही जालों को तोड़कर बाहर निकल जाओ तो कल्याण है, इस जन्म में छूट जाओगे तो बहुत अच्छी बात है नहीं तो किसी न किसी जन्म में तो छूटना ही पड़ेगा।

हर नदी को सागर से मिलना ही होगा भले ही कितना भी चलना पड़े, तुम्हें भी उस परम धाम से जाकर जुड़ना ही पड़ेगा, भले ही कितने जन्म बीत जायें। इसीलिए अच्छा यही है बहुत जन्म न बिताकर इसी जन्म में अपना कल्याण कर लो - यह शुकदेव मुनि कहते हैं। शुकदेव मुनि का रास्ता ऐसा है जैसे पहाड़ों के बीच चलती हुई कोई छोटी-सी पगडंडी हो। इसेमें सदगुरू का साथ बहुत चाहिए, जो पग-पग पर संभालता रहे। पहाड़ों के बीच से अगर आप किसी निर्देशक का सहारा लेकर पगडंडी से जाना चाहें, तो पहाड़ी आदमी समझा तो देगा, पहुँच तो जाओगे बहुत जल्दी पर ध्यान रखना, संभल कर चलना, यहाँ से अगर गिर गये तो फिर उठना मुश्किल है, फिर ज़िन्दगी गयी।

एक और रास्ता हुआ करता है पहाड़ों में - चौड़ा रास्ता, सड़क वाला मार्ग, घुमावदार सड़कें, सर्पाकार सड़कें। कभी एक पहाड़ पर चढ़ोगे फिर उससे नीचे उतरने लग जाओगे लगता है रास्ता कहीं ख़त्म ही नहीं हो रहा है। एक तरफ़ देखें खाई लेकिन फिर भी यह है कि चौड़ी सड़क ह, सुरक्षा है।

तो जो संसार के बीच से होकर जाने वाला मार्ग है वह तो चौड़ी सड़क है, इसमें घुमाव भी बहुत हैं। लगता यह है कि रास्ता पता नहीं ख़त्म होगा भी या नहीं होगा लेकिन इसमें एक बात यह है कि गिरने की संभावना इतनी नहीं है। पहुँचने में देरी हो सकती है लेकिन पहुँचोगे ज़रूर। पगडंडी वाले रास्ते में पहुँच जल्दी सकते हो लेकिन अगर गिर गये तो फिर उठने की संभावना बिल्कुल नहीं है। इसीलिए संसार वाले रास्ते से होकर चलना ज़्यादा उपयुक्त है, इसे कहते हैं सहज मार्ग। इसकी शर्त यही है कि उलझना नहीं है।

इसी शर्त को भगवान कृष्ण ने कहा कि द्वेष नहीं रखना, वैर नहीं रखना, मित्रता की स्थितियाँ उत्पन्न करना, करुणा को जन्म देना, पदार्थों का मोह नहीं होने देना और यह कसौटी कसते रहना कि तुम्हारे अंदर अहंकार ने कहीं अड्डा तो नहीं जमा लिया है। अहंकार अड्डा कैसे जमाता है? हर आदमी यही कहता है कि हम लोग तो बहुत विनम्र व्यक्ति हैं, शिष्ट व्यक्ति हैं हमारे अंदर अहंकार कहाँ? यहाँ तक भी देखने में आया है कि लोग एक दूसरे के साथ बातचीत करते हुए कहते हैं कि हम तो आपके नौकर हैं, गुलाम हैं, दास हैं, दासों के भी दास हैं लेकिन उसे अगर आप कह दें कि बिल्कुल ठीक कह रहे हो, दास ही हो, गुलाम के भी गुलाम हो, नौकरों के भी नौकर हो, बल्कि हमारे नौकरों से भी गये बीते हो। कहकर के देख लीजिए एक बार - लड़ने-मरने को तैयार हो जायेगा। वह कहेगा मैं अपने आप को कुछ भी कहूँ आप क्यों कहते हैं?

जब भी हमें किसी बात से अपमान महसूस होता है और यह महसूस होने लग जाता है कि इसने मुझे, किसी के सामने मैं अपने आपको हल्का महसूस कर रहा हूँ, थोड़ा-सा भी कड़वा घूंट पीने में कठिनाई महसूस होने लग जाये तो सोच लेना चाहिए कि अंदर का अहंकार बलवान होकर के बैठा हुआ है और अहंकार को तोड़ने का एक ढंग साधुओं के दीक्षा के समय में प्रयोग किया जाता है। कुछ पंथों में और सम्प्रदायों में नियम है जब केश लुंचन

प्रक्रिया शुरू होती है, सिर के बाल एक-एक करके उखाड़ने शुरू करते हैं, उस समय कहा जाता हैं कि सब परिवार जिससे तुम्हारा संबंध था आज से तुम्हारे लिऐ ख़त्म हो चुका है, मर चुका है। साधु प्रक्रिया में उस समय घोषणाएं की जाती हैं - *वित्तेष्णां मया परित्यक्ता, उत्तेष्णा मया परित्यक्ता लोकेष्णा मया परित्यक्ता* आज से मान की इच्छा छोड़ दी, कोई मान दे या अपमान दे, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता *उत्तेषणा मया परित्यक्ता* .... अब परिवार और परिजनों का मोह छोड़ दिया, कोई भी हो क्या लेना-देना अब? कोई जिये या मरे सब छोड़ दिया। फिर व्यक्ति कहता है - *वित्तेषणा या परित्यक्ता* - अब धन की कामना नहीं, कोई पदार्थ नहीं चाहिए और यह भी देखने में आया है कि ज़्यादातर साधु लोग आश्रम बनाते हैं, आश्रम में अपने परिवार के लोगों को ही उत्तराधिकारी बनाते हैं। मत, पंथ, सम्प्रदाय जितने भी चलते हैं, अपने-अपने बेटे को, रिश्तेदार को, उन्हीं लोगों को आगे स्थान देते हैं। बस इतना ही अंतर दिखाई देता है कि गृहस्थी घर बनाता है, साधु आश्रम बनाता है, नाम ही बदल गया, बात फिर वही की वही है।

कई जगह समस्या यह भी आती है - महात्मा लोग पैसे को हाथ नहीं लगाते लेकिन चेले को साथ रखते हैं पकड़ने के लिये - तू पैसा पकड़ ले। हम हाथ नहीं लगाते माया महाठगनी है, माया तो ठगनी है हाथ नहीं लगाना।

विदेश में एक महात्मा ने हमसे कहा - कोई चेला देना ज़रा। हम अपना चेला लेकर नहीं आये हैं। लोग पैसे-वैसे चढ़ा देते हैं हम लोग तो उठाते नहीं। तो कोई ज़रा ईमानदार-सा आदमी हो।

मैंने कहा - आप को दिक़्क़त आती है कुछ? बोले हम पैसे को हाथ नहीं लगाते। मैंने कहा रूमाल से पकड़ लिया करो या दास्ताना पहन कर के हाथ से पकड़ लिया करो। दिक़्क़त क्या है? हाथ ही तो नहीं लगाना, उपयोग तो करना है। मुसीबत यह नहीं कि पैसे को पकड़ लेने में हानि है। हानि तो तब है यह पैसा अगर मन को पकड़ लेता है तब ज़्यादा हानि है इसीलिए मन को नहीं पकड़ने देना।

जनक का रास्ता ऐसा है कि जिसमें संसार के पदार्थों का उपयोग करते हुए और इन पदार्थो से ऊपर उठे रहना, स्वामित्व से ऊपर उठे रहना, ऊर्जा शक्ति को संसार में रमने नहीं देना। अगर ऊर्जा शक्ति को संसार में रमा लिया तो

फिर कल्याण होने वाला नहीं है, फिर तो बंध गये संसार में। इसीलिए यहाँ एक सीढ़ी दी है। पदार्थों के प्रति मोह नहीं और अभिमान का पूर्ण परित्याग। *सम दुःखसुखः क्षमी* - क्षमी का अर्थ है क्षमावान होना, सुख और दुःख में समान होना और क्षमावान बनना। *सम सुखदःख* - दुःख सुख में समान हो जाना, संतुलन बनाओ। शब्द बड़ा प्यारा है और बड़ा गहरा।

देखिए हमारे सबके संतुलन को बिगाड़ने के लिए ठंडी-गरम हवायें रात-दिन सुख दुःख की चलती हैं और कितनी भी हम कोशिश करें संतुलन तो बिगड़ता ही है। फ़र्क़ इतना-सा ही है कि किसी आदमी का माथा ज़रा ज्यादा होता है वह चार गालियों पर भी कुछ नहीं बोलता, पाँच-सात पर बोलना शुरू करता है। कई लोग ऐसे होते हैं - एक पर ही दस जवाब देने को तैयार हो जाते हैं। पर यह देखने में आया कि संतुलन बिगड़ता है आदमी का। कई आदमी दस-बीस रूपये के लालच में आ जाते हैं और कई ऐसे होते हैं हज़ार-दो हज़ार के लालच में आते हैं। कई लोग ऐसे होते हैं लाख को देखकर के लालच में आते हैं। पर आदमी बिगड़ता है, संभावनाएं हैं। संतुलन बिगड़ने में कितना मसाला प्रयोग किया जाये यह बात अलग है लेकिन संतुलन बिगड़ता नज़र आता है। पचास हज़ार रूपये पड़े हुए हैं, देख रहा है व्यक्ति, देखकर के भी आगे निकल जाता है लेकिन अगर कहीं लाख दो लाख मिल जायें तो फिर उस समय लॉजिक देने लग जाता है - उठा लेने में ही क्या हर्ज है? कोई और उठायेगा वह तो हो सकता है ग़लत प्रयोग करे, हम तो फिर भी सही मार्ग में लगायेंगे - अब उठाने के लिए तर्क देने लग गया वह। यह सब इंसान के संतुलन को तोड़ने वाली, बिगाड़ने वाली चीज़ें हैं लेकिन एक बात याद रखिये - ज्ञान जब अंदर सम्पूर्णता में जाग जाता है उसका परिणाम यह होता है कि फिर चाहे कितना भी बड़ा लालच क्यों न आ जाये व्यक्ति उसमें बंधता नहीं है।

कबीर साहब के जीवन में ऐसा आता है। काशी के राजा ने लाकर के उनके सामने संमृद्धि रखी, हीरे-जवाहरात लेकर के आये और कबीर ने कह दिया - *माया महाठगनी हम ज्ञानी* - इसने बहुतों को ठग लिया, अब कबीर इस ठगनी के हाथ नहीं आयेगा। अपना गीत-गाते रहे, राजा ने यहाँ तक किया कि जो थाल में हीरे-जवाहरात रखे थे उसके ऊपर से कपड़ा हटाया और

कपड़ा हटाकर के कहा – महाराज, एक बार देख तो लो। शायद आपका मन तैयार हो जाये, कहीं प्रयोग करना चाहो इसको। कबीर ने दूसरा भजन गाना शुरू कर दिया – *ठगनी क्या नैना झमकावे, तेरे हाथ कबीर न आवे* – माया तेरे हाथ में मैं आने वाला नहीं तू चाहे कितना भी रूप अपना दिखा दे लेकिन कबीर ने जब इंकार कर दिया तो कबीर का बेटा, कमाल, वह खड़ा देख रहा था; उसने राजा से कहा कि यह तो लेंगे नहीं क्योंकि इनको माया से बड़ी चिढ़ है, लेकिन अगर आपका विचार हो तो हम इस काम के लिए बहुत तैयार रहते हैं, आप आ सकते हैं इधर।

राजा को झटका लगा कि यहाँ पिता तो इतना त्यागी है और बेटा त्यागी है ही नहीं। उसने कहा – तो आप ले लेंगे? बोला – बिल्कुल। आपने क्या-क्या देना है बताईये? अब राजा भी संकोच में आ गया – जो नहीं लेता उसको देने के लिए लोग पहुँच जाते हैं और जो लेता हो उससे दूर भागते हैं। जिस आदमी का पता लग जाये न बड़ा त्यागी है उसको बहुत चीज़ें चढ़ाने के लिए जायेंगे और किसी का पता लग जाये जो दोगे तुरंत ले लेगा, आदमी बचता है, सोचता है कि अगर त्यागी के पास सौ रूपये लेकर जायेगा तो ऐसे व्यक्ति के पास पाँच पैसे ही लेकर जायेगा, कहेगा कि आपके लिए लेकर आया हूँ।

राजा ने कहा कि एक हीरे की अँगूठी देने की इच्छा थी।

कमाल ने कहा – आ जाओ इधर, कुटिया ख़ाली है। लेकर आ गया। बोला – यहाँ पूरी जगह पड़ी है, जहाँ इच्छा हो वहाँ रख देना और जब इच्छा हो इसका हाल-चाल पूछने की आकर देख भी लेना। राजा को विचित्र लगा, अँगूठी तो एक जगह कोने में टाँग दी लेकिन यह बदले में यह भी सोचने लगा कि बदले में कोई धन्यवाद, कोई शब्द कहें जायें – बड़े त्यागी व्यक्ति हो, बड़े धर्मात्मा आदमी हो, राजन तुम्हारा कितना बड़ा, ऊँचा हृदय है – ऐसा कोई शब्द कहा भी नहीं। कमाल अपनी माला पकड़ के बैठ गये।

अब राजा चला तो गया लेकिन तीन दिन के बाद उसके ध्यान में आया कि जाकर के देखें तो सही कहीं उसने अँगूठी बेच-बाच के कुछ और काम तो नहीं करने लग गया। राजा आया आकर के देखता है कमाल बैठा हुआ है, माला जप रहा है, राजा ने पूछा – क्या कर रहे हैं? बोला – मैं तो अपना काम कर रहा हूँ, आप भी अपना काम कर रहे हैं, लगता है सम्पत्ति देखने आये हैं?

राजा ने कहा - आपने उसका उपयोग किया कुछ?

कमाल ने कहा - हमें उपयोग की ज़रूरत ही नहीं है। तुम्हें देने की इच्छा थी तो तुम टाँग गये यहाँ, जहाँ टाँग गये हो वहाँ देख लेना, वहाँ टँगी हुई है या नहीं टँगी हुई है हमें कोई लेना देना नहीं।

फिर लिया क्यों था?

बोले - तुम उन्हें दे रहे थे जो लेना नहीं चाहते थे। अगर राजन देने की इच्छा है तो ग़रीब बहुत पड़े हैं दुनिया में, जाकर वहाँ बाँट दो और अगर यहाँ लेकर के आया है तो यहाँ भी तुमने यह बदले में चाहा कि हम तुम्हें सम्मान दें लेकिन इस सम्पत्ति से सम्मान ऐसे नहीं मिला करता अगर इसको परमात्मा की राह में लगा दो तो फिर परमात्मा अपने आप सम्मान दिया करता है, वहाँ जाकर के लगाओ इसे।

राजा ने कहा - मैं तो आपको ग़लत समझ चुका था। मैंने समझा बहुत ग़लत आदमी हो लेकिन अब समझ में आया आप तो बहुत ऊँचे इंसान हो।

कमाल हँसा, बोला - अगर तुम्हारी चीज़ का प्रयोग कर लेता तो ग़लत था, नहीं किया सही आदमी हो गया। मैंने तो तुम्हें सिखा दिया कि प्रयोग सही करना सीख जाओ, हम तो जानते हैं इसका अंत इसका उपयोग कैसे किया जाता है?

शास्त्रों में इसीलिए कहा गया है - *श्रीयाम पादुका* - सम्पत्ति आपके चरणों में पहने जानी वाली पादुका है। लक्ष्मी नारायण के चरणों की तरफ बैठी हुई है, उसे सिर पर नहीं बैठाना है। धन और सम्पदा को सिर पर नहीं रख लेना। वह आपके उपयोग में आये, उस पर चढ़कर के आप उसको रथ बनाकर, उसको वाहन बनाकर संसार में चलो लेकिन अगर इसे आपने सिर पर रख लिया तो फिर यह चिंता और बोझ बनकर आपको रात-दिन सताती रहेगी। छोड़ने की बारी आये तो तुरंत छोड़ने के लिए तैयार हो जाना। पकड़ने में कोई हर्ज़ नहीं है, इस पर बैठने में कोई हर्ज़ नहीं है, इसका प्रयोग करने में कोई हर्ज़ नहीं है; हर्ज़ इसी बात का है कि अगर यह आप पर अधिकार जमाकर बैठ जाये।

जीसस ने कभी कहा था कि अमीर आदमी सावधान हो, पिता परमात्मा का द्वार तेरे लिये बंद रहेगा और जीसस ने यह भी कहा था कि कृपण व्यक्ति

का प्रभु के साम्राज्य में प्रवेश नहीं हो पायेगा। यह क्यों कहा? यह जो हमारे अन्दर संकीर्णताएं आती हैं, यह परमात्मा की तरफ़ बढ़ने नहीं देतीं, यह रोक लेती हैं।

वैसे तो कहा जाता है कि कृपण आदमी भी बड़ा भारी दाता होता है, कंजूस आदमी भी बड़ा भारी दाता होता है, बहुत बड़ा दानी होता है क्योंकि वह आदमी सारी ज़िन्दगी अपने धन का प्रयोग करता ही नहीं, सारी सम्पत्ति दूसरों के लिए छोड़कर मर जाया करता है इसीलिए उससे बढ़कर दाता और दानी और कौन हो सकता है? जिस ग़रीब ने अपनी सम्पत्ति का कभी उपयोग किया ही नहीं, सारी की सारी दूसरों के लिए छोड़ कर जा रहा है तो आप सोचिए उससे बढ़कर दानी कौन होगा?

पर एक और चीज़ देखना - जब भी हम संकीर्णताओं में होते हैं तो बहुत छोटे हो जाते हैं जैसे ही हम विशाल होते हैं तो हम विशाल शक्ति से जुड़ जाते हैं। महात्मा का उपदेश हज़ारों साल पहले जो हमारे देश में घटा उसको थोड़ा याद करना। किसी चेले ने आकर के गुरू से पूछा - महाराज, यह दुनिया के बीच रहना, इसमें भी मुसीबत है, मैं तो सोचता हूँ अकेले रह लूँ। लेकिन कभी-कभी मन में आता है कि भगवान को भी मानने का क्या फ़ायदा? अकेले अपना आनंद लेता रहे, आदमी, अपने बारे में सोचता रहे, अपना भला करता रहे, और क्यों किसी चक्कर में पड़ना है?

महात्मा ने कहा - एक बात बताओ, पानी में नौका चल सकती है क्या?

बोले - बिल्कुल चल सकती है। नौका चलती ही पानी में है।

महात्मा ने कहा तो फिर मैं यह लोटा पानी का, जो मेरा कंमडल रखा हुआ है, इसमें मैंने पानी पूरा भरा हुआ है, ज़रा नौका चला के दिखाना इसमें।

उसने कहा - महाराज, इस लोटे में, इस कमंडल में तो नौका चल नहीं सकती।

महात्मा कहने लगे तो आओ फिर। कमंडल उठाया और सामने नदी थी, उसमें जाकर पानी डाल दिया और कहा कि अब बताओ इसमें नौका चल सकती है क्या?

चेले ने कहा - हाँ महाराज, इसमें तो नौका चल सकती है।

महात्मा कहने लगे – ऐसे ही जब तक तुम संकीर्ण बनकर, छोटे बनकर, अलग खड़े रहते हो तो तुम्हारी शक्ति भी छोटी हो जाती है, जैसे ही तुम परमात्मा की नदी से जुड़ जाते हो तो तुम्हारी शक्ति भी बहुत बड़ी हो जाती है और तुम फिर दूसरों को भी तारने में सफल हो जाते हो। अपने आपको अपने भगवान में जोड़ दोगे तो तुम्हारे अंदर इतनी विशालता आ जायेगी, तुम्हारी शक्ति बढ़ जायेगी, सारा संसार तुम्हारा, तुम सारे संसार के और वह संसार का स्वामी तुम्हारा, तुम्हारे अन्तर में जब वह प्रवेश कर जाता है तो फिर तुम्हारी शक्ति भी असीम हो जाती है। वास्तविकता तो यही है कि जब हम संकोच में और इन दुर्गुणों से जुड़े रहते हैं तो हम छोटे बन जाते हैं लेकिन जैसे-जैसे हम अपने आपको विशाल बनाते जाते हैं, भगवान-से जुड़ते जाते हैं हमारी शक्ति भी बढ़ती चली जाती है।

भगवान कहते हैं कि जो संकीर्णतों से दूर हो गया और सुख दुःख में संतुलन बनाना सीख गया, उसे लालच ललचा न पाये, क्रोध में क्रोधित न होने पाये, अन्याय के सामने दब न पाये, ईर्ष्या में जल न पाये, सब प्रकार की स्थितियों में जो संतुलन बनाये, अर्जुन ऐसा जो व्यक्ति है वह मेरा अपना व्यक्ति है, वह मेरा प्यारा व्यक्ति है।

अगली कसौटी बताई – इंसान को क्षमावान होना चाहिए। यह शब्द भी बहुत ही सुंदर है लेकिन कहने में बहुत अच्छा लगता है, अपनाने में बहुत मुश्किल है।

हम कहते हैं न दूसरों को माफ़ कर देना बड़ी बात है। वीरों की वीरता इसी बात में है कि वह क्षमावान हों।

चाणक्य ने ऐसा कहा कि दुनिया में सबसे बड़ा तप क्षमा है, दूसरे को माफ़ कर देना, क्षमा से बढ़कर कोई गुण और आभूषण नहीं है। लेकिन इसमें एक दोष है – जो क्षमावान व्यक्ति है लोग उसे कायर समझते हैं, डरपोक समझते हैं, बुज़दिल समझते हैं! इसके कारण इंसान इस बड़े भारी तपस्या के गुण को अपना नहीं पाता। जबकि चाणक्य यह कहते हैं कि सारे तप एक तरफ़ रखना और क्षमा का गुण एक तरफ़ रखना। सारे तप मिलकर के बराबरी नहीं कर सकते एक क्षमा वाले गुण की क्योंकि यह तीर्थ है, व्यक्ति को तारने वाला गुण है और क्षमा का रूप समझना हो तो ऐसे समझिये जब आपके पास पूर्ण

सामर्थ्य हो दण्ड देने का, दूसरे का सब कुछ बिगाड़ने की शक्ति आप में हो और उसके बाद भी आप नहीं बिगाड़ें। *क्षमा, शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल है।* वह सर्प क्षमावान दिखाई देता है जिसके पास दाँत भी हों, ज़हर भी हो और वह काटे भी नहीं। जिसके ज़हर की थैली निकाल दी और दाँत निकाल दिये वह तो फिर खिलौना बन गया, उसको तो गले में डालकर बच्चे भी घूमते हैं। जिसके पास शक्ति है और फिर भी किसी को कष्ट नहीं देता, फिर भी कहता है चलो माफ़ किया, कोई बात नहीं, कहते हैं कि आपके पास पूरी शक्ति हो दूसरे को दण्डित करने की और उसके बाद भी आप दण्डित न करें, दूसरे को माफ़ कर दें तो मान लेना चाहिए कि आप सच में इस तपस्या से युक्त हो गये। भगवान कहते हैं कि इस स्थिति में जो व्यक्ति है वह मुझे प्यारा है।

हमारे ग्रंथों में ऐसा कहा गया कि दो चार ऐसे लक्षण बताये गये हैं कि उन स्थिति में क्षमा नहीं किया जा सकता, अन्यथा सभी स्थितियों में कहा गया है कि व्यक्ति को क्षमा कर देना चाहिए - अपहरण करने वाला व्यक्ति, राष्ट्र से द्रोह करने वाला व्यक्ति; संत का अपराध करने वाला व्यक्ति, किसी संत को, सज्जन इंसान को, कल्याणकारी इंसान को कोई जाकर सताये तो राजा के लिये यह कहा गया है कि राजा को ऐसे व्यक्ति को क्षमा नहीं करना चाहिए। संत तो क्षमा कर देगा पर कहते हैं कि राजा को नहीं करना चाहिए। अगर भले लोगों को सताने वाले लोग संसार में खड़े हो गये तो भलाई टिक नहीं पायेगी। धर्म का द्रोही इंसान - चार तरह के लोगों को कहा गया, राजनियम में कहा गया कि इनको क्षमा नहीं, बाक़ी ज़्यादा से ज़्यादातर यही कहा गया है कि इंसान को कोशिश करनी चाहिए कि सबको क्षमा करे और एक ऊँचे और अच्छे समाज का निर्माण करे।

मैगस्थनीज़ ने, जो चीनी यात्री था, भारत में भम्रण करने के लिये आया, इण्डिका नाम की पुस्तक लिखी। यहाँ के एक ऊँचे समाज का उसने वर्णन किया। उसने कहा - भारत देश को घूमकर देखा मैंनें, यहाँ लोग इतने धार्मिक हैं, लोगों में क्षमा का गुण बहुत है, जिस आदमी से अपराध हो जाये वह अपने आपको दण्डित करने के लिए निकल पड़ता है कि मैं अपने को सज़ा दूँ लेकिन जिसका उसने अपराध किया उसने यह कह देना कि कोई बात नहीं भाई, मैंने तो माफ किया।

दूसरी बात उसने कही है कि मैं यह देखकर हैरान हूँ, लोगों के घरो में ताले नहीं लगते, खुले पड़े हैं घर। हीरे-जवाहरात, सोना-चाँदी सब कुछ है इनके पास; वन में भी, आभूषण पहने नवयौवना महिला को जाते देखा है साँझ हो गयी, थक कर किसी पेड़ के नीचे बैठ गयी, किसी प्रकार का छल-छद्म नहीं है, कोई अत्याचार नहीं है।

लिखता है इसके बहुत सारे कारण यहाँ हैं लेकिन एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि सदगुरू के साथ, वानप्रस्थ साधुओं के साथ एक-एक परिवार जुड़ा हुआ है और बच्चे गुरू के कुल में जाकर के पढ़ते हैं, वहाँ से शिक्षा लेकर के आते हैं, लोग अपनी कमाई का हिस्सा धार्मिक कार्यें में लगाते हैं, अपनी कमाई का दसवां भाग धर्म कार्य में लगाते हैं इसीलिए इन लोगों के अंदर पवित्रता बहुत है। बनावट है नहीं, कृत्रिमता नहीं अपनाते, सरल हैं, शान्त हैं, सुखी हैं। अपना भोजन करने से पहले आस-पड़ोस वाले को देखते हैं।

साथ में यह भी कहता है मैंने किसी घर में अगर पानी माँगा तो मुझे पानी न देकर के उन लोगों ने दूध दिया और अगर पानी माँग भी लिया तो कहा पहले कुछ मीठा खाओ, फिर पानी पियो। हमने पूछा कि सीधा पानी पिलाने में क्या हानि है? वह कहते हैं कि हम इतने ग़रीब और दीन-हीन नहीं है और भगवान हमें कभी इस स्थिति में न पहुँचाये कि कोई हमारे सामने व्यक्ति खड़ा हुआ हो और उसे सीधा पानी देने वाले बन जायें हम, हमारे घर में कुछ होना चाहिए उसका स्वागत करने के लिए।

मैगस्थनीज़ कहता है कि एक इतना उन्नत, सभ्य समाज यहाँ दिखाई देता है इसका कारण यहाँ के शास्त्र, यहाँ की शिक्षाएं, यहाँ के धर्म गुरू। यह जितना बढ़ता चला जायेगा, धार्मिक प्रचार, समाज अच्छा होगा।

लेकिन यहाँ भी कोशिश यही करनी चाहिए कि उन सदगुणों का वर्णन किया जाये कि जिनको अपनाने से व्यक्ति के अंदर शुद्धिकरण हो। धार्मिक शिक्षाएं इस रूप में दी जायें जो हमारे शास्त्रों में कही गयी हैं, हमारे जो नीतिशास्त्र हैं, जहाँ नैतिक होने के उपदेश हैं उन ग्रंथों के संबंध में कहा जाये, गीता और रामायण की शिक्षाओं को लोगों तक पहुँचाया जाये, इससे भला होगा।

इसीलिए मैंने आपसे कहा क्षमा का गुण साधारण गुण नहीं हैं। हमारे ग्रंथों में इसके ऊपर बड़ी महिमा गायी गयी है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि जो क्षमावान है, वह मेरा अपना व्यक्ति है, मेरा प्यारा व्यक्ति है।

अगली कसौटी बताई है *सन्तुष्टः सततं योगी* - ऐसा व्यक्ति जो सतत् संतुष्ट रहता है वह भी मुझे प्यारा है। थोड़ी देर के लिए संतुष्टि तो हर किसी के मन में आ जाती है, भोजन करने के बाद तृप्ति आयेगी। कुछ थोड़ा बहुत कमा लिया तो संतुष्टि मिलेगी। संसार के कोई भी पदार्थ, कोई भी वस्तु कुछ भी आपने लिया, कमाया, जोड़ा, थोड़ी देर के लिये तसल्ली मिलती है, उसके बाद असंतुष्टि फिर मन में आ जाती है लेकिन जिसको सतत् संतुष्टि हो, अंदर से संतुष्ट और बाहर से पुरुषार्थी उस आदमी की भक्ति टिकती है।

इसको हम दूसरे ढंग से कहेंगे - जिस आदमी के मन में असंतोष है वह आदमी प्रसन्न नहीं रह सकता। आप देखते हैं न कि आज की दुनिया में सब कुछ है लेकिन सब्र नहीं है; बल्कि मैं कहा करता हूँ कि भगवान की प्रार्थना करने बैठो और सब कुछ माँगना लेकिन सब्र भी माँगना - भगवान हमें सब्र दो; इतने की हमें ज़रूरत है भी नहीं जितना हम जोड़ने में लगे हुए हैं।

याद कीजिए कि जब सिकन्दर भारत से वापिस लौटता हुआ अफग़ानिस्तान की सीमा में प्रवेश करते-करते खैबर दर्रा पार करना चाहता था उसी समय बीमार हो गया। बहुत तेज़ बुख़ार उसे और उसे लगा कि अब मैं बचूँगा नहीं, लगभग तीस साल की उम्र रही होगी। इतनी छोटी-सी उम्र में उस आदमी ने इतना कुछ भू-भाग जीत लिया। धन बड़ा भारी, बहुत सारी ज़मीनें जीत लीं, जब उसका आख़िरी समय उसे दिखाई देने लगा और लगा कि अब मैं जी नहीं पाऊँगा तो अपने कमाण्डर को उसने अपने पास बुलाया और उससे कहा कि मैं अब आख़िरी शब्द लिखवाना चाहता हूँ। अब कमाण्डर, जो महारथी था, उसने पास में आकर कहा - कि आप जल्दी घबरा गये हैं, आप जल्दी ठीक हो जायेंगे, हम अपने देश लौट चलेंगे और आपको कुछ नहीं होने वाला।

सिकन्दर ने कहा कि मैं नहीं समझता कि मैं जी पाऊँगा लेकिन जहाँ तुम मेरी क़ब्र बनाओगे न वहाँ पर यह पंक्तियाँ लिखना कि 'यह सिकन्दर जब तक जीवित रहा दुनिया भर की सम्पत्ति जीतने के बाद भी इसको सब्र नहीं आया। लेकिन आज छः गज़ ज़मीन में ही इसको सब्र आ गया क्योंकि इतनी जमीन

का मालिक आज यह बन पाया बाकी ज़मीन का मालिक यह बन ही नहीं पाया, सब छूट गया यही का यहीं।'

विचार करके देखिए - इंसान बेसब्र होकर कितने बड़े सपने पालता है, यह भी जीत लो, वह भी जीत लो, देश में, विदेश में, सारे संसार में फैलता चला जाता है, पर आदमी को चाहिए कितना, कितना भोजन करेगा आदमी, कितना वस्त्र पहनेगा और कितनी शय्या पर सोयेगा और कितने बड़े कमरे में रहेगा। सोने के लिए एक चारपाई भर की जगह चाहिए, बैठने के लिए उससे भी कम जगह और खड़े होने के लिए उससे भी छोटी जगह। लेकिन मनुष्य की हवस इतनी बड़ी है कि अगर सारी दुनिया की दौलत भी दे दी जाये, सारी दुनिया ज़मीन भी दे दी जाये उसके बाद-भी इंसान कहता है कि कम है, और होनी चाहिए, इसीलिए आदमी ज़्यादा परेशान है। आज का मनोवैज्ञानिक यह घोषणा करता है कि आज के समय में शरीर की बीमारियाँ कम बढ़ रही हैं, लेकिन मानसिक बीमारियाँ बहुत बढ़ रही हैं और उसका एक कारण यह है भी है कि मनुष्य के अंदर संतोष नहीं है, बड़ी हड़बड़ाहट है, न जाने क्या वह पाना चाहता है? क्या इकट्ठा करना चाहता है?

और बच्चों के लिए हम गाथाऐं, कहानियाँ, तरह-तरह की शिक्षाएं पढ़ाते हैं, मिडास की बात पढ़ायेंगे - मिडास वह आदमी था जिसने वरदान माँगा था ज्यूपिटर देवता से कि जो भी, जिस भी चीज़ को मैं हाथ लगाऊँ वही सोने की बन जाये, हर आदमी चाहता है न कि हमारे पांव जहाँ भी पड़ें मिट्टी भी सोना बनती चली जाये।

यह कहानियाँ पढ़ाई जाती हैं बच्चों को लेकिन ज़रा देखिये तो सही, यह सिर्फ़ बच्चों को सुनाने की चीज़ें हैं? कहानी में कहा जाता है कि मिडास की ज़िन्दगी इतनी नरकीय हो गयी कि जब उसको यह वरदान मिल गया पहले तो बहुत खुश हुआ, मेरे महल सोने के बनेंगे, मेरी शय्या सोने की बनेगी, मैं जहाँ रहूँगा चारों तरफ़ सोना ही होगा, यहाँ तक करूँगा अपने राज मार्ग, सड़कें भी सोने की बना लूँगा, यहाँ तक होगा कि मेरे बाग़ बगीचों में भी सोना दिखाई देगा। सपने तो बहुत भारी थे लेकिन जैसे ही उसने पानी पीने के लिये हाथ लगाया और पानी भी सोने का बन गया, रोटी खाने के लिए बैठा तो रोटी भी सोने की बन गयी, अब सोना न खाया जा सकता, न पहना जा सकता, न

ओढ़ा जा सकता, और न पिया जा सकता है और ज़्यादा दुःख उसे तब हुआ जब वह अपनी नन्ही-सी बेटी को जो दौड़कर उसकी गोद में आकर बैठ गयी, प्यार से उसको गोद में लेकर उसके सिर पर उसने हाथ रख दिया और जब वह सोने की बन गयी – अब न वह रो पाती है, न जी पाती है, ख़त्म हो गयी। अब यह रो रहा है, और ऊँचाई पर खड़े होकर लोगों से कहता है दूर रहना, एक अभिशाप लेकर मैं जी रहा हूँ, अगर किसी को भी मेरा हाथ लग गया वही मर जायेगा। मैं सोने की तलाश में गया था लेकिन सोना ही भूल गया हूँ, जीना ही भूल गया हूँ। चैन नहीं रहा ज़िन्दगी में। यह बेसब्रापन हर आदमी को व्याकुल करता है, पागल हो गये हैं इसके पीछे। जितने से हमारा काम चल जाये उसको अपनाने की कोशिश कीजिए। बहुत के पीछे भागने से बहुत मुसीबतें भी इकट्ठी करनी पड़ेंगी।

इसीलिए तो कहा गया है न – *चाह गयी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह,* मन बेपरवाह हो गया, क्योंकि चाह हट गयी तो चिंता भी गई। *चाह गयी चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह, जिसको कुछ न चाहिए वही शाहों का शाह।* जिसको कुछ चाहिए नहीं वही सबसे बड़ा बादशाह है।

भगवान कहते हैं कि जो मेरा होना चाहता है उसे सतत् संतुष्ट होना चाहिए। *यतआत्मा दृढ़निश्चय* – मेरे प्रति निरन्तर जो जुड़कर के चले वह मेरा है दृढ़ निश्यच – और जिसका निश्चय दृढ़ है, जिसके निश्चय में कोई कमी न आये वह मेरा है। यह बात भी थोड़ा विचार करना, हमारा निश्चय दृढ़ बना रहे, डावांडोल न हो, परमात्मा की तरफ़ चलने के लिए यह बहुत सुंदर और महत्त्वपूर्ण गुण है क्योंकि न जाने कितनी-कितनी बार मन डावांडोल होता है और निश्चय टूटता जाता है, जिसका निश्चय टूट गया वह सफल नहीं हो पाता।

इतिहास में उन लोगों का नाम कभी पढ़िये जो सफल हुए हैं। आपको एक बात पता लगेगी कि वह लोग निश्चय के बड़े ही धनी थे, संकल्प के धनी थे। दृढ़निश्चयी लोग थे। एक बार निश्चय करो और फिर उस पर चलते चले जाओ, पीछे हटना नहीं, छोड़ना नहीं निश्चय को, और फिर आप देखिए आपको कितनी सफ़लता मिलती है। दुनिया के किसी भी आदमी का उदाहरण लीजिए – चाहे आप नेपोलियन की बात लें निश्चय दृढ़ था अल्पस पर्वत को

पार करता हुआ चला गया, जीता, दुनिया में सफल हुआ। अपने देश के उदाहरण बहुत सारे हैं। जितने उदाहरण कहे जायें कम हैं, हज़ारों उदाहरण है।

राजा रंजीतसिंह ने दृढ़निश्चय किया, कोहिनूर को अपने सर पर सजाया और यह शब्द भी कैसे प्यारे थे - *सभी भूमि गोपाल की, जामें अटक कहाँ, जाके मन में अटक है वही अटक रहा।* अटक नदि के किनारे जा के अटक गयी फौज कि आगे नहीं जा पायेंगे लेकिन घोड़े को आगे बढ़ाते हुए, राजा रंजीत सिंह ने कहा कि जिसके मन में अटक है वह अटक जायेगा। जिसके मन में अटक नहीं है, संशय नहीं है वह कहीं नहीं अटकेगा क्योंकि भगवान ने दुनिया में अटक कहीं बनाई नहीं, अटक अगर है तो इंसान के मन में होती है। ज़मीन पर कहीं अटक नहीं है, कोई बाधा ऐसी नहीं जो इंसान को बाँध सके, इंसान कमज़ोर पड़ता है तो अपने अंदर से ही कमज़ोर पड़ता है।

इसीलिए मैं यह कहूँगा निश्चय दृढ़ करके जो चला वह सफल हुआ। इब्राहीम लिंकन का उदाहरण देखिए - साधारण इंसान दृढ़निश्चय करके, ग़रीबी में पलता हुआ इतना ऊँचाई पर पहुँचा अमेरिका का राष्टपति बना। कितने भी उदाहरण ले लीजिए बात वही है कि अगर आपका दृढ़निश्चय है तो आपको सफलता मिलेगी और अगर आपका निश्चय कमज़ोर है तो फिर सफलता मिलने वाली नहीं। इसीलिए अपने निश्चय को दृढ़ करके चलिए।

भगवान कहते हैं जो मेरी तरफ़ दृढनिश्चय लेकर आता है, दृढ़ संकल्प लेकर आता है वह ज़रूर सफल होता है, वह मेरा प्यारा बनता है और आख़िरी शब्द *मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः* मेरे प्रति जो अपने मन और बुद्धि को अर्पित कर दे, वह मेरा अपना बन जाता है। मन और बुद्धि, मन का काम है विचार करना, संकल्प-विकल्प करना और बुद्धि का कार्य है निश्चय करना। जिसने अपनी बुद्धि मेरी तरफ़ लगा दी, मन में मुझे बसा लिया, भगवान कहते हैं वही मेरा अपना प्यारा है, वही मुझे पा सकेगा, वही मेरा हो सकेगा। तो यहाँ एक बात याद रखने योग्य है, परमात्मा के प्रति मन लगाने से मतलब है कि आपका चिंतन भी भगवानमय में हो जाये। उसकी महिमा को देखें, उसकी महिमा पर विचार करें, तरह-तरह के रंग संसार में, तरह-तरह की शक्लें, एक शक्ल को भगवान ने रिपीट ही नहीं किया, एक जैसे लोगों को बनाया ही नहीं, सबमें अंतर है, एक जैसे जुड़वा भाई भी हों तो भी दोनों की शक्लों में अंतर है।

हज़ारों प्रकार के रंग बनाये हैं, कहने के लिये तो कहे जायेंगे सात रंग हैं जिनसे संसार बना लेकिन जिस परमात्मा का एक रंग भी हज़ारों प्रकार का है, जिस भगवान की लीला इतनी अनोखी है - तरह-तरह के फल, तरह-तरह के फूल, तरह-तरह के पंछी, तरह-तरह के जीव-जन्तु।

जो लोग मॉरिशस घूम के आते हैं तो सात रंग की मिट्टी लेकर के खुश होते हैं, ट्यूब में मिलती है; तो सात रंग की मिट्टी को अपने साथ लेकर के आये हैं। एक ही जगह पर, एक ही स्थान पर सात रंग मिट्टी के।

कितनी विविधता है परमात्मा की। देख-देख कर मन आश्चर्य में जुड़ता चला जाता है। ऐसे भी मेड़ हैं जिन पेड़ों से पानी बरसता रहता है, ऐसे भी पेड़ हैं जो जानवर को खींच कर उसका मांस या खून सोख लेते हैं। वे भी पेड़ हैं जिनके अंदर से करंट लगता है, वे भी पेड़ हैं जिनसे फल मिलता है। कैसी-कैसी अद्भुत सृष्टि है परमात्मा की। देख-देख कर, सोच-सोच कर यह विचार करना चाहिए कि जिस परमात्मा ने ऐसी अद्भुत सृष्टि बनाई, इतना सुंदर संसार बनाया, वह कितना सुंदर होगा, कितना अच्छा होगा। चित्र बनाकर चित्रकार छिप गया अपनी अनुभूतियां कराता है लेकिन सीधा सामने नहीं आता। सबको भोजन दिया, सबकी व्यवस्थायें की, सबके जीने की व्यवस्थायें बनायीं और सबकी रक्षा करने के लिए हथियार भी दे दिये। चींटी को आप देखिए कितनी छोटी-सी चिकोटी दी होगी, छोटी-सी चींटी पांव के नीचे दब जाये आप कहीं बैठे हुए हैं और आपके नीचे चींटी दब जाये तो फिर वह क्या करती है अपने हथियार और अपनी पिन निकाल कर लायेगी और आपको चुभोकर कहेगी - भैया ज़रा हम भी जी रहे हैं यहाँ, हमें भी जीने देना, आपके नीचे हम भी हैं, थोड़ा हट के बैठना। आपको समझ में आ जाता है नीचे चींटी है, अब सोचिए कितनी-सी चींटी है और वह इंसान को हिला देती है एक बार में। भगवान ने उसको भी दे रखा है एक हथियार कि अगर कभी कोई परेशान करे तो इससे काम करना।

एक लेखक की पुस्तक पढ़ रहा था जिसने समुद्री जीवों पर बड़ी कुछ खोजें की और उसने बड़ी सारी अजीब चीजें लिखीं उनमें से एक बात वह कहता था कि मैं देखता हूँ एक मछली जिसके पास हज़ार वाट का करंट मारती है वह, बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा रही हैं कि मैं सबका दृश्य देख

रहा हूँ कि अचानक देखा एक अनेक रंग जिसमें झिलमिला रहे हैं ऐसी एक मछली सुंदर-सी चलती हुई आई और इधर देखता हूँ कि बड़ी मछली आई उसे निगलने के लिये। अब बड़ी मछली खा न जाये तो उसने अपना काँटा निकाला और वह पूँछ की तरफ़ गयी, बड़ी मछली की पूँछ में ऐसा काँटा चुभाया कि वह भागती चली गयी, कि मैं सोच रहा हूँ हर एक की रक्षा करने की व्यवस्था जिस शक्ति ने दे रखी है, अपना बचाव करना, अपने भोजन में लगे रहना, अपने परिवार में मस्त रहना - कि यह व्यवस्थायें जिसने की हैं उसकी व्यवस्था कितनी अनूठी है। सबको भगवान ने कुछ न कुछ दिया है। जानवरों के पास किसी के सींग दिये, किसी के पास पंजे दिये, किस के पास नुकिले दाँत हैं। इंसान को सींग नहीं दिये, इसको बुद्धि दी और इस बुद्धिमान को देखिए यह बड़े-बड़े जीवों को अपने बंधन में बाँधे हुए चल रहा है - भालू के नाक में भी इसने रस्सी डाली, नचा रहा है, बंदर को भी इसने बाँध लिया, बंदर नाच रहा है इसके सामने, शेर इसके सामने तमाशा करता है, हाथी से यह काम ले रहा है, सांप को यह नचा रहा है - अपनी बुद्धि के आधार पर।

भगवान कहते हैं जो अपना मन और बुद्धि मेरे अर्पण करके चलता है, अर्जुन मैं उसका हो जाया करता हूँ और वह मेरा हो जाया करता है, मेरा प्यारा होने का यही रास्ता है।

मैं आशा करता हूँ आप इस पर विचार करेंगे।

बहुत-बहुत शुभकामनाएं

अध्याय - बारह

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पुर्यपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

इस प्रकार सदा निष्ठापूर्वक जो भक्त तेरी पूजा करते हैं और दूसरी ओर जो लोग अनश्वर और अव्यक्त की उपासना करते हैं, इन दोनों में से योग का ज्ञान किसको अधिक है?

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

जो लोग अपने मन को मुझमें स्थिर करके, सदा निष्ठापूर्वक और परम श्रद्धा के साथ मेरी पूजा करते है, मैं उन्हें योग में सबसे अधिक पूर्ण समझता हूँ।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

किन्तु जो लोग अनश्वर, अनिर्वचनीय, अव्यक्त, सब जगह विद्यमान, अचिन्तनीय, अपरिवर्तनशील (कूटस्थ), गतिरहित (अचल) और निरन्तर एक सा रहनेवाले (ध्रुव) की उपासना करते हैं;

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

वे सब इन्द्रियों को वश में करके, सब दिशाओं में समानचित्त रहते हुए, सब प्राणियों के कल्याण में आनन्द अनुभव करते हुए (अन्य लोगों की भांति ही) मुझको ही प्राप्त होते हैं।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

जिनके विचार अव्यक्त की ओर लगे हुए हैं, उनकी कठिनाई कहीं अधिक है, क्योंकि अव्यक्त का लक्ष्य देहधारी प्राणियों द्वारा प्राप्त किया जाना बहुत कठिन है।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥

परन्तु जो लोग अपने सब कर्मों को मुझमें समर्पित करके, मुझमें ध्यान लगाए हुए, अनन्य भक्ति से ध्यान करते हुए मेरी पूजा करते हैं ;

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

जो अपने विचारों को मुझ पर केन्द्रित करते हैं, हे अर्जुन, मैं इस मृत्यु द्वारा सीमित संसार रूपी समुद्र से उनका शीघ्र ही उद्धार कर देता हूँ।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

तू अपने मन को मुझमें लगा। अपने बुद्धि को मेरी ओर लगा। उसके बाद तू केवल मुझमें ही निवास करता रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥९॥

हे धनजय (अर्जुन), यदि तू अपने चित्त को स्थिरतापूर्वक मुझमें लगाने में असमर्थ है, तब तू अभ्यासयोग द्वारा (चित्त को एकाग्र करने के द्वारा) मुझ तक पहुँचने का यत्न कर।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

यदि तू अभ्यास द्वारा भी मुझे प्राप्त करने में असमर्थ है, तब तू मेरी सेवा को अपना परम लक्ष्य बना ले; मेरे लिए कर्म करता हुआ भी तू सिद्धि (पूर्णता) को प्राप्त कर लेगा।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

यदि तू इतना भी करने में असमर्थ है, तब तू मेरी अनुशासित गतिविधि (योग) की शरण ले और अपने-आपको वश में करके सब कर्मों के फल की इच्छा त्याग दे।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

ज्ञान निश्चित रूप से (एकाग्रीकरण के) अभ्यास से अधिक अच्छा है; ध्यान ज्ञान से अच्छा है; फल का त्याग ध्यान से भी अच्छा है; त्याग से तुरन्त शान्ति प्राप्त हो जाती है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥

जो व्यक्ति किसी प्राणी से द्वेष नहीं करता, जो सबका मित्र है और सबके प्रति सहानुभूतिपूर्ण है, जो अहंकार और ममता की भावना से रहित है, जो सुख और दुःख में समान रहता है और जो धैर्यवान् है;

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

जो योगी है, सदा सन्तुष्ट रहता है, अपने-आपको वश में रखता है, जो दृढ़-निश्चयी है, जिसने अपने मन और बुद्धि को मुझे अर्पित कर दिया है;

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

जिससे संसार नहीं घबराता और जो संसार से नहीं घबराता और जो आनन्द और क्रोध से, भय और उद्वेग से रहित है, वह भी मुझे प्रिय है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

जो किसी से कोई आशा नहीं रखता; जो शुद्ध है; कर्म में कुशल है; जो उदासीन (निरपेक्ष) है और जिसे कोई कष्ट नहीं ; जिसने (कर्म के सम्बन्ध में) सब आग्रहों को त्याग दिया है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

जो व्यक्ति न प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है, न दु:ख मानता है, न इच्छा करता है और जिसने भले और बुरे दोनों का परित्याग कर दिया है और जो इस प्रकार मेरी भक्ति करता है, वह मुझे प्रिय है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

जो शत्रु और मित्र दोनों के साथ एक-सा बर्ताव करता है; जो मान और अपमान को समान दृष्टि से देखता है; जो सर्दी-गर्मी और सुख-दुख में एक जैसा रहता है और जो आसक्ति से रहित है;

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

जो निन्दा और प्रशंसा को एक समान समझता है; जो मौन रहता है (वाणी को अपने वश में रखता है) और जो कुछ मिल जाए, उसी से सन्तुष्ट रहता है; जिसका कोई नियत निवास-स्थान नहीं है; जिसकी बुद्धि स्थिर है और जो मुझमें भक्ति रखता है, वह मुझे प्रिय है।

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

परन्तु जो लोग श्रद्धापूर्वक मुझे अपना सर्वोच्च लक्ष्य मानते हुए इस अमर ज्ञान का अनुसरण करते हैं, वे भक्त मुझे बहुत ही अधिक प्रिय है।

"उन्नति का सबसे बड़ा शिखर अगर कोई है तो परमात्मा है। शान्ति का परम धाम परमात्मा है; आनन्द, उल्लास और सम्पूर्ण उत्सव का समग्र रूप परमात्मा है; समृद्धि का सम्पूर्ण स्वरूप परमात्मा है, इसीलिए फिर कुछ और पाना बाकी नहीं रहता। वही एकमात्र मंज़िल है, वही एकमात्र लक्ष्य है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि जैसे माला में मणियों के बीच धागा पिरोया हुआ होता है, इस सारे संसार में मैं अपने स्वरूप को इसी तरह पिरोये हुए हूँ, सब जगह हूँ, समस्त जगत में व्याप्त हूँ।"

आचार्य सुधांशुजी महाराज